KGS IAS

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform

विश्व का भौतिक भूगोल

विषय सूची

भूगोलः अर्थ एवं परिभाषा 1
परिचय (Indroduction) 1
भूगोल की शाखाएँ 1
भौतिक भूगोल की उपशाखाएँ 2
मानव भूगोल 2

ब्रह्मांड 3
ब्रह्मांड (The Universe/Cosmos) 3
ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सिद्धांत (Theory of the Origin of the Universe) 3
आकाशगंगा (Galaxy) 4
तारे का जन्म और मृत्यु 5
अंतरिक्ष (Space) 5
सौर मंडल (Solar System) 6
सूर्य (Sun) 7
ग्रह (Planet) 7
उपग्रह (Satellite) 11
खगोलीय पिड (Celestial Bodies) 13

पृथ्वी की गतियाँ 17
परिचय (Introduction) 17
घूर्णन अथवा दैनिक गति (Rotation Movement) 17
परिक्रमण अथवा वार्षिक गति (Revolution Movement) 17
ऋतु परिवर्तन (Season Changes) 18
ग्रहण (Eclipse) 20

अक्षांश, देशांतर, अंतर्राष्ट्रीय तिथि रेखा व समय 23
परिचय (Introduction) 23
अक्षांश रेखाएँ (Latitude Lines) 23
भारतीय मानक समय रेखा (Indian Standard Time Line) 25

पृथ्वी की संरचना 27
पृथ्वीः परिचय (Earth : Introduction) 27
पृथ्वी की उत्पत्ति (Origin of the Earth) 28
आधुनिक सिद्धांत (Modern Theory) 28
पृथ्वी से संबंधित प्रमुख शब्दावलियाँ एवं तथ्य 28
पृथ्वी की आयु (Age of the Earth) 29
पृथ्वी का भूगर्भिक इतिहास (Geological History of the Earth) 29
पृथ्वी की आंतरिक संरचना (Internal Structure of the Earth) 31
पृथ्वी के आंतरिक भाग का रासायनिक संगठन 34
पृथ्वी के आंतरिक भाग में स्थित विभिन्न मंडल 34
पृथ्वी के आंतरिक भाग में तापमान और दबाव 36

भूपटल पर परिवर्तन लाने वाले बाह्य बल 39
परिचय (Introduction) 39
अंतर्जात बल (Endogenetic Force) 39
महादेशीय संचलन का उदाहरण 40
वलन व इसके प्रकार (Folds and its Type) 40
वलन के प्रकार (Type of Fold) 41
अपनति (Anticline) 41
अभिनति (Syncline) 41
भ्रंश व उसके प्रकार (Fault & their types) 41
भ्रंश से निर्मित भू-आकृतियाँ 42
भ्रशों का महत्त्व (Importance of Faults) 42
बहिर्जात बल (Exogenic Force) 43

महाद्वीपीय विस्थापन, सागर नितल प्रसरण तथा प्लेट विवर्तनिकी 45
परिचय (Introduction) 45
अल्फ्रेड वेगनर (Alfred Wegner) का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत 45
महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of Continental Drift) 46
महासागरीय अधस्तल का मानचित्रण (Mapping of the Ocean Floor) 47
महासागरीय अधस्तल की बनावट (Ocean Floor Configuration) 47
संवहन-धारा सिद्धांत 47

सागर नितल प्रसरण सिद्धांत
(Sea flore spreading theory) 48
प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत (Plate Tectonics Theory) 48
प्लेट को संचालित करने वाले बल
(Forces for the plate movement) 49
भारतीय प्लेट का संचलन
(Movement of the Indian Plate) 50
भारतीय प्लेट की उत्तर-पूर्व ओर गति के प्रमाण 50
विश्व की प्रमुख प्लेटें 50
महाद्वीपीय एवं महासागरीय नितलः एक नजर में 51

भूकंप एवं सुनामी 53
भूकंपः परिचय (Earthquake : Introduction) 53
भूकंपीय तीव्रता का मापन 53
भूकंप के कारण (Reason of Earthquake) 53
भूकंप के प्रकार (Types of Earthquake) 54
भूकंपीय तरंगें (Seismic Waves) 54
समभूकंप रेखाएँ (Isoseismal Lines) 54
भूकंपीय तरंगों का छाया क्षेत्र
(Shadow Zone of Seismic Waves) 54
भूकंपों का विश्व वितरण 55
भूकंप के प्रभाव (Effect of Earthquake) 55
भारत के भूकंप क्षेत्र
(Earthquake Zone of India) 56
सुनामी (Tsunamis) 56
सुनामी से संबंधित पूर्व चेतावनी 58

ज्वालामुखी 59
ज्वालामुखी (Volcanoes) 59
ज्वालामुखी उद्गार के कारण
(Reasons for Volcanic Eruption) 59
ज्वालामुखी के प्रकार (Types of Valconaes) 60
ज्वालामुखी से निकलने वाले पदार्थ 60

चट्टान 65
परिचय (Introduction) 65
चट्टानों के प्रकार (Types of Rocks) 65
आग्नेय शैल (Igneous Rock) 65
परतदार या अवसादी शैल (Sedimentary Rock) 67
रूपांतरित या कायांतरित शैल (Metamorphic Rock) 68
चट्टानी चक्र (Rocks Cycle) 69

पर्वत, पठार मैदान एवं घाटियाँ 71
पर्वत (Mountains) 71
पर्वतः स्मरणीय तथ्य 74
पठार (Plateau) 75
पठारों का वर्गीकरण 75
भारतीय पठार (Indian Plateau) 76
पठारः स्मरणीय तथ्य 77
मैदान (Plains) 77
मैदानों के प्रकार (Types of Plains) 77
मैदानः एक नजर में 79
घाटियाँ (Valleys) 80

झीलें 85
परिचय (Introduction) 85
झीलों के प्रकार (Types of Lakes) 85
वोस्टोक झील 89
झीलः एक नजर में 89

द्वीप एवं जलसंधियाँ 91
द्वीप (Islands) 91
द्वीपों के प्रकार (Types of Islands) 91
जलसंधियाँ (Straits) 93

नदी के कार्य एवं स्थलरूप, डेल्टा एवं हिमानियाँ 95
परिचय (Introduction) 95
नदी द्वारा अपरदनात्मक कार्य 95
नदी द्वारा बनी अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ 95
नदी द्वारा निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ
(Depositional Landform by River) 96
डेल्टा (Delta) 98
हिमानी (Glacier) 99
हिमरेखा (Snow Line) 100
हिमानी-जलोढ़ निक्षेप 102
डेल्टा एवं हिमानीः एक नजर में 103

भूमिगत एवं सागरीय जल के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ	**105**
भूमिगत जल (Underground Water)	105
भूमिगत जल के कार्य एवं स्थलाकृतियां (Work of Underground Water & Landforms)	105
सागरीय जल के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ (Work of Sea water & Landforms)	106
अध्यायः एक नजर में	108
पवन के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ	**109**
परिचय (Introduction)	109
पवन के निक्षेपणात्मक क्रिया द्वारा निर्मित स्थलाकृतियाँ	110
मरुस्थल एवं उनके विभिन्न प्रकार	111
वायुमंडलः संघटन और संरचना	**113**
वायुमंडल में स्थित महत्त्वपूर्ण गैसें	113
वायुमंडल का स्तरीकरण या संरचना (Stratification or Structure of Atmoshphere)	114
सूर्यताप एवं तापमान	**119**
परिचय (Introduction)	119
सूर्यातप (Insolation)	119
वायुमंडल का गर्म एवं ठंडा होना	121
तापमान (Temperature)	122
तापीय कटिबंध (Temperature Zone)	123
तापीय विसंगति (Temperature Anamoly)	123
तापमान का व्युत्क्रम या प्रतिलोमन (Inversion of Temperature)	123
पृथ्वी का ऊष्मा बजट	124
भूमंडलीय तापन (Global Warming)	124
वायुदाब एवं पवन	**127**
वायुदाब (Air Pressure)	127
धरातल पर वायुदाब की पेटियों का वितरण (Distribution of Atmospheric Pressure Belts on the Surface of the Earth)	128
पवन (Wind)	129
वायु की उर्ध्वाधर गति से संबंधित कोशिकाएँ	131
पवन के प्रकार (Types of Wind)	132
जेट-स्ट्रीम (Jet Stream)	134
स्थानीय हवाएँ	135
वायुराशि, वाताग्र एवं चक्रवात	**139**
वायुराशि (Air Mass)	139
वायुराशियों के प्रकार (Types of Air Mass)	139
वाताग्र (Fronts)	140
चक्रवात (Cyclones)	141
चक्रवातों के प्रकार	141
प्रति-चक्रवात (Anti-Cyclones)	144
भारत में उष्ण-कटिबंधीय चक्रवात	145
आर्द्रता एवं वर्षण	**147**
आर्द्रता (Humidity)	147
कुहरा (Fog)	149
बादल (Clouds)	149
बादल का वर्गीकरण	150
वृष्टि या वर्षण (Precipitation)	151
जलवायु	**155**
सामान्य परिचय	155
जलवायु का वर्गीकरण	155
महासागर और उसके उच्चावच	**161**
सामान्य परिचय	161
प्रशांत महासागर	161
अटलांटिक महासागर	162
महासागरीय बेसिन	163
महासागरीय उच्चावच (Oceans Relief)	163
महासागरीय जल का तापमान, लवणता एवं निक्षेप	**167**
महासागरीय जल का तापमान	167
महासागरीय जल की लवणता	168
महासागरीय निक्षेप (Ocean Deposits)	169
महासागरीय जल की गतियाँ एवं धाराएँ	**173**
महासागरीय जल की गतियाँ (Movements of Ocean Water)	173

प्रवाह (Drift) 173
महासागरीय धाराएँ 174
अटलांटिक महासागर की धाराएँ 174

ज्वार भाटा एवं प्रवाल भित्ति 181
ज्वार-भाटा (Tide–Ebb) 181
ज्वार-भाटा के प्रकार 181
प्रवाल तथा प्रवाल भित्तियाँ (Coral & Coral Reefs) 183
प्रवाल भित्तियों के प्रकार 183
प्रवाल विरंजन (Coral Bleaching) 183
प्रवाल विरंजन के कारण 184

महासागरीय संसाधन 187
सागरीय संसाधन 187
सागरीय जैविक संसाधन (Marine Biological Resources) 187
सागरीय खनिज संसाधन (Marine Mineral Resources) 188
सागरीय ऊर्जा संसाधन 189

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

भूगोलः अर्थ एवं परिभाषा
(Geography: Meaning and Definition)

परिचय (Indroduction)

- **'भूगोल'** या **'ज्योग्राफी'** (Geography) संपूर्ण ब्रह्मांड में मानव के निवास के रूप में वर्तमान समय तक प्रमाणित एकमात्र ग्रह **'पृथ्वी'** के बारे में तथ्यात्मक विवरणों के साथ संपूर्ण अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

विषय के रूप में **'भूगोल' (भू+गोल)** का शाब्दिक अर्थ है- **'गोल पृथ्वी'**। वास्तव में यह शब्द पृथ्वी के मात्र एक ही गुण का परिचायक है, न कि संपूर्ण भूगोल की वास्तविक सीमाओं का।

- अंग्रेजी भाषा का शब्द **'ज्योग्राफी'** (Geography) दो शब्दों से मिलकर बना है- Geo (ज्यो) अर्थात् पृथ्वी तथा Graphy (ग्राफी) अर्थात् वर्णन। इस प्रकार **'ज्योग्राफी'** का अर्थ है- **'पृथ्वी का वर्णन'**।
- यह शब्द भी भूगोल के सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का बोध कराने में अपूर्ण है क्योंकि मात्र पृथ्वी का वर्णन कर देने से भूगोल का वास्तविक लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा प्राचीन काल से ही इसे एक शास्त्र के रूप में मान्यता प्रदान की गई है जिसके अंतर्गत पृथ्वी के वर्णन के साथ ही विभिन्न देशों के निवासियों के रहन-सहन, मुख्य धरातलीय आकृतियों का अध्ययन तथा विभिन्न क्रियाओं, जैसे- ज्वालामुखी, भूकंप, ज्वार-भाटा, लहरें आदि को महत्त्व प्रदान किया गया है।
- समय परिवर्तन के साथ वर्तमान शताब्दी में सम्पूर्ण भौगोलिक अध्ययन को सम्पूर्ण पृथ्वी के अध्ययन से हटाकर धरातलीय पेटियों में मानव कल्याण के समस्त पहलुओं को शामिल कर लिया गया है। यहाँ तक कि भूगोल के मूल अर्थ **'पृथ्वी के वर्णन'** के साथ गणितीय विधियों से उसके सत्यापन एवं विश्लेषण का भी कार्य किया जा रहा है।
- चूँकि मानव अपने रहन-सहन एवं क्रिया-कलाप द्वारा मूल भौगोलिक वातावरण में परिवर्तन करता है, अतः वह स्वयं भी एक भौगोलिक तत्व है। इस प्रकार मानव एवं पृथ्वी के आंतरिक सम्बंधों की दृष्टि से भूगोल का अध्ययन काफी महत्त्वपूर्ण है।
- **इरेटोस्थनीज प्रथम यूनानी वैज्ञानिक था** जिसने भूगोल के लिए **'ज्योग्रैफिका'** शब्द का प्रयोग किया।
- भूगोल को एक सुनिश्चित स्वरूप प्रदान करने में हेरोडोटस, स्ट्रैबो, क्लाडियस टॉलमी, इमेन्युअल काण्ट, कार्ल रिटर आदि विद्वानों का विशेष योगदान रहा है।
- एच. एफ. टॉजर ने हिकेटियस को (500 ईसा पूर्व) भूगोल का पिता माना था जिसने स्थल भाग को सागरों से घिरा हुआ माना तथा दो महादेशों का ज्ञान दिया। **उनकी प्रसिद्ध पुस्तक जेस पीरियड्स (Ges Periods)** है।
- अरस्तू प्रथम दार्शनिक था जिसने पृथ्वी के आकार को गोलाभ माना।
- भूगोल के विकास में **टॉलमी** का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। उन्हें **मानचित्र कला का जनक** माना जाता है। उन्होंने अपने कार्य का संग्रह **'अल्मागेस्ट'** (Almagest) के नाम से किया। टॉलमी की प्रसिद्ध पुस्तक **'ग्रहीय परिकल्पना'** है। उन्होंने सर्वप्रथम बंगाल की खाड़ी को मानचित्र पर अंकित किया।

भूगोल की शाखाएँ

वर्तमान समय में भूगोल के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख शाखाओं का अध्ययन किया जा रहा है-

- **भौतिक भूगोल (Physical Geography)-** इसके अंतर्गत मानव से संबंधित भौतिक वस्तुओं, जैसे-पृथ्वी, समुद्र, वायुमंडल आदि के तत्वों एवं इनमें परिवर्तन लाने वाले प्रक्रमों का तथ्यपरक अध्ययन किया जाता है।
- **मानव भूगोल (Human Geography)-** इस शाखा के अंतर्गत मानव के जन्म से लेकर वर्तमान समय तक उसके विकास, क्रिया-कलापों, परिवर्तनों, स्थानांतरों आदि का अध्ययन किया जाता है।
- **आर्थिक भूगोल (Economic Geography)-** यह मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है। इसमें मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक विकसित हुए उसके विभिन्न आर्थिक क्रिया-कलापों का समग्र अध्ययन किया जाता है।
- **कृषि भूगोल (Agricultural Geography)-** भूगोल की इस शाखा के अंतर्गत कृषि की भौगोलिक दशाओं एवं विभिन्न फसलों के उत्पादन तथा वितरण प्रतिरूप का अध्ययन किया जाता है।
- **जनसंख्या भूगोल ((Population Geography)-** भूगोल की यह शाखा प्राणिशास्त्रीय अवधारणा (Biological Concept) के आधार पर मानव-प्रजातियों की उत्पत्ति, विकास, विश्व वितरण तथा उनके स्थान स्थानांतरणों एवं विभिन्न प्रजातियों के पारस्परिक सम्मिश्रण का विवेचन करती है।
- **मानचित्र कला (Cartography)-** चूँकि मानचित्र भौगोलिक अध्ययन के सर्वप्रमुख आधार है, अतः उनकी निर्माण विधियों का अध्ययन मानचित्र कला के अंतर्गत किया जाता है।

भौतिक भूगोल की उपशाखाएँ

भौतिक भूगोल की उपशाखाओं के रूप में निम्नलिखित विषयों का अध्ययन किया जाता है-

- भू-आकृति विज्ञान (Geomorphology)- विज्ञान, खगोल, भू-विज्ञान तथा भौतिक भूगोल का अध्ययन।
- **प्राकृतिक भूगोल (Physiography)**- भू-धरातल की स्थलाकृतियों का अध्ययन।
- **पर्वत विज्ञान (Orography)**- पर्वतों की उत्पत्ति, संरचना तथा विकास का अध्ययन।
- **समुद्र विज्ञान (Oceanography)**- सागरों का अध्ययन।
- **जलवायु विज्ञान (Climatology)**- जलवायु का अध्ययन।
- **भूकंप विज्ञान (Seismology)**- भूकंपों का वैज्ञानिक अध्ययन व विश्लेषण।
- **अश्म (चट्टान) विज्ञान (Lithology)**- चट्टानों व शैलों का अध्ययन।
- **पारिस्थितिकी (Ecology)**- जीवों व वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन।
- **सरोवर विज्ञान (Limnology)**- ताजे पानी की झीलों व सरोवरों का अध्ययन।
- **ज्वालामुखी विज्ञान (Valcanology)**- ज्वालामुखी का समग्र अध्ययन।
- **मृदा विज्ञान (Pedology)**- मिट्टी के निर्माण व धरातल पर वितरण का अध्ययन।
- **घास विज्ञान (Agrostology)**- घासों का भौगोलिक पर्यावरण के साथ अध्ययन।
- **वर्षण विज्ञान (Hyetology)**- वर्षा का होना व इसके वितरण का अध्ययन।

मानव भूगोल

भौतिक भूगोल की ही भाँति मानव भूगोल का अध्ययन विभिन्न उपशाखाओं में विभाजित करके किया जाता है, जैसे-

- मानवशास्त्र या नृविज्ञान (Anthropogeography)- मानव की उत्पत्ति से लेकर वर्तमान समय तक उसके पर्यावरण के साथ संबंधों का अध्ययन मानवशास्त्र या नृविज्ञान के अंतर्गत ही आता है।
- मानव जाति विज्ञान (Ethnography)- धरातल पर विस्तृत मानव जाति का प्रजातीय इकाइयों (Racial Units) के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन।
- विश्व में पायी जाने वाली विभिन्न संस्कृतियों का पर्यावरण के साथ उनके संबन्धों को ध्यान में रखकर तथा वितरण-प्रतिरूप को दर्शाते हुए वैज्ञानिक अध्ययन।

स्व कार्य हेतु

ब्रह्मांड
(The Universe)

ब्रह्मांड (The Universe/Cosmos)

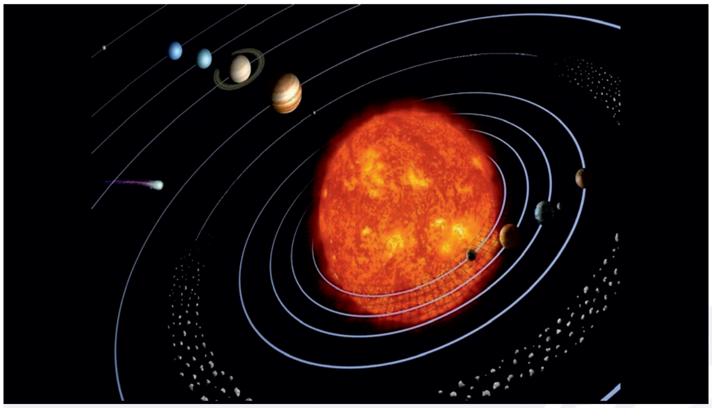

पृथ्वी के चारों ओर विस्तृत अनंत आकाश को ब्रह्मांड कहते हैं, जिसके अंतर्गत एक परमाणु से लेकर आकाशगंगा और उसके समूह मंदाकिनी तक आते हैं। अतः आकाशगंगा के अनंत समूह का सम्मिलित रूप ही ब्रह्मांड कहलाता है।

- ब्रह्मांड असंख्य टिमटिमाते या झीलमिलाते तारों का एक समूह है जिसमें अनेकों सौरमंडल सम्मलित हैं।
- वैज्ञानिक आधार पर खगोलशास्त्र की नींव रखने वाले वैज्ञानिक केपलर ने तीन ऐसे नियमों का प्रतिपादन किया जिससे ग्रहों की गति और सूर्य से ग्रहों की दीर्घवृत्तीय कक्षा, सूर्य के सापेक्ष ग्रहों की गति और सूर्य से ग्रहों की दूरी की व्याख्या होती है।
- इटली के महान गणितज्ञ गैलीलियो गैलिली ने 1605 में अपनी दूरबीन की सहायता से अंतरिक्ष पिडों का अध्ययन कर कोपरनिकस के सिद्धांतों की पुष्टि की।
- बाद में जेरिमिया हॉरोक्स (Jeremiah Horrocks) ने सूर्य के बीच शुक्र के याम्योत्तर की गणना कर तथा सर आइजेक न्यूटन (1642-1727) ने गुरुत्वाकर्षण के नियम का प्रतिपादन कर खगोलशास्त्र की दिशा ही बदल दी।
- आज खगोल के अध्ययन एवं उसकी अधिकतम उपयोगिता के लिए जिन कृत्रिम उपग्रहों को प्रक्षेपित किया जाता है, उसकी संभावनाओं की खोज का श्रेय न्यूटन को ही जाता है।
- 1781 में ब्रिटिश खगोलशास्त्री **विलियम हार्शेल** ने **यूरेनस** की खोज कर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। उन्होंने 1805 में दूरबीन की सहायता से यह प्रमाणित कर दिया कि ब्रह्मांड केवल हमारे सौरमंडल तक ही सीमित नहीं है वरन् हमारा सौरमंडल करोड़ों तारों के समूह आकाशगंगा का एक अत्यंत छोटा भाग है।
- 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में खगोलशास्त्री हार्लो शेलपी (1886-1972) ने चमकीले तारों **'सैफ फीड वेरिएबल्स'** को मानकीकृत प्रकाश स्रोतों के रूप में उपयोग करते हुए, पहली बार आकाशगंगा (मिल्की-वे) का स्पष्ट चित्रंकन किया तथा उसकी लम्बाई 300,000 प्रकाश वर्ष निर्धारित किया।
- उन्होंने प्रकाश वर्ष के इसी विस्तार को सम्पूर्ण ब्रह्मांड का ओर-छोर माना। शेपली की इस धारणा को 1924 में महान् अमेरिकी खगोलशास्त्री एडविन पावेल हब्बल (1889-1963) ने गलत प्रमाणित कर दिया। एंड्रोमेडा आकाशगंगा में स्थित सैफ फीड वेरिएबल्स तारों को चिन्हित कर प्रमाणित किया कि यह तारा लगभग 10 प्रकाश वर्ष दूरी पर स्थित है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रह्मांड अकल्पनीय रूप से विशाल है और उसमें आकाशगंगाओं का अस्तित्व नगण्य है।
- हब्बल ने यह प्रतिपादित किया कि ब्रह्मांड में हमारी आकाशगंगा के समान लाखों की संख्या में अन्य **'मिल्की वे'** (दुग्ध मेखलाएँ) हैं।
- ये आकाशगंगा एक-दूसरे से दूर होती जा रही हैं जैसे-जैसे उनकी दूरी बढ़ती है उनकी भागने की गति भी तीव्र होती जाती है। इसका अर्थ है कि ब्रह्मांड का प्रसार हो रहा है।
- दृश्य पथ में आने वाले ब्रह्मांड का व्यास 250 करोड़ प्रकाश वर्ष (वह दूरी जिसे प्रकाश शून्य में 299,792.5 किमी. प्रति सेकेंड की गति के आधार पर सूर्य और पृथ्वी के बीच औसत दूरी को तय करता है) है।

ब्रह्मांड की उत्पत्ति का सिद्धांत
(Theory of the Origin of the Universe)

ब्रह्मांड की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धांत

- **बिग बैंग सिद्धांत (Big Bang Theory)**- जॉर्ज लैमेन्टर द्वारा।
- **साम्यावस्था सिद्धांत (Steady State Theory)**- थॉमस गोल्ड एवं हर्मन बांडी द्वारा।
- **दोलन सिद्धांत (Pulsating Universe Theory)**- डॉ. एलन संडेज द्वारा।
- उपरोक्त तीनों सिद्धांत ब्रह्मांड की उत्पत्ति से संबंधित हैं, जिनमें बिग बैंग सिद्धांत सर्वाधिक मान्य है।

बिग बैंग सिद्धांत (Big Bang Theory)

- ब्रह्मांड की उत्पत्ति के संबंध में यह सर्वाधिक मान्य सिद्धांत है। इसका प्रतिपादन बेल्जियम के खगोलज्ञ एवं पादरी जॉर्ज लैमेन्टर ने 1960-70 ई. में किया था। उनके अनुसार, लगभग 15 अरब वर्ष पूर्व एक विशालकाय अग्निपिण्ड था जिसका निर्माण भारी पदार्थों से हुआ था। इसमें अचानक विस्फोट (ब्रह्मांडीय विस्फोट या बिग बैंग) से पदार्थों का बिखराव हुआ जिससे सामान्य पदार्थ निर्मित हुए।
- इसके अलगाव के कारण काले पदार्थ बने जिनके समूहन से अनेक ब्रह्मांडीय पिडों का सृजन हुआ। इसके चारों ओर सामान्य पदार्थों का जमाव हुआ जिससे इनके आकार में वृद्धि हुई। इस प्रकार आकाशगंगाओं का निर्माण हुआ।
- आकाशगंगा के निर्माण के विषय में वैज्ञानिकों के दो वैकल्पिक विचार है- काले पदार्थो का अस्तित्व गर्म या ठण्डे रूप (Hot and Cold form) में रहा होगा। गर्म काले पदार्थों की स्थिति में आकाशगंगा से दूर-दूर होगी, जबकि ठण्डे पदार्थों की स्थिति में वे झुण्ड में होगी। (वर्तमान समय में आकाशगंगा पास-पास समूह में स्थित है।)
- इसमें पुनः विस्फोट से निकले पदार्थों के समूहन से बने असंख्य पिण्ड तारे कहलाए। इसी प्रक्रिया से कालान्तर में ग्रह भी निर्मित हुए।
- इस प्रकार **'बिग बैंग'** परिघटना में ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई और तभी से उसमें निरन्तर विस्तार जारी है।
- इसके साक्ष्य के रूप में आकाशगंगाओं के बीच बढ़ती दूरी का संदर्भ दिया जाता है। नासा ने 2001 ई. में मैप (MAP- Microwave Anisotrophy Probe) नामक अनुसंधान में इसकी पुष्टि की।
- ब्रह्मांड के रहस्यों को जानने के लिए सितम्बर, 2008 में **यूरोपियन सेंटर फॉर न्यूक्लियर रिसर्च (CERN)** ने **जेनेवा** में पृथ्वी की सतह से 100 फीट नीचे एवं 27 किमी. लम्बे सुरंग में **लार्ज हैड्रान कोलाइडर (LHC)** नामक ऐतिहासिक महाप्रयोग किया।
- इसमें 1000 से भी अधिक वैज्ञानिक शामिल थे। इसमें प्रोटॉन व न्यूट्रॉन को अत्यधिक तीव्र गति से टकराया गया तथा **'हिग्स बोसॉन'** के निर्माण का प्रयास किया गया।
- **'गॉड पार्टिकल'** के नाम से जाना जाने वाला **'हिग्स बोसॉन'** में ही ब्रह्मांड के रहस्य छिपे हैं, क्योंकि यह सबसे बेसिक यूनिट माना जाता है। परंतु लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर के प्रशीतक में खराबी आने और सुरंग में हीलियम के रिसाव के कारण इस महाप्रयोग को स्थगित करना पड़ा। गॉड पार्टिकल कहे जाने वाले हिग्स बोसॉन की खोज के 10 साल बाद एक बार फिर से महामशीन लार्ज हैड्रॉन कोलाइडर अप्रैल, 2022 से स्टार्ट होने जा रही है। यह प्रोटॉन को तोड़ने का काम करेगी जिससे अप्रत्याशित ऊर्जा निकलेगी। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इस प्रयोग से ब्रह्मांड केसे काम करता है, इसके रहस्य की हमें और जानकारी मिल सकेगी।

आकाशगंगा (Galaxy)

- अनगिनत तारों के समूह को आकाशगंगा (गैलेक्सी) कहते हैं।
- एक अनुमान के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में अनेक गैलेक्सी हैं जिनकी संख्या लगभग 10,0000 (10^{10}) मिलियन है। एक गैलेक्सी में 1,00,000 (10^{11}) मिलियन तारे होते हैं।
- हमारा सौरमंडल जिस आकाशगंगा में स्थित है, उसे **मंदाकिनी** आकाशगंगा (Mandakini Galaxy) कहते हैं।
- यह **सर्पिलाकार** (Spiral) है इसमें रात्रि के समय आकाश में तारों के समूहों की एक दूधिया पट्टी-सी दृष्टिगत होती है, जिसे **दुग्ध मेखला (Mailky Way)** कहते हैं।
- **ऑरियन नेबुला** (Orian Nebula) हमारी आकाशगंगा के सबसे शीतल और चमकीले तारों का समूह है। यह पृथ्वी से लगभग 1600 प्रकाश वर्ष दूर है।
- **प्रॉक्सिमा सेन्चुरी** (Proxima Centuary) **सूर्य का सबसे निकटतम तारा है** यह सूर्य से 4.3 प्रकाश वर्ष दूर है।
- **सिरियस डॉग स्टार** (Sirius Dog Star) पृथ्वी से लगभग 9 प्रकाशवर्ष दूर है। इसका द्रव्यमान सूर्य का दो गुना है तथा उससे 20 गुना अधिक चमकीला है।
- **पोलेरिस या ध्रुव तारा** पृथ्वी से 1700 प्रकाश वर्ष दूर स्थित है। इसकी किरणें पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर 90^0 का कोण बनाती हैं। ध्रुव तारा उत्तरी गोलार्द्ध में 24 घण्टे किसी भी स्थान से आकाश में एक ही स्थान पर दिखायी देता है।
- **एम-13 ग्लोब क्लस्टर** उत्तरी गोलार्द्ध में दिखने वाला सर्वाधिक तारों का पुंज है जो पृथ्वी से 22,500 प्रकाशवर्ष दूर है।
- दुग्ध मेखला के नीचे दाहिने तरफ दो चमकीले बिन्दु हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में यह दुग्ध मेखला अथवा आकाशगंगा प्रायः अधिक विशिष्ट होती है, यद्यपि यह कूछ भागों में अन्तरातारकीय धूल के घने मेघों से ढकी रहती है। जो उपग्रह आकाशगंगाये कहलाती हैं। ये पृथ्वी से 1,80,000 प्रकाश वर्ष दूर हैं।
- **एंड्रोमेडा आकाशगंगा** (Andromeda Galaxy) **हमारी आकाशगंगा के सर्वाधिक पास स्थित आकाशगंगा है** जो हमसे 2.2 मिलियन प्रकाश वर्ष दूर है। इसमें लगभग 200 मिलियन तारे हैं।
- मन्दाकिनी गैलेक्सी की नाभि (Nucleus) का व्यास 16,000 प्रकाश वर्ष हैं।
- इसके केन्द्र से 3200 प्रकाश वर्ष की दूरी पर सौर मंडल का केन्द्र सूर्य स्थित है।
- सूर्य 250 किमी. प्रति सेकंड की गति से 25 करोड़ वर्ष में मन्दाकिनी के नाभि का एक परिक्रमा पूरा करता है। इसी अवधि को **एक ब्रह्मांड वर्ष (Cosmic Year)** कहते हैं।

ब्रह्मांड की अब तक की विशालतम गैलेक्सी

- वैज्ञानिकों ने अब तक की सबसे विशाल गैलेक्सी 'फीनिक्स' की खोज कर ली है। यह गैलेक्सी प्रतिदिन इतने स्टार्स को जन्म देती है जितने कि हमारी आकाशगंगा एक साल में भी नहीं देती है। इसलिए इसे **'आकाशगंगाओं की मां'** भी कहा जाता है।
- नासा के चंद्रा एक्सरे टेलीस्कोप से इस विशालतम और सबसे चमकीली गैलेक्सी को खोजा गया जो हर साल करीब 750 स्टार्स को जन्म देती है।
- चमकीली विशाल फीनिक्स गैलेक्सी हमारी मिल्की वे (दूधिया आकाशगंगा) से 5.7 अरब प्रकाश वर्ष दूर है।

तारे का जन्म और मृत्यु

- प्रकाशवान (Luminous) तथा प्रकाश उत्पन्न करने वाले (Radiant) खगोलीय पिण्डों (Celestial Bodies) को **'तारा'** (Star) कहते हैं।
- आकाशगंगा के घूर्णन से ब्रह्मांडीय गैसों का मेघ प्रभावित होता है। परस्पर गुरुत्वाकर्षण के कारण उनके केन्द्र में **नाभिकीय संलयन** शुरू होता है तथा **हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित** होता रहता है। इस प्रक्रिया में बहुत मात्र में ताप एवं प्रकाश उत्पन्न होता है। फलस्वरूप तारे का निर्माण होता है। इन्हें **आदि तारा** (Proto Star) कहा जाता है, इसका तापमान लगभग 100 K (-173^0C) होता है।
- दीर्घकाल तक नाभिकीय संलयन की क्रिया के बाद हाइड्रोजन समाप्त होने लगता है जिसके फलस्वरूप बहिर्गामी बल समाप्त हो जाता है तथा अधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण केन्द्र संकूचित होकर गर्म हो जाता है जिसके फलस्वरूप तारा का बाहरी भाग फूलने एवं लाल होने लगता है इस अवस्था में प्राप्त तारे को **रक्तदानव (Red Giant)** कहते हैं।
- तारे का केन्द्र अत्यधिक गर्म हो जाता है, जिससे हीलियम कार्बन में परिवर्तित हो जाता है। यह कार्बन भारी पदार्थ जैसे लोहा में परिवर्तित होता रहता है परिणामस्वरूप केन्द्र में नाभिकीय संलयन में ऊर्जा उत्पन्न होना समाप्त हो जाता है। इसी कारण तारे में तीव्र विस्फोट होता है जिसे **सुपरनोवा (Super Nova)** कहते हैं।

अंतरिक्ष (Space)

- असंख्य सौरमंडल और अन्य पिडों से मिलकर ब्रह्मांड बनता है। तारों, ग्रहों और अन्य खगोलीय पिडों के बीच में जो खाली स्थान है उसे अंतरिक्ष कहते हैं।

अंतरिक्ष की माप की इकाइयाँ

- **प्रकाश वर्ष**- निर्वात में 3×10^5 किमी./सेकेंड की गति से प्रकाश द्वारा एक वर्ष में तय की गयी दूरी को एक प्रकाश वर्ष कहते हैं।
- 1 प्रकाश वर्ष = 6×10^{12} मील या 9.45×10^{13} किमी. होता है। प्रकाश प्रति सेकेंड 1,86,326 मील की गति से आगे बढ़ता है।
- **पारसेक**- दूरी की सबसे बड़ी इकाई।
  1 पारसेक = 3.6 प्रकाश वर्ष।
- **अंतरिक्ष इकाई (A.U.)**- सूर्य एवं पृथ्वी के बीच की औसत दूरी अंतरिक्ष इकाई कहलाती है।
  1 A.U. = 1.49 × 108 किमी.
- **कॉस्मिक वर्ष (Cosmic Year)**- सूर्य के परिक्रमण की अवधि को कॉस्मिक वर्ष कहा जाता है।
  1 कॉस्मिक वर्ष = 250 मिलियन वर्ष।
  प्रोक्सिमा सेंचुरी की पृथ्वी से दूरी = 4-3 प्रकाश वर्ष।

सौर मंडल (Solar System)

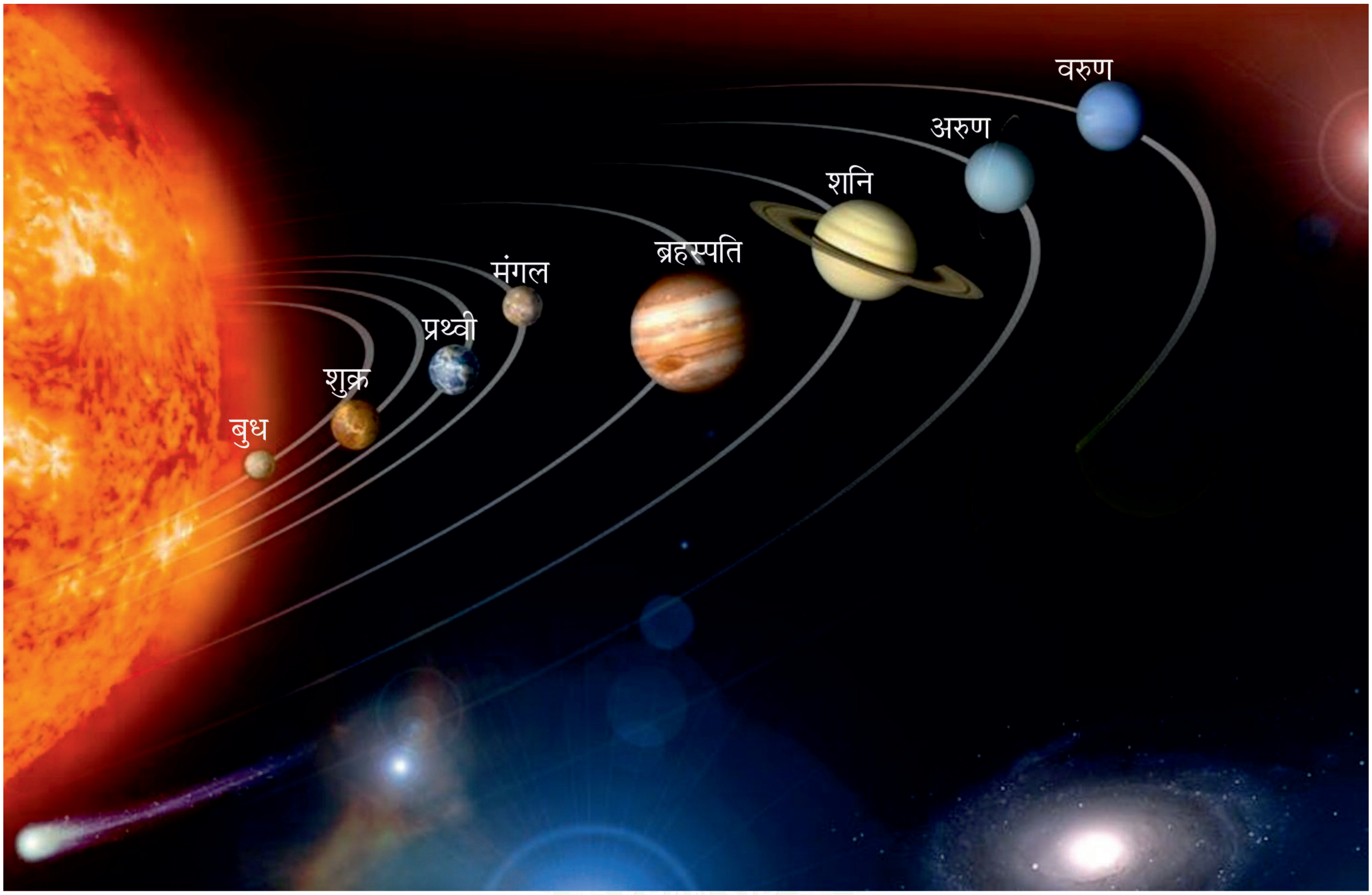

गुरुत्वाकर्षण के कारण चारों ओर भ्रमण करने वाले ग्रहों, उपग्रहों, धूमकेतु, उल्काएँ, क्षुद्रग्रहों आदि को संयुक्त रूप में सौर मंडल की संज्ञा दी जाती है।

- 1930 से सौर मंडल में प्लूटो (यम या कूबेर) सहित कूल नौ ग्रह थे। परन्तु 24 अगस्त, 2006 को प्राग (चेक गणराज्य) में सम्पन्न सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय खगोलीय शास्त्रीय संघ (इंटरनेशलन एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन-आई.ए.यू.) द्वारा प्लूटों को ग्रह की श्रेणी से बाहर कर दिये जाने के बाद वर्तमान में सौर मंडल में कूल आठ ग्रह हैं।
- जो सूर्य से बढ़ते हुए दूरी क्रम में इस प्रकार हैं- **बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण तथा वरुण।**
- ग्रह उन पिण्डों को कहा जाता है जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। ये सभी ग्रह सूर्य से प्रकाश तथा ताप प्राप्त करते हैं।
- आई.ए.यू. (I.A.U.) द्वारा ग्रहों को परिभाषित करने के उद्देश्य से 2003 में एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति के अनुसार ग्रहों की नई परिभाषा इस प्रकार हैं-

  ✓ अब वही पिड ग्रह कहलाएंगे, जो सूर्य की परिक्रमा करते हों।
  ✓ अपने गुरुत्वाकर्षण के लिए उसका न्यूनतम द्रव्यमान इतना हो कि वह लगभग गोलाकार हो एवं उनकी कक्षा अपने पड़ोसी के मार्ग को विचलन नहीं करें।

- प्लूटो उपुर्यक्त मानदंड को पूरा नहीं करता है, इसलिए उसे ग्रहों की श्रेणी में नहीं रखा गया है।
- प्लूटो कभी-कभी नेप्च्यून की कक्षा को भी पार करता है जिसके कारण इसे ग्रहों की श्रेणी से हटाया गया है।
- ग्रहों के उपग्रह भी होते हैं जिस प्रकार पृथ्वी और अन्य ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं उसी प्रकार उपग्रह अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं।
- सौर मंडल के आठ ग्रहों में **बुध, शुक्र, पृथ्वी तथा मंगल** को **पार्थिवग्रह** (Terrestrial Planets) अथवा अंतर्ग्रह (Interior Planets) तथा **बृहस्पति, शनि, यूरेनस तथा नेप्च्यून को वृहद ग्रह** (Great Planets) कहा जाता है।

सूर्य (Sun)

- हमारी **सर्पाकार मंदाकिनी,** जिसे **ऐरावत पथ** कहा जाता है, के 100 अरब तारों में सूर्य एक तारा है अर्थात् सौर मण्डल का केन्द्रीय तारा अथवा जनक सूर्य (Sun) है।
- इसके रासायनिक संगठनों में 71% हाइड्रोजन, 26.5% हीलियम, 1.5% कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, निऑन तथा 0.5% लौह समूह एंव अन्य भारी तत्व पाए जाते हैं।
- सौर मंडल के कूल द्रव्यमान का लगभग 99.85% भाग सूर्य में संचित है। इसका व्यास 13,92,200 किमी. हैं।
- सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ग्रह एवं अन्य आकाशीय पिड इसकी परिक्रमा करते हैं।
- सूर्य निरंतर दृश्य प्रकाश, अदृश्य, अवरक्त किरण, पराबैंगनी किरण, एक्स किरण, गामा किरण, रेडियो तंरगें एवं प्लाज्मा के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन करता है।
- आन्तरिक संरचना की दृष्टि से सूर्य को 6 भागों में विभक्त किया जाता है। इसके आंतरिक भाग को केन्द्र (Core), केन्द्र के चतुर्दिक मध्यवर्ती परत को विकिरण मेखला (Radiative Zone), बाह्य परत को संवहनीय मेखला (Convective Zone), सूर्य के धरातल को प्रकाशमंडल (Photosphere), इसके वायुमंडल को क्रोमोस्फीयर (Chromosphere) तथा क्रोमोस्फीयर के बाहर व्याप्त परत को कोरोना कहा जाता है।
- सूर्य के आंतरिक भाग में स्थित केन्द्र का व्यास 3,80,000 किमी- है। इसका तापमान लगभग 15 मिलियन डिग्री सेल्सियस है।
- एक्स एवं गामा लघु तरंगें फोटोन्स की धारा के रूप में सूर्य के केन्द्र से निकलती हैं।
- विकिरण मेखला सर्वाधिक सघन हैं। इसकी मोटाई 3,82,800 मीटर हैं।
- सूर्य की बाह्य परत जिसे संवहनीय मेखला (Convective Zone) कहते हैं, का निर्माण कोशिकाओं (Cell) से हुआ है। इन्हीं से होकर गैस ऊर्जा के माध्यम से बाहर निकलती है।
- सूर्य का प्रकाशित भाग जो पृथ्वी से दिखाई पड़ता है, प्रकाशमंडल (Photoshpere) कहलाता है।
- क्रोमोस्फीयर की मोटाई 2000 से 3000 किमी. है। क्रोमोस्फीयर में गैसों का घनत्व फोटोस्फीयर से बाहर जाने पर घटता है किन्तु ताप बढ़ता है। क्रोमोस्फीयर मे सौर कलंक के चतुर्दिक चुम्बकीय क्षेत्र में दिखाई देने वाले मेघ को प्लेग्स (Plages) या फ्लोकूली (Flocculi) कहा जाता है। श्वेत प्रकाश (White light) वाले इस क्षेत्र को फेकूलर (Facular) कहा जाता है।
- कभी-कभी प्रकाशमंडल से परमाणुओं का तूफान (Storm) इतनी तेजी से निकलता है कि सूर्य की आकर्षण शक्ति को पार करके अंतरिक्ष (Space) में चला जाता है, इसे **सौर ज्वाला (Solar Flames)** कहते हैं। इससे एक्स तथा गामा किरणें निकलती हैं। जब यह पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करता है तो हवा के कणों से टकरा कर रंगीन प्रकाश उत्पन्न करता है। इस प्रकाश को उत्तरी ध्रुव में **अरोरा बोरयलिस** (Aurora Borealis) तथा दक्षिणी ध्रुव में **अरोरा ऑस्ट्रेलिस** (Aurora Australis) कहा जाता है।
- सूर्य से उत्सर्जित होने वाले हाइड्रोजन को प्रोमिन्सेस (Promineces) कहा जाता है।
- सूर्य के कोरोना (Corona) से बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली प्रोटॉन की धाराओं को **सौर पवन** (Solar Wind) कहा जाता है। इनका निर्माण प्लाज्मा अर्थात् आयनीकृत गैसों से होता है।
- सौर्यिक पवनें सीधी न चलकर सर्पिलाकार चलती हैं, जिसका कारण है सूर्य की परिभ्रमण गति।
- सूर्य के सतह में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। सूर्य में स्थित चमकीले धब्बों को प्लेजेस (Plages) एवं काले धब्बों को सौर धब्बा अथवा सौर कलंक (Sun Spot) कहा जाता है। ये सूर्य के अपेक्षाकृत ठंडे भाग हैं, जिनका तापमान 1500°C होता है।
- **सौर कलंक** प्रबल चुम्बकीय विकिरण उत्सर्जित करता है **जो पृथ्वी के बेतार संचार व्यवस्था को बाधित करता** है। इसके बनने-बिगड़ने की प्रक्रिया 11 वर्षों में पूरी होती है, जिसे **सौर-कलंक-चक्र** (Sun Spot Cycle) कहा जाता है।

एल्बिडो

- एल्बिडो सूर्य से प्रसारित परावर्तित प्रकाश होता है, जिसे देखकर उसकी चाक्षुष (Visual Brightness) को निर्धारित किया जा सकता है।
- एल्बिडो का संभावित मूल्य अंधेरे के लिए शून्य और चमक के लिए 1 होता है।
- पृथ्वी का एल्बिडो 0.31 है। इसी प्रकार बुध ग्रह का एल्बिडो 0.10 है।

ग्रह (Planet)

- गुरुत्वाकर्षण बल के कारण सभी आठ ग्रह घड़ी की सुई की विपरीत दिशा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन ग्रहों के भ्रमण का कक्ष दीर्घवृत्तीय होता है।
- बुध सूर्य के सर्वाधिक निकट का ग्रह है। इसके पश्चात क्रमशः शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण का स्थान आता है।

- **सभी ग्रहों को दो समूहों में विभाजित किया जा सकता है-**
  - ✓ आंतरिक ग्रह- बुध, शुक्र, पृथ्वी एवं मंगल आंतरिक ग्रह हैं। सभी आंतरिक ग्रह घनी चट्टानों से बने हैं। पृथ्वी के समान होने के कारण ही इन्हें पृथ्वी तुल्य ग्रह अथवा पार्थिव ग्रह (Earth like or Terrestrial Planet) भी कहा जाता है।

✓ बाह्य ग्रह- बृहस्पति, शनि, अरुण, एवं वरुण को बाह्य ग्रह कहा जाता है। ये ग्रह गैसीय हैं। ये प्रायः हाइड्रोजन और हीलियम गैसों से बने हैं। बृहस्पति के समान होने के कारण इन्हें बृहस्पति तुल्य ग्रह अथवा बृहस्पतित्य या जोवियन ग्रह (Jupiter like or Jovian Planet) कहा जाता है। जोवियन, बृहस्पति का यूनानी नाम है। सभी बाह्य ग्रह बड़ी तेजी से घूमते हैं।

बुध (Mercury)

- बुध सौर मंडल का **सबसे छोटा तथा सूर्य के सबसे निकट स्थित ग्रह है।**
- सूर्य से सर्वाधिक निकट होने के कारण बुध की परिक्रमण (Revolution) गति सर्वाधिक है। यह 88 दिनों में सूर्य की एक प्रदक्षिणा (Encompass) पूरी कर लेता है।
- इसका **तापान्तर** सभी ग्रहों **से अधिक** (560^0C) है।
- बुध का एक दिन पृथ्वी के 90 दिन के बराबर होता है।
- **शुक्र की तरह बुध को भी प्रातः एवं भोर का तारा** (Morning & Evening Star) कहा जाता है। क्योंकि ये दोनों ग्रह सूर्य एवं पृथ्वी के बीच स्थित हैं। इसलिए ये सूर्योदय के पहले तथा सूर्योदय के पश्चात दिखाई देते हैं।
- बुध प्रातः एवं शाम के तारे (Evening Star) के रूप में वर्ष में तीन बार दिखाई देता है जिसका कारण इसकी साइनोडिक अवधि (Synodic Period) (116 दिन की) होती है।
- बुध का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का 3/8 होता है। परिणाम (Mass) में यह पृथ्वी का 18वाँ भाग है।
- इसकी सतह चंद्रमा की सतह से काफी मिलती-जुलती है।
- बुध के धरातल पर हजारों क्रेटर स्थित हैं। इसके एक क्रेटर का नाम **कूइपर** (Kuiper) है जिसका व्यास 41 किमी. है।
- बुध के सबसे पास से गुजरने वाला कृत्रिम उपग्रह **मेरिमस** था, जिसके द्वारा लिए गए चित्रें से ज्ञात हुआ कि इसके सतह पर कई क्रेटर, पर्वत और मैदान अवस्थित हैं। इस पर जीवन संभव नहीं है क्योंकि यहाँ वायुमंडल का अभाव है।
- बुध का **कोई भी उपग्रह नहीं** है।

बुध पारगमन (Transit of Mercury)

- 8-9 नवम्बर, 2006 को सौर मंडल का सबसे छोटा ग्रह **'बुध'** सूर्य का चक्कर लगाते हुए पृथ्वी एवं सूर्य के बीच से गुजरा जिससे कूछ समय के लिए बुध ग्रहण जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी।
- इस घटना को खगोल विज्ञान में बुध पारगमन (Transit of Mercury) कहा जाता है।
- यह घटना 100 वर्ष में औसतन 13 बार घटित होती है। पिछली बार बुध पारगमन की घटना 2003 तथा 8 नवंबर, 2016 तथा 11 नवंबर, 2019 को घटित हुई थी तथा आगे इस प्रकार की घटना 13 नवंबर, 2032 को पुनः घटित होगी।

शुक्रः आवरण वाला ग्रह (Venus : The Veiled Planet)

- शुक्र सूर्य से निकटवर्ती दूसरा ग्रह है। यह सूर्य की प्रदक्षिणा 225 दिनों में पूरी करता है।
- यह पृथ्वी के सर्वाधिक निकट स्थित है। इसका द्रव्यमान व आकार पृथ्वी के समान है, इसलिए इसे **'पृथ्वी का जुड़वा ग्रह'** या पृथ्वी का जुड़वा बहन (Twin Planet) कहा जाता है।
- सघन वायुमंडल के कारण इसका **ताप सर्वाधिक** 730 केल्विन या $+470^0C$ या 850^0F है।
- सौर मंडल का यह **सर्वाधिक गर्म ग्रह** है।
- अधिक ताप के कारण यह रात्रि में चंद्रमा के पश्चात सौर मंडल का **सर्वाधिक चमकीला ग्रह** है। सर्वाधिक चमकीला ग्रह होने के कारण इसे **'प्यार एवं सुंदरता की देवी'** (Goddess of Beauty and Love) भी कहा जाता है।
- इसके वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) सर्वाधिक मात्र में मिलती है। अधिक ताप तथा अधिक CO_2 के कारण यहाँ प्रेशर कूकर की दशा (Pressure Cooker Condition) उत्पन्न होती है, इसलिए इसे **'प्रेशर कूकर सादृश्य ग्रह'** (Pressure Cooker Condition Planet) भी कहा जाता है।
- बुध की तरह शुक्र को भी **सुबह का तारा** (Morning Star) तथा **शाम का तारा** (Evening Star) कहा जाता है, क्योंकि यह आकाश में शाम को पश्चिम दिशा में तथा सुबह को पूरब दिशा में दिखाई देता है।
- इसका वायुमंडलीय दबाव पृथ्वी से 90 गुना अधिक है।
- शुक्र के वायुमंडल में 96% कार्बन डाईऑक्साइड, 3.4% नाइट्रोजन तथा 0.1 से 0.5% जलवाष्प है। अन्य विरल गैसें जैसे- आर्गन, ऑक्सीजन, निऑन, तथा सल्फर डाईऑक्साइड भी यहाँ उपस्थित हैं।
- सौर मंडल के ग्रहों में केवल शुक्र और अरुण पूर्व से पश्चिम की दिशा में घूर्णन (Rotation) करते हैं जबकि शेष सभी ग्रहों के घूर्णन की दिशा पश्चिम से पूर्व है।
- बुध की तरह शुक्र भी एक अंतर्ग्रह (Interior Planet) है।
- इसके 65^0 उत्तरी अक्षांश पर स्थित **मैक्सवेल** (Maxwell) शुक्र ग्रह का सर्वोच्च बिन्दु (लगभग 11 किमी.) है।
- इसके पश्चिम में **चौरस पठार** स्थित है जिसका नाम **लक्ष्मी पठार** है।
- इसके 25^0 दक्षिणी अक्षांश में **बीटा (Beta) पर्वतीय** प्रदेश है तथा 25^0 उत्तरी अक्षांश पर **अल्फा (Alpha)** प्रदेश स्थित है। ये ज्वालामुखी शील्ड हैं।

शुक्र: पारगमन

- एक दुर्लभ खगोलीय घटना 6 जून, 2012 को संपूर्ण विश्व में उस समय देखने को मिली जब शुक्र ग्रह सूर्य के सामने से गुजरते हुए पृथ्वी से दिखायी दी।
- पृथ्वी से देखने पर शुक्र ग्रह सूरज पर एक छोटे काले धब्बे जैसा दिख रहा था।
- सूर्य के सामने से शुक्र का यह पारगमन एक दुर्लभ खगोलीय घटना है जो अगली बार 105 वर्ष पश्चात देखने को मिलेगी।
- उत्तरी और मध्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका में यह पारगमन सूर्योदय के साथ आरंभ हुआ तत्पश्चात इसे एशिया के अधिकतर इलाकों में देखा गया। यूरोप, मध्य-पूर्व और पूर्वी अफ्रीका में यह दुर्लभ खगोलीय घटना स्थानीय सूर्योदय के साथ आरंभ हुई थी परन्तु तब यह पारगमन अपने अंतिम चरण में था।
- इस दुर्लभ खगोलीय घटना की कुछ उत्तम तस्वीरें अमेरिकी अंतरिक्ष ऐजेंसी नासा द्वारा जारी की गई। ध्यातव्य है कि नासा की सोलर डायनामिक्स ऑब्जरवेटरी यानि एसडीओ पृथ्वी से 36 हजार किलोमीटर की दूरी से सूर्य का अध्ययन करती है।
- वैज्ञानिक पारगमन के इस अवसर का प्रयोग शुक्र ग्रह के जटिल वायुमंडल का अध्ययन करने के लिए कर रहे हैं। शोधकर्त्ता विशेष उपकरण की सहायता से सूर्य के डिस्क पर सीधे नजर रख रहे हैं।
- यद्यपि वैज्ञानिकों द्वारा आम जनता को बहुत ही ध्यानपूर्वक इस खगोलीय घटना को देखने की सलाह दी गयी क्योंकि सूर्य पर सीधे देखने से आंखों की रोशनी प्रभावित हो सकती है और कई बार व्यक्ति की दृष्टि भी जा सकती है।
- ध्यातव्य है कि शुक्र ग्रह का पारगमन 243 वर्षों में लगभग चार बार होता है। इस दीर्घ अंतराल का कारण है कि पृथ्वी और शुक्र का कक्ष यानी परिक्रमा करने का मार्ग अलग-अलग है।
- ये एक दीर्घ अंतराल के पश्चात ही एक दुर्लभ खगोलीय संयोग के तहत सीध में आते हैं। टेलीस्कोप के आविष्कार के पश्चात यह नजारा अब तक केवल सात बार दर्ज किया गया है। इससे पूर्व शुक्र ग्रह के पारगमन को वर्ष 1631, 1639, 1761, 1769, 1882 और 8 जून, 2004 में देखा गया था। यह पारगमन जोड़े के रूप में आठ वर्ष के अंतराल पर दिखता है जैसे कि इससे पूर्व यह 8 जून, 2004 में दिखा था और अब वर्ष 2012 में दिखा है। अगली बार 105 वर्ष पश्चात वर्ष 2117 में दिखेगा और फिर ठीक उसके आठ वर्ष पश्चात यानी वर्ष 2125 में दिखेगा।

पृथ्वी (Earth)

- पृथ्वी आकार में सौर मंडल का पांचवाँ सबसे बड़ा तथा सूर्य से दूरी में तीसरा ग्रह है। यह शुक्र और मंगल के बीच स्थित है।
- वायुमण्डल, जलमण्डल के विकास और उनको बनाए रखने के लिए यह काफी बड़ा ग्रह है।
- पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिम से पूर्व (West to East) की ओर भ्रमण करती है। अपने अक्ष पर यह 23 1/2 डिग्री झुकी हुई है। इसका एक परिक्रमण लगभग 365 1/4 दिन में पूरा होता है। इसकी सूर्य से औसत दूरी 15 करोड़ किमी. है।
- इसके चारों ओर तापमान, ऑक्सीजन और प्रचुर मात्र में जल की उपस्थिति के कारण यह सौर मंडल का एक मात्र ग्रह है जहाँ जीवन संभव है।
- पृथ्वी पर जल की अधिकता के कारण यह अंतरिक्ष से नीली दिखाई देती है। इसी कारण इसे **नीला ग्रह** भी कहते हैं।
- पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह (Satelite) चंद्रमा है।

'गोल्डीलॉक्स जोन'

'गोल्डीलॉक्स जोन' को निवास योग्य क्षेत्र या जीवन क्षेत्र (पृथ्वी सृदश) भी कहा जाता है। किसी तारे से उस दूरी वाले क्षेत्र को गोल्डीलॉक्स जोन कहा जाता है, जहाँ पर किसी ग्रह की सतह पर तरल जल काफी मात्र में मौजूद हो सकता है। यह निवास योग्य क्षेत्र अंतरिक्ष में किन्हीं दो क्षेत्रों का प्रतिच्छेदन बिंदु क्षेत्र होता है, जिन्हें जीवन हेतु सहायक होना चाहिए।

मंगल (Mars)

- मंगल ग्रह लाल गेंद की भाँति प्रतीत होता है। इसी कारण इसे **'लाल ग्रह'** भी कहते हैं।
- इसके लाल दिखने का कारण इस पर आयरन ऑक्साइड की अधिकता है।
- इसका अक्षीय झुकाव या घूर्णन गति पृथ्वी से काफी समानता रखती है। इसे **'पृथ्वी सदृश ग्रह'** माना जाता है।
- मंगल ग्रह पर दिन की औसत लम्बाई 24 घंटे, 37 मिनट तथा 23 सेकेंड है। इसका अक्षीय झुकाव 25^0 है, चूँकि यह झुकाव पृथ्वी के झुकाव के लगभग निकट है, इस कारण मंगल ग्रह पर पृथ्वी के समान ही मौसम होते हैं।
- यह पृथ्वी के अलावा एकमात्र ग्रह है जिस पर जीवन की संभावना व्यक्त की जा रही है।
- मंगल ग्रह का वायुमंडल दबाव विरल है। इसके धरातल का दबाव, पृथ्वी के समुद्रतल पर वायुमंडलीय दबाव के 1% से कम है।
- इसके वायुमंडलीय संरचना में कार्बन डाईऑक्साइड (95%), नाइट्रोजन (2 से 3%), आर्गन (1 से 2%) ऑक्सीजन (0.1 से 0.4%), जल (0.01 से 0.1%), क्रिप्टन (0.0001% से कम) तथा जिनॉन (0.00001% से कम) पाया जाता है।

- मंगल ग्रह पर पृथ्वी के समान ही दो ध्रुव हैं तथा इसका कक्षा तल पृथ्वी से 25^0 के कोण पर झुका है।
- **निक्स ओलंपिया** मंगल ग्रह पर स्थित सर्वोच्च पर्वत है, जो माउंट एवरेस्ट की तुलना में तीन गुना ऊँचा है। इस ग्रह पर न केवल नदी क्रिया प्रमाण उपलब्ध है बल्कि बाढ़ आने के भी प्रमाण है।
- मंगल ग्रह पर ज्वालामुखी के प्रमाण भी मिले हैं। इसकी सतह 12 बड़े ज्वालामुखी की लावा से ढकी है। इनमें सबसे बड़ा **ओलिम्पस मोन्स** (Olympus Mons) है जो 25 किमी. ऊँचा 600 किमी. व्यास का तथा 70 किमी. व्यास वाले कोल्डेरा से युक्त है। यह मानव द्वारा देखा गया अब तक का सबसे बड़ा ज्वालामुखी ढेर है।
- मंगल ग्रह के दो उपग्रह हैं। पहला **फोबोस** (Phobos) और दूसरा **डीमोस** (Deimos)।

बृहस्पति (Jupiter)

- बृहस्पति सौर मंडल का **सबसे बड़ा ग्रह** है। आकार में बड़ा होने के कारण इसे **'मास्टर आफ गॉड्स'** (Master of Gods) कहा जाता है।
- बृहस्पति के वायुमंडल में हाइड्रोजन तथा हीलियम की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त वायुमंडल में मीथेन और अमोनिया गैस भी पायी जाती है।
- बृहस्पति तारा और गैस दोनों से युक्त है क्योंकि इसके पास स्वयं रेडियो ऊर्जा है। यह 15 मीटर तरंगदैर्ध्य की रेडियो तरंगे आकाश में प्रसारित करने का सबसे बड़ा स्रोत है।
- बृहस्पति को तारा-सदृश (Near Star) ग्रह भी कहा जाता है।
- सौर मंडल के सभी ग्रहों में बृहस्पति की परिभ्रमण अवधि सर्वाधिक कम (9 घंटे 55 मिनट) तथा पलायन वेग (Escape Selocity) सर्वाधिक (59.6 किमी. प्रति सेकंड) है।
- इसके कूल 6 ज्ञात उपग्रह हैं जिनमें चार बड़े उपग्रह **आयो, यूरोपा, गैनीमीड** एवं **केलिस्टो** हैं। इन चारों उपग्रहों की खोज गैलीलियो द्वारा की गयी थी जिस कारण इन्हें गैलीलियन उपग्रह भी कहा जाता है।
- **केलिस्टो** बृहस्पति से सर्वाधिक दूर स्थित उपग्रह है। गेनीमीड (Ganymede) सौर मंडल का सबसे बड़ा उपग्रह है जिसका व्यास 4840 किमी. है।
- गैलिलीयन उपग्रहों में सर्वाधिक अन्दर स्थित उपग्रह आयो (90) है जिसका व्यास 3640 किमी. है।
- सिनोया बृहस्पति का सबसे छोटा उपग्रह है।
- बृहस्पति पर लाल रंग का उठने वाला एक तूफान है, जिसे **ग्रेट रेड स्पॉट** (Great Red Spot) कहते हैं। सर्वप्रथम 1660 में केसिनों ने इस स्पॉट का पता लगाया था।
- नासा द्वारा बृहस्पति का अध्ययन करने के लिए 2011 में **'जूनो'** नामक यान भेजा गया।

शनि (Saturn)

- यह सौर मंडल का **दूसरा सर्वाधिक बड़ा ग्रह** है। बृहस्पति के बाद शनि सौर मंडल का दूसरा ऐसा ग्रह है जो अपनी धुरी (Axis) पर सबसे तीव्र गति से घूमता है। यह 10 घंटे में अपने अक्ष पर एक बार घूर्णन कर लेता है।
- तीव्र घूर्णन के कारण यह सौर मंडल का सार्वधिक चपटा (Oblate) ग्रह है। इसका भूमध्यरेखीय व्यास ध्रुवीय व्यास से 10% अधिक है। इसका घूर्णन अक्ष 27^0 झुका है।
- इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसके मध्य रेखा के चारों ओर पूर्ण विकसित वलयों का होना है। ये वलय अत्यन्त छोटे-छोटे कणों से मिलकर बने होते हैं, जो सामूहिक रूप से गुरुत्वाकर्षण के कारण इसकी परिक्रमा करते हैं।
- बृहस्पति के रासायनिक संघटकों में मुख्य रूप से हाइड्रोजन तथा हीलियम के साथ कूछ मात्र में मिथेन भी पायी जाती है।
- इसके चारों ओर दो स्पष्ट वलय हैं जो परस्पर एक काली रेखा द्वारा पृथक किये जाते हैं जिसे **केसिनी डिवीजन** (Cassini Division) कहते हैं। शनि को **'गैसों का गोला'** (Globe of Gases) कहा जाता है।
- **शनि के उपग्रहों की संख्या 62** है। शनि का **सबसे बड़ा उपग्रह टाइटन** (Titan) है। **पैन** शनि का सबसे छोटा उपग्रह है जिसका व्यास 20 किमी. है। **सौर मंडल का यही एक मात्र उपग्रह है जिसके पास अपना स्थायी वायुमंडल है।** इसके ठोस पिण्ड का व्यास 2560 किमी. है।
- टाइटन के धरातल का वायुमंडलीय दबाव पृथ्वी पर समुद्र तल के वायुदाब का 1.5 गुना अधिक है।
- शनि का दूसरा बड़ा उपग्रह **रिया** (Rhea) है जबकि इयापेट्स (Iapetus) तीसरा बड़ा ग्रह है जिसका व्यास 400 किमी. है।
- एनालिलेडस (Enaeladus) शनि का सर्वाधिक परावर्तक उपग्रह है। शनि के सर्वाधिक पास स्थित बड़ा उपग्रह **मिमास** है।

अरुण: हरा ग्रह- स्वर्ग का देवता
(Uranus : The Green Planet, God of Heaven)

- यह एक शीत ग्रह (Cold Planet) है जिसकी खोज 1781 में जर्मन खगोलविद् सर **विलियम हर्शेल** द्वारा की गयी थी। इस ग्रह का नामकरण ग्रीक देवता यूरेनस (Uranus) के नाम पर किया गया है। यह पृथ्वी से 14-5 गुना बड़ा (द्रव्यमान) है। इसका घनत्व पृथ्वी के समान है, यह ध्रुवों पर चपटा है।
- **इसके वायुमंडल में मीथेन का संकेन्द्रण अधिक है।** इसी कारण दूरबीन से देखने पर यह हरे डिस्क (Green Disc) के रूप में दिखाई देता है। इसलिए इसे **'हरा ग्रह'** भी कहते हैं।

- इसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका घूर्णन अक्ष इसके अक्षीय प्लेन के अनुरूप है। इसका अक्षीय झुकाव 82^0 है।
- शुक्र की भांति इसकी घूर्णन दिशा तथा इसके उपग्रहों के परिक्रमण की दिशा घड़ी की सुई के अनुरूप (Clock Wise) है। इसकी कक्षीय (Orbital) परिक्रमण दिशा पश्चिम से पूरब अर्थात् घड़ी की सुई के विपरीत (Anticlock Wise) है।
- अरुण एकमात्र ऐसा ग्रह है जिसका कोई न कोई ध्रुव इसकी कक्षा के रूप में सूर्य के सम्मुख रहता है अर्थात् यह सौर मंडल का एकमात्र ग्रह है जो सूर्य की परिक्रमा के समय एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक सदैव सूर्य के सामने रहता है। चूँकि इसके अक्ष का झुकाव 82^0 है इसलिए अधिक झुकाव के कारण इसे **'लेटा हुआ ग्रह'** कहते हैं।
- यह सौर मंडल का सातवाँ तथा आकार में तीसरा बड़ा ग्रह है। इस पर सूर्योदय पश्चिम दिशा में तथा सूर्यास्त पूरब दिशा में होता है।
- सूर्य से दूर होने के कारण यह काफी ठंडा ग्रह है। इस पर दिन लगभग 11 घण्टे का होता है।
- **इसके चारों ओर शनि की भाँति पाँच वलय हैं। अल्फा, बीटा, गामा, डेल्टा और इपसिलॉन।** इसके उपग्रहों की संभावित संख्या 27 है एरिपल, अम्ब्रियल, टिटानिया, ओवेरान, सिराण्डा इसके प्रमुख उपग्रह हैं। इसका सबसे बड़ा उपग्रह टिटानिया (Titania) है जिसका व्यास 1578 किमी. है जबकि सबसे छोटा उपग्रह कॉर्डेलिया (Cordelia) है जिसका व्यास 26 किमी. है।
- अरुण ग्रह का हरा रंग इसके वायुमंडलीय मीथेन के कारण है। इसके वायुमंडल में मीथेन का सकेंद्रण अधिक है।
- Temp. -370^0F (-223.3^0C)

वरुण (Neptune)

- इसकी खोज जर्मन खगोलविद् **जॉन गाले** ने की थी। यह सूर्य से 8वाँ दूरस्थ ग्रह है। यह 166 वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा पूरा करता है। इसके वायुमंडल में हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन, अमोनिया आदि पाये जाते हैं। इस ग्रह का **रंग पीला** है।
- यह सूर्य से 30 खगोलीय इकाई दूर स्थित है। (एक खगोलीय इकाई = 92,956,00 मील या 149,598,000 किमी.)
- वरुण के कूल 8 उपग्रह हैं। इसका **सबसे बड़ा उपग्रह 'ट्रिटॉन'** (Triton) है जिसका व्यास 2705 किमी. है और यह समस्त सौरमण्डल में सबसे ठण्डा पिण्ड माना जाता है जिसका तापमान -235^{0}C रहता है।
- ट्रिटॉन वरुण के प्रतिकूल दिशा पूरब से पश्चिम में घूमता है।
- इसका दूसरा उपग्रह नेरीड (Neried) है जिसकी कक्षा सौर मंडल में सर्वाधिक उत्केन्द्री हैं। वरुण के 6 अन्य उपग्रहों के अस्थायी नाम हैं N-1, N-2, N-3,N-4, N-5 तथा N-6 आदि।

प्लूटो (Pluto)

- यम या कुबेर (प्लूटो) की खोज 1930 ई. में क्लाइड टॉम्बैग ने की थी एवं इसे सौर मंडल का नौवां एवं सबसे छोटा ग्रह माना गया था परन्तु 24 अगस्त, 2006 में चेक गणराज्य के प्राग में हुए इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन (IAU) के सम्मेलन में वैज्ञानिकों ने इससे **ग्रह का दर्जा छीन लिया।**
- सम्मेलन में 75 देशों के 2,500 वैज्ञानिकों ने ग्रहों की नई परिभाषा दी उनके अनुसार ऐसा ठोस पिंड जिसका अपना गुरुत्व हो गोलाकार हो और सूर्य का चक्कर काटता हो, ग्रहों के दर्जे में आएगा। साथ ही, इसकी कक्षा पड़ोसी ग्रह के रास्ते में नहीं होनी चाहिए।
- प्लूटो के साथ समस्या यह हुई कि उसकी कक्षा नेप्च्यून की कक्षा (ऑरबिट) से ओवरलैप करती है।
- सीरीस, शेरॉन (Charon) और इरीस (2003 यूबी-313/जेना) के ग्रह माने जाने के विचार को भी अस्वीकृत कर दिया।
- नई परिभाषा में इन चारों को बौने ग्रह का दर्जा दिया गया है। इस प्रकार अब सौर मंडल में मात्र 8 ग्रह रह गए हैं।

उपग्रह (Satellite)

- वे आकाशीय पिंड जो अपने ग्रहों की परिक्रमा करते हैं और साथ ही सूर्य की भी परिक्रमा करते हैं **प्राकृतिक उपग्रह** कहलाते हैं।
- ग्रहों की तरह उपग्रहों में भी प्रकाश नहीं होता। ये भी सूर्य से प्रकाश और उष्मा प्राप्त करते हैं।
- चाँद भी एक उपग्रह है।
- हमारी पृथ्वी का एक मात्र उपग्रह चंद्रमा है। बुद्ध व शुक्र का कोई उपग्रह नहीं है। मंगल के दो उपग्रह हैं। **बृहस्पति (67) के सर्वाधिक उपग्रह** हैं उसके बाद **शनि (62) के सर्वाधिक उपग्रह** हैं।
- शनि के चारों ओर घूमती हुई धूल के अनेक छल्लों से मिलकर बना एक विशाल छल्ला है जो इस ग्रह को एक विशेष रूप प्रदान करता है।

चंद्रमा (Moon)

- चंद्रमा पृथ्वी का एक मात्र उपग्रह है इसके भौतिक तत्वों तथा भूगर्भ के वैज्ञानिक अध्ययन को चन्द्रविज्ञान या **सेलेनोग्राफी** (Selenography) कहते हैं।
- चंद्रमा पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के **गुरुत्वाकर्षण का मात्र 1/6 है।** कम गुरुत्वाकर्षण के कारण चंद्रमा पर वायुमंडल का अभाव है। वायु तथा जल के अभाव में चंद्रमा पर मौसमी तत्व जैसे- बादल, पवन, वर्षा, हिम, कूहासा आदि नहीं मिलते। मौसम के अभाव में चंद्रमा के स्थल रूप स्थायी हैं। वायु और जल के अभाव के कारण चंद्रमा के धरातल पर तापान्तर अत्यधिक है।

- चंद्रमा पर दिन का तापमान 214°C तथा रात्रि का तापमान -243°C होता है। यहाँ सूर्योदय का तापमान -58°C होता है। इसके धरातल के सबसे बड़े स्वरूप या स्थलस्वरूप को सागर (Sea) या मारिया कहा जाता है।
- चंद्रमा के धरातल पर 14 बड़े सागर हैं, जिसमें सबसे बड़ा सागर **मेयर इम्ब्रियम** (Mare Imbrium) है जिसे **'फुहार का सागर'** (The Sea of Shower) कहा जाता है। इसके अन्य महत्त्वपूर्ण सागरों में- **मेयर नूर्बियम** (Mare Nurbium) बादलों का सागर (Sea of cloud) **मेयर नेक्टारिस** (Mare Nectaris) या अमृत का सागर (Sea of Nectar), **मेयर ट्राक्विलिटाटिस** (Mare Tranquillitatis) या शांत सागर (Tranquite Sea) तथा **मेयर सेरेनीटाटिस** (Mare Serenitatis) इत्यादि हैं।
- चन्द्रमा के धरातल पर 3000 से अधिक क्रेटर मिलते हैं। सबसे बड़े क्रेटर क्लावियस (Clavius) तथा ग्रिमाल्डी (Grimaldi) हैं, जिनका व्यास लगभग 240 किमी. है। अन्य क्रेटरों में टाइको (Tyco), कोपरनिकस (Copernicus), केपलर (Kepler's), एरिसटारकस (Aristarcus) तथा प्लेटो (Plato) प्रमुख हैं।
- चंद्रमा का आकार पृथ्वी के आकार का लगभग एक चौथाई है। इसके धरातल पर अनेक पर्वत श्रेणियाँ जैसे- आल्पस, एपीनाइ, कार्पेथिन आदि मिलती हैं। **लिबनिट्ज पर्वत चंद्रमा का सर्वोच्च पर्वत** है जिसकी ऊँचाई 8000 मीटर से भी अधिक है। इस पर लम्बी गहरी घाटियाँ भी मिलती हैं जिनमें **अल्पाइन घाटी** (Alpine Vally) विशेष महत्त्वपूर्ण है।
- चंद्रमा के धरातल की संरचना में 58% भाग ऑक्सीजन का है जो सिलिकान (20%) के साथ मिश्रित रूप में मिलता है। इसके अतिरिक्त एल्युमिनियम, केल्शियम, लोहा, मैग्नीशियम, टाइटेनियम युक्त मिश्रण आदि भी पाए जाते हैं। चंद्रमा को **जीवाश्म ग्रह** (Fossil Planet) भी कहा जाता है।
- इसकी पृथ्वी से औसत दूरी 3,84,365 किमी. है। चंद्रमा के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचनें में **1.25 सेकेंड** का समय लगता है।
- यह दीर्घवृत्ताकार कक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमण के अलावा चंद्रमा अपनी धुरी पर घूर्णन भी करता है। इसके परिक्रमण एवं घूर्णन की अवधि समान (27 दिन, 7 घण्टा, 43 मिनट) है।
- चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर अपने दीर्घ वृत्ताकार कक्ष पर 27 दिन, 7 घंटे, 43 मिनट तथा 15 सेकेंड में एक परिक्रमा पूरा कर लेता है। इसी अवधि को **नक्षत्र मास** (Sidreal Month) कहा जाता है। यह अपने अक्ष पर 29 दिन, 12 घंटे तथा 44 मिनट में एक परिक्रमण पूरी कर लेता है। इस अवधि को **चंद्रमास** (Lunar Month or Synodic Month) कहा जाता है। ऐसे 12 चंद्रमास की अवधि **चंद्र वर्ष** (Lunar Year) कहलाती है।
- चंद्रमा से पृथ्वी की अधिकतम दूरी 4,07,000 किमी. को अप-भू या अप-पृथविका कहते हैं।
- जब सूर्य, चंद्रमा तथा पृथ्वी एक सीधी रेखा में होते हैं तो उस स्थिति को **सिजिगी या युति-वियुति** (Syigy) कहते हैं। यह स्थिति प्रत्येक अमावस्या या पूर्णिमा को बनती है। युति-वियुति के अंतर्गत दो स्थितियाँ होती है। प्रथम स्थिति युति (Conjunction) कहलाती है जिसमें सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य चंद्रमा होता है अर्थात् सूर्य एवं चंद्रमा एक सीधी रेखा में होते हुए पृथ्वी के एक ओर होते हैं। यह स्थिति अमावस्या (New Moon) को बनती है।

इस स्थिति में दो प्राकृतिक घटनाएं घटती हैं-

1. वृहत ज्वार (Spring Tide)।
2. सूर्यग्रहण (Solar Eclipse)।

- पहली स्थिति युति कहलाती है, जब सूर्य तथा चंद्रमा पृथ्वी के एक ही ओर सीधी रेखा में रहते हैं, तब युति की दशा होती है। इस समय सूर्यग्रहण लगता है। इस समय ज्वार की ऊँचाई बहुत अधिक होती है। दूसरी स्थिति वियुति (Opposition) कहलाती है। इसमें पृथ्वी की स्थिति सूर्य तथा चंद्रमा के मध्य होती है अर्थात सूर्य तथा चंद्रमा पृथ्वी के विपरीत दिशा में होते हैं। यह स्थिति पूर्णमासी (Full Moon) को बनती है। इसे हारवेस्ट मून (Harvest Moon) भी कहा जाता है। इस स्थिति में चंद्रग्रहण (Full Moon) लगता है।
- उपर्युक्त दोनों स्थितियों (युति एवं वियुति) के अतिरिक्त पृथ्वी तथा सूर्य के सन्दर्भ में चंद्रमा की स्थिति बदलती रहती है।
- अमावस्या (युति) को नया चाँद (New Moon) कहा जाता है। इससे 3 3/4 दिन बाद चंद्रमा की स्थिति को अर्द्धचन्द्र (Crescent) कहा जाता है। 7.5 दिन बाद की स्थिति को अर्द्धार्द्ध (Gibbious) कहते हैं। 14 3/4 दिन पश्चात् की स्थिति को पूर्णमासी (Full Moon) एवं 18½ दिन की स्थिति को तृतीय चतुर्थांश (Third Quarter) तथा 26 दिन पश्चात् की स्थिति को अर्द्धचंद्र (Crescent) कहते हैं। 29½ दिन बाद की स्थिति को पुनः अमावस्या कहा जाता है।
- अमावस्या से पूर्णमासी तक **चंद्रमा के लगातार आकार बढ़ने को** वर्द्धमान चंद्रमा (Waxing Moon) कहा जाता है। चंद्रमा की यह स्थिति **शुक्ल पक्ष** (Bright for Night) की अवधि में होती है।
- पूर्णमासी से अमावस्या के मध्य की अवधि को **कृष्ण पक्ष** (Dark for Night) कहा जाता है। इस अवधि में **चंद्रमा का आकार लगातार घटता** जाता है चंद्रमा के इस घटते आकार को क्षीयमाण चन्द्र (Waning Moon) कहा जाता हैं।
- इस अवधि के 26 दिन बाद चंद्रमा की जो स्थिति बनती है, उसे क्षीणकाय अर्द्धचन्द्र (Waning Crescent) कहा जाता है।

- 18½ दिन बाद की स्थिति को क्षीणकाय अर्द्धार्द्ध (Waning Gibbous) कहा जाता है।
- शुक्ल पक्ष के दौरान चंद्रमा का क्रमशः बढ़ना तथा कृष्ण पक्ष की अवधि में चंद्रमा के आकार का क्रमशः घटना ही चंद्रमा की कलाएँ हैं।

सुपरमून (Supermoon)

- यह एक खगोलीय घटना है। दरअसल, चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा दीर्घ वृत्ताकार परिपथ में करता है, जिसकी वजह से दोनों की (चंद्रमा एवं पृथ्वी) दूरी व स्थिति बदलती रहती हैं। सुपरमून वह दशा है जिसमें चंद्रमा पृथ्वी के सबसे नजदीक होता है। इस स्थिति को **'पेरिजी फुल मून'** भी कहा जाता है। इस दशा में चंद्रमा पहले की अपेक्षा 14% अधिक बड़ा और 30% ज्यादा चमकीला दिखाई पड़ता है।

ब्लू मून (Blue Moon)

- एक खगोलीय घटना के अनुसार, जब किसी केलेंडर माह में दो पूर्णिमाएँ हों, तो दूसरी पूर्णिमा वाले चाँद को ही **'ब्लू मून'** कहा जाता है। दरअसल, दो पूर्णिमाओं वाला समयांतराल 30 या 31 दिन में ही संतुलित हो पाता है। वास्तविकता यह है कि इस घटना को इसके नीले रंग से कोई संबन्ध नहीं होता। वास्तव में ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति लगभग 2.5 वर्ष के बाद होती है।

  ✓ एक पूर्णिमा सामान्यतः 29.5 दिन की होती है। इसलिए फरवरी माह में कभी भी 'ब्लू मून' की घटना नहीं हो सकती है।

  ✓ जब किस वर्ष में दो या उससे अधिक माह **ब्लू मून** के होते हैं, तो उसे 'ब्लू मून ईयर' कहा जाता है, जैसे 2018 **ब्लू मून** ईयर था।

ब्लड मून (Blood Moon)

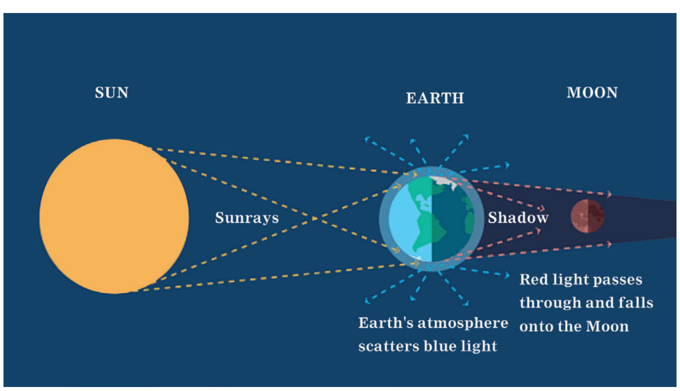

- एक खगोलीय घटना के अनुसार क्रमशः चार पूर्ण चंद्रग्रहण संयोजन को ब्लड मून कहा जाता है, इसे **'टेट्राड'** भी कहा जाता है। हालांकि जहाँ तक इस घटना में चंद्रमा का रंग लाल होने का प्रश्न है तो इसका कारण पूर्ण चंद्रमा की घटना है। दरअसल, पूर्ण चंद्रग्रहण की घटना में सूर्य और चंद्रमा के बीच में जब पृथ्वी आ जाती है और इसकी पूर्ण छाया चंद्रमा पर पड़ती है तो इस स्थिति में चंद्रमा पूर्णरूप से लाल प्रतीत होता है। वास्तव में पूर्ण चंद्रग्रहण की घटना दुर्लभ होती है, जो कि सामान्य रूप से तीन चंद्रग्रहण में से एक पूर्ण चंद्रग्रहण होता है।

खगोलीय पिंड (Celestial Bodies)

निहारिका (Nebula)

- निहारिका अथवा नेबुला लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- कुहासा (Mist)। ये अत्यधिक प्रकाशमान आकाशीय पिंड होते हैं जो गैस एवं धूल कणों से निर्मित होते हैं। इसकी अपनी चमक नहीं होती किन्तु ये तारीय पदार्थों (Satellite Materials) या समीपवर्ती तारों के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। **पृथ्वी के सबसे निकट स्थित निहारिका ऐंड्रोमेडा** (Andromeda) है, जबकि अंतरिक्ष की सबसे हल्की निहारिका ओरियन्स स्वॉर्ड (Orion's Sword) है। ओरियंस स्वॉर्ड नामक यह निहारिका ऐरावत पथ में स्थित है।

उल्का एवं उल्काश्म (Meteors and Meteorites)

- उल्का को सामान्य रूप में टूटता तारा (Shooting Star) कहा जाता है। ये सौर मंडल के तारीय मलवा (Steller Debris) होते हैं, जो 42 किमी- प्रति सेकेंड की गति से पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करते हैं एवं भूमंडलीय घर्षण के कारण जलकर मार्ग में नष्ट हो जाते हैं, उन्हें **उल्का** (Meteors) कहते हैं। जो पिंड आकार में बड़े होते हैं तथा जलकर पूर्णतया नष्ट नहीं हो पाते, अपितु पृथ्वी के धरातल पर गिर पड़ते हैं, उन्हें उल्काश्म या उल्कापिंड (Meteorites) कहते हैं।
- कुछ निश्चित समय पर प्रति सेकेंड 60 या इससे अधिक उल्का दिखाई पड़ते हैं इसे **उल्का वृष्टि (Meteor Shower)** कहा जाता है।
- चमकीले उल्का को **आग का गोला (Fire Ball)** कहा जाता है। कभी-कभी ये आग का गोला आकाश में तीव्र ध्वनि कर फट जाते हैं जिसे **बोलाइड (Bolide)** कहा जाता है।
- पृथ्वी पर पाए जाने वाले उल्का पिण्डों में लोहा तथा निकेल मुख्य रूप से मिलते हैं।

उल्का वृष्टि या उल्का शावर (Meteor Shower)

- वायुमंडल में उल्कापिडों की लगातार जलने की प्रक्रिया को **उल्का वृष्टि या उल्का शावर** कहा जाता है इसे **तारों का टूटना** भी कहा जाता है। इस स्थिति में कूछ निश्चित समय पर प्रति सेकेंड 60 या इससे अधिक उल्का दिखाई पड़ते हैं। वायुमंडल में जलने वाले ये आकाशीय पिड तारे नहीं, बल्कि छोटे-छोटे धूल के कण होते हैं। ये कण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण इसके वायुमंडल में आ जाते हैं। वायुमंडल में घर्षण से ये कण जल उठते हैं। यही जलन प्रकाश की तरह चमकती नजर आती है। यह दृश्य प्रतिवर्ष नवम्बर माह में दिखाई देता है। नवंबर के दूसरे सप्ताह में जलने वाले इन उल्काओं को **लियोनिड** नाम दिया गया है।

लियोनिड वर्षा (Leonid Shower)

- यह उल्का की आंधी है, जिसकी उत्पत्ति लियो नामक तारामंडल में होती है। ये उल्का वास्तव में टेंपल टर्टल (Temple Turtle) नामक धुमकेतु के भाग हैं तथा प्रत्येक 33वें वर्ष में गिरते हैं। पृथ्वी की सतह पर मिलने वाला सबसे बड़ा उल्कापिड होबा वेस्ट (Hoba West) है जो नामीबिया में ग्रूट फोंटीन (Groot Fontien) के पास पाया जाता है। भारत के महाराष्ट्र राज्य में बुलढाना जिले की लोनार झील भी एक उल्कापातीय क्रेटर झील है।

अवान्तर ग्रह/क्षुद्रग्रह (Asteroids)

- **मंगल** एवं **बृहस्पति** की कक्षा के बीच स्थित छोटे-छोटे ग्रहों को अवान्तर ग्रह अथवा क्षुदग्रह कहा जाता है। ये सभी तारीय मलवा होते हैं। ट्रोजान्स (Trojans) क्षुद्रग्रहों का वह समूह है जो बृहस्पति ग्रह की कक्षा के सहारे बृहस्पति की ही गति से सूर्य की परिक्रमा करता है।
- **चिरॉन** (2060 Chiron) सूर्य की परिक्रमा करने वाला सूर्य से सर्वाधिक दूरस्थ ज्ञात पिड है। **4 वेस्टा (4 Vesta)** एक मात्र क्षुद्रग्रह है जिसे नग्न आँखों से देखा जा सकता है।
- क्षुद्र ग्रहों में **सीरीस** (Ceres) **सर्वाधिक चमकीला तथा सर्वाधिक बड़ा** है।

पुच्छल तारा या धूमकेतु (Comet)

- पुच्छल तारे अंतरिक्ष में भ्रमणशील प्रकाशमान खगोलीय पिड हैं जो सूर्य के चारों ओर दीर्घ वृत्ताकार पथ पर घूमते रहते हैं। इसमें एक ठोस पिण्ड तथा उससे लगी लम्बी पूँछ होती है। इसका कूछ भाग चट्टानी पदार्थों (Rocky Materials) का बना होता है तथा कूछ भाग मीथेन, अमोनिया, कार्बन डाईऑक्साइड एवं जलवाष्पों में आच्छादित रहता है।
- तारीय पदार्थों का बना हुआ इसका शीर्ष भाग **कोमा (Coma)** कहलाता है। ज्यों-ज्यों पुच्छल तारा सूर्य के पास आता है, कोमा का आकार एवं ज्योति बढ़ती जाती है। उपसौर के समय इसका चमकीला नाभिक (Bright Nucleus) दिखाई पड़ता है जो कोमा के मध्य में स्थित होता है। कोमा तथा नाभिक दोनों सम्मिलित रूप से पुच्छल तारे की पूँछ कहलाते हैं जो इसकी तीव्रगति के कारण होती है, जोकि गति की विपरीत दिशा में कोमा के तारीय पदार्थों के लाखों मील की दूरी तक फेलने के कारण बनती है।
- धूमकेतुओं का नामकरण उनके खोजकर्त्ताओं के नाम पर पड़ा है। **हेली धूमकेतु** प्रत्येक 76 वर्ष पश्चात् पृथ्वी की दृष्टिगत होता है। अगली बार यह 2061 में पृथ्वी पर दिखाई पड़ेगा।

क्वासर्स (Quasars)

- ये अत्यधिक चमकीले आकाशीय पिण्ड हैं। आकार में आकाशगंगा से छोटे होने के बावजूद क्वासर्स उससे अधिक ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं। ये रेडियों तरंगों के शक्तिशाली स्रोत होते हैं जिसका चमकीलापन (Luminosity) सूर्य की तुलना में 1.1×10^{15} गुना अधिक है।
- अंतरिक्ष का सबसे चमकीला क्वासर्स 3C-273 है।

पल्सर (Pulsar)

- ये एक प्रकार के न्यूट्रॉन तारे होते हैं, जो तीव्र गति से अपनी धुरी पर घूर्णन करते हुए रेडियों तरंगों का उत्सर्जन करते हैं। पल्सर की सर्वप्रथम खोज 1967 में एंथनी हैविश तथा जे. बैल ने की थी। हैविश को इसी खोज के लिए 1974 में नोबेल पुरस्कार मिला था।

ध्रुव तारा (Pole Star)

- यह तारा सदैव उत्तर दिशा में चमकता रहता है। उत्तरी ध्रुव के ठीक ऊपर स्थित होने के कारण यह हमेशा उत्तर में दिखाई पड़ता है।
- रात्रि काल में नाविकों द्वारा समुद्र में दिशा का ज्ञान ध्रुव तारा को देखकर ही लगाया जाता है।

तारामंडल (Constellation)

- तारों के समूह को तारामंडल कहते हैं। इसमें केवल चमकीले तारों के

समूह ही शामिल होते हैं। प्रत्येक तारामंडल की विशिष्ट आकृति होती है, जिसके आधार पर ही प्राचीन काल में इनका नामकरण किया गया है। इस प्रकार इनके नाम उन आकृतियों के नाम पर रखे गये हैं जिनके समान इन तारा समूहों की रचना होती है। आधुनिक समय में 89 तारामंडलों की खोज हुई। **इसमें हाइड्रा सबसे बड़ा** है।

कृष्ण विवर (काला विवर) (Black Hole)

- कृष्ण विवर एक विशाल तारों के प्रलयकारी क्षय का अंतिम अवशेष है। जब किसी विशाल तारे की ऊर्जा प्रक्रिया बंद हो जाती है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण उसके द्रव्य केन्द्र भाग का तेजी से पतन हो जाता है।
- इस प्रकार के तारे का निरन्तर संकुचन व संघर्ष चलता रहता है।
- अत्यधिक घनत्व के कारण वह प्रकाश किरणों को भी अपनी ओर खींच लेता है। इसके अस्तित्व को जान पाना संभव नहीं है क्योंकि किसी भी प्रकार की किरणें इसके बाहर नहीं आती हैं।
- यह दूसरे तारे के पदार्थ को गैस के रूप में खींचता रहता है। आधुनिक खोजों के आधार पर ऐसा माना गया है कि यदि किसी तारे का द्रव्यमान दो सौर द्रव्यमान से अधिक हो जाता है तो वह काला विवर (Black Hole) बन जाता है।

सौर मंडलः एक नजर में

- प्रकाश वर्ष खेगालीय दूरी का मापक है, जो एक प्रकाश वर्ष में प्रकाश द्वारा एक वर्ष में तय की गई दूरी के बराबर होता है। इसका मान 5-88×10^6 मील होता है।
- 24 अगस्त, 2006 को आई.ए.यू. द्वारा प्लूटों को ग्रह का दर्जा समाप्त किये जाने के पश्चात् सौरमंडल में ग्रहों की संख्या केवल 8 रह गई है। ये ग्रह हैंः- बुध, शुक्र, पृथ्वी, बृहस्पति, शनि, अरुण और वरुण।
- प्लूटों को **'बौने ग्रह'** का दर्जा प्रदान किया गया है।
- बुध सूर्य का निकटतम ग्रह है। इसके पश्चात क्रमशः शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, अरुण एवं वरुण का स्थान आता है।
- पृथ्वी के सबसे निकट स्थित ग्रह शुक्र है। इसके बाद क्रमशः मंगल, बुध, बृहस्पति तथा शनि का स्थान आता है।
- मंगल ग्रह का झुकाव एवं घूर्णन की अवधि पृथ्वी के झुकाव एवं घूर्णन की अवधि के समान है।
- बृहस्पति सर्वाधिक तीव्र गति से एवं शुक्र सर्वाधिक धीमी गति से घूर्णन करने वाले ग्रह हैं।
- ग्रहों में सर्वाधिक औसत घनत्व पृथ्वी का (5.5 g/cm) है।
- पृथ्वी और शुक्र को जुड़वा ग्रह कहते हैं।
- पृथ्वी को नीला ग्रह (Blue Planet) भी कहा जाता है।
- मंगल ग्रह को लाल ग्रह (Red Planet) भी कहा जाता है।
- शुक्र और वरुण पूर्व से पश्चिम की ओर घूर्णन करते हैं जबकि शेष सभी ग्रह पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन करते हैं।
- बुध ग्रह का तापान्तर (560^0C) सभी ग्रहों से अधिक है।
- बुध एवं शुक्र ग्रह के कोई भी उपग्रह नहीं हैं।
- शुक्र ग्रह को सांझ का तारा (Evening Star) और भोर का तारा (Morning Star) कहा जाता है।
- मंगल ग्रह का सबसे ऊँचा पर्वत निक्स ओलंपिया है, जो एवरेस्ट से तीन गुना ऊँचा है।
- बृहस्पति ग्रह को गैसों का गोला (Globe of Gases) कहा जाता है।
- शनि ग्रह का एक उपग्रह फोबे, शनि की कक्षा के विपरीत दिशा में परिक्रमा करता है।
- वरुण ग्रह के वायुमंडल में मीथेन की अधिकता के कारण दूरदर्शी से देखने पर यह हरा दिखाई देता है।
- अरुण ग्रह पर सूर्योदय पश्चिम दिशा में एवं सूर्यास्त पूरब दिशा में होती है।
- बृहस्पति सौरमंडल का सबसे बड़ा ग्रह है।
- सौरमंडल से सभी ग्रहों में बुध ग्रह की कक्षीय गति (48 किमी. से.) सर्वाधिक है।
- आकार में सभी ग्रहों में सबसे बड़ा होने के कारण बृहस्पति को मास्टर आफ गॉड्स (Master of Gods) कहा जाता है।
- शनि ग्रह का सबसे बड़ा उपग्रह टाइटन है। सौर मंडल की यही एक मात्र उपग्रह है जिसके पास अपना वायुमंडल है।
- चंद्रमा के धरातल पर सबसे बड़ा सागर मेयर इम्ब्रियम (Mare Imbrium) है जिसे **'फुहार का सागर'** कहा जाता है।
- चंद्रमा का सर्वोच्च पर्वत **लिबनिट्ज पर्वत** है।
- सूर्य को इसके केंद्र के चारों ओर परिक्रमा (Revolution) करने में 250 मिलियन वर्ष का समय लगता है। इसे एक ब्रह्मांडीय वर्ष कहा जाता है।
- सूर्य मुख्यतः हाइड्रोजन से निर्मित है।
- क्षुद्र ग्रह बृहस्पति और मंगल ग्रहों के मध्य संचालित होते हैं।
- सूर्य पृथ्वी के सर्वाधिक समीप स्थित तारा है। उसके बाद प्रॉक्सिमा सेंचुरी का स्थान आता है।
- सूर्य के चारों ओर अनियंत्रित कक्षा में घूमने वाले आकाशीय पिण्डों को उल्का कहते हैं।
- मंगल ग्रह का अक्षीय झुकाव (23^0 59") तथा दिन की अवधि

(24 घण्टा, 37 मिनट, 23 से.) पृथ्वी के अक्षीय झुकाव एवं दिन की अवधि के लगभग समतुल्य है।
- ग्रहों के पास ऊर्जा का कोई सतत् स्रोत नहीं है परन्तु वे सूर्य के प्रकाश से चमकते हैं।
- आकाशगंगा को सर्पाकार गैलेक्सी के रूप में वर्गीकृत किया गया है।
- चंद्रमा पर स्थित वह स्थान जहाँ नील आर्मस्ट्रांग एवं एडविन एल्ड्रिन ने 1969 ई. सर्वप्रथम कदम रखा था, वह शांति का समुद्र (Sea of Tranquility) कहलाता है।
- बृहस्पति ग्रह के सर्वाधिक 62 उपग्रह हैं।
- बृहस्पति में ग्रह एवं तारा दोनों के लक्षण पाए जाते हैं।
- बृहस्पति की परिक्रमण अवधि सभी ग्रहों में सबसे कम है।
- चंद्रमा के प्रकाश को पृथ्वी तक पहुँचने में 1.25 सेकेंड लगते हैं।
- चंद्रमा का आकार पृथ्वी के आकार का एक चौथाई है।
- उल्काओं के बौछार के कारण चंद्रमा पर क्रेटर की प्रधानता है।
- जब एक ही महीने में दो पूर्णिमा होती हैं तो इस घटना को ब्लू मून (Blue Moon) कहा जाता है 1999 ई. में एक ही वर्ष के दो महीनों (जनवरी एवं मार्च) में ब्लू मून की घटना घटी थी।

स्मरणीय तथ्य

- **न्यूट्रॉन तारे** की खोज सर्वप्रथम 1967 में **मिस जोकलिन बेल** (Miss Jocelyn Bell) ने की। छोटे आकार के कारण न्यूट्रॉन तारा काफी तीव्र गति से घूर्णन करता है एवं आकार एवं विद्युत चुंबकीय तरंगों का उत्सर्जन करता है। ऐसे तारों को **पल्सर (Pulsar)** कहा जाता है।
- नोवा और सुपर नोवा के पश्चात् बड़े तारे अत्यधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण काफी संकूचित एवं संघनित हो जाते हैं। इसका घनत्व अत्यधिक (10 gm/cc) होता है। अत्यधिक घनताप के कारण कोई भी पदार्थ, यहां तक कि सूर्य का प्रकाश भी इसके गुरुत्वाकर्षण से नहीं बच पाता है। यही कारण है कि इसके **कृष्ण छिद्र** (Black Hole) कहा जाता है। **1.4 MS को चन्द्रशेखर सीमा कहते हैं।**
- जब एक छोटा तारा जिसका द्रव्यमान **1.4 MS** (सूर्य के द्रव्यमान से 1.2 गुना से अधिक न हो) से कम होता है तो नोवा या सुपरनोवा विस्फोट के बाद वह अपनी नाभिकीय ऊर्जा खोकर **श्वेत वामन (White OwQart)** में बदल जाता है।
- इसका आकार पृथ्वी के आकार से छोटा होता है। परन्तु केन्द्रीय भाग का घनत्व 18gm/cc होता है। इसे **जीवाश्म तारा** (Fossil Star) भी कहते हैं।
- श्वेत वामन ठण्डा होकर **काला वामन (Black OwQarf)** में परिवर्तित हो जाता है।
- विस्फोट के पश्चात् तारे का केवल केन्द्रीय भाग ही बचा रहता है जिसका घनत्व अधिक होता है। इसमें अत्याधिक गुरुत्वाकर्षण के कारण सभी तत्व न्यूट्रॉन के रूप में संघटित रहते हैं, जिसे न्यूट्रॉन तारा कहते हैं। **न्यूट्रॉन तारा** का घनत्व 10gm/cc होता है।

स्व कार्य हेतु

पृथ्वी की गतियाँ
(Motion of Earth)

परिचय (Introduction)

पृथ्वी सदैव गतिमान है। वह अपने अक्ष पर निरंतर गोलाई में घूमती है। साथ ही सौरमंडल का सदस्य होने के कारण पृथ्वी अपने दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है।

इस प्रकार पृथ्वी की दो गतियाँ हैं-

1. घूर्णन गति अथवा दैनिक गति।
2. परिक्रमण गति अथवा वार्षिक गति।

घूर्णन अथवा दैनिक गति (Rotation Movement)

- पृथ्वी को एक परिभ्रमण करने में 24 घण्टे का समय लगता है जिससे दिन व रात होते हैं। पृथ्वी की इसी गति को दैनिक गति कहते हैं।
- पृथ्वी जिस धुरी एवं अक्ष पर घूमती है, वह एक काल्पनिक रेखा है। यह रेखा पृथ्वी के केन्द्र से होकर उसके उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों को मिलाती है और पृथ्वी के केन्द्र से होकर गुजरती है।
- पृथ्वी का यह अक्ष अपने कक्ष तल (Plane of the Orbit) के साथ 66 ½^0 का कोण बनाती है।

घूर्णन का प्रभाव

- दिन व रात घूर्णन क्रिया से होते हैं।
- समुद्री क्षेत्रों में प्रतिदिन ज्वार-भाटे की स्थिति आती है।
- भिन्न-भिन्न देशांतरों पर स्थित स्थानों का स्थानीय समय ज्ञात किया जा सकता है।
- दिशाओं का आधार- पृथ्वी का घूर्णन दिशाओं का आधार प्रदान करता है क्योंकि पृथ्वी प- से पू- की दिशा में घूमती है।

सौर दिवस (Solar Day)

- जब पृथ्वी का कोई बिंदु घूमकर पुनः अपने स्थान पर पहुँच जाता है तब पृथ्वी अपनी कक्षा (Orbit) पर 1^0 के लगभग आगे बढ़ चुकी होती है। फलस्वरूप नक्षत्रीय स्थिति में परिवर्तन हो जाता है अर्थात् वह बिंदु 24 घण्टे के पहले ही सूर्य के नीचे आ जाता है। यह अवधि 23 घंटे, 56 मिनट तथा 0.099 सेकेंड का होता है। इसे नक्षत्र दिवस कहा जाता है। नक्षत्र वर्ष (Siderial Year) सामान्यतया 365 दिन का तथा लीप वर्ष 366 दिन का होता है। 365 दिन 6 घंटे, 9 मिनट तथा 9.5 सेकेंड की अवधि को एक नक्षत्र कहा जाता है।
- प्रत्येक सोलर वर्ष केलेंडर वर्ष से लगभग 6 घंटे बढ़ जाता है जिसे हर चौथे वर्ष में लीप वर्ष बनाकर समायोजित किया जाता है।
- प्रत्येक लीप वर्ष में फरवरी 29 दिन का होता है। लीप वर्ष 4 से विभाज्य होता है, अतएव यह प्रति चौथे वर्ष पड़ता है।

परिक्रमण अथवा वार्षिक गति (Revolution Movement)

- पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक अंडाकार पथ पर 365 दिन तथा 6 घंटे में एक चक्कर पूरा करती है। पृथ्वी की इस परिक्रमा को उसकी परिक्रमण गति या वार्षिक गति कहते हैं।
- पृथ्वी की कक्षा (Orbit) अंडाकार होने के कारण यह कभी सूर्य से निकटतम दूरी पर होती है तो कभी अधिकतम दूरी पर।

उपसौर (Perihelion)

- जब पृथ्वी सूर्य के निकटतम दूरी पर होती है तो यह स्थिति उपसौर कहलाती है। यह स्थिति प्रत्येक वर्ष 3 जनवरी को बनती है। इस समय पृथ्वी सूर्य से निकटतम दूरी अर्थात् 14.70 करोड़ किमी. पर होती है।

अपसौर (Aphelion)

- जब पृथ्वी सूर्य से अधिकतम दूरी पर होती है तो यह स्थिति अपसौर कहलाती है। ऐसी स्थिति प्रत्येक वर्ष 4 जुलाई को बनती है। इस समय पृथ्वी सूर्य से अधिकतम दूरी अर्थात् 15.2 करोड़ किमी. पर होती है।

परिक्रमण के प्रभाव

- दिन-रात की अवधि में अंतर।
- पृथ्वी पर प्रकाश व उष्मा के वितरण में अंतर आना।
- ऋतुओं में परिवर्तन होना।

एपसाइड रेखा (Apside line)

- अपसौर (Aphelion) एवं उपसौर (Perihelion) के पार्थिव बिन्दुओं को सूर्य के केन्द्र से होकर मिलाने वाली रेखा एपसाइड रेखा कहलाती है।

दिन और रात

- पृथ्वी अपने अक्ष पर लट्टू की तरह घूमती रहती है जिसे हम उसकी परिभ्रमण गति कहते हैं। अपने अक्ष पर घूमते हुए पृथ्वी को एक परिभ्रमण करने में 24 घण्टे का समय लगता है।
- परिभ्रमण के दौरान पृथ्वी का एक भाग सूर्य के सामने से गुजरता है तथा उजाले में रहता है और शेष भाग सूर्य के पीछे अर्थात् अंधेरे में रहता है। सूर्य के सामने वाले भाग पर दिन होता है और जो भाग सूर्य के पीछे रहता है, वहाँ रात होती है। इसके बाद दूसरा चक्र आरम्भ होता है तथा रात के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात का क्रम चलता रहता है।
- 24 घण्टे के हर एक दिन-रात के चक्र को साधारण बोल-चाल में एक दिन कहा जाता है।

दिन-रात का छोटा-बड़ा होना

- यदि पृथ्वी अपने अक्ष पर लम्बवत् होती है तो प्रत्येक स्थान **पर दिन-रात बराबर** होते हैं।
- पृथ्वी का अक्ष अपने कक्षा तल के साथ 66½° का कोण बनाता है। इसके फलस्वरूप वर्ष के विभिन्न अवधियों में दोपहर में सूर्य की ऊँचाई में अंतर पाया जाता है इसके कारण वर्ष की विभिन्न अवधियों में दिन एवं रात की लम्बाई में अंतर पाया जाता है।
- 21 मार्च को सूर्य भूमध्य रेखा पर लम्बवत् चमकने के बाद उत्तरी गोलार्द्ध में लम्बवत् चमकना शुरू करता है।
- 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर जब लम्बवत् चमकता है तब उत्तरी ध्रुव पर सूर्य की किरणों का आपतन कोण (Angle of Inclination) सर्वाधिक होता है।
- 21 जून को जब सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकता है तब 23½° उत्तरी अक्षांश पर वर्ष का अधिकांश प्रकाश प्राप्त होता है जिससे वहाँ दिन लंबे (लगभग 14 घण्टे) तथा रातें छोटी होती हैं।
- इसके विपरीत 21 जून को मकर रेखा पर अर्थात् दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन की अवधि छोटी तथा रातें बड़ी होती हैं।
- 21 मार्च से 23 सितम्बर की अवधि तक उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में लम्बवत् होता है। फलतः उत्तरी गोलार्द्ध सूर्य का प्रकाश 12 घण्टे से अधिक अवधि तक प्राप्त करता है। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़े तथा रातें छोटी होती हैं।
- इस प्रकार 21 मार्च से 23 सितम्बर तक उत्तरी ध्रुव पर 6 माह का दिन तथा दक्षिणी ध्रुव पर 6 माह की रात होती है।
- 23 सितम्बर के बाद सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश करता है।
- **22 दिसम्बर** को दक्षिणी ध्रुव पर सूर्य का आपतन कोण 66½° का होता है अर्थात् सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् चमकता है। फलस्वरूप दक्षिणी गोलार्द्ध में दिन बड़े और रातें छोटी होती हैं तथा इसके विपरीत स्थिति उत्तरी गोलार्द्ध में होती है। यहाँ दिन छोटे और रातें बड़ी होती हैं।
- 23 सितम्बर से 21 मार्च तक सूर्य का प्रकाश दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक प्राप्त होता है एवं जैसे-जैसे दक्षिणी ध्रुव की ओर बढ़ते हैं दिन की अवधि भी बढ़ती जाती है। दक्षिणी ध्रुव पर इसी कारण छः महीने का दिन होता है।
- **21 मार्च एवं 23 सितम्बर** को सूर्य विषुवत रेखा पर चमकता है। इस समय समस्त अक्षांश रेखाओं का आधा भाग प्रकाश में रहता है। अतः इस दिन विश्व के विभिन्न भागो में **दिन एवं रात की अवधि समान** होती है।
- दोनों गोलार्द्धों में दिन-रात एवं ट्टतु की समानता रहने से इन दोनों स्थितियों को **विषुव (Equinox)** कहा जाता हैं इस प्रकार की स्थिति को **विषुव दिवस** कहते हैं।

ऋतु परिवर्तन (Season Changes)

- पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है। अतः पृथ्वी की सूर्य के सापेक्ष स्थितियाँ बदलती रहती हैं। पृथ्वी के परिक्रमण में चार मुख्य अवस्थाएं आती हैं जिनसे ऋतु परिवर्तन होता है।
- 21 जून से सूर्य कर्क रेखा पर लंबवत चमकता है। इस स्थिति को **कर्क संक्राति** (Summer Solistice) कहते हैं।
- 21 मार्च के बाद सूर्य उत्तरी गोलार्द्ध में प्रवेश करता है। इससे उत्तरी गोलार्द्ध में दिन की अवधि बढ़ने लगती है। फलस्वरूप यहाँ ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है।
- 21 जून को सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकती हैं जिससे उत्तरी गोलार्द्ध में दिन की लम्बाई सबसे अधिक होती है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु तथा इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है।
- 23 सितम्बर के बाद सूर्य दक्षिणायन होने लगता है।
- 22 दिसम्बर को सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत् चमकता है। इस स्थिति को **मकर सक्रांति** (Winter Solistice) कहते हैं। इस समय दक्षिणी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन होता है।
- फलस्वरूप दक्षिणी गोलार्द्ध में ग्रीष्म ऋतु एवं उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु होती है।
- 21 मार्च एवं 23 सितम्बर को सूर्य विषुवत् रेखा पर लम्बवत्

चमकता है। अतः इस समय अक्षांश रेखा पर आधा भाग सूर्य का प्रकाश प्राप्त करता है जिससे सभी स्थानों पर दिन व रात की अवधि बराबर होती है। दिन-रात की बराबर स्थिति के कारण ऋतु में भी समानता पाई जाती है जिसे 'विषुव' अथवा सम दिन-रात (Equinox) कहा जाता है।

- **21 मार्च** की स्थिति को **बंसत विषुव** (Spring Equinox) एवं **23 सितम्बर** की स्थिति को **शरद विषुव** (Automn Equinox) कहते हैं।

ज्वार-भाटा (Tide-Ebb)

- सूर्य एवं चंद्रमा की आकर्षण शक्तियों के कारण सागरीय जल के ऊपर उठने को ज्वार तथा नीचे गिरने को भाटा कहा जाता है। इससे उत्पन्न तरंगों को ज्वारीय तंरग कहते हैं।
- ज्वार भाटा की ऊँचाई सागर में जल की गहराई, सागरीय तट की रूपरेखा तथा सागर के खुले होने या बन्द होने पर निर्भर करती है।
- यद्यपि सूर्य चंद्रमा से बहुत बड़ा है तथापि चंद्रमा की आकर्षण शक्ति का प्रभाव दोगुना है इसका कारण सूर्य का चंद्रमा की तुलना में पृथ्वी से दूर होना है।
- प्रत्येक स्थान पर 24 घण्टे में दो बार ज्वार-भाटा आता है।
- जब सूर्य तथा चंद्रमा एक सीधी रेखा में होते हैं तो संयुक्त गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण दीर्घ ज्वार उत्पन्न होता है। यह स्थिति सिजिगी (Syzygy) कहलाती है जो पूर्णमासी व अमावस्या को होती है। इसके विपरीत जब सूर्य तथा चंद्रमा मिलकर समकोण बनाते हैं तो इन दोनों के आकर्षण बल एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। इस स्थिति में निम्न ज्वार उत्पन्न होते हैं यह स्थिति कृष्ण पक्ष सप्तमी एवं शुक्ल पक्ष अष्ठमी को बनती हैं।
- लघु ज्वार सामान्य ज्वार से 20% नीचा व दीर्घ ज्वार सामान्य ज्वार से 20% ऊँचा होता है।

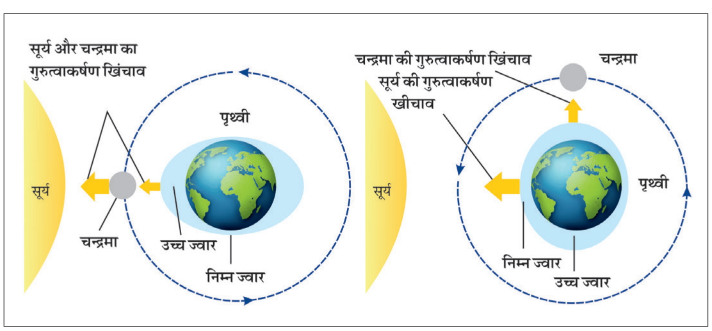

अयनवृत्तीय व भूमध्य रेखीय ज्वार

- सूर्य के समान चंद्रमा भी उत्तरायण व दक्षिणायन होता है। जब चंद्रमा का अधिकतम झुकाव कर्क व मकर रेखा पर होता है तो इस स्थिति में आकर्षण बल के प्रभाव से आने वाले उच्च ज्वार को '**अयनवृत्तीय ज्वार**' कहते हैं। ऐसी स्थिति महीने में दो बार होती रहती है।
- जब चंद्रमा का अधिकतम झुकाव भूमध्य रेखा पर होता है तो आकर्षण बल के प्रभाव से आने वाले ज्वार को '**भूमध्यरेखीय ज्वार**' कहते हैं।

उपभू व अपभू ज्वार

- चंद्रमा दीर्घ वृत्ताकार कक्षा के सहारे पृथ्वी की परिक्रमा करता है। जब चंद्रमा पृथ्वी से निकटतम दूरी (उपभू स्थिति) पर होता है, तो ऐसी स्थिति में आकर्षण बल के प्रभाव से आने वाले ज्वार को '**उपभू ज्वार**' कहते हैं।
- जब चंद्रमा पृथ्वी से अधिकतम दूरी पर (अपभू स्थित) होता है तो ज्वारोत्पादक बल का प्रभाव कम होने से लघु ज्वार की उत्पत्ति होती है, जिसे '**अपभू ज्वार**' कहते हैं।

दैनिक, अर्द्ध-दैनिक व मिश्रित ज्वार

- किसी स्थान पर एक दिन में एक उच्च एवं एक निम्न ज्वार आता है। जब उच्च एवं निम्न ज्वारों की ऊंचाई समान होती है तो उसे '**दैनिक ज्वार**' कहते हैं।
- किसी स्थान पर एक दिन में दो उच्च एवं दो निम्न ज्वार आते हैं। दो लगातार उच्च एवं निम्न ज्वार की ऊंचाई लगभग समान होती है, उसे अर्द्ध-दैनिक ज्वार कहते हैं।
- ऐसे ज्वार जिनकी ऊंचाई में भिन्नता होती है, उसे '**मिश्रित ज्वार**' कहा जाता है। ये ज्वार सामान्यतः उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट एवं प्रशांत महासागर में बहुत से द्वीप समूहों पर उत्पन्न होते हैं।

चंद्रमा का परिक्रमण और ज्वार भाटों का अंतराल

- पृथ्वी पर चंद्रमा के सम्मुख स्थित भाग पर चंद्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण ज्वार आता है किन्तु इसी समय पृथ्वी पर चंद्राविमुखी भाग पर भी ज्वार आता है। इसका कारण पृथ्वी के घूर्णन को संतुलित करने के लिए **अपकेन्द्री बल** (Centrifugal Force) का शक्तिशाली होना है।
- प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे के बाद ज्वार आना चाहिए किन्तु यह प्रतिदिन लगभग 26 मिनट की देरी से आता है। इसका कारण चंद्रमा का पृथ्वी के सापेक्ष गतिशील होना है।
- ज्वार-भाटा 24 घण्टे 52 मिनट में दो बार आता है। क्योंकि चंद्रमा द्वारा समुद्र का जल आकर्षित होकर हर स्थान पर लगभग 24 घंटे 52 मिनट में दो बार चढ़ता है और दो बार उतरता है।

- ज्वार-भाटा में दैनिक अंतर 24 घंटे के स्थान पर 24 घंटे 52 मिनट इसलिए होता है क्योंकि चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है और घूमती हुई पृथ्वी के जिस विशेष स्थान के सीध में किसी विशेष समय पर वह पहले दिन था, अगले दिन उसी स्थान के ठीक सीध में आने के लिए उसे 52 मिनट की यात्र और करनी पड़ती है।
- **कनाडा** के न्यू ब्रंसविक तथा नोवा स्कोटिया के मध्य स्थित **फंड़ी** में ज्वार की ऊँचाई सर्वाधिक (15 से 18 मीटर) होती है।
- जबकि **भारत के ओखा तट** पर ज्वार की ऊँचाई मात्र 2.5 मी. होती है।
- इंग्लैण्ड के दक्षिणी तट पर स्थित साउथैम्पटन में प्रतिदिन चार बार ज्वार आता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि दो बार इंग्लिश चैनल तथा दो बार उत्तरी सागर में होकर ज्वार विभिन्न अंतरालों पर वहाँ पहुँचता है।

ज्वार-भाटा की उत्पत्ति की संकल्पनाएँ

विद्वान	सिद्धांत
सर आइजेक न्यूटन	गुत्वाकर्षण का सिद्धांत
लाप्लास	गतिक सिद्धांत
हैवले व एयरी	प्रगामी तरंग सिद्धांत
हैरिस	स्थैतिक तरंग सिद्धांत

ग्रहण (Eclipse)

- जब कभी अमावस्या के दिन सूर्य और पूर्णिमा के दिन चंद्रमा आंशिक या पूर्णतः अंधकारमय हो जाता है, तो इस स्थिति को **ग्रहण** करते हैं।

चंद्रग्रहण (Lunar Eclipse)

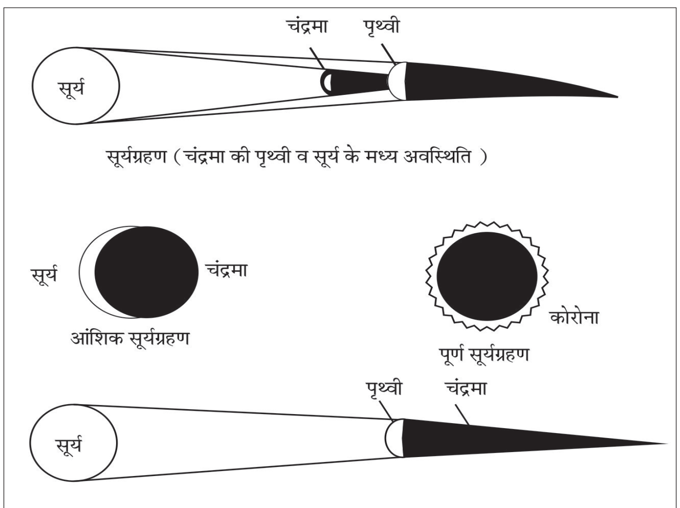

- पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है जबकि पृथ्वी की परिक्रमा चंद्रमा करता है। जब सूर्य एवं चंद्रमा के मध्य पृथ्वी आ जाती है तो पृथ्वी की छाया चंद्रमा पर पड़ने लगती है जिससे उस पर अंधेरा छा जाता है, इसे चंद्रग्रहण कहते हैं।
- चंद्रग्रहण की घटना **सदैव पूर्णिमा (Full Moon)** को होती है। क्योंकि पृथ्वी एवं चंद्रमा के कक्ष तलों में 5^0 का झुकाव पाया जाता है तथा चंद्रमा पृथ्वी के कक्ष तल में कभी-कभी ही होता है। अतः चंद्रग्रहण उसी पूर्णिमा को होता है जब चंद्रमा पृथ्वी के कक्ष तल में होता है।

सूर्यग्रहण (Solar Eclipse)

- जब पृथ्वी एवं सूर्य के मध्य चंद्रमा आ जाता है तथा उसकी छाया पृथ्वी पर पड़ती है तो **सूर्यग्रहण** की घटना होती है।
- सूर्यग्रहण **सदैव अमावस्या** (New Moon) को ही होता है किन्तु प्रत्येक अमावस्या को नहीं, क्योंकि पृथ्वी एवं चंद्रमा के कक्ष तलों में परस्पर 5^0 के झुकाव के कारण सूर्यग्रहण उस विशेष अमावस्या को ही होता है जिस अमावस्या को चंद्रमा पृथ्वी के कक्ष तल में आ जाता है। जब चंद्रमा सूर्य को पूर्ण रूप से ढ़क लेता है तो पूर्ण सूर्यग्रहण तथा जब चंद्रमा सूर्य को आंशिक रूप से ढक लेता है तो **आंशिक सूर्यग्रहण** की घटना होती है।
- एक केलेंडर वर्ष में अधिकतम 7 ग्रहण हो सकते हैं, इनसे 4 या 5 सूर्यग्रहण तथा 3 तथा 4 चंद्रग्रहण हो सकते हैं।
- इसी प्रकार एक सदी में औसत 238 सूर्यग्रहण हो सकता है। इनमें 28 प्रतिशत पूर्ण सूर्यग्रहण 33 प्रतिशत वलयाकार सूर्यग्रहण (Annular Solar Eclipse) तथा शेष 39 प्रतिशत आंशिक सूर्यग्रहण (Partial Solar eclipse) हो सकता है।
- सामान्य रूप से पूर्ण सूर्यग्रहण 450 सेकेंड या 7.5 मिनट का होता है तथा इसकी अधिकतम अवधि 8 मिनट होती है।

सौर कोरोना (Solar Corona)

- सूर्यग्रहण के दौरान जब सूर्य चमकती हुई अँगूठी के रूप में दिखाई पड़ता है तो इस घटना को **डॉयमंड रिंग** (Diamond Ring) या सौर कोरोना कहा जाता है।
- डायमंड रिंग का कारण चंद्रमा के समीपवर्ती भाग की विषमता है। चंद्रग्रहण की तुलना में सूर्यग्रहण की घटना अधिक होती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

अक्षांश, देशांतर, अंतर्राष्ट्रीय तिथि रेखा व समय (Latitude, Longitude, International Date Line & Time)

परिचय (Introduction)

ग्लोब को ध्यान से देखने पर दो प्रकार की रेखाएँ जाल के रूप में दिखाई देती हैं। इनमें एक प्रकार की रेखाएँ क्षैतिज हैं, जो पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली हुई हैं, दूसरी प्रकार की रेखाएँ लम्बवत हैं जो उत्तर-दक्षिण दिशा में फैली हुई हैं। इन्ही रेखाओं को क्रमशः अक्षांश तथा देशांतर रेखाएँ कहते हैं।

अक्षांश रेखाएँ (Latitude Lines)

- ग्लोब पर पश्चिम से पूरब की ओर खींची गई काल्पनिक रेखा को अक्षांश रेखा कहते हैं। वास्तव में यह ऐसा कोण होता है जो विषुवत रेखा तथा किसी अन्य स्थान के बीच की स्थिति को प्रदर्शित करता है। यहाँ से उत्तर की ओर बढ़ने वाली कोणीय दूरी को उत्तरी अक्षांश तथा दक्षिण में बढ़ने वाली दूरी को दक्षिणी अक्षांश कहते हैं।

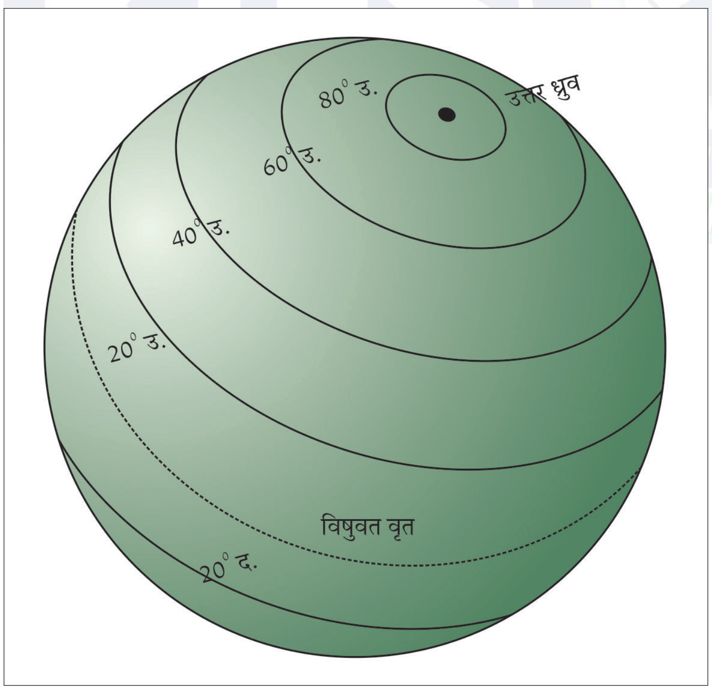

- अक्षांश रेखाओं की **कु संख्या 181 है** जिनमें से दो रेखाएँ बिंदु रूप में हैं। प्रति 1° की अक्षांशीय दूरी लगभग **111 किमी.** के बराबर होती है इन रेखाओं की लंबाई पृथ्वी के गोलाकार होने के कारण भूमध्यरेखा से ध्रुवों तक भिन्न-भिन्न मिलती है।

- **अक्षांश रेखाओं में तीन प्रमुख हैं-**
  - ✓ विषुवत अथवा भूमध्य रेखा (Equator)।
  - ✓ कर्क रेखा (Tropic of Cancer)।
  - ✓ मकर रेखा (Tropic of Capricorn)।

विषुवत अथवा भूमध्य रेखा (Equator)

- पृथ्वी के केन्द्र से सर्वाधिक दूरस्थ भूमध्यरेखीय उभार पर स्थित बिन्दुओं को मिलाते हुए ग्लोब या मानचित्र पर पश्चिम से पूर्व की ओर खींची गई रेखा को भूमध्य रेखा कहते हैं। इसे शून्य अंश (0°) अक्षांश रेखा भी कहा जाता है।

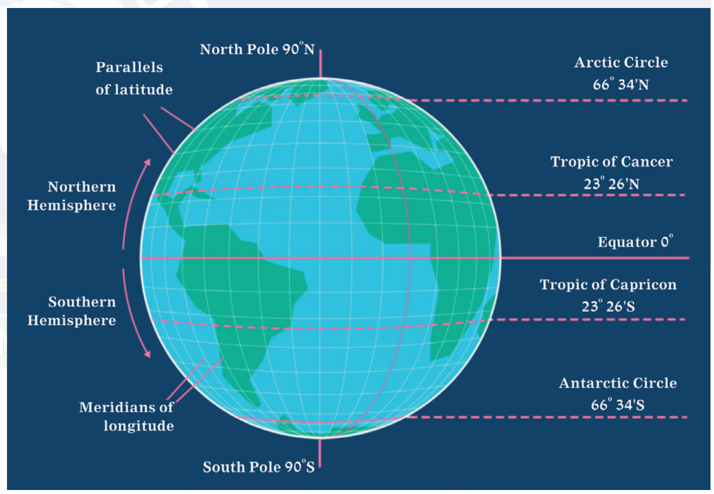

- यह रेखा पृथ्वी को उत्तरी गोलार्द्ध (Northern Hemisphere) और दक्षिणी गोलार्द्ध (Southern Hemesphere) नामक दो बराबर भागों में बाँटती है। इस पर वर्षभर दिन-रात बराबर होते हैं।

कर्क रेखा (Tropic of Cancer)

- यह रेखा उत्तरी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा के सामान्तर 23½° अंश पर खींची गई है। यह रेखा पृथ्वी पर उन पांच प्रमुख अक्षांश रेखाओं में से एक है जो पृथ्वी के मानचित्र पर परिलक्षित होती है। 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकता है इसलिए इस तिथि को उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन और सबसे छोटी रातें होती हैं। इसके ठीक विपरीत की स्थिति दक्षिणी गोलार्द्ध में होती है।

मकर रेखा (Tropic of Capricorn)

- यह रेखा दक्षिणी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा के समान्तर $23\frac{1}{2}^0$ अक्षांश पर खींची गई है।
- सूर्य 22 दिसम्बर को मकर रेखा पर लम्बवत् चमकता है। इसलिए इस तिथि को दक्षिणी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन तथा सबसे छोटी रात होती हैं। ठीक इसके विपरीत की स्थिति उत्तरी गोलार्द्ध में होती है।

आर्कटिक वृत्त (Arctic Circle)

- विषुवत रेखा से $66\frac{1}{2}^0$ उत्तर की कोणीय दूरी आर्कटिक वृत्त के रूप में जानी जाती है। आर्कटिक वृत्त आर्कटिक महासागर, कनाडा, ग्रीनलैंड, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका (अलास्का क्षेत्र), नॉर्वे, स्वीडन और फिनलैंड से होकर गुजरती है जबकि आइसलैंड इसके दक्षिण में अवस्थित है। यह वृत्त कनाडा के ग्रेट बियर झील से होकर भी जाता है।
- आर्कटिक वृत्त के क्षेत्रों पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं अतः यह अत्यधिक शीतल जलवायु वाला प्रदेश है।

अंटार्कटिक वृत्त (Antarctic Circle)

- विषुवत रेखा से $66\frac{1}{2}^0$ दक्षिण की कोणीय दूरी अंटार्कटिक वृत्त के रूप में जानी जाती है। अंटार्कटिका का अधिकांश भाग सदैव बर्फ से ढका रहता है इसलिए इसे '**सफेद महाद्वीप**' भी कहते हैं।

अश्व अक्षांश (Horse Latitudes)

- 30^0 से 35^0 उत्तरी अक्षांशों के मध्य स्थित पेटियों को '**अश्व अक्षांश**' कहा जाता है। इन अक्षांशों में उपोष्ण उच्च वायुदाब पेटी मिलती है अर्थात् यहां वायुमंडल में स्थिरता और पवन संचार अत्यंत मंद होता है।
- प्राचीन काल में जब घोड़े से लदे हुए जलयान इस पेटी में प्रवेश करते थे, तो शांत एवं अनिश्चित दिशा वाली पवनों के कारण उसके संचालन में कठिनाइयां आती थीं, जिस कारण जलयान को हल्का करने के लिए कुछ घोड़ों (अश्व) को सागर में फेंकना पड़ता था। इसी कारण इस पेटी को '**अश्व अक्षांश**' कहा जाने लगा।

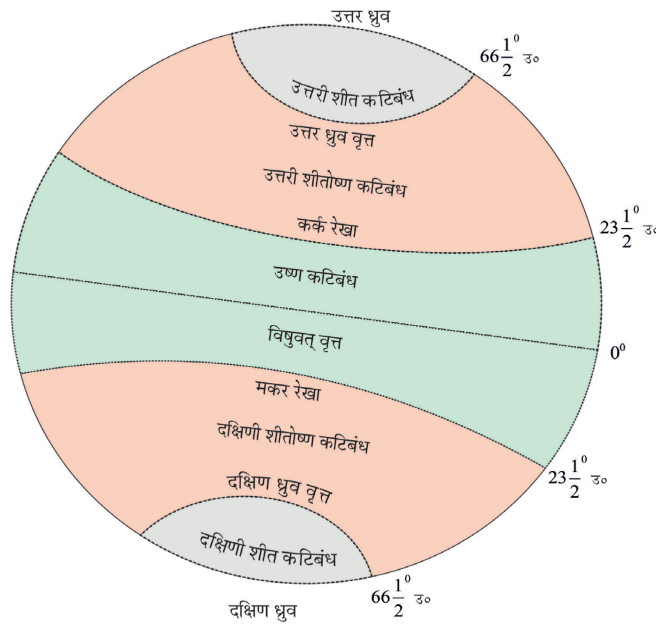

महत्त्वपूर्ण अक्षांश एवं ताप कटिबंध

महत्त्वपूर्ण अक्षांश एवं ताप कटिबंध

अक्षांश रेखाओं का महत्त्व

- अक्षांश रेखाओं से हमें ज्ञात होता है कि कोई स्थान भूमध्य रेखा से कितने कोणीय डिग्री की दूरी पर है।
- अक्षांश रेखाओं की सहायता से हम किसी स्थान की जलवायु का अनुमान लगा सकते हैं, क्योंकि तापमान निर्धारण में आक्षांश रेखाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।
- अक्षांश रेखाओं की सहायता से ग्लोब, मानचित्र या एटलस में किसी स्थान को आसानी से ढूँढा जा सकता है।

देशांतर रेखाएँ (Longitudinal Lines)

ग्लोब पर उत्तर से दक्षिण की ओर खींची जाने वाली रेखा को देशांतर रेखा कहते हैं। इन्हें याम्योत्तर रेखाएँ भी कहते हैं। प्रधान याम्योत्तर के पूर्व या पश्चिम की कोणीय दूरी को देशांतर रेखा कहते हैं। ये ध्रुवों पर एक ही बिंदु पर मिलती हैं तथा ये समय की विभाजक होती हैं।

- ज्ञातव्य है कि भूमध्य रेखा की लंबाई 40076 किमी. है जिसको 360 देशांतर रेखाएँ काटती हैं। इस प्रकार भूमध्य रेखा पर 1^0 के अंतराल पर दो देशांतरों के मध्य दूरी 40076/360 अर्थात् 111.32 किमी. होती है।
- भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर देशांतरों के मध्य दूरी कम होती जाती है। दुनिया का मानक समय शून्य डिग्री देशांतर रेखा से निर्धारित किया जाता है। इसीलिए इसे **प्रधान मध्यान्ह देशांतर रेखा** (Prime Meridian) भी कहते हैं।
- लंदन का एक नगर **ग्रीनविच** इसी रेखा पर स्थित है अतः इस रेखा को **ग्रीनविच रेखा** भी कहा जाता है ग्रीनविच रेखा के पूर्व में स्थित 180^0 तक देशांतर, पूर्वी देशांतर तथा पश्चिम की ओर स्थित देशांतर, पश्चिमी देशांतर कहलाता है।
- पृथ्वी गोलाकार होने के कारण 24 घंटे में 360^0 घूम जाती है, अतः 1^0 देशातंर की दूरी तय करने में पृथ्वी को 4 मिनट का समय लगता है अर्थात 1^0= 4 और इस प्रकार 15^0=1 घंटा। पूरब की तरफ इसी दर से (1^0 = 4 या 15^0= 1) समय बढ़ता है जबकि पश्चिम की ओर जाने पर इसी दर से समय घटता है।
- चूँकि समग्र भूमंडल 360^0 अंशों में विभक्त है, इसलिए संपूर्ण पृथ्वी को **24 समय चक्रों** (24 Times Zones) में बांटा गया है। दो देशांतर रेखाओं के बीच सर्वाधिक समयांतराल विषुवत रेखा पर होता है।
- दो विपरीत देशांतर रेखाएँ आपस में मिलकर एक पूर्ण वृत्त का निर्माण करती हैं, जैसे शून्य डिग्री और 180 डिग्री देशांतर रेखाएँ आपस में मिलकर एक पूर्ण वृत्त का निर्माण करती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय तिथि रेखा एवं समय (International Date Line and Time)

- यह एक काल्पनिक रेखा है जो प्रशान्त महासागर के बीचों-बीच 180^0 देशांतर के सामानांतर उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गयी है।
- इस रेखा पर तिथि का परिवर्तन होता है। इस रेखा के पूर्व व पश्चिम में एक दिन का अंतर पाया जाता है।
- अतः इस रेखा को पार करते समय एक दिन बढ़ाया या घटाया जाना आवश्यक होता है।
- जब कोई जलयान पश्चिम दिशा में यात्र करता है तो उसकी तिथि में एक दिन जोड़ दिया जाता है और यदि वह पूर्व की ओर यात्र करता है तो एक दिन घटा दिया जाता है।
- एक देश के विभिन्न भागों या द्वीपों का समय समान रखने के लिए इस रेखा को आर्कटिक महासागर में 75^0 उत्तरी अक्षांश पर महाद्वीप से बचने के लिए पूर्व की ओर मोड़ा गया और बेरिंग जल संधि (जलडमरूमध्य) से निकाला गया। बेरिंग समुद्र में यह पश्चिम की ओर मोड़ी गयी है। बेरिंग जल संधि अंतर्राष्ट्रीय तिथि रेखा के सर्वाधिक निकट है। फिजी द्वीप समूह तथा न्यूजीलैंड को दूर रखने के लिए यह दक्षिणी प्रशांत महासागर में पूर्व की ओर मुड़ जाती है।

ग्रिड (Grid)

- अक्षांश और देशांतर रेखाओं के जाल को ग्रिड कहते हैं।

साइडेरियल समय (Siderial Time)

- किसी भी तारे द्वारा पृथ्वी के किसी देशांतर को पुनः पार करने में लगने वाला समय साइडेरियल समय कहलाता है।

स्थानीय समय (Local Time)

- पृथ्वी पर स्थान विशेष का सूर्य की स्थिति से परिकल्पित समय को स्थानीय समय कहते हैं।
- स्थानीय मध्यान्ह समय वह समय होता है जब सूर्य उस स्थान विशेष पर लम्बवत् चमकता है।
- भारत के सर्वाधिक पूर्व (अरुणाचल प्रदेश) एवं सर्वाधिक पश्चिम (गुजरात के द्वारका) में स्थित स्थानों के स्थानीय समय में लगभग दो घंटे का अन्तर मिलता है।

मानक समय (Standard Time)

- किसी देश अथवा क्षेत्र विशेष में किसी एक मध्यवर्ती देशांतर रेखा के स्थानीय समय को पूरे देश अथवा क्षेत्र का समय मान लिया जाता है जिसे मानक समय कहते हैं।
- यह किसी भी प्रमाणिक देशांतर का स्थानीय समय होता है जो एक चौड़ी पेटी में उस देशांतर के दोनों ओर माना जाता है।
- $82\frac{1}{2}^0$ पूर्वी देशांतर रेखा के स्थानीय समय को पूरे भारत का मानक समय माना गया है।

भारतीय मानक समय रेखा (Indian Standard Time Line)

- भारत की मानक समय **रेखा $82\frac{1}{2}^0$ पूर्वी देशांतर** है। यह **रेखा इलाहाबाद के निकट नैनी से गुजरती है,** यहाँ का समय सम्पूर्ण भारत के लिए मानक समय (IST) है।
- इससे भारत के विभिन्न प्रदेशों में देशांतरीय अंतर के कारण समय की भिन्नता को समायोजित करने की समस्या का समाधान मिल जाता है।

समय क्षेत्र (Time Zones)

- एक प्रामाणिक समय को मानने वाला संपूर्ण क्षेत्र समय क्षेत्र कहलाता है।
- 13 अक्टूबर 1884 के दिन ग्रीनविच मीन टाइम तय किया गया था। दुनिया भर की घड़ियों का समय इसी टाइम जोन से तय करते हैं।
- इस समय क्षेत्र में 15 देशांतर को रखकर 24 समय क्षेत्र बनाये गये हैं।
- इस प्रकार कुल 15 देशांतर प्रामाणिक देशांतर (Standard Meridians) का निर्माण करते हैं।

अक्षांश, देशांतर, अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा व समयः एक नजर में

- प्रति 1^0 की अक्षांशीय दूरी लगभग 111 किमी. के बराबर होती है जिसकी लंबाई पृथ्वी के गोलाकार होने के कारण भूमध्य रेखा से ध्रुवों तक भिन्न-भिन्न मिलती है।
- भूमध्य रेखा पर वर्ष भर दिन-रात एक समान होते हैं।
- कर्क रेखा उत्तरी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा के सामान्तर $23\frac{1}{2}^0$ अंश पर खींची गई है।
- 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर लम्बवत् चमकता है, इसलिए इस तिथि को उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन तथा सबसे छोटी रात होती है।
- दक्षिणी गोलार्द्ध में भूमध्य रेखा के समान्तर $23\frac{1}{2}^0$ आक्षांश पर मकर रेखा खींची गई है।
- 22 दिसम्बर को सूर्य मकर रेखा पर लम्बवत चमकता है अतः दक्षिणी गोलार्द्ध में उस तिथि को सबसे बड़ा दिन तथा सबसे छोटी रात होती है।
- पृथ्वी पर दो अक्षांशों के मध्य कोणीय दूरी को देशांतर कहा जाता है, जो ग्लोब पर उत्तर से दक्षिण की ओर खींची गई है।
- देशांतर रेखाएँ **ध्रुवों पर एक ही बिन्दु पर मिलती** हैं।
- भूमध्य रेखा की लम्बाई 40076 किमी. है, जिसको 360 देशांतर रेखाएँ काटती हैं।
- प्रधान देशांतर को ग्रीनविच रेखा के नाम से भी जाना जाता है यह शून्य अंश देशांतर रेखा होती है। इसके ठीक विपरीत 180^0 देशांतर रेखा होती है 180^0 देशांतर प्रधान याम्योत्तर से मिलकर ग्लोब पर वृहत्-वृत्त का निर्माण करती है।
- किसी स्थान का मानक समय (Standard Time) निर्धारित करने का आधार प्रधान मध्यान्ह रेखा होती है।
- सामान्यतः 1^0 देशांतर पर 4 मिनट का अंतर होता है।
- वृहत् वृत्त (Great Circle) वह रेखा होती है जो गोले को दो समान परिधियों वाले गोलार्द्धों में विभाजित करती है। पृथ्वी पर दो देशांतरों को मिलाकर बनने वाले वृत्त के अतिरिक्त विषुवत रेखा (Equator) भी वृहत वृत्त है।
- विषुवत रेखा के अतिरिक्त कोई भी आक्षांश वृहत वृत्त नहीं है क्योंकि वे विषुवत रेखा की अपेक्षा छोटे होते हैं।
- शून्य अंश अंक्षाश रेखा (विषुवत रेखा) व शून्य अंश देशांतर रेखा (प्रधान मध्यान्ह रेखा) का मिलन अफ्रीका के पश्चिम भाग पर स्थित 'गिनी की खाड़ी' में होता है, यह खाड़ी अटलांटिक महासागर में स्थित है।
- भूमध्य रेखा, कर्क रेखा और मकर रेखा तीनों अफ्रीका महाद्वीप से गुजरती हैं।
- विषुवत रेखा/भूमध्य रेखा (Equator) पर वार्षिक तापांतर सबसे कम पाया जाता है, अर्थात् यहां लगभग वर्ष भर सूर्य की किरणें लम्बवत पड़ने से उच्च एवं निम्न तापमान में ज्यादा अंतर नहीं आ पाता है। इन क्षेत्रों में कोई शीत ऋतु नहीं होती है।
- ग्रीनविच माध्य समय (GMT) की गणना ग्रीनविच, लंदन स्थित रॉयल ऑब्जरवेटरी (शून्य-अंश देशांतर पर स्थित) से की जाती है।

स्व कार्य हेतु

पृथ्वी की संरचना
(Structure of the Earth)

पृथ्वी: परिचय (Earth : Introduction)

- पृथ्वी सौरमंडल का एक ग्रह है जो शुक्र व मंगल के मध्य स्थित है। यह सूर्य से दूरस्थ तीसरा ग्रह है एवं सौरमंडल का पाँचवां सबसे बड़ा ग्रह है। अंतरिक्ष से देखने पर पृथ्वी नीले रंग के गोले के रूप में दिखाई पड़ती है। इसलिए पृथ्वी को नीला ग्रह कहा जाता है। यह सौरमंडल का अकेला ऐसा ग्रह है जहाँ पर जीवन विद्यमान है। पृथ्वी के सबसे निकटस्थ ग्रह शुक्र है। इसके बाद क्रमशः **मंगल, बुध, बृहस्पति, और शनि** का स्थान आता है। पृथ्वी एवं शुक्र ग्रह को **जुड़वा ग्रह या जुड़वा बहन** के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इन दोनों ग्रहों का आकार लगभग बराबर है।
- इसके सबसे निकटस्थ तारा सूर्य है। इसके बाद 'प्रोक्सिमा सेंचुरी' का स्थान आता है। सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी तक आने में 8 मिनट 16 सेकेंड का समय लगता है। ग्रहों में सर्वाधिक औसत घनत्व (5.5 g/cm3) पृथ्वी का है। पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह चंद्रमा है, जिसका आकार पृथ्वी के आकार का लगभग एक चौथाई है। इस पर गुरुत्वाकर्षण बल का मान पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के मान का छठवां भाग है। चंद्रमा का केवल 59% भाग ही पृथ्वी से दिखाई पड़ता है। इसके प्रकाश को पृथ्वी तक आने में 1.25 सेकेंड का समय लगता है। चंद्रमा को घूर्णन एवं पृथ्वी के चारों ओर परिभ्रमण दोनों में ही 27.32 दिन का समय लगता है। यही कारण है कि पृथ्वी से चंद्रमा का समान भाग दिखाई पड़ता है।

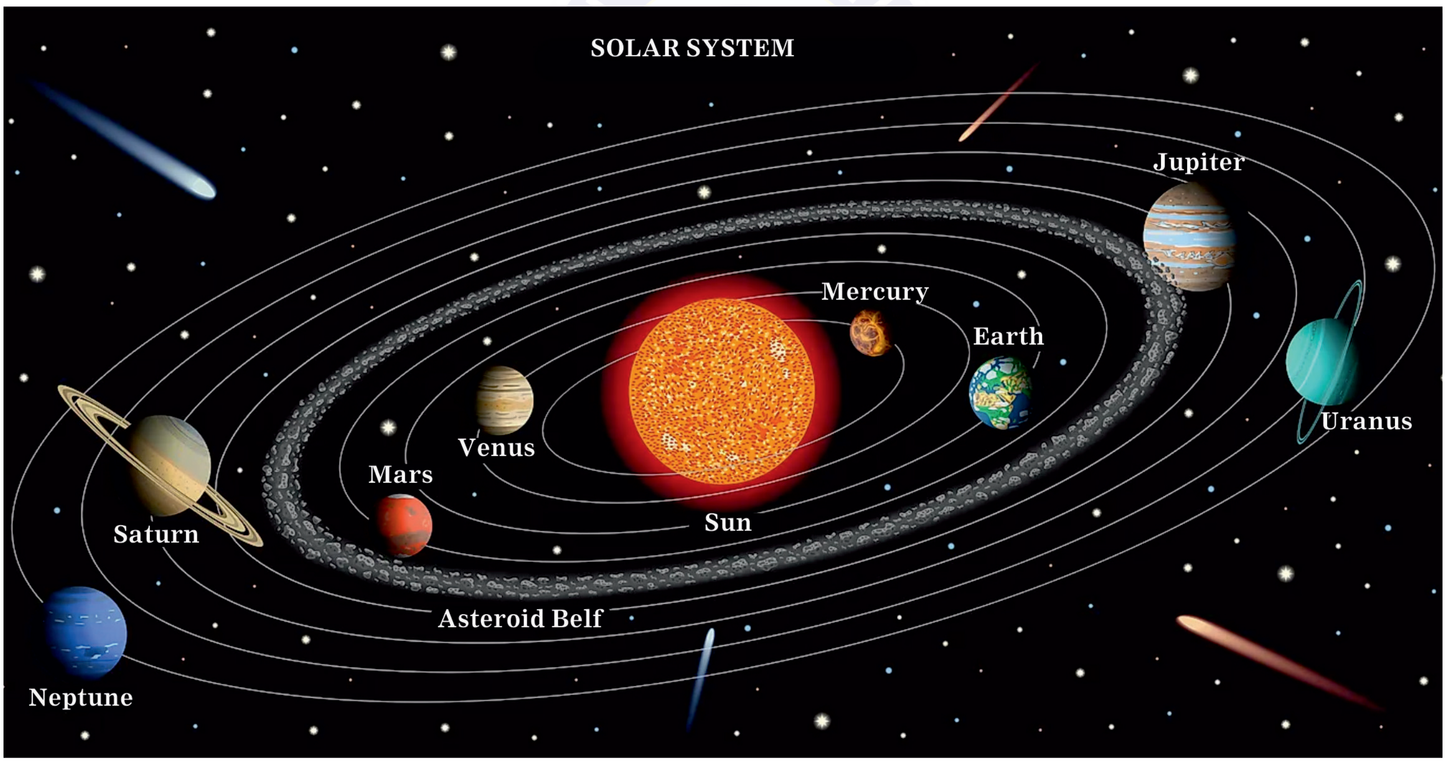

- पृथ्वी की **परिभ्रमण गति** (घूर्णन गति) के कारण दिन एवं रात, समुद्री जल धाराओं की उत्पत्ति एवं वायु की दिशा में विचलन जैसी घटनाएं होती हैं। इसकी **परिक्रमण गति** के कारण ऋतु परिवर्तन, वर्ष के विभिन्न अवधि में दिन एवं रात की लंबाई में अंतर तथा पवन पेटियों में **खिसकाव** होता है। पृथ्वी की परिभ्रमण गति (भूमध्य रेखा पर) 460 मीटर प्रति सेकेंड तथा परिक्रमण गति 30 किमी. प्रति सेकेंड (1,08,000 किमी./घण्टा) होती है। इसका अपने कक्ष तल के साथ झुकाव का कोण 66°30" है। पृथ्वी की आकृति **लहवक्ष गोलाभ** (चपटा अंडाकार) (Oblate Spheroid) अथवा **जियॉड** (Geoid) के समान है। इसका भूमध्यरेखीय व्यास 12,757 किमी. (7927 मील) तथा ध्रुवीय व्यास 12,714 किमी. (7900 मील) है।

पृथ्वी की उत्पत्ति (Origin of the Earth)

पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों व वैज्ञानिकों ने अनेक परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें से एक प्रारंभिक एवं लोकप्रिय मत जर्मन दार्शनिक इमैनुअल कान्ट (Immanuel Kant) का है।

- 1796 ई. में गणितज्ञ **लाप्लास** (Laplace) ने इसका संशोधन प्रस्तुत किया जो **'निहारिका परिकल्पना'** (Nebular Hypothesis) के नाम से जाना जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार ग्रहों का निर्माण धीमी गति से घूमते हुए पदार्थों के बादल से हुआ जोकि सूर्य की युवा अवस्था से संबद्ध थे।
- बाद में 1900 ई. में **चेम्बरलेन और मोल्टन** (Chamberlain & Moulton) ने कहा कि ब्रह्मांड में एक अन्य भ्रमणशील तारा सूर्य के नजदीक से गुजरा। इसके परिणामस्वरूप तारे के गुरुत्वाकर्षण से सूर्य की सतह से सिगार के आकार का कुछ पदार्थ निकलकर अलग हो गया। यह तारा जब सूर्य से दूर चला गया तो सूर्य की सतह से बाहर निकला हुआ यह पदार्थ सूर्य के चारों तरफ घूमने लगा और यही धीरे-धीरे संघनित होकर ग्रहों के रूप में परिवर्तित हो गया। पहले **सर जेम्स जींस** (Sir James Jeans) और बाद में **सर हेरोल्ड जैफरी** (Sir Harold Jeffrey) ने इस मत का समर्थन किया।
- यद्यपि कुछ समय बाद के तर्क सूर्य के एक और साथी तारे के होने की बात मानते हैं। ये तर्क **"द्वैतारक सिद्धांत" (Binary theories)** के नाम से जाने जाते हैं।
- 1950 ई. में रूस के **ऑटो श्मिट** (Otto Schmidt) तथा जर्मनी के **कार्ल वाइजास्कर** (Carl Weizsacker) ने निहारिका परिकल्पना (Nebular Hypothesis) में कुछ संशोधन किया, जिसमें विवरण भिन्न था। उनके विचार से सूर्य एक और निहारिका से घिरा हुआ था जो मुख्यतः हाइड्रोजन, हीलियम और धूलकण की बनी थी। इन कणों के घर्षण व टकराने (Collision) से एक चपटी तश्तरी की आकृति के बादल का निर्माण हुआ और इसी अभिवृद्धि प्रक्रम द्वारा ही ग्रहों का निर्माण हुआ।

आधुनिक सिद्धांत (Modern Theory)

आधुनिक समय में ब्रह्मांड की उत्पत्ति संबंधी सर्वमान्य सिद्धांत **'बिग बैंग सिद्धांत'** (Big Bang Theory) है। इसे **विस्तरित ब्रह्मांड परिकल्पना** (Expanding Universe Hypothesis) भी कहा जाता है।

- 1920 ई. में एडविन हब्बल (EowQin Hubble) ने प्रमाण दिये कि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है। समय बीतने के साथ आकाशगंगाएँ एक-दूसरे से दूर हो रही हैं। बिग बैंग सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड का विस्तार निम्न अवस्थाओं में हुआ है-

✓ आरंभ में वे सभी पदार्थ, जिनसे ब्रह्मांड बना है, अति छोटे गोलक (एकाकी परमाणु) के रूप में **एक ही स्थान पर स्थित थे, जिनका आयतन अत्यधिक सूक्ष्म एवं तापमान तथा घनत्व अनंत** (Infinite) था।

✓ बिग बैंग की प्रक्रिया में इस अति छोटे गोलक में भीषण विस्फोट हुआ। इस प्रकार की विस्फोट प्रक्रिया से वृहत् विस्तार हुआ। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बिग बैंग की घटना आज से 13.7 अरब वर्ष पहले हुई थी। ब्रह्मांड का विस्तार आज भी जारी है। विस्तार के कारण कुछ ऊर्जा पदार्थ में परिवर्तित हो गई। विस्फोट के बाद एक सेकेंड के अल्पांश के अंतर्गत ही वृहत् विस्तार हुआ। बिग बैंग होने के आरंभिक तीन मिनट के अन्दर ही पहले परमाणु का निर्माण हुआ।

✓ बिग बैंग परिघटना के 3 लाख वर्षों के बाद तापमान कम होकर 4500 केल्विन तक पहुँच गया और परमाणवीय पदार्थ का निर्माण हुआ और ब्रह्मांड पारदर्शी हो गया।

- ब्रह्मांड के विस्तार का अर्थ है आकाशगंगाओं के बीच की दूरी में विस्तार का होना। **हॉयल** (Hoyle) ने इसका विकल्प **'स्थिर अवस्था संकल्पना'** (Steady State Concept) के नाम से प्रस्तुत किया। इस संकल्पना के अनुसार ब्रह्मांड किसी भी समय में एक ही जैसा रहा है। यद्यपि ब्रह्मांड के विस्तार संबंधी अनेक प्रमाणों के मिलने पर वैज्ञानिक समुदाय अब ब्रह्मांड विस्तार सिद्धांत का ही पक्षधर है।

पृथ्वी से संबंधित प्रमुख शब्दावलियाँ एवं तथ्य

ग्रहों की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धांत ही पृथ्वी की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हैं क्योंकि ग्रहों एवं पृथ्वी की उत्पत्ति एक ही प्रक्रिया से हुई है।

- जर्मन दार्शनिक **इमैनुएल काण्ट** ने सर्वप्रथम 1755 ई. में न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियमों पर आधारित अपनी **'वायव्य राशि परिकल्पना'** के माध्यम से ग्रहों की उत्पत्ति के कारणों को समझाने का प्रयास किया, यद्यपि इनका मत गणित के गलत नियमों पर आधारित था।

नासा द्वारा में बृहस्पति ग्रह पर भेजे गये जूनो मिशन (5 अगस्त 2011 को प्रक्षेपण- 5 जुलाई 2016 को बृहस्पति की ध्रुवीय कक्षा में पहुंचा) से बृहस्पति ग्रह के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की उत्पत्ति संबंधी प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं।

- **ग्रहाणु अथवा प्लैनेटेसिमल (Planetesimals) परिकल्पना-** ग्रह निर्माण से पूर्व सूर्य तप्त एवं गैसपूर्ण नहीं था, वरन् ठोस तथा वर्षों से निर्मित चक्राकार एवं शीतल था। ब्रह्मांड में

घूमते हुए तारे की आकर्षण शक्ति का निर्माण सूर्य के धरातल से असंख्य छोटे-छोटे अन्य ग्रहाणुओं के मिलने से हुआ है।

- **फिलामेण्ट (Filament)**- **जेम्स जीन्स** ने अपनी **ज्वारीय परिकल्पना** के प्रतिपादन के समय यह बताया कि जब साथी तारा अपनी कक्षा में परिक्रमा करते हुए सूर्य के समीप पहुँचकर दूर निकल गया, तब उसकी ज्वारीय शक्ति के कारण सूर्य से सिगार के आकार का एक भाग टूट कर अलग हो गया, जो फिलामेण्ट था। बाद में संकुचन के बाद यही फिलामेंट विखंडित होकर ग्रहों में परिवर्तित हो गया।
- **नवतारा या नोवा (Nova)**- यह ब्रह्मांड का वह नया तारा होता है, जो कुछ समय के लिए एकाएक प्रज्वलित हो जाता है तथा अपने समीपवर्ती तारों की अपेक्षा अधिक प्रकाश उत्सर्जित करने लगता है। कुछ दिनों के पश्चात् इसकी दीप्ति समाप्त होने लगती है तथा धीरे-धीरे यह विलीन हो जाता है। इसके एकाएक प्रज्वलित होने का कारण नाभिकीय प्रतिक्रिया (Nuclear Reaction) है।

पृथ्वी की आयु (Age of the Earth)

- पृथ्वी की उत्पत्ति के समान ही इसकी आयु की ठीक-ठीक गणना करना एक दुष्कर कार्य है। आज तक इसके बारें में किसी निश्चित मत का प्रतिपादन नहीं किया जा सका है, क्योंकि इसके लिए उपर्युक्त प्रमाणों का सर्वथा अभाव रहा है।
- प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार पृथ्वी की आयु लगभग 2 अरब (200 मिलियन) वर्ष है, जो कि वर्तमान वैज्ञानिक गणनाओं से प्राप्त परिणामों से निकट तो है, किन्तु इसकी गणना का आधार कल्पनाओं पर ही आधारित है।
- खगोलीय साक्ष्यों के आधार पर पृथ्वी की आयु 4500 करोड़ वर्ष (4.5 अरब वर्ष) आकलित की गई है। जीव वैज्ञानिक साक्ष्य के अंतर्गत जीवाश्मों के आधार पर चार्ल्स डार्विन, लैमार्क व विलियम स्मिथ जैसे वैज्ञानिकों ने एक कोशिकीय अमीबा से वर्तमान जीवन के विकास के मध्य 400 करोड़ वर्ष (4 अरब वर्ष) का समय निर्धारित किया है। विभिन्न मतों के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी की आयु 2-3 अरब वर्ष है।
- पृथ्वी की यह आयु रेडियोएक्टिव पदार्थों से भी प्रमाणित होती है। पृथ्वी की आयु के सन्दर्भ में यही मत सर्वाधिक मान्य है। इस आधार पर पृथ्वी की आयु 2 से 3 अरब वर्ष के बीच मानी जाती है।

पृथ्वी का भूगर्भिक इतिहास (Geological History of the Earth)

पृथ्वी का निर्माण और वर्तमान स्वरूप कई चरणों से होकर गुजरा जिनका कालक्रमानुसार विवरण निम्न है-

- **प्री-केम्ब्रियन महाकल्प (Precambrian Era)**- इस चरण में (पृथ्वी के जन्म से लेकर 50 करोड़ वर्ष पूर्व तक) पृथ्वी ठंडी होकर गैसीय अवस्था से द्रवीभूत अवस्था में परिवर्तित हुई। थोड़ा और ठंडा होने पर बाह्य शैल का निर्माण हुआ। इसके पश्चात् जलवाष्प संघनित होकर तरल जल में परिवर्तित हो गई। इस काल के चट्टानों में जीवाश्मों का नितांत अभाव है क्योंकि परिस्थितियाँ जीवन के अनुकूल नहीं थीं। ठोस पदार्थ अपक्षयित होकर समुद्र में जमा होते गए तथा पृथ्वी की हलचलों के कारण इनका रूपान्तरण प्रारंभ हुआ। संपूर्ण प्री-केम्ब्रियन काल में आग्नेय चट्टानें ही पायी जाती है। अमेरिका के सुपीरियर झील के समीपवर्ती भाग तथा भारत में **धारवाड़, छोटा नागपुर, कुडप्पा समूह** एवं **अरावली** का विकास इसी महाकल्प में हुआ था। इस पर्वत निर्माणकारी हलचल को **चर्नियन हलचल** कहा जाता है।
- पैलियोजोइक महाकल्प (Paleozoic Era)- इस कल्प में (57 करोड़ वर्ष पूर्व से 22.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) पृथ्वी पर पहली बार अपुष्पीय वनस्पति तथा अकशेरुकी जन्तुओं का जन्म हुआ। इस काल के मध्य में कशेरुकी जन्तु (Vertebrates) भी आ चुके थे। इस कल्प को छह कालों में विभाजित किया गया है-
  - ✓ **केम्ब्रियन काल (Cambrian Period)**- इस काल के दौरान (57 करोड़ वर्ष पूर्व से 50 करोड़ वर्ष पूर्व तक) समुद्री अवसादों (Sediments) से अवसादी चट्टानों (Sedimentary Rocks) का जन्म हुआ। इन चट्टानों में प्राचीनतम जीवन के अवशेष मिलते हैं। विन्ध्याचल पर्वतमाला का निर्माण व अकशेरुकी जन्तु इसी काल में विकसित हुए।
  - ✓ **ओर्डोविसियन काल (Ordovician Period)**- इस काल में (50 करोड़ से 44 करोड़ वर्ष पूर्व) समुद्र के विस्तार से उत्तरी अमेरिका का आधा भाग जलमग्न हो गया जबकि पूर्वी अमेरिका में टैकोनियन पर्वत निर्माणकारी गतिविधियाँ प्रारंभ हुईं। समुद्र में रेंगने वाले जन्तुओं का विकास हुआ।
  - ✓ **सिल्यूरियन काल (Silurian Period)**- इस काल में (44 करोड़ से 39.5 करोड़ वर्ष पूर्व) सभी महाद्वीप पृथ्वी की केलेडोनियन हलचलों से प्रभावित हुए। वनस्पति तथा अकशेरुकी जन्तुओं का विस्तार व विकास हुआ। रीढ़ वाले जीवों का भी विकास हुआ। इसी काल में फेफड़े वाले जन्तुओं तथा मत्स्यों का विकास हुआ। इस काल में अप्लेशियन, स्कॉटलैंड व स्केण्डीनेबिया पर्वत का निर्माण हुआ।
  - ✓ **डिवोनियन काल (Devonian Period)**- इस काल में (39.5 करोड़ से 34.5 करोड़ वर्ष पूर्व) सभी महाद्वीपों पर ऊँची पर्वत श्रृंखलाएं विकसित हुईं जो पृथ्वी की केलेडोनियन गति का परिणाम थीं। इसके प्रमाण स्केन्डेनेविया, दक्षिण- पश्चिम स्कॉटलैंड, उत्तरी आयरलैंड एवं पूर्वी अमेरिका में स्पष्टतः देखे

जा सकते हैं। इसी काल में समुद्रों में प्रवालों (Corals) का निर्माण प्रारंभ हुआ तथा उभयचर (Amphibious) व कशेरुकी जन्तु (Vertebrates) अस्तित्व में आए। इस काल को मत्स्य युग कहा जाता है।

- ✓ **कार्बोनिफेरस काल (Carboniferous Period)-** इस काल में (34.5 करोड़ से 28 करोड़ वर्ष पूर्व) पृथ्वी की आर्मोरिकन हलचलों से ब्रिटेन व फ्रांस के भू-भाग सर्वाधिक प्रभावित हुए। इस काल में तापमान व आर्द्रता (Temperature and Humidity) में वृद्धि दर्ज हुई। अत्यधिक वर्षा के कारण बड़े भू-भाग दलदली क्षेत्रों में परिवर्तित हो गए। सघन वनों ने काफी बड़े भू-क्षेत्रों को घेर लिया। कुछ काल के पश्चात् ये वन जलमग्न होकर अवसादी निक्षेपों (Sedimentary Deposits) के नीचे दब गए। परिणाम-स्वरूप ये वन कोयला संस्तर में परिवर्तित हो गए। इसी कारण इस काल को कार्बोनिफेरस काल की संज्ञा दी गई है। ये कोयला संस्तर ही आज कोयला प्राप्ति के प्रमुख स्रोत हैं। सरीसृप की उत्पत्ति व प्रवाल रोधिकाओं का निर्माण इसी काल में हुआ था तथा वृक्षों के दबने से गोंडवाना क्रम की चट्टानों का निर्माण हुआ।
- ✓ **पर्मियन काल (Permian Period)-** इस काल में (28 करोड़ से 22.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) यूरोप का भू-भाग हर्सीनियन हलचलों से प्रभावित हुआ। जलवायु क्रमिक रूप से शुष्क होने लगी। समुद्र एवं स्थल पर वनस्पतियों तथा जन्तुओं की विकास यात्रा आगे बढ़ी। इस काल में कोणधारी वनों की प्रचुरता थी। इस काल में ब्लैक फॉरेस्ट, वास्जेस जैसे भ्रंश अथवा खंड पर्वत (Block Mountains) तथा स्पेनिश मेसेटा, अल्टाई व थ्यानशान का निर्माण हुआ।
- ✓ **मेसोजोइक महाकल्प (Mesozoic Era)-** इस कल्प (22.5 करोड़ से 7 करोड़ वर्ष पूर्व तक) को तीन कालों में विभाजित किया गया है। इसे सरीसृपों का युग भी कहा जाता है।
- ✓ **ट्रिआसिक काल (Triassic Period)-** ट्रिआसिक काल (22.5 करोड़ से 19.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) के अंतिम समय में पैन्जिया विभाजित होना प्रारंभ हो गया था। इसे रेंगने वाले जीवों का काल कहा जाता है।
- ✓ **जुरैसिक काल (Jurassic Period)-** इस काल में (19.5 करोड़ से 13.6 करोड़ वर्ष पूर्व तक धरातल पर रेंगने वाले रीढ़ विहीन जीवों की अधिकता थी। यह डायनासोरों का युग था।
- ✓ **क्रिटैसियस काल (Cretaceous Period)-** यह काल (13.6 करोड़ से 7 करोड़ वर्ष पूर्व तक) कोयला निर्माण की द्वितीय अवस्था के रूप में जाना जाता है। इस युग में लावा का उद्गार प्रमुख घटना है। **दक्कन ट्रैप** का निर्माण इसी काल में ज्वालामुखी क्रिया से हुआ था। इसमें एन्जिओस्पर्म पौधों का विकास प्रारंभ हो गया था। उत्तरी-पश्चिमी कनाडा, अलास्का, मैक्सिको एवं ब्रिटेन के डोवर क्षेत्र में खरियां मिट्टी का जमाव इस काल की प्रमुख विशेषता है।

सेनोजोइक महाकल्प (Cenozoic Era)

- इस महाकल्प का उद्भव आज से लगभग 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ तथा 20 लाख वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। इस महाकल्प को 2 कल्प तथा 7 युगों में विभाजित किया जाता है-

तृतीय कल्प (Tertiary Era)

- **पैलियोसीन काल (Paleocene Period)-** इस युग के (7 करोड़ से 6 करोड़ वर्ष पूर्व तक) दौरान हुई **लैमाराइड हलचल** के परिणामस्वरूप उत्तरी अमेरिका में **रॉकी पर्वतमाला** का निर्माण हुआ। **वर्तमान घोड़े** का सबसे आद्य रूप इसी युग में विकसित हुआ।
- **इयोसीन काल (Eocene Period)-** इस युग में (6 करोड़ से 3.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) भूतल पर विभिन्न दरारों के माध्यम से लावा का उद्गार हुआ। स्तनधारी प्राणियों, फलदार पेड़-पौधों तथा अनाजों की कई प्रजातियाँ विकसित हुईं। **वृहद हिमालय** का निर्माण प्रारंभ हुआ।
- **ओलिगोसीन काल (Oligocene Period)-** ओलिगोसीन काल में (3.5 करोड़ से 2.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) अल्पाइन पर्वत के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इसी युग में मानवाकार कपि अस्तित्व में आया जिनसे वर्तमान मानव का विकास हुआ।
- **मायोसीन काल (Miocene Period)-** मायोसीन काल (2.5 करोड़ से 1.2 करोड़ वर्ष पूर्व तक) अल्पाइन पर्वत निर्माणकारी गतिविधियों द्वारा सम्पूर्ण यूरोप एवं एशिया में वलनों का विकास हुआ जिनके विस्तार की दिशा पूर्व-पश्चिम थी। इसी काल में व्हेल तथा बंदरों का आविर्भाव हुआ। इस काल में **लघु व मध्य हिमालय** का निर्माण हुआ।
- **प्लियोसीन काल (Pliocene Period)-** प्लियोसीन काल (1.2 करोड़ से 20 लाख वर्ष पूर्व तक) समुद्रों के निरंतर अवसादीकरण से यूरोप, मेसोपोटामिया, उत्तरी भारत, सिंध तथा उत्तरी अमेरिका में विस्तृत मैदानों का विकास हुआ। बड़े स्तनधारियों की विभिन्न प्रजातियाँ विकसित हुईं।

नियोजोइक महाकल्प (Neozoic Era)

यह महाकल्प 20 लाख वर्ष पूर्व से वर्तमान तक माना जाता है।

क्वार्टनरी कल्प (Quaternary Era)

- **प्लीस्टोसीन काल (Pleistocene Period)-** (10 लाख से 10 हजार वर्ष पूर्व तक) इस काल तक तापमान का स्तर इतना नीचे गिर गया कि सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रीका, यूरोप, आर्कटिक और अंटार्कटिका बर्फ का एक मोटी परत से ढक गए। इसीलिए इस चरण को **हिमयुग की संज्ञा** दी गई है। इस हिमाच्छादन के फलस्वरूप वनस्पतियों व जन्तुओं के जीवन पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। स्तनधारियों का विकास बहुत तेजी से हुआ। हिमचादर की स्थिति में चार बार परिवर्तन हुआ। हिमचादर के पीछे हटने से उत्तरी अमेरिका की पांच महान झीलों का निर्माण हुआ।
- **होलोसीन काल (Holocene Period)-** इस युग में (10 हजार वर्ष से लेकर वर्तमान तक) **मानव तथा प्राकृतिक पर्यावरण के साथ इसके आपसी संबंधों का आधिपत्य रहा है।**

पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास से संबंधित प्रमुख तथ्य

- **आद्य कल्प (Azoic or Archaean Era)-** इस कल्प की चट्टानों में ग्रेनाइट तथा नीस की प्रधानता है किन्तु इसमें सोना तथा लोहा भी पाया जाता है। शैलों में जीवाश्मों का पूर्णतः अभाव पाया जाता है।
- **पुराजीवी महाकल्प (Paleozoic Era)-** इस कल्प में सर्वप्रथम पृथ्वी पर वनस्पति तथा बिना रीढ़ की हड्डी वाले जीवों की उत्पत्ति हुई। स्थल भाग पर समुद्रों का अतिक्रमण पहली बार केम्ब्रियन काल में हुआ।
- **प्राचीनतम अवसादी शैलों (Sedimentary Rocks)-** का निर्माण केम्ब्रियन काल में ही हुआ था।
- समुद्रों में उत्पन्न होने वाली घासों के प्रथम अवशेष **आर्डोविसियन काल** की चट्टानों में पाये जाते हैं।
- अप्लेशियन पर्वतमाला का निर्माण **आर्डोविसियन काल** में ही हुआ।
- रीढ़ वाले जीवों तथा मछलियों का सर्वप्रथम आविर्भाव सिल्यूरियन काल में हुआ।
- सिल्यूरियन काल को रीढ़ की हड्डी वाले जीवों का काल (Age of vertebrates) के रूप में जाना जाता है।
- डिवोनियन काल में पृथ्वी की जलवायु केवल समुद्री जीवों के ही अनुकूल थी। अतः इसे **'मत्स्य युग'** (Fish Age) के रूप में जाना जाता है।
- उभयचर जीवों (Amphibians) का विकास कार्बोनीफेरस युग की एक प्रमुख घटना है।
- ट्रियासिक काल को रेंगने वाले जीवों का काल (Age of Reptiles) कहा जाता है।
- गोण्डवाना लैंड भूखंड का विभाजन ट्रियासिक काल में ही हुआ।
- जलचर, थलचर, तथा नभचर तीनों प्रकार के जीवों का विकास **जुरैसिक काल** में माना जाता है।
- नवजीवी महाकल्प (Cenozoic Era) के प्रारम्भ में जलवायविक परिवर्तन के कारण सम्पूर्ण जीवों का विनाश हो गया तथा लाखों वर्षों के बाद पृथ्वी पर वनस्पतियों एवं जीवों का पुनः आविर्भाव हुआ।
- हिमालय पर्वतमाला तथा दक्षिण के प्रायद्वीपीय भाग के बीच स्थित जलपूर्ण घाट (द्रोणी) में अवसादों के जमाव से उत्तर भारत के विशाल मैदान की उत्पत्ति नवजीवी महाकल्प में ही हुई।
- पृथ्वी पर उड़ने वाले पक्षियों का आगमन **प्लीस्टोसीन काल** में हुआ। मानव तथा अन्य स्तनपायी जीव इसी काल में विकसित हुए।
- प्लीस्टोसीन काल में तापमान में वृद्धि के कारण हिम युग की समाप्ति हो गयी तथा विश्व का वर्तमान रूप प्राप्त हुआ जो अभी जारी है।
- वर्तमान घोड़े के प्राचीन रूप का उद्भव पैलियोसीन युग में हुआ।
- इयोसीन युग में अनेक प्रकार के स्तनधारियों, फल युक्त पौधों व धान्यों का आविर्भाव हुआ।
- ओलिगोसीन युग में ही मानव कपि (Anthropoid ape) अस्तित्व में आए।
- मायोसीन युग में व्हेल व कपि जैसे उच्च श्रेणी के स्तनधारी अस्तित्व में आए।

पृथ्वी की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांतों के प्रमाण

विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत की गयी उत्पत्ति संबंधी परिकल्पनाओं के आधार पर उसके आंतरिक भाग के विषय में निम्न तथ्य उभरकर सामने आते हैं-

- **चैम्बरलिन** ने 1905 ई. के सन्दर्भ में **ग्रहाणु परिकल्पना** प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार पृथ्वी का निर्माण ग्रहाणुओं के एकत्रीकरण से हुआ है। अतः उसके आंतरिक भाग को ठोस अवस्था में होना चाहिए।
- **जेम्स जीन्स** द्वारा 1919 में प्रतिपादित तथा 1929 में **जेफरीज** द्वारा संशोधित **ज्वारीय परिकल्पना** यह बताती है कि पृथ्वी की उत्पत्ति सूर्य द्वारा निस्सृत ज्वारीय पदार्थ के ठोस हो जाने से हुई है। अतः उसके आंतरिक भाग को तरल अवस्था में होना चाहिए।
- **लाप्लास** द्वारा 1776 ई. में कांट की **वायव्य** राशि परिकल्पना के दोषों को संश्लेषित करते हुए **निहारिका परिकल्पना** प्रस्तुत की, जिसके अनुसार पृथ्वी का आंतरिक भाग गैसीय अवस्था में होना चाहिए क्योंकि पृथ्वी की उत्पति गैस से बनी निहारिका से मानी जाती है।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना (Internal Structure of the Earth)

पृथ्वी की बाह्य स्थलाकृतियों एवं उसकी आंतरिक संरचना का घनिष्ठ संबंध भौगोलिक अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण विषय है, यद्यपि उसकी आंतरिक

संरचना का विशद अध्ययन **भूगर्भशास्त्र (Geology)** में किया जाता है। पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त करना एक कठिन कार्य है। क्योंकि चट्टानों के भीतर आसानी से नहीं देखा जा सकता है। पृथ्वी के अंदर अधिकतम 4 से 5 हजार मीटर की गहराई तक ही पाइप डाले जा सकते हैं जिससे केवल स्थान विशेष की ही चट्टानों के बारे में जानकारी प्राप्त करना संभव है। फिर भी, पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में जिन साधनों से जानकारी प्राप्त की जा सकती है, वे इस प्रकार हैं-

अप्राकृतिक साधन (Artificial Sources)

- घनत्व (Density)
- दबाव (Pressure)
- तापक्रम (Temperature)

प्राकृतिक साधन (Natural Sources) यथा-

- ज्वालामुखी के साक्ष्य (Volcanic Evidences)
- भूकंपीय साक्ष्य (Seismological Evidences)
- उल्कापिड (Meteorite)

साधन

- **अप्राकृतिक साधन (Artificial Sources)**
  - घनत्व (Density)
  - दबाव (Pressure)
  - तापमान (Temperature)
- **प्राकृतिक साधन (Natural Sources)**
  - ज्वालामुखी उद्गार (Volcanic Eruption)
  - भूकंप विज्ञान (Seismology)
  - उल्कापिंड (Meteorite)

अप्राकृतिक साधन (Unnatural Resources)

- **घनत्व (Density)**– पृथ्वी के भू-पटल का अधिकांश भाग महाद्वीपों का बना हुआ है जिसकी रचना अवसादी चट्टानों से हुई है। इसका औसत घनत्व 2.7 है। इसके नीचे आग्नेय चट्टानें कहीं-कहीं भू-पटल के ऊपर निकल आई हैं। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी का घनत्व 5.5 है। इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी के आंतरिक भागों में घनत्व अधिक है। लगभग 400 किमी. की गहराई तक घनत्व 3.5 तक ही रहता है और 2900 किमी. की गहराई पर घनत्व 5.6 तक पहुँच जाता है। यहाँ पर पृथ्वी के क्रोड (Core) की सीमा शुरू होती है। इस सीमा पर पहुँच कर घनत्व एकदम बढ़ता है और 9.7 तक पहुँच जाता है इसके बाद घनत्व एक समान गति से बढ़ता है और पृथ्वी के केन्द्र पर 11 से 12 तक बढ़ता जाता है। पृथ्वी के आंतरिक भाग में इतना अधिक घनत्व होने के संबंध में दो मत प्रस्तुत किए गए हैं। पहले मत के अनुसार आंतरिक भाग पर ऊपर स्थित चट्टानों द्वारा दबाव पड़ता है, जिससे वहाँ पर घनत्व अधिक हो जाता है। परन्तु प्रयोगशाला में शैलों पर दबाव बढ़ाकर देखा गया तो एक सीमा के बाद शैलों का घनत्व नहीं बढ़ता है। अतः पृथ्वी के आंतरिक भागों का अधिक घनत्व बाह्य दबाव के कारण नहीं है। दूसरे मत के अनुसार पृथ्वी का क्रोड ऐसी चट्टानों का बना हुआ है जिनका घनत्व अधिक है। अतः विद्वान इस संबंध में लगभग एकमत हैं कि पृथ्वी का आंतरिक भाग भारी पदार्थों का बना हुआ है। पृथ्वी का क्रोड मुख्यतः लोहा तथा निकेल का बना हुआ माना जाता है क्योंकि इन्हीं पदार्थों का घनत्व इतना अधिक है। इस मत के पक्ष में विद्वानों द्वारा दो प्रमाण दिए गए हैं।

  ✓ पृथ्वी एक महान चुम्बक (Magnet) की भांति व्यवहार करती है जिस कारण पृथ्वी के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र है। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी का आंतरिक भाग चुम्बकीय धातु लोहा तथा निकेल द्वारा ही निर्मित होना चाहिए। इनके ऊपर क्रमशः हल्की शैलें होनी चाहिए और पृथ्वी के तल पर सबसे कम घनत्व वाली चट्टानें होनी चाहिए।

  ✓ अंतरिक्ष से पृथ्वी पर गिरने वाली उल्काओं (Meteors) के अध्ययन से यह पता चलता है कि उनके निर्माण में भी लोहे तथा निकेल जैसे भारी पदार्थों की ही प्रधानता है। विद्वानों का विचार है कि पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उसकी आंतरिक संरचना उल्काओं जैसी ही है। अतः पृथ्वी के अन्दर भी लोहा तथा निकेल ही होना चाहिए। उल्काओं में अभी तक ऐसा कोई भी खनिज अथवा तत्व नहीं पाया गया जो पृथ्वी पर उपस्थित न हो। इसलिए पृथ्वी की आंतरिक संरचना के संबंध में उल्काओं से बहुत कुछ जाना जा सकता है।

- **दबाव (Pressure)**- पृथ्वी के आंतरिक भाग में किसी स्थान पर एक वर्ग सेन्टीमीटर क्षेत्रफल पर पड़ने वाले भार को दबाव कहते हैं। धरातल के नीचे ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं दबाव भी बढ़ता जाता है, फलस्वरूप घनत्व में वृद्धि होती है इसी कारण पृथ्वी के सबसे आंतरिक भाग में घनत्व अत्यधिक 11 या 12 g/cm3 पाया जाता है। वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी के केन्द्र पर दाब सर्वाधिक है।

- **तापक्रम (Temperature)**- सामान्यतया पृथ्वी के अंदर प्रवेश करने पर प्रति 32 मीटर पर 1^0C ताप की वृद्धि होती है। किन्तु इसका पता मात्र 8000 मीटर की गहराई तक ही लगाया जा सका है। यदि तापक्रम वृद्धि की इस दर को स्वीकार कर लिया जाय तो यह आकलन किया जा सकता है कि पृथ्वी के आंतरिक भाग (2,900 किमी. की गहराई) में $25,000^0C$ तापमान होना चाहिए परंतु ऐसा नहीं होता है। क्योंकि पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत में रेडियो सक्रिय तत्व होते हैं, जिनसे ऊष्मा निकलती है। गहराई के बढ़ने के साथ रेडियो सक्रिय पदार्थों की उपलब्धता में कमी होती जाती है जिससे तापमान भी कम होता जाता है।

प्राकृतिक साधन (Natural Resources)

- **ज्वालामुखी क्रिया के साक्ष्य (Volcanic Evidences)**- ज्वालामुखी उद्भेदन के समय पृथ्वी के आंतरिक भाग से गर्म तथा तरल लावा निकलकर धरातल पर प्रवाहित होता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वी के आंतरिक भाग में विशाल मैग्मा भंडार (Magma Chamber) अवस्थित है। इससे यह निष्कर्ष निकालना आसान है कि पृथ्वी के अन्दर कुछ भाग अवश्य ही द्रव अवस्था में होना चाहिए। लेकिन यहाँ यह स्पष्टीकरण भी आवश्यक है कि पृथ्वी के ऊपरी भाग में पड़ने वाला भारी दबाव आंतरिक भाग की चट्टानों को द्रव अवस्था में आने ही नहीं देगा। अतः पृथ्वी के आंतरिक भाग को ठोस ही होना चाहिए, क्योंकि अत्याधिक दबाव के कारण चट्टानों का द्रवणांक बिन्दु (Melting Point) भी बढ़ जाता है। अतएव ज्वालामुखी क्रिया के साक्ष्यों के आधार पर पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में जानकारी प्राप्त करना सरल नहीं है।

- **भूकंप विज्ञान के साक्ष्य (Seismological Evidences)**- भूकंप विज्ञान या सीस्मोलॉजी के अंतर्गत पृथ्वी की क्रस्ट में उठने वाली भूकंपीय लहरों का भूकंपमापी यंत्र (Seismogrpah) द्वारा अंकन करके उनका अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन से पृथ्वी की आंतरिक संरचना के बारे में काफी जानकारी प्राप्त की गयी है जो सम्पूर्ण भूगर्भिक भागों में अपनी प्रकृति के अनुसार भ्रमण करती है। भूकंपीय तरंगों के अध्ययन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि जिस स्थान से भूकंप का प्रारंभ होता है, उसे 'भूकंप मूल' (Focus) तथा धरातल पर जहाँ सबसे पहले भूकंप का अनुभव किया जाता है, उसे अधिकेन्द्र (Epicenter) कहा जाता है। अधिकेन्द्र भूकंप मूल के ठीक ऊपर लम्बवत् धरातल पर स्थित होता है। भूकंप के समय उत्पन्न होने वाली लहरों या तरंगों को तीन प्रमुख श्रेणियों में रखा जाता है। जो निम्नलिखित हैं-

भूकंपों के समय उत्पन्न होने वाली लहरें/तरंगें

लहरें	विशेषताएँ
प्राथमिक तरंगें (P तरंगें)	ये तरंगें ध्वनि तरंगों के समान होती हैं तथा ठोस, द्रव एवं गैस तीनों माध्यमों से गुजर सकती हैं। ये सर्वाधिक तीव्र गति से चलने वाली तरंगें हैं। धरातल पर सर्वप्रथम यहीं तरंग पहुँचती हैं।
द्वितीयक तरंगें (S तरंगें)	इन तरंगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये तरल माध्यम से संचरण करने में असमर्थ होती हैं और केवल ठोस माध्यम से ही गुजर सकती है।
धरातलीय तरंगें (L तरंगें)	ये दीर्घ अवधि वाली तरंगें हैं जो गहराई पर विलुप्त हो जाती है। इसमें कम्पन की गति सर्वाधिक होती है। ये तरंगें आड़े-तिरछे (Zigzag) धक्का देने के कारण सर्वाधिक विनाशकारी होती हैं।

- **प्राथमिक अथवा लम्बात्मक लहरें (Primary (P) or Longitudinal Waves)**- सर्वाधिक तीव्र गति से चलने वाली ये लहरें ध्वनि तंरगों की भाँति एक सीधी रेखा में चलती हैं। इसमें पदार्थों के कण गति की दिशा में ही आन्दोलित होते हैं। ये लहरें ठोस भागों में अत्यधिक तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं। इन लहरों को P से सूचित किया जाता है तथा इन्हें अनुदैर्ध्य तरंगें भी कहते हैं। धरातल पर सर्वप्रथम यही तरंग पहुँचती हैं।
- **गौण अथवा आड़ी लहरें (Secondary (S) or Transverse or Distortional Waves)**- इनकी प्रकृति जल तथा प्रकाश तरंगों से मिलती-जुलती है। इनमें कणों की गति लहर की दिशा के **समकोण** पर काटती है। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि ये प्रायः द्रव भाग में लुप्त हो जाती हैं। S से सूचित होने वाली इन तरंगों को अनुप्रस्थ तरंगें भी कहा जाता है।
- **धरातलीय लहरें (Surface Waves)**- ये लहरें पृथ्वी के ऊपरी भाग पर चलती हैं। इन्हीं लहरों से पृथ्वी के ऊपरी भाग पर अत्यधिक विनाश होता है। ये लहरें अन्य लहरों की अपेक्षा सबसे लंबा मार्ग तय करती हैं। इसमें कम्पन की गति सर्वाधिक होती हैं तथा साथ ही ये तरंगें आड़े-तिरछे (Zig Zag) धक्का देती है। अतः ये तरंगें **सर्वाधिक विनाशकारी** होती हैं। इनकी गति सबसे कम होती है तथा इन्हें Long Period or L Waves भी कहा जाता है। प्राथमिक (P), गौण (S) तथा धरातलीय (L) लहरों का अंकन **सीस्मोग्राफ** के माध्यम से किया जाता है। सीस्मोग्राफ इन तीनों प्रकार की तरंगों को रेखांकित करता है। प्रथम दोनों प्रकार की तरंगों की गति गहराई के साथ-साथ बढ़ती जाती है। हालांकि गति में यह वृद्धि केवल 2,900 किमी. की गहराई तक ही सीमित होती है उसके बाद S तरंगें लुप्त हो जाती हैं।

जबकि P तरंगों की गति कम हो जाती है। L तरंगें पृथ्वी के धरातल पर चलती हैं। जबकि S तरंगें तरल अवस्था वाली चट्टानों के माध्यम से नहीं गुजर सकती, ये सिर्फ ठोस माध्यम से ही गुजर सकती हैं। इन तरंगों के अध्ययन से यह पता चलता है कि पृथ्वी के धात्विक क्रोड की प्रकृति तरल पदार्थ जैसी है। इसके विपरीत 2900 किमी. की गहराई तक पृथ्वी की चट्टानों का स्वभाव ठोस पदार्थ के समान होता है। भूकंप के अधिकेन्द्र पर सबसे पहले अनुभव किया जाने वाला कम्पन लघु या कमजोर कम्पन होता है, जिसे प्राथमिक कम्पन (Primary Termor) के रूप में जाना जाता है। इसके कुछ समय पश्चात् दूसरा एवं अपेक्षाकृत अधिक शाक्तिशाली कम्पन का अनुभव किया जाता है। तत्पश्चात् मुख्य कम्पन (Mains Termor) आता है। इन्हीं तीनों कम्पनों को P, S तथा L लहरों का प्रदर्शक माना जाता है।

- **उल्कापिंड के साक्ष्य (Meteorite)**- वर्तमान में पृथ्वी पर कई बड़े उल्कापिंड हैं, जो इसी युग में पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण के कारण यहाँ आ गिरे थे। हालांकि इन पिंडों की बाह्य परत तो धीरे-धीरे क्षरण के कारण नष्ट हो गई है, किन्तु उनका आंतरिक कोर बचा हुआ है। इन पिंडों के कोर के आधार पर भी पृथ्वी के आंतरिक भाग की कल्पना की जाती है।

पृथ्वी के आंतरिक भाग का रासायनिक संगठन

पृथ्वी के आंतरिक भाग की रासायनिक संरचना एवं उसके संगठन के बारे में भी विभिन्न विद्वानों के विचार परस्पर भिन्न हैं। फिर भी भौगोलिक जगत में एडवर्ड स्वेस (EowQard Suess) के विचार काफी हद तक मान्य हैं। उन्होंने यह बताया कि भूपटल का सबसे ऊपरी भाग परतदार अवसादी शैलों का बना है, जिसकी गहराई तथा घनत्व दोनों ही बहुत कम हैं। इसकी संरचना में विशेष रूप से सिलिकेट से बनी रवेदार शैल का योगदान है, जिसमें फेल्सपार तथा अभ्रक (Mica) जैसे खनिज बड़ी मात्र पाये जाते हैं। इस परत के नीचे एडवर्ड स्वेस महोदय ने निम्न तीन परतों की उपस्थिति स्वीकार की है-

- **सियाल (Sial)**- अवसादी शैलों के नीचे सियाल की परत पाई जाती है। इसकी रचना सिलिका (Silica=Si) तथा एल्युमीनियम (Aluminium = Al) से हुई है जिस कारण इसे Sial (Si+Al) कहा जाता है। इस परत की औसत गहराई 50 से 300 किमी. तथा घनत्व 2.75 से 2.90 तक है। यह परत ग्रेनाइट शैलों की है और इसमें तेजाबी (Acid) अंश की प्रधानता है। इसमें पौटेशियम, सोडियम तथा एल्युमीनियम के सिलिकेट अधिक हैं। महाद्वीपों का निर्माण सियाल से ही हुआ है। सियाल अपने नीचे वाली परत सीमा से हल्का है इसलिए उसके ऊपर तैयार रहता है।
- **सीमा (Sima)**- सियाल के नीचे दूसरी परत सीमा की है। इसमें सिलिका (Silica=Si) तथा मैग्नीशियम (Magnesium = Ma) की अधिकता है। इस परत का घनत्व 2.90 से 4.75 है। इसकी गहराई 1000 से 2900 किमी. तक है। यह परत बेसाल्ट की शैलों की है जिसमें क्षारीय अंश की प्रधानता है। इसमें मैग्नीशियम, केल्शियम तथा लोहे के सिलिकेट अधिक हैं। ज्वालामुखी के उद्भेदों से सीमा की शैलें लावा के रूप में पृथ्वी पर आ जाती हैं।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना

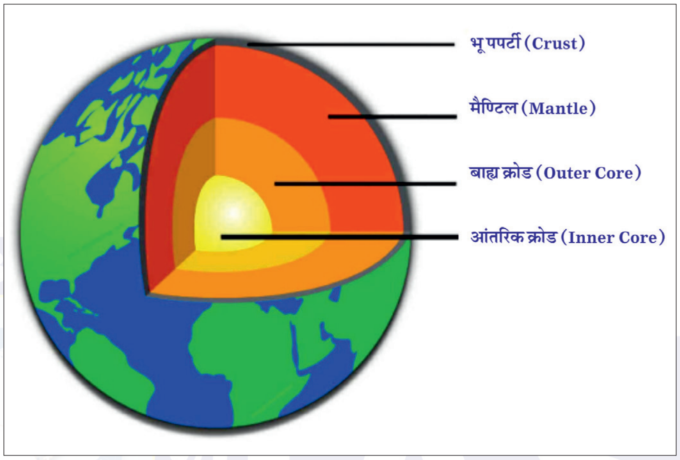

- **निफे (Nife)**- सीमा परत के नीचे पृथ्वी की तीसरी तथा अंतिम परत पाई जाती है। इसमें निकेल (Nickil=Ni) तथा लोहा अर्थात् फेरस (Ferrous=Fe) की प्रधानता है। इसलिए इस परत का नाम निफे (Ni+fe) रखा गया है। यह 2900 किमी. की गहराई से पृथ्वी के केन्द्र तक विस्तृत है। इसका घनत्व 11 से 12 तक है। भू-गर्भ के केन्द्रीय भाग में निकेल तथा लोहा जैसे पदार्थों की उपस्थिति से निम्नलिखित बातें प्रमाणित होती हैं-
  - ✓ यह पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति को प्रमाणित करता है।
  - ✓ यह पृथ्वी की स्थिरता अथवा दृढ़ता (Rigidity) को प्रमाणित करता है।
  - ✓ पृथ्वी का आंतरिक भाग धूमकेतुओं के संगठन से मेल खाता है।

पृथ्वी के आंतरिक भाग में स्थित विभिन्न मंडल

- **स्थलमंडल (Lithosphere)**- ग्रेनाइट चट्टानों की बहुलता वाला यह मंडल धरातल से 100 किमी. नीचे तक पाया जाता है। इसका घनत्व 3.5 है। इसकी संरचना में सिलिका एवं एल्युमीनियम जैसे धातुओं की अधिकता है।
- **दुर्बलतामंडल (Asthenosphere)**- स्थलमंडल के नीचे दुर्बलतामंडल स्थित है, इसमें कठोरता तथा दृढ़ता नहीं है। इसकी मोटाई 360 किमी. है।

- **मध्यस्थमंडल (Mesosphere)**- यह दुर्बलतामंडल के नीचे स्थित है तथा अपेक्षाकृत कुछ कठोर है। इसकी मोटाई 2400 km है।
- **केन्द्रमंडल (Centrosphere)**- यह मध्यस्थमंडल के नीचे अवस्थित है। इसका घनत्व व दृढ़ता सर्वाधिक है। इसे बैरीस्फीयर (Barysphere) भी कहते हैं।

पृथ्वी की आंतरिक संरचना से संबंधित अभिनव मत

पृथ्वी की आंतरिक संरचना से सम्बन्धित अभिनव मत के अनुसार इसके आंतरिक भाग को तीन वृहत् मण्डलों में विभाजित किया जा सकता है, जिसका आधार वर्तमान भूकंपीय लहरों की गति या उनके भ्रमण-पथ में आने वाले परिवर्तनों का वैज्ञानिक अध्ययन एवं विश्लेषण हैं।

- **ये तीनमंडल इस प्रकार हैं-**
  - ✓ क्रस्ट (भू-पर्पटी) (Crust)
  - ✓ मेंटल (Mantle)
  - ✓ क्रोड (Core)

- **भू-पर्पटी (Earth Crust)**- यह ठोस पृथ्वी का सबसे बाहरी भाग है। इसकी मोटाई महाद्वीपों व महासागरों के नीचे अलग-अलग है। महासागरों के नीचे इसकी औसत मोटाई 5 किमी. है जबकि महाद्वीपों के नीचे यह 30 किमी- तक, मुख्य पर्वतीय श्रृंखलाओं के क्षेत्र में यह 70 से 100 किमी. मोटी है। भूकंपीय लहरों की गति में अन्तर के आधार पर क्रस्ट को भी दो उपविभागों- ऊपरी क्रस्ट तथा निचली क्रस्ट में विभक्त किया जाता है। ऊपरी क्रस्ट में P लहर की गति 6.1 किमी. प्रति सेकेंड तथा निचली क्रस्ट में 6.9 किमी. प्रति सेकेंड होती है। ऊपरी क्रस्ट का घनत्व 2.8 तथा निचली क्रस्ट का 3.0 है। घनत्व में यह अंतर दबाव के कारण माना जाता है। ऊपरी क्रस्ट एवं निचले क्रस्ट के बीच घनत्व संबंधी यह असंबद्धता **'कोनराड असंबद्धता'** कहलाती है।
- **प्रावार अथवा मेंटल (Mantle)**- यह पृथ्वी का सबसे बड़ा भाग है जो पृथ्वी के 83% आयतन तथा 67% द्रव्यमान में व्याप्त है। यह विभिन्न असम्बद्धताओं द्वारा कई भागों में बंटा हुआ है। मुख्य असातत्य क्रमशः 410, 950 तथा 2700 किमी. की गहराई पर स्थित हैं। भौतिक लक्षणों के आधार पर इसे दो भागों में बाँटा गया है-
  - ✓ ऊपरी मेंटल जो महोरोविसिस असंबद्धता से 950 किमी. की गहराई तक विस्तृत है। इसे संक्षेप में "मोहो" (Moho) भी कहते हैं।
  - ✓ निचली मेंटल जो 950 किमी. की गहराई से वीशर्ट-गुटेनबर्ग असंबद्धता (2900 किमी. गहराई) तक विस्तृत है।

भू-पर्पटी में प्रमुख तत्वों की मात्रा

तत्व	मात्र	तत्व	मात्र
ऑक्सीजन (O_2)	46.80%	केल्शियम (Ca)	3.6%
सिलिकॉन (Si)	27.70%	सोडियम (Na)	2.8%
एल्युमिनियम (AI)	8.0%	पोटैशियम (K)	2.5%
लोहा (Fe)	5.0%	मैग्नीशियम (Mg)	2.0%

पृथ्वी में प्रमुख तत्वों की मात्र

तत्व	मात्र	तत्व	मात्रा
लोहा (Fe)	35.00%	मैग्नीशियम (Mg)	13.02%
ऑक्सीजन (O_2)	30.00%	निकेल (Ni)	2.40%
सिलिकॉन (Si)	15-00»	सल्फर (SO_4)	1.9%
लोहा (Fe)	5.0%	मैग्नीशियम (Mg)	2.0%

भू-गर्भ की प्रमुख असंबद्धताएँ

संबद्धताएँ	स्थिति	गहराई किमी.
कोनार्ड	आंतरिक एवं बाह्य क्रस्ट	
मोहो असंबद्धता	भूपटल एवं मेंटल के मध्य	30-35
रेपेटी असंबद्धता	बाह्य एवं आंतरिक मेंटल के मध्य	700
गुटेनवर्ग वाइचर्ट असंबद्धता	मेंटल एवं कोर के मध्य	2900
लेहमेन असंबद्धता	बाह्य एवं आंतरिक कोर के मध्य	5150

- **अन्तरतम या क्रोड (Core)**- यह पृथ्वी का सबसे आंतरिक भाग है, जो मेंटल के नीचे पृथ्वी के केन्द्र तक पाया जाता है। इसे बेरीस्फीयर (Barysphere) भी कहा जाता है। इसकी गहराई 2900 किमी. से 6371 किमी. तक है। इसका घनत्व यद्यपि मेंटल की अपेक्षा दो गुना अधिक है। किन्तु यह पृथ्वी के आयतन का मात्रा 16% तथा द्रव्यमान का 32% ही अपने में समाहित किये होता है। कोर का अधिकतम तापमान 5500°C एवं घनत्व 13 है। इसके दो उप विभाग हैं-
- **बाह्य अन्तरतम (Outer Core)**- इसका विस्तार 2,900 किमी. से 5510 किमी. के बीच है। इसमें भूकंप की द्वितीयक लहरें या S-Waves प्रवेश नहीं कर पातीं। इससे यह प्रमाणित होता है कि यह भाग द्रव अवस्था में हैं।
- **आंतरिक अन्तरतम (Inner Core)**- इसकी गहराई 5510 किमी. से 6371 किमी. (पृथ्वी के केन्द्र) तक है। इसका घनत्व सर्वाधिक

अर्थात 13.6 है। इसमें भूकंप की P लहरों की गति 11.23 किमी. प्रति सेकेंड हो जाती है। यह भाग ठोस होता है। पृथ्वी के सम्पूर्ण अंतरतम भाग की संरचना में निकेल तथा फेरस की अधिकता है, जिसमें 80% फेरस या लोहा तथा 20% निकेल पाया जाता है।

- **असंबद्धता (Discontinuty)**- पृथ्वी की आंतरिक संरचना का वह संक्रमण क्षेत्र जहाँ दो भिन्न-भिन्न परतों यथा क्रस्ट व मेंटल अथवा मेंटल व कोर दोनों के सामान्य गुण मिलते हैं, असंबद्धता कहलाता है।
- **एस्थेनोस्फीयर**- मेंटल के ऊपरी भाग को एस्थेनोस्फीयर कहा जाता है। इसका विस्तार 400 किमी. तक आंका गया है। ज्वालामुखी उद्‌गार के दौरान जो मैग्मा धरातल पर पहुंचता है उसका मुख्य स्रोत यही है।

पृथ्वी के आंतरिक भाग में तापमान और दबाव

पृथ्वी के आंतरिक भाग का तापमान अधिक है। पृथ्वी पर मिलने वाले गर्म जल में झरने और ज्वालामुखी विस्फोट इस बात के प्रमाण हैं। पृथ्वी के अंदर तापमान में वृद्धि मूलरूप से आंतरिक शक्तियों, रासायनिक प्रतिक्रियाओं, रेडियोधर्मी पदार्थों के कारण होती है। धरातल से हम जैसे-जैसे नीचे की ओर जाते हैं तापमान में क्रमशः वृद्धि होती जाती है। तापमान में होने वाले इस वृद्धि की औसत दर प्रत्येक 32 किमी. की गहराई पर 1^0C सेल्शियस है। लेकिन तापमान में वृद्धि की यह दर एक निश्चित सीमा तक ही मिलती है। इस सीमा के बाद गइराई के साथ-साथ तापमान में वृद्धि दर भी घटती जाती है। यह प्रत्येक गहराई पर एक समान भी नहीं रहती। धरातल से लगभग 100 किमी. की गहराई तक 12^0C से प्रति किमी. की दर से उसके नीचे 300 किमी. तक 2^0C से प्रति किमी. की दर से और उसके नीचे 1^0C से प्रति किमी. दर से बढ़ती है।

कल्प	आयु (वर्ष पूर्व)	पृथ्वी पर जीवन का विकास	टिप्पणी
सीनोजोइक कल्प चतुर्थक कल्प			
होलोसीन युग	10,000	जानवरों के शिकार तथा पशुपालन का युग, कृषि विकास, धातुओं का और अन्य खनिजों का उपयोग।	कृषि का विकास
प्लीस्टोसीन युग	2 मिलियन	आधुनिक मानव का विकास इस युग से पहले के बड़े विशालकाय जीवों का अंत।	मानव का विकास
टर्शियरी कल्प			
प्लायोसीन युग	5 मिलियन	समुद्री जीवों, पक्षी एवं जीव जंतुओं का उनके आधुनिक स्वरूप में विकास और आदि मानव का उदय।	घोड़े
मायोसीन युग	24 मिलियन	अफ्रीका और एशिया में पूंछहीन नर वानर, फल वाले पौधों और वृक्षों का विकास आज की तरह हो गया।	पूंछहीन नर वानर
ओलिगोसीन युग	38 मिलियन	बड़े जानवरों का अंत, गैंडे, कुत्ता, ऊंट, घोड़े, हाथी जैसे जानवर अस्तिव में आए।	पहले घोड़े
इयोसीन युग	55 मिलियन	मछलियां, छोटे रेंगने वाले जीव-जंतु और व्हेल अस्तित्व में आए।	घास
पैलियोसीन युग	63 मिलियन	फूल देने वाले पौधों, रेंगने वाले जीव-जन्तुओं तथा स्तनधारियों आदि का विकास हुआ।	छोटे स्तनपायी
मीसोजोइक कल्प			
क्रिटैशियस	138 मिलियन	फूल वाले पौधों की उत्पत्ति, शक इस युग के अन्त तक डाइनासोर खत्म हो चुके थे।	फूल वाले पौधे
जुरैसिक कल्प	205 मिलियन	शंकुधारी वृक्षों का विकास, इस अवधि में डाइनासोर का आकार अधिकतम बड़ा हो गया था। छोटे स्तनपायी प्राणी दिखाई दिये। पक्षियों की उत्पत्ति।	पक्षी
ट्रियासिक कल्प	240 मिलियन	शंकुधारी पौधों की उत्पत्ति। आज की तरह दिखने वाली मछलियां, समुद्री कछुए, स्तनपायी प्राणी, डाइनासोर दिखाई दिये।	पहले घोड़े

पुराजीवी कल्प			
पर्मियन कल्प	290 मिलियन	शंकुधारी पेड़, मछलियां तथा कई रेंगने वाले जीव अस्तित्व में आए।	बीज वाले पौधे तथा वृक्ष रेंगने वाले जीव
कार्बोनी फेरस कल्प	330 मिलियन	शल्क वाले वृक्ष, फर्न, मछलियां तथा उभयचर अस्तित्व में आए। प्रथम रेंगने वाले जीवों का विकास। वनों में अनेक प्रकार के कीट आदि। कोयले का निर्माण।	
उत्तर कार्बनी- फेरस कल्प	360 मिलियन	घोंघे, मछलियाँ, तथा उभयचरों का विकास, प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति। ट्रिलोबाइट का विनाश।	उभयचर
पूर्व कार्बनी फेरस कल्प	410 मिलियन	दलदलों में वनों का विकास। नदियों तथा झीलों आदि में मछलियां। उभयचरों तथा कीट पतंगों की उत्पत्ति।	मछलियाँ
डिवोनियन कल्प	435 मिलियन	स्पोर वाले पौधों की उत्पत्ति। प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति। ट्रिलोबाइट तथा घोंघो की बहुतायत।	प्रवाल
सिल्यूरियन कल्प	550 मिलियन	ट्रिलोबाइट, घोंघे तथा प्रवाल उपस्थित थे। ग्रेप्टोलाइट नामक छोटे जीव भी विद्यमान थे।	ट्रिलोबाइट
ओर्डोविसियन कल्प	570 मिलियन (लगभग)	प्रथम बार अनेक जीवाश्म दिखाई पडे.। कवच (खोल) वाले जीव तथा कुछ घोंघे विद्यमान थे। बिना जबड़े वाली मछलियां अस्तित्व में आईं।	
केम्ब्रियन कल्प	4.5 बिलियन (लगभग)	प्रवाल, जैली फिश तथा कृमि समुद्र में लगभग 1100 मिलियन वर्ष पूर्व विकसित हुए जबकि बैक्टीरिया लगभग 3-5 बिलियन वर्ष पूर्व उपस्थित थे। इससे पूर्व किसी भी प्रकार के जीवन की संभावना नहीं।	बैक्टीरिया
पूर्व केम्ब्रियन कल्प	-	-	-

पृथ्वीः एक नजर में

- ओ-श्मिड के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति गैसों व धूल कणों से हुई है।
- पृथ्वी की आयु ज्ञात करने के लिए यूरेनियम डेटिंग विधि का प्रयोग किया जाता है।
- सर्वप्रथम अरस्तु ने कहा था कि पृथ्वी गोलाकार है।
- कॉपरनिकस ने कहा था कि पृथ्वी ब्रह्मांड का केन्द्र बिन्दु नहीं है व यह सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती है न कि सूर्य पृथ्वी का।
- पारिस्थितिकी के कारण अर्थात् एक जीवधारी के रूप में पृथ्वी को ग्रीन प्लनेट कहा जाता है।
- पृथ्वी की आकृति भू-गोलाभ (Geoid) है।
- पृथ्वी शुक्र व मंगल के बीच स्थित है। यह सूर्य से दूरस्थ तीसरा तथा सौरमंडल का पांचवां सबसे बड़ा ग्रह है।
- पृथ्वी के सबसे निकटतम ग्रह शुक्र है। इसके बाद बुध, मंगल, बृहस्पति व शनि का स्थान आता है।
- ग्रहों में पृथ्वी का औसत घनत्व सर्वाधिक है।
- पृथ्वी की परिभ्रमण गति 107162 किमी./घंटा तथा परिक्रमण गति 1610 किमी./घंटा है।
- 1920 ई. में एडविन हब्बल ने प्रमाण दिए कि ब्रह्मांड का विस्तार हो रहा है। समय बीतने के साथ आकाशगंगाएं एक-दूसरे से दूर हो रही हैं।
- खगोलीय साक्ष्यों के आधार पर पृथ्वी की आयु लगभग 4.5 अरब वर्ष निर्धारित की गई है।
- पैलियोजोइक कल्प में अकशेरुकी (Invertebrates) जन्तुओं का जन्म हुआ।
- सिल्यूरियन काल में रीढ़ वाले जीवों (Vertebrates) का विकास हुआ। इसी काल में फेफड़े वाले जन्तुओं तथा मत्स्यों का विकास हुआ।
- कार्बोनिफेरस काल के कोयला संस्तर ही आज कोयला प्राप्ति के प्रमुख स्रोत है।
- जुरासिक काल डायनासोरों का युग था।
- क्रिटेसियस काल में दक्कन ट्रैप का निर्माण हुआ। इस काल में एन्जियोर्स्पमी पौधों का विकास आरंभ हो गया था।
- प्लीयोसीन काल में बड़े स्तनधारियों की विभिन्न प्रजातियाँ विकसित हुईं।
- सामान्यतया पृथ्वी के सतह से नीचे जाने पर प्रति 32 मीटर पर 1^0C ताप की वृद्धि होती है।
- जिस स्थान से भूकंप का प्रारंभ होता है उसे भूकंप मूल (Focus) तथा धरातल पर जहाँ सबसे पहले भूकंप का अनुभव होता है, उसे अधिकेन्द्र कहा जाता है।
- सर्वाधिक तीव्र गति से चलने वाली भूकंपीय तरंग P तरंग या प्राथमिक या लम्बात्मक तरंगें हैं जो ठोस, द्रव तथा गैस, तीनों अवस्थाओं से होकर गुजर जाती हैं।

- धरातल पर सर्वप्रथम P तरंगें ही पहुंचती हैं।
- S से सूचित होने वाली तरंगों को अनुप्रस्थ तरंगें कहते हैं। ये मात्र ठोस पदार्थों से होकर गुजर सकती हैं।
- धरातलीय तरंगें पृथ्वी की सतह पर सर्वाधिक विनाश करती हैं।
- P, S तथा L तरंगों का अंकन सीस्मोग्राफ के माध्यम से किया जाता है।
- पृथ्वी के सबसे आंतरिक भाग में निकेल तथा आयरन प्रचुरता से पाए जाते हैं।
- पृथ्वी में प्रमुख तत्वों की मात्र के अनुसार लोहा (35%), ऑक्सीजन (30.0%), सिलिकॉन (15.00%), मैग्नीशियम (13.02%) प्रमुख हैं।
- भूपर्पटी में प्रमुख तत्वों की मात्र के अनुसार ऑक्सीजन (46.8%), सिलिकॉन (27.00%), एल्युमीनियम (8.0%) तथा लोहा (5.07%) प्रमुख हैं।
- पृथ्वी के सम्पूर्ण अंतरतम की संरचना में निकेल तथा फेरस की अधिकता है, जिसमें 80% फेरस या लोहा तथा 20% निकेल पाया जाता है।

स्व कार्य हेतु

KGS KHAN GLOBAL STUDIES IAS Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

भूपटल पर परिवर्तन लाने वाले बाह्य बल
(External Forces that Brings About Changes in the Earth's Crust)

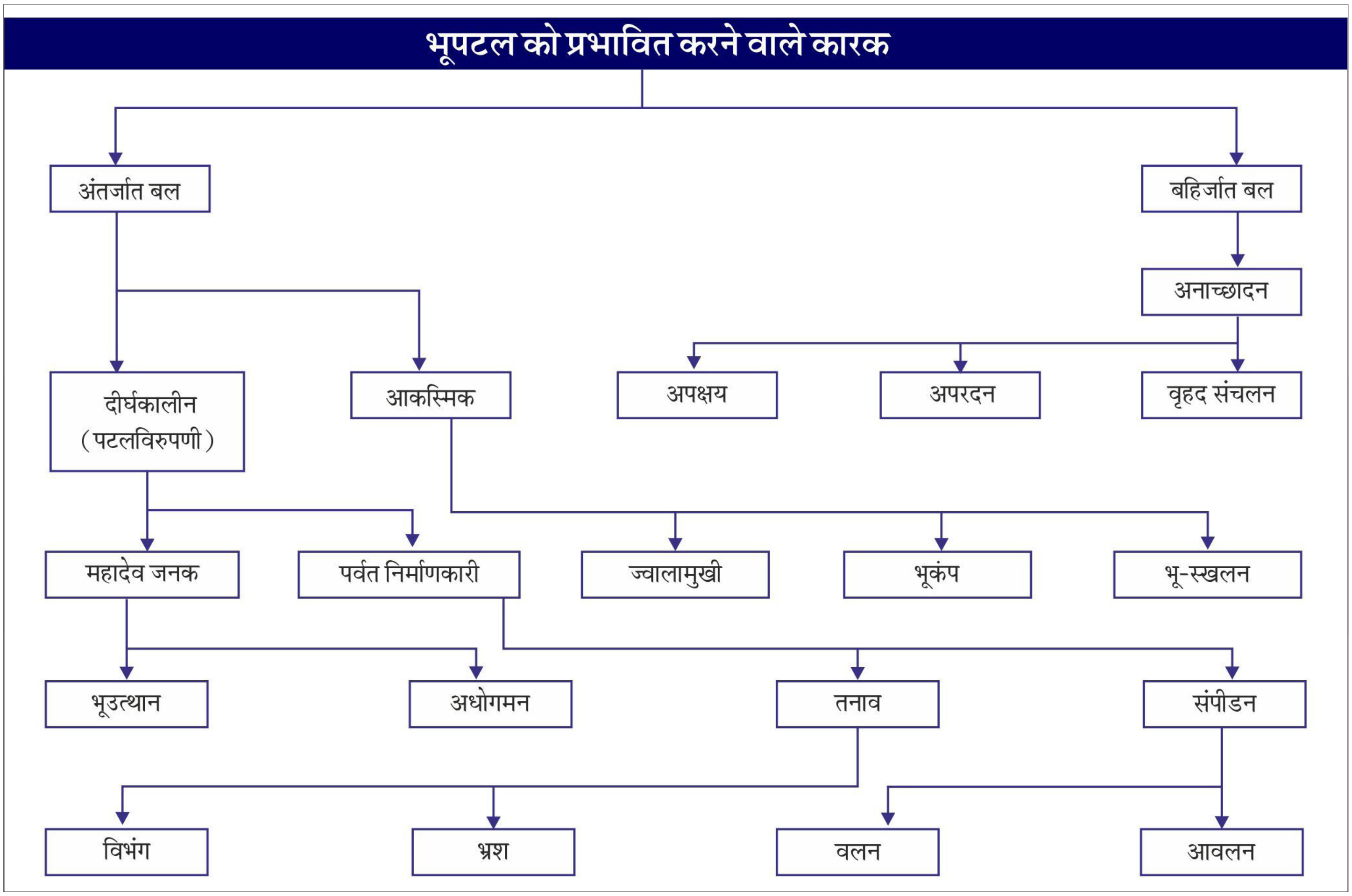

परिचय (Introduction)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। भूपटल भी इस नियम का अपवाद नहीं है। भूपटल पर सदैव दो प्रकार के बल क्रियाशील रहते हैं प्रथम बल निरन्तर विभिन्नताएँ उत्पन्न करता रहता है जिसे अंतर्जात बल (Endogenetic Force) कहा जाता है, जबकि द्वितीय बल सदैव धरातल पर समानता स्थापित करने में लगा रहता है, जिसे बहिर्जात बल (Exogenetic Force) कहा जाता है।

- इस प्रकार स्पष्ट है कि धरातल पर दो प्रकार के बल हैं- 1. अंतर्जात बल और 2. बहिर्जात बल- ये एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हुए सदैव गतिशील रहते हैं।

अंतर्जात बल (Endogenetic Force)

यह पृथ्वी के आंतरिक भाग से उत्पन्न होने वाला बल है, जो दो प्रकार के संचलनों (Movements) को जन्म देता है-

- क्षैतिज संचलन (Horizontal Movement)
- लम्बवत संचलन (Vertical Movement)।

- इन संचलनों के द्वारा भूपटल पर विभिन्न प्रकार की विषमताओं एवं उच्चावचों (Relief Featurers) जैसे पर्वत, पठार, मैदान, घाटी आदि का निर्माण होता है।

- पृथ्वी के आंतरिक भागों में क्रियाशील इन बलों के परिणामस्वरूप इनकी बाह्य परत में हलचलें पैदा होती हैं, जिसे पृथ्वी की हलचलें कहते हैं। बल की तीव्रता के आधार पर इन्हें दो भागों में बाँटा जाता है-
- **आकस्मिक संचलन (Sudden Movement)-** इस बल से भूपटल पर ऐसी आकस्मिक घटनाओं का आगमन होता है जो विनाशकारी परिणाम वाली होती हैं। इसके प्रमुख उदाहरण हैं- भूकंप, भूस्खलन, हिमस्खलन तथा ज्वालामुखी आदि।
- **पटल विरूपणी संचलन (Deartrophic Movement)-** इस बल से पृथ्वी पर बड़ी-बड़ी भू-आकृतियों का निर्माण होता है। पटल विरूपण की लबंवत गतियों के प्रभाव से पृथ्वी पर सागरों का क्षेत्रीय प्रभाव या अतिक्रमण और उनके पीछे हटने की घटना घटित होती है। मुख्यतः मंद गति से बनने वाली भू-आकृतियों को इसके अंतर्गत रखा जाता है। क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है:-
- **महादेशीय संचलन (Epierogenetic Movement)-** इस संचलन में महाद्वीपीय भागों का निर्माण एवं उसमें उत्थान, निर्गमन (Exodus) तथा निमज्जन (Submerging) की क्रिया घटित होती है। जब महाद्वीपीय भाग या उसका कोई क्षेत्र अपनी सतह से ऊपर उठ जाता है। तब उस पर लगने वाले बल को उपरिमुखी संचलन (Upward Movement) कहते हैं तथा ऊपर उठने की क्रिया, उभार (Upliftment) के नाम से जानी जाती है।
- इसके विपरीत, जब महाद्वीपीय भागों में धँसाव हो जाता है तो उस पर क्रियाशील बल को अधोमुखी संचलन (Downward Movement) तथा धँसाव के दूसरे रूप में स्थलखण्डों का सागरीय जल के नीचे निमज्जन (Submergence) हो जाता है। यह क्रिया तटीय या सागरीय भागों में ही घटित होती है।

महादेशीय संचलन का उदाहरण

भारत का पश्चिमी तट निमज्जित तट का उदाहरण है जहाँ मग्नतट चौरस है किन्तु मालाबार इसका अपवाद है जो कि एक उत्थित तट है जबकि पूर्वी तट भी उत्थित तट का ही उदाहरण है, हालाँकि तिरुनेलवेली के पास निमज्जित तटीय भाग प्राप्त होता है। मग्नतट का चौरस होना महादेश जनक बल का परिचायक है।

पर्वतीय संचलन (Orogenic Movement)

पर्वतीय संचलन (Orogenetic) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द (Oros और Genesis) से मिलकर बना है। ओरोस (Oros) का अर्थ पर्वत तथा जेनेसिस (Genesis) का अर्थ उत्पत्ति होती है।

- पृथ्वी के आंतरिक भाग से क्षैतिज रूप में पर्वतों के निर्माण में सहायक संचलन बल को पर्वतीय संचलन के नाम से जाना जाता है। यह बल प्रायः दो रूपों में क्रियाशील होता है-

✓ जब यह बल दो विपरीत दिशाओं में क्रियाशील होता है तो तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसे तनावमूलक बल कहा जाता है। इस बल के परिणामस्वरूप धरातल में भ्रंश (Fault), दरार (Fracture), चटकन (Crack) आदि का निर्माण होता है।

✓ जब पर्वतीय संचलन बल आमने-सामने क्रियाशील होता है तो उससे चट्टानें सम्पीडित हो जाती हैं। इस बल को संपीडनात्मक बल (Compressional Force) कहा जाता है। इसके कारण धरातल में संवलन (Warp) तथा वलन (Folds) पड़ जाते हैं।

वलन व इसके प्रकार (Folds and its Type)

वलन (Folds)

पृथ्वी के आंतरिक भाग में उत्पन्न अंतर्जात बलों के क्षैतिज संचलन द्वारा धरातलीय चट्टानों में सम्पीडन के परिणामस्वरूप लहरों के रूप में पड़ने वाले मोड़ को वलन कहा जाता है। वलन को निम्नलिखित स्वरूपों में देखा जाता है-

- **संवलन (Warp)-** पृथ्वी के आंतरिक भाग में क्षैतिज रूप में पर्वतीय संचलन बल के कारण जब एक विस्तृत क्षेत्र में धरातलीय भाग का उत्थान या अवनमन हो जाता है, तब उसे संवलन कहा जाता है।
- **उत्संवलन (Upwarps)-** जब क्षैतिज संचलन के कारण धरातलीय भाग नीचे की ओर मुड़कर धंस जाता है, तब उसे उत्संवलन के नाम से जाना जाता है। इसके परिणामस्वरूप बेसिन या गड्ढों का निर्माण होता है।
- **बृहद् संवलन (Broad Warps)-** जब क्षैतिज संचलन के कारण धरातल का हजारों किलोमीटर क्षेत्र ऊपर उठ जाता है या नीचे धँस जाता है, तब उसे बृहद् संवलन कहा जाता है।
- **वलन की भुजाएँ (Limbs of the folds)-** चट्टानों में पड़ने वाले प्रत्येक वलन में दोनों ओर के भागों को वलन की भुजाएं कहा जाता है।
- **वलन का अक्ष (Axis of the fold)-** वलन की दोनों भुजाओं के बीच अपनति के सबसे उच्च तथा अभिनति के सबसे निम्नस्थ भागों से गुजरने वाली रेखा को वलन का अक्ष कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है- अपनति अक्ष तथा अभिनति अक्ष।
- **अक्षीय तल (Axial lane)-** किसी भी वलन के मध्य भाग में स्थित तल को अक्षीय तल कहा जाता है। यह भी अभिनति के आधार पर दो प्रकार का होता है।

वलन के प्रकार (Type of Fold)

- **समित वलन (Symmetrical Fold)**- जब किसी वलन की दोनों भुजाओं का झुकाव समान रूप में होता है, तब उसे सममित वलन कहते हैं। यह खुले प्रकार का वलन होता है। जैसे- स्विट्जरलैंड का जूरा पर्वत।
- **असममित वलन (Asymmetrical Fold)**- जब किसी वलन की एक भुजा सामान्य झुकाव वाली होती है तथा दूसरी भुजा का झुकाव अधिक होता है एवं छोटी होती है, तब ऐसे वलन को असममित वलन कहा जाता है। जैसे- ब्रिटेन का दक्षिणी पेनाइन पर्वत।
- **एकदिग्नत वलन (Monoclinal Fold)**- जब किसी वलन की एक भुजा सामान्य झुकाव तथा ढाल वाली होती है जबकि दूसरी भुजा उस पर समकोण बनाती है एवं उसका ढाल खड़ा होता है, तब उसे एकदिग्नत वलन कहते हैं। जैसे- ऑस्ट्रेलिया का ग्रेट डिवाइडिग रेंज।
- **समनत वलन (Isoclinal Fold)**- जब क्षैतिज संचलन के कारण किसी वलन की दोनों भुजाओं पर दोनों दिशाओं के समान संपीडनात्मक बल क्रियाशील होता है, तब उसकी दोनों भुजाएँ समान रूप से झुककर एक-दूसरे के समानांतर हो जाती हैं। ऐसे वलन को समनत वलन कहा जाता है। इनकी दिशा का क्षैतिज होना आवश्यक नहीं है। जैसे- पाकिस्तान का कालाचिंता पर्वत।
- **परिवलित या श्यान वलन (Recumbent Fold)**- अत्यधिक तीव्र क्षैतिज संचलन के कारण जब वलन की दोनों भुजाएँ क्षैतिज रूप में समानान्तर हो जाती हैं, तब उसे परिवलित या श्यान वलन कहते हैं। जैसे- कश्मीर का पीर पंजाल।
- **प्रतिवलन (Overturned Fold)**- जब संपीडन में दबाव इतना अधिक होता है कि वलन झुकने के पश्चात् भी संपीड़न को सह नहीं पाता तो वलन की एक भुजा टूटकर (क्षैतिज भुजा) उलट जाती है। इस प्रकार के वलन को प्रतिवलन कहते हैं।
- **खुला वलन (Open Fold)**- जब किसी भी वलन की दोनों भुजाएँ 90^0 से अधिक एवं 180^0 से कम का कोण बनाती हैं, तब उसे खुला वलन कहा जाता है।
- **बंद वलन (Closed Fold)**- जब किसी वलन की दोनों भुजाओं के बीच 90^0 से कम का कोण बनता है, तब उसे बंद वलन के नाम से जाना जाता है।
- **पंखा वलन (Fan Fold)**- क्षैतिज संचलन के समान रूप में क्रियाशील होने के कारण विभिन्न स्थानों में संपीडन की भिन्नता के साथ ही पंखे के आकार की वलित आकृति का निर्माण हो जाता है, जिसे पंखा वलन कहते हैं।

अपनति (Anticline)

वलन के कारण चट्टानों के ऊपर उठे हुए भाग को अपनति के रूप में जाना जाता है। अपनति को निम्न रूपों में देखा जा सकता है-

- **सममित अपनति (Symmetrical Anticline)**- जब किसी अपनति के दोनों ओर के ढाल बराबर होते हैं, तब उसे सममित अपनति कहा जाता है।
- **असममित अपनति (Asymmetrical Anticline)**- जब किसी अपनति के दोनों ओर के ढाल बराबर नहीं अर्थात् असमान होते हैं, तब उसे असममित अपनति कहते हैं।
- **समपनति (Anticlinorium)**- जब एक बृहद् अपनति के अंतर्गत अनेक छोटी-छोटी अपनतियों एवं अभिनतियों का निर्माण हो जाता है, तब उस आकृति को समपनति के रूप में जाना जाता है। यह आकृति वलित पर्वतीय क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है।

अभिनति (Syncline)

वलन के कारण चट्टानों के नीचे धँसे हुए भाग को अभिनति के नाम से जाना जाता है।

- **समभिनति (Synclinorium)**- जब एक अभिनति के अन्दर असमान सम्पीडन के कारण छोटी-छोटी अभिनतियों एवं अपनतियों का निर्माण हो जाता है, तब उस अभिनति विशेष को समभिनति कहा जाता है। इसकी आकृति भी पंखाकार वलन के समान होती है।
- **उत्क्रम (Thrust)**- जब किसी परिवलित मोड़ का एक खंड खिसक कर दूसरे खंड पर चढ़ जाता है। तब इस प्रक्रिया को उत्क्रम या थर्स्ट कहते हैं।

भ्रंश व उसके प्रकार (Fault & their types)

जब तनावमूलक संचलन अत्यधिक तीव्र गति से क्रियाशील होता है और विभंग तल के सहारे बड़े पैमाने पर चट्टानों का स्थानातंरण हो जाता है, तब इस क्रिया से उत्पन्न संरचना को भ्रंश कहते हैं।

भ्रंश के प्रकार (Types of Fault)

- **सामान्य भ्रंश (Normal Fault)**- किसी चट्टानी भाग में दरार पड़ जाने के फलस्वरूप जब उसके दोनों भाग विपरीत दिशाओं में संचालित हो जाते हैं, तब उसमें निर्मित भ्रंश को सामान्य भ्रंश कहते हैं।

- **व्युत्क्रम या उत्क्रम भ्रंश (Reverse Fault)**- जब चट्टानों में दरार पड़ जाने के फलस्वरूप उसके दोनों भाग आमने-सामने सरक जाते हैं, तब व्युत्क्रम भ्रंश का निर्माण होता है। इसका प्रमुख कारण क्षैतिज संचलन से उत्पन्न संपीडन है। इस भ्रंश में चट्टान का एक खंड दूसरे खंड पर चढ़ जाता है। जैसे- पश्चिमी घाट कगार।
- **पार्श्व या नतिलम्ब भ्रंश (Lateral or Strike slip Fault)**- जब भ्रंश तल के सहारे क्षैतिज संचलन के कारण क्षैतिज दिशा में ही गति होती है, तब उससे बने भ्रंश को पार्श्वीय या नतिलम्ब भ्रंश के नाम से जाना जाता है।
- **सोपानी भ्रंश (Step Fault)**- जब किसी स्थान पर घटित हुए कई भ्रंशों के भ्रंश तलों का ढाल एक ही दिशा में होता है, तब उससे निर्मित आकृति को सोपानी या सीढ़ीदार भ्रंश कहा जाता है। जैसे- यूरोप की राइन घाटी।

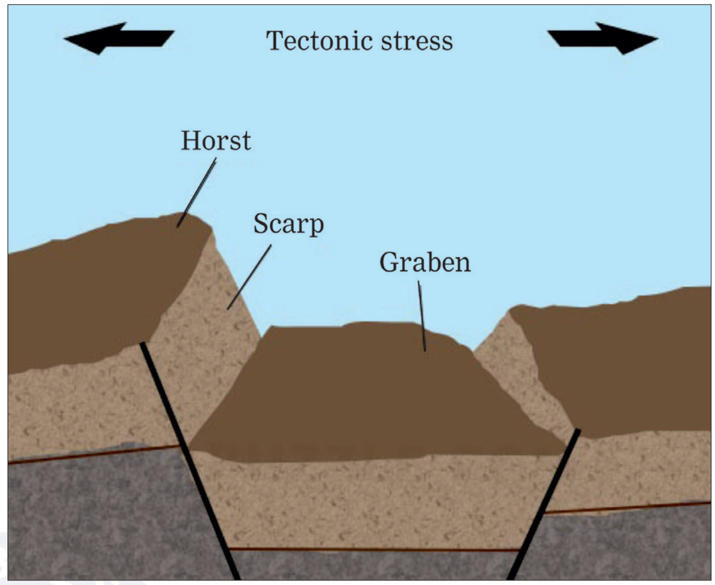

भ्रंश से निर्मित भू-आकृतियाँ

इनमें प्रमुख ब्लॉक पर्वत तथा रिफ्ट घाटी हैं।

ब्लॉक एवं हॉर्स्ट पर्वत

- जब दो भ्रंशों के बीच का स्तंभ यथावत रहे एवं किनारे के स्तंभ नीचे धंस जाए तो ब्लॉक पर्वत (Block Mountain) का निर्माण होता है। भारत का सतपुड़ा पर्वत, जर्मनी का ब्लैक फॉरेस्ट व वास्जेज पर्वत, संयुक्त राज्य अमेरिका का व्हिटनी रेंज व सियरा नेवादा तथा पाकिस्तान का साल्ट रेंज ब्लॉक पर्वतों के प्रमुख उदाहरण हैं। सियरा नेवादा विश्व का सबसे विस्तृत ब्लॉक पर्वत है।
- जब दो भ्रंशों के किनारों के स्तंभ यथावत रहें एवं बीच का स्तंभ ऊपर उठ जाए तो हॉर्स्ट पर्वत (Horst Mountain) का निर्माण होता है। जर्मनी का हॉर्ज पर्वत इस प्रकार के पर्वत का प्रमुख उदाहरण है। वस्तुतः भ्रंश घाटी व रैम्प घाटी एवं ब्लॉक पर्वत व हॉर्स्ट पर्वत प्रायः एक से प्रतीत होते हैं। परन्तु ये भूसंचलन की दृष्टि से अलग-अलग परिस्थितियों के परिणाम हैं।

रिफ्ट घाटी या ग्राबेन (Rift valley or Graben)

- किसी धरातल पर जब दो सामान्य भ्रंशों का मध्य भाग नीचे की ओर धँस जाता है, तब उससे निर्मित घाटी को रिफ्ट घाटी या ग्राबेन कहते हैं। इतना अवश्य है कि ग्राबेन का आकार रिफ्ट घाटी से छोटा होता है।
- जॉर्डन नदी की घाटी संसार की सबसे लम्बी रिफ्ट घाटी है, (अफ्रीका की महान भ्रंश घाटी) जो जॉर्डन नदी के उद्गम से लेकर लाल सागर में होते हुए जेम्बेजी नदी तक 4,800 किमी. की लम्बाई में विस्तृत है। इस भ्रंश घाटी में अफ्रीका की प्रमुख झीलों जैसे- न्यासा, विक्टोरिया, रूडोल्फ व टंगारिका स्थित है। दक्षिणी केलिफोर्निया की मृत घाटी या डेथ वैली (Death Valley) भ्रंश घाटी का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। भारत में नर्मदा, ताप्ती व ऊपरी दामोदर नदियाँ भ्रंश घाटी के उदाहरण है।

रैम्प घाटी

- जब किसी धरातल पर मध्य भाग को छोड़कर दोनों ओर के स्तंभ ऊपर उठ जाएँ अथवा पहाड़ियों से घिरी निम्न भूमि रैम्प घाटी कहलाती है। **उदाहरणः** Turfan Valley, China, असम की ब्रह्मपुत्र घाटी।

भ्रशों का महत्त्व (Importance of Faults)

भ्रशों का भू-आकृतिक, पारिस्थितिक, सामाजिक व आर्थिक महत्त्व है। ये खनिज तेल, भौम जल, उष्ण व शीतल जल स्रोत के केन्द्र होते हैं। भ्रंशों के सहारे झरनों का निर्माण होता है। ये नदियों का मार्ग निर्धारित करने में भी सहायक होते हैं जैसे- नर्मदा व ताप्ती नदी का भ्रंश से होकर बहना।

बहिर्जात बल (Exogenic Force)

बाह्य कारकों के प्रभाव से उत्पन्न बल के द्वारा होने वाले संचलन को 'बहिर्जात संचलन' कहते हैं। बहिर्जात संचलन के कारण 'अनाच्छादन' नामक एक संयुक्त प्रक्रम का निर्माण होता है। बहिर्जात संचलन को 'समतल स्थापक बल' भी कहते हैं।

- अंतर्जात भू-संचलन के द्वारा जहाँ विभिन्न प्रकार के विषमतायुक्त स्थलस्वरूपों की उत्पत्ति होती है, वहीं बहिर्जात भूसंचलन के तहत् अनाच्छादन की प्रक्रिया के द्वारा चट्टानी संरचना में विघटन या वियोजन में स्थलीय सतह का कटाव कर समतल स्वरूप देने का प्रयत्न किया जाता है इसलिए बहिर्जात भूसंचलन को 'समतल स्थापक संचलन' या 'विनाशात्मक संचलन' भी कहते हैं।

अनाच्छादन प्रक्रियाएँ (Denudation Process)

- अनाच्छादन बहिर्जात संचलन से संबंधित एक संयुक्त प्रक्रम है, जिसमें अपक्षय (Weathering), अपरदन (Erosion) एवं वृहद् क्षरण (Mass Wasting) की क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।
- अनाच्छादन के अंतर्गत वे संपूर्ण क्रिया-कलाप शामिल हैं, जिनके द्वारा असमतल धरातल पर समतलीकरण का कार्य होता है।

अनाच्छादन प्रक्रियाएँ

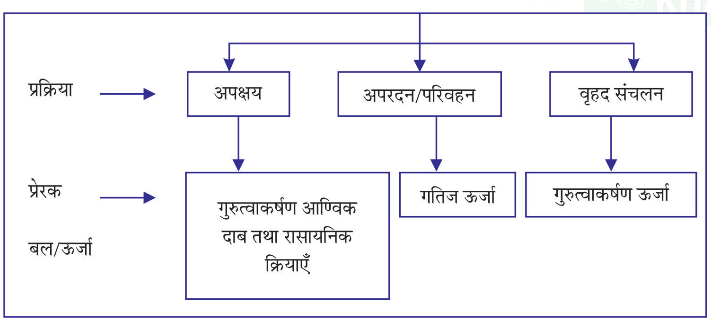

अपक्षय (Weathering)

- तापमान और आर्द्रता जैसे मौसमी कारकों के प्रभाव से चट्टानों के विघटन और वियोजन की प्रक्रिया को 'अपक्षय' कहते हैं। इस प्रक्रम में चट्टानें असंगठित होकर अवसादों में परिवर्तित हो जाती हैं, जिससे मृदा का निर्माण होता है।
- विघटन या अपघटन होते समय चट्टानों का स्थानांतरण नहीं होता है, अपितु अपक्षय एक स्थानीय प्रक्रिया है, जिसमें शैलों का विघटन और वियोजन मूल स्थान पर ही होता है।

अपक्षय तीन प्रकार के होते हैं-

- **भौतिक (Physical)**- सूर्यातप, पाला, दाब मुक्ति।
- **रासायनिक (Chemical)**- जलयोजन, घोल, ऑक्सीकरण एवं अपचयन, कार्बनीकरण आदि के कारण चट्टानों का विघटन।
- **जैविक (Biological)**- जीव-जंतु, पेड़-पौधों और मनुष्यों आदि के द्वारा विघटन।

अपरदन (Erosion)

- अपरदन की क्रिया के अंतर्गत चट्टानी की संरचना के टूटने-फूटने व कटने से लेकर इनके परिवहन की क्रिया को भी शामिल किया जाता है अर्थात् यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है।
- इसमें अपक्षय की प्रक्रिया भी शामिल है। इस प्रक्रिया में संलग्न कारक किसी क्षेत्र-विशेष में ही अधिक प्रभावशाली होते हैं।
- अपरदन निम्न कारकों के द्वारा होता है- नदी, पवन, सागरीय तरंग, हिमनद, भूमिगत जल इत्यादि।

बृहत् संचलन (Mass Movement)

- पर्वतीय क्षेत्रों में गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से असंगठित अवसादों के होने वाले अपरदन या स्थानांतरण को 'बृहत् संचलन' कहते हैं।
- यह प्रक्रिया मंद और तीव्र दोनों प्रकार से हो सकती है इसलिए इसे मंद संचलन, तीव्र संचलन व भूस्खलन (Landslide) में वर्गीकृत किया जाता है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

महाद्वीपीय विस्थापन, सागर नितल प्रसरण तथा प्लेट विवर्तनिकी (Continetal Drift, Sea-floor Spreading & Plate Tectonics)

परिचय (Introduction)

आज पृथ्वी के 29% भाग पर महाद्वीपों का विस्तार मिलता है तथा 71% भाग पर महासागरों का। विश्व के मानचित्र में महासागरों और महाद्वीपों की जो स्थिति आज दिखाई पड़ती है, वह प्राचीन स्थिति से भिन्न है। आने वाले दिनों में भी पृथ्वी पर महासागरों तथा महाद्वीपों की स्थिति में भिन्नता नजर आएगी। भू-वैज्ञानिकों के अनुसार महाद्वीपों और महासागरों की अवस्थिति में परिवर्तन हुआ है और अभी भी हो रहा है अर्थात् महाद्वीपों व महासागरों का जो स्वरूप हम आज मानचित्र पर देखते है वो न तो पूर्व में ऐसा था और न ही भविष्य में वैसा रहेगा।

- महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त, महाद्वीपों और महासागरों की वर्तमान विन्यास की व्याख्या करने का प्रयत्न है जिसे विभिन्न भूगोलवेत्ताओं द्वारा समय-समय पर व्याख्यायित किया गया है।
- 1569 में डच भूगोलवेत्ता अब्राहम और टेलियस ने सर्वप्रथम इस संभावना को व्यक्त किया कि दक्षिणी व उत्तरी अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रीका एक साथ जुड़े हुए थे।
- एंटोनियो पेलेग्रिनी ने एक मानचित्र बनाया जिसमें तीन महाद्वीपों को इकट्ठा दिखाया गया।
- 1908 में अमेरिकी भू-वैज्ञानिक टेलर ने महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो स्थल के क्षैतिज स्थानांतरण के विषय में था। इस सिद्धान्त में महाद्वीपीय प्रवाह का मुख्य कारण ज्वारीय शक्ति को बताया गया।
- 1912 में जर्मनी के अल्फ्रेड वेगनर ने महाद्वीपों तथा महासागरों के प्रवाह से संबंधित महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त दिया।
- आगे के वर्षों में सागर नितल प्रसरण तथा प्लेट विवर्तनिकी जैसे सिद्धान्त महाद्वीपों तथा महासागरों की पूर्व तथा वर्तमान स्थिति को प्रदर्शित करते हैं तथा पूर्व के सिद्धांतों में सुधार कर महासागर व महाद्वीपों की गति के सिद्धान्त को मजबूती प्रदान करते हैं।

अल्फ्रेड वेगनर (Alfred Wegner) का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत

महाद्वीपों की क्षैतिज गतिशीलता या महाद्वीपीय विस्थापन की संकल्पना 1912 में वेगनर द्वारा प्रतिपादित की गयी। इस सिद्धान्त की यह मान्यता थी कि पृथ्वी की आकृति में होने वाले परिवर्तन मुख्यतः महाद्वीपों के स्थानांतरण के कारण होते हैं। वेगनर ने अपने सिद्धांत का प्रतिपादन दो तथ्यों के आधार पर किया।

- प्रथम, अत्यधिक दूरी पर स्थित महाद्वीपों में उपस्थित जीवाश्मीय अवशेष एवं भौगोलिक निर्माणों में आश्चर्यजनक समरूपता दिखाई पड़ती है।

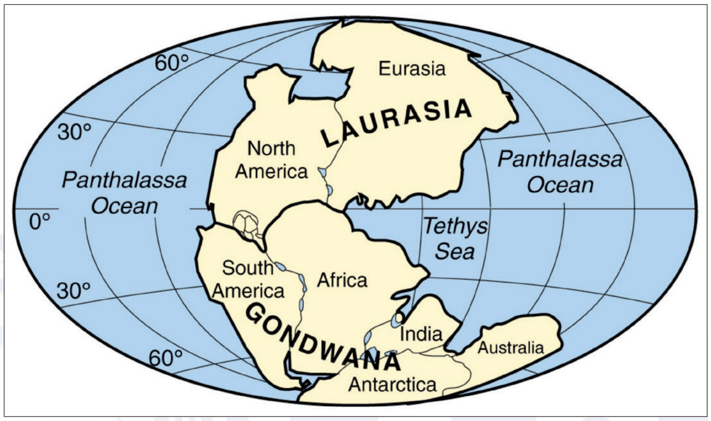

- वेगनर, पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार की जलवायु को समझाने में असमर्थ थे। वे किसी भी प्रकार से जलवायु परिवर्तन के साक्ष्य का प्रमाण नहीं खोज पाये और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महाद्वीपों का विस्थापन ही इस जलवायविक दशा का कारण हो सकता है।

संकल्पना

- यह सिद्धांत महाद्वीपों एवं महासागरों के वितरण से ही संबंधित था। इस सिद्धांत की आधारभूत संकल्पना यह थी कि सभी महाद्वीप एक ही भूखंड से जुड़े हुए थे। वेगनर के अनुसार आज के सभी महाद्वीप इस भूखंड के भाग थे तथा यह एक बड़े महासागर से घिरा हुआ था। उन्होंने इस बड़े महाद्वीप को **पैंजिया (Pangaea)** का नाम दिया। **पैंजिया** का अर्थ है- संपूर्ण पृथ्वी। विशाल महासागर को **पैंथालासा (Panthalassa)** कहा, जिसका अर्थ है- **जल ही जल**। वेगनर के तर्क के अनुसार लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले इस बड़े महाद्वीप पैंजिया का विभाजन आरंभ हुआ। पैंजिया, पहले दो बड़े महाद्वीपीय पिडों **लॉरेशिया (Laurasia)** और **गोंडवानालैंड (Laurasia)** क्रमशः उत्तरी व दक्षिणी भूखंडों के रूप में विभक्त हुआ। इसके बाद लॉरेशिया व गोंडवानालैंड धीरे-धीरे अनेक छोटे हिस्सों में बंट गए, जो आज के महाद्वीपों के रूप हैं।

प्रवाह संबंधी बल

- **वेगनर के अनुसार महाद्वीपीय विस्थापन के दो कारण थे-**
  - ✓ पोलर या ध्रुवीय फ्लीइंग बल (Polar Fleeing Force)
  - ✓ ज्वारीय बल (Polar Fleeing Force)।
  - ✓ ध्रुवीय फ्लीइंग बल पृथ्वी के घूर्णन से संबंधित है। आप जानते हैं कि पृथ्वी की आकृति एक संपूर्ण गोले जैसी नहीं है, वरन् यह भूमध्यरेखा पर उभरी हुई है। यह उभार पृथ्वी के घूर्णन के कारण है।
  - ✓ दूसरा बल, जो वेगनर महोदय ने सुझाया- वह ज्वारीय बल है, जो सूर्य व चंद्रमा के आकर्षण से संबद्ध है, जिससे महासागरों में ज्वार पैदा होते हैं।
- वेगनर का मानना था कि करोड़ों वर्षों के दौरान ये बल प्रभावशाली होकर विस्थापन के लिए सक्षम हो गए। यद्यपि बहुत से वैज्ञानिक इन दोनों ही बलों को महाद्वीपीय विस्थापन के लिए सर्वथा अपर्याप्त समझते हैं।

महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष में प्रमाण (Evidences in Support of Continental Drift)

महाद्वीपों में साम्य

दक्षिण अमेरिका एवं अफ्रीका के आमने-सामने के तटों में अद्भुत साम्यता दिखायी देती है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि पहले ये आपस में जुड़े हुए थे। इसी तरह उत्तर अमेरिका के पूर्वी तट की यूरोप के पश्चिमी तट के साथ साम्यता स्थापित की जा सकती है।

- पूर्वी अफ्रीका में इथियोपिया तथा इरीट्रिया का उभार पश्चिमी भारत तथा पाकिस्तान की तट रेखा से संयुक्त किया जा सकता है तथा ऑस्ट्रेलिया को बंगाल की खाड़ी में जोड़ा जा सकता है। वेगनर ने इसे 'साम्य-स्थापना' का नाम दिया।

महासागरों के पार चट्टानों की आयु में समानता

आधुनिक समय में विकसित की गई रेडियोमेट्रिक काल निर्धारण (Radiometric Dating) विधि से महासागरों और महाद्वीपों की चट्टानों के निर्माण के समय को सरलता से जाना जा सकता है।

- 200 करोड़ वर्ष प्राचीन शैल समूहों की एक पट्टी ब्राजील तट और पश्चिमी अफ्रीका के तट पर मिलती है, जो आपस में मेल खाती है। दक्षिणी अमेरिका व अफ्रीका की तटरेखा के साथ पाए जाने वाले आरंभिक समुद्री निक्षेप जुरेसिक काल (Jurassic Age) के हैं। इससे यह पता चलता है कि इस समय से पहले महासागर की उपस्थिति वहाँ नहीं थी।

टिलाइट (Tillite)

- टिलाइट वे अवसादी चट्टानें हैं, जो हिमानी निक्षेपण से निर्मित होती हैं। भारत में पाए जाने वाले गोंडवाना श्रेणी के तलछटों के प्रतिरूप दक्षिण गोलार्द्ध के छः विभिन्न स्थलखंडों में मिलते हैं। गोंडवाना श्रेणी के आधार तल में घने टिलाइट हैं, जो विस्तृत व लंबे समय तक हिमआवरण या हिमाच्छादन की ओर इंगित करते हैं। इसी क्रम के प्रतिरूप भारत के अतिरिक्त अफ्रीका, फॉकलैंड द्वीप, मेडागास्कर, अंटार्कटिक और ऑस्ट्रेलिया में मिलते हैं। गोंडवाना श्रेणी के तलछटों की यह समानता स्पष्ट करती है कि इन स्थलखंडों के इतिहास में भी समानता रही है हिमानी निर्मित टिलाइट चट्टानें पुरातन जलवायु और महाद्वीपों के विस्थापन के स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

प्लेसर निक्षेप

- घाना तट पर सोने के बड़े निक्षेपों की उपस्थिति व उद्गम चट्टानों की अनुपस्थिति एक आश्चर्यजनक तथ्य है। सोनायुक्त शिराएँ (Gold Bearing Veins) ब्राजील में पाई जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि घाना में मिलने वाले सोने के निक्षेप ब्राजील पठार से उस समय निकले होंगे, जब ये दोनों महाद्वीप एक-दूसरे से जुड़े थे।

जीवाश्मों का वितरण

यदि समुद्री अवरोधक के दोनों विपरीत किनारों पर जल व स्थल में पाए जाने वाले पौधों व जन्तुओं की समान प्रजातियां पाई जाएँ, तो उनके विवरण की व्याख्या में समस्याएँ उत्पन्न होती है।

- इस प्रेक्षण से ही 'लैमूर' भारत, मेडागास्कर व अफ्रीका में मिलते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने इन तीनों स्थलखंडों को जोड़कर एक सतत् स्थलखंड 'लेमूरिया' की उपस्थिति को स्वीकारा।
- **मेसोसोरस (Mesosaurus)** नाम के छोटे रेंगने वाले जीव केवल उथले खारे पानी में ही रह सकते थे- इनकी अस्थियाँ केवल दक्षिण अफ्रीका के दक्षिणी केप प्रांत और ब्राजील में इरावर शैल समूह में ही मिलते हैं। ये दोनों स्थान आज एक-दूसरे से 4800 किमी- की दूरी पर हैं और इनके बीच में एक महासागर विद्यमान है।

साम्य विस्थापन

वेगनर के सिद्धांत का मूल तत्व महाद्वीपों की साम्य स्थापना है परन्तु कई विद्वानों ने इसे त्रुटिपूर्ण बताया है। उनका विचार है कि साम्य स्थापना किसी सीमा तक ही शुद्ध है। यदि दक्षिणी अमेरिका को गिनी के तट से मिलाया जाए तो उसमें 15^0 का अन्तर रह जाता है।

- **विस्थापन की दिशा से असहमति-** वेगनर ने विस्थापन के लिए दो दिशाओं का वर्णन किया है। एक विस्थापन पश्चिम की ओर तथा दूसरा भूमध्य रेखा की ओर लेकिन कुछ भू-वैज्ञानिकों के अनुसार हिमालय, आल्प्स तथा रॉकी पर्वत श्रेणियाँ तथा पूर्वी एवं पश्चिमी द्वीप समूह ऐसे विस्थापन की बाह्य सीमाएँ हैं।
- **महाद्वीपों का वर्तमान वितरण विस्थापन के अनुकूल नहीं-** वेगनर की मान्यता है कि महाद्वीपों का एक विस्थापन भूमध्य रेखा की ओर हुआ। यदि यह सत्य है तो अधिकांश महाद्वीपों को भूमध्य रेखा के पास ही एकत्रित होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है।
- **विस्थापन के लिए शक्तियों का अपर्याप्त होना-** पश्चिमी दिशा तथा भूमध्य रेखा की ओर विस्थापन के लिए वेगनर ने जिन शक्तियों का उल्लेख किया है, विद्वानों ने उन्हें बहुत ही अपर्याप्त बताया है और इनकी कड़ी आलोचना की है। महाद्वीपों का पश्चिम की ओर विस्थापन करने के लिए वेगनर ने जिस ज्वारीय शक्ति का वर्णन किया है वह नितान्त ही असंभव है और यदि इसे संभव मान भी लिया जाए तो यह एक वर्ष में ही पृथ्वी के घूर्णन को बंद कर देगी।
- **वनस्पति संबंधी आपत्ति-** कार्बोनिफेरस युग के हिम-प्रवाह के साथ-साथ वेगनर ने उस काल की ग्लोसोप्टेरिस वनस्पति के चिह्न भी भारत, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, फाकलैंड द्वीप, अंटार्कटिका और ऑस्ट्रेलिया में फैले बतलाये हैं। वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को निराधार बताया है यह वनस्पति चिह्न केवल वेगनर के बतलाए हुए स्थानों के अतिरिक्त भी अन्य स्थानों पर भी पाये गये हैं।
- **समय संबंधी आपत्ति-** कई वैज्ञानिकों ने वेगनर सिद्धान्त के विरूद्ध समय संबंधी आपत्ति उठाई है। वेगनर ने यह माना है कि पैंजिया का विघटन पुराजीव कल्प में शुरू हुआ। विद्वानों को आपत्ति है कि इस युग से पहले इसे किस शक्ति ने जोड़े रखा था।

महासागरीय अधस्तल का मानचित्रण (Mapping of the Ocean Floor)

महासागरों की बनावट और आकार पर विस्तृत शोध, यह स्पष्ट करते हैं कि महासागरों का अधस्तल एक विस्तृत मैदान नहीं है, वरन् उनमें भी उच्चावच पाया जाता है। युद्धोत्तर काल (Post-war Period) में महासागरीय अधस्तल के निरूपण अभियान ने महासागरीय उच्चावच संबंधी विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की और यह दिखाया कि इसके अधस्तली में जलमग्न पर्वतीय कटकें व गहरी खाइयाँ हैं, जो प्रायः महाद्वीपों के किनारों पर स्थित हैं।

- मध्य महासागरीय कटकें ज्वालामुखी उद्‌गार के रूप में सबसे अधिक सक्रिय पायी गई। महासागरीय पर्पटी की चट्टानों के काल के निर्धारण (Dating) ने यह तथ्य स्पष्ट कर दिया कि महासागरों के नितल की चट्टानें महाद्वीपीय भागों में पाई जाने वाली चट्टानों की अपेक्षा नवीन हैं। महासागरीय कटक के दोनों तरफ की चट्टानें, जो कटक से बराबर दूरी पर स्थित हैं, उनकी आयु व रचना में भी आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है।

महासागरीय अधस्तल की बनावट (Ocean Floor Configuration)

गहराई व उच्चावच के प्रकार के आधार पर, महासागरीय तल को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। ये भाग हैं-

- **महाद्वीपीय सीमा (Continental Margins)-** यह महाद्वीपीय किनारों और गहरे समुद्री बेसिन के बीच का भाग है। इसमें महाद्वीपीय मग्नतट, महाद्वीपीय ढाल, महाद्वीपीय उभार और गहरी महासागरीय खाइयाँ आदि शामिल हैं।
- **वितलीय मैदान (Abyssal Plains)-** ये विस्तृत मैदान महाद्वीपीय तटों व मध्य महासागरीय कटकों के बीच पाए जाते हैं। वितलीय मैदान, वह क्षेत्र है, जहाँ महाद्वीपों से बहाकर लाए गए अवसाद इनके तटों से दूर निक्षेपित होते हैं।
- **मध्य महासागरीय कटक (Mid-oceanic Ridges)-** मध्य महासागरीय कटक आपस में जुड़े हुए पर्वतों की एक शृंखला बनाती है। महासागरीय जल में डूबी हुई, यह पृथ्वी के धरातल पर पाई जाने वाली संभवतः सबसे लंबी पर्वत शृंखला है। इन कटकों के मध्यवर्ती शिखर पर एक रिफ्रट, एक प्रभाजक पठार और इसकी लंबाई के साथ-साथ पार्श्व मंडल इसकी विशेषता है। मध्यवर्ती भाग में उपस्थित द्रोणी वास्तव में सक्रिय ज्वालामुखी क्षेत्र है।

संवहन-धारा सिद्धांत

इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1930 के दशक में 'आर्थर होम्स' ने किया। होम्स के अनुसार पृथ्वी के मेंटल भाग में रेडियोएक्टिव तत्वों के विघटन से उत्पन्न तापीय भिन्नता के फलस्वरूप संवहन धाराओं की उत्पत्ति होती है एवं पृथ्वी के आंतरिक भाग से चलकर लिथोस्फीयर (स्थलमंडल) से टकराती हैं तथा दो भागों में बंट जाती हैं।

- जहाँ पर ये संवहनीय धाराएँ टकराती हैं, वहाँ का भाग कमजोर हो जाता है तथा कालांतर में संवहन धाराएँ अपने प्रवाह के कारण लिथोस्फीयर को विखंडित कर देती हैं, जिससे महाद्वीपों का विखंडन होता है। होम्स ने स्पष्ट किया कि पृथ्वी के मेंटल भाग में संवहन धाराओं का एक तंत्र विकसित होता है जिसके परिणामस्वरूप स्थलखंडों में एक प्रकार का 'प्रवाही बल' कार्य करता है, जिसके सहारे, 'महाद्वीपीय संचलन' की प्रक्रिया संपन्न होती है।
- जब वायु या तरल राशि गर्म होकर एक सतत् धारा के रूप में ऊर्ध्वाधर दिशा में बहती है तो उस प्रवाह को संवहन धारा कहा जाता है।

सागर नितल प्रसरण सिद्धांत (Sea flore spreading theory)

समुद्र-तल के प्रसार की परिकल्पना का प्रतिपादन सबसे पहले 1960 में प्रोफेसर हैरी हेस (Harry Hess) ने किया था। द्वितीय महायुद्ध के समय तथा उसके बाद के अनुसंधानों के कारण, इस समय तक समुद्र-तल संबंधी ज्ञान में बहुत वृद्धि हो चुकी थी। विशेष रूप से 1960 तक समुद्र तल के बारे में निम्न महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ थीं-

- समुद्र-तल के नीचे भू-पटल (Crust) की मोटाई केवल 6 या 7 किमी. जबकि महादेशों के नीचे भू-पटल की मोटाई 30 से 40 किमी. है।
- पूर्व में केवल मध्य-अटलांटिक कटक (Mid-Altantic Ridge) के बारे में जानकारी थी। किंतु बाद में यह देखा गया कि मध्य-सागरीय कटक (Mid-Oceanic Ridges) न केवल अटलांटिक बल्कि सभी महासागरों में पाये जाते हैं। इनके शिखर गहरे सागरीय मैदान से 2 से 3 किमी. तक ऊँचे हैं, और इन कटकों में बड़े पैमाने पर भ्रंशन (Faulting) तथा ज्वालामुखी क्रिया के प्रमाण मिलते हैं और यहाँ अक्सर भूकंप आते हैं।
- सागरीय तल चट्टानें कहीं भी क्रिटेशियस काल (Cretaceous Period) से अधिक पुरानी नहीं पायी गयी थी। क्रिटेशियस काल लगभग 135 मिलियन वर्ष पहले शुरू हुआ था।
- इन तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि समुद्र-तल प्राचीन और सुषुप्त नहीं है, बल्कि पृथ्वी का संभवतः सबसे अधिक सक्रिय और युवा भाग है। हैरी हेस ने यह प्रस्तावित किया कि समुद्र-तल गतिशील है और मध्य-सागरीय कटकों (Mid-Ocean Ridges) पर संवहन धाराओं (Convection currents) द्वारा पृथ्वी के मेंटल (Mantle) से गर्म मैग्मा ऊपर उठता है और वहाँ से दोनों किनारों की ओर फैलता है और फिर महादेशों के किनारे स्थित ट्रेंचों (Trenches) में जाकर विलीन हो जाता है। इसी प्रसार-विधि (Process of Spreading) द्वारा महासागरों के तल का निर्माण हुआ है अर्थात् सागरीय तल अपेक्षाकृत एक नवीन आकृति है जिसका मध्य-सागरीय कटकों पर नव-निर्माण होता है और पार्श्विक प्रसार द्वारा जो निरंतर फैलती है और फिर ट्रैंच प्रणालियों (Trench Systems) में नष्ट होती जाती है। महाद्वीप प्राचीन होने के बावजूद मेंटल पर संवहन धाराओं के साथ निष्क्रिय ढंग से प्रवाहित होते रहे हैं।

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धांत (Plate Tectonics Theory)

ये सिद्धान्त महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त, पुरा चुंबकत्व तथा सागर नितल प्रसरण आदि सिद्धान्तों का सम्मिलित रूप है अतः इस सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय किसी एक व्यक्ति को दिया जाना तर्कसंगत नहीं है। 1967 में मैकेंजी, मॉर्गन तथा पार्कर ने इन पूर्व सिद्धान्तों के आधार पर प्लेट टेक्टोनिक की व्याख्या की। इस सिद्धान्त के माध्यम से महाद्वीपीय विस्थापन के साथ भूकंप, ज्वालामुखी व पर्वत निर्माण जैसी क्रियाओं आदि की भी व्याख्या की जा सकती है।

प्लेट क्या है?

पृथ्वी का बाह्य भाग दृढ़ खण्डों का बना है। इन दृढ़ खण्डों को प्लेट कहते हैं। पृथ्वी का स्थलमण्डल कई प्लेटों में बंटा हुआ है। स्थलमंडल में पर्पटी तथा ऊपरी मेंटल को सम्मिलित किया जाता है। इसकी मोटाई महासागरों में 5 से 100 कि.मी. तथा महाद्वीपीय भागों में लगभग 200 कि.मी. होती है। किसी भी प्लेट की पर्पटी महाद्वीपीय, महासागरीय अथवा दोनों ही प्रकार की हो सकती है। सभी प्लेटें स्वतंत्र रूप में पृथ्वी के दुर्बलतामण्डल (Asthenosphere) पर भिन्न-भिन्न दिशाओं में भ्रमण करती हैं। इनके भ्रमण के लिए ऊर्जा, पृथ्वी के आंतरिक भागों में ऊष्मा की भिन्नता के कारण उत्पन्न होने वाली संवहन धाराओं से प्राप्त होती है। प्लेट विवर्तनिकी के मुख्य लक्षणों को उपर्युक्त चित्र में दर्शाया गया है।

- पृथ्वी का निर्माण विभिन्न प्लेटों से हुआ है। इन प्लेटों के स्वभाव तथा प्रवाह से संबंधित अध्ययन को प्लेट विवर्तनिकी कहते हैं। ये प्लेटें अपने ऊपर स्थित महाद्वीप तथा महासागरीय भागों को अपने प्रवाह के साथ स्थानांतरित करती हैं।
- प्लेट विवर्तनिकी के सिद्धांत के अनुसार पृथ्वी का स्थलमंडल सात मुख्य प्लेटों व कुछ छोटी प्लेटों में विभक्त है। नवीन वलित पर्वत श्रेणियाँ, खाइयाँ और भ्रंश इन मुख्य प्लेटों को सीमांकित करते हैं। एक विवर्तनिक प्लेट (जिसे लिथोस्फरिक प्लेट भी कहा जाता है), ठोस चट्टान का विशाल व अनियमित आकार का खंड है, जो महाद्वीपीय व महासागरीय स्थलमंडलों से मिलकर बना है।
- ये प्लेटें दुर्बलतामंडल (Asthensophere) पर एक दृढ़ इकाई के रूप में क्षैतिज अवस्था में चलायमान हैं। स्थलमंडल में भू-पर्पटी एवं ऊपरी मेंटल को सम्मिलित किया जाता है, जिसकी मोटाई महासागरों में 5 से 100 किमी. है। एक प्लेट को महाद्वीपीय या महासागरीय प्लेट भी कहा जा सकता है, जो इस बात पर निर्भर है कि उस प्लेट का अधिकतर भाग महासागर अथवा महाद्वीप से संबद्ध है। उदाहरणार्थ प्रशांत प्लेट मुख्यतः महासागरीय प्लेट है, जबकि यूरेशियन प्लेट को महाद्वीपीय प्लेट कहा जाता है।

इनमें प्रमुख प्लेट निम्नलिखित हैं-

✓ (1) अमेरिकी प्लेट, (2) अफ्रीकी प्लेट, (3) यूरेशियाई प्लेट, (4) अंटार्कटिका प्लेट, (5) प्रशांत प्लेट तथा (6) इंडो-आस्ट्रेलिया-न्यूजीलैंड प्लेट। छोटी प्लेटों में नासका प्लेट

(पूर्वी प्रशांत प्लेट), कोकोस प्लेट, अरेबियन प्लेट, फिलीपाइन प्लेट, स्कोशिया प्लेट व केरेबियन प्लेट, जुआन-डि-फूका प्लेट, सोमाली प्लेट, बर्मी प्लेट आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

✓ प्लेटों के किनारे ही भूगर्भिक क्रियाओं के दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इन्हीं किनारों के सहारे भूकंपीय, ज्वालामुखीय तथा विवर्तनिक घटनाएँ घटित होती हैं। सामान्य रूप से प्लेटों के किनारों (Margins) को तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है-

- **रचनात्मक किनारा/ अपसारी प्लेट (Constructive Margin)**- ये तापीय संवहन तरंगों के उपरिमुखी स्तंभों के ऊपर अवस्थित होते हैं। इसके कारण दो प्लेटें एक-दूसरे की विपरीत दिशा में गतिशील होती हैं एवं दोनों के मध्य एक भ्रंश दरार पड़ जाती है जिसके सहारे एस्थेनोस्फीयर का मैग्मा ऊपर आता है और ठोस होकर नवीन भू-पर्पटी का निर्माण करता है। अतः ये प्लेटें **'अपसारी प्लेटें'** कहलाती हैं। इस तरह की घटनाएँ मध्य महासागरी कटकों के सहारे घटित होती हैं। मध्य अटलांटिक कटक इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।
- **विनाशात्मक किनारा/ अभिसारी प्लेट (Destructive Margin)**- ये तापीय संवहन तरंगों के **अधोमुखी स्तंभों के ऊपर अवस्थित होते हैं। इससे दो प्लेटें अभिसरित होती हैं एवं आपस में टकराती हैं।** इस प्रक्रिया में अधिक घनत्व की प्लेट कम घनत्व की प्लेट के **नीचे क्षेपित (Subduct)** हो जाती है। इस क्षेत्र को बेनी मेखला या बेनी ऑफ जोन (Beni off Zone) कहते हैं। चूँकि यहाँ प्लेट का विनाश होता है अतः इसे विनाशात्मक किनारा कहते हैं तथा ऐसी प्लेटें **अभिसारी प्लेट (Converging Plate)** कहलाती हैं। अभिसारी प्लेट की अंतःक्रिया की तीन दशाएँ हो सकती हैं-
- **जब एक अभिसारी प्लेट महाद्वीपीय व दूसरी महासागरीय हों** तो महासागरीय प्लेट अधिक भारी होने के कारण महाद्वीपीय प्लेट के नीचे क्षेपित हो जाती है जिससे गर्त का निर्माण होता है एवं उसमें अवसादों के निरंतर जमाव व वलन से मोड़दार पर्वतों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए **रॉकी व एंडीज पर्वत।** बेनी ऑफ जोन (Beni off Zone) में पिघला हुआ मैग्मा ही भू-पर्पटी को तोड़ते हुए ज्वालामुखी का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए अमेरिकी प्लेट का पश्चिमी किनारा जहाँ पर्वतों का निर्माण हुआ है, वहाँ अक्सर ज्वालामुखी उद्‌गार देखने को मिलते हैं। एंडीज के आंतरिक भागों में **कोटापैक्सी व चिंबाराजों** जैसे ज्वालामुखी का पाया जाना इसी अंतःक्रिया द्वारा समझा जा सकता है।
- **जब दोनों प्लेट महासागरीय हों** तो अपेक्षाकृत बड़े व भारी प्लेट का धंसाव होता है एवं महासागरीय गर्तों व ज्वालामुखी द्वीपों की एक श्रृंखला सी बन जाती है। **प्रशांत प्लेट व जापान सागर प्लेट** या फिलीपींस प्लेट की अभिसरण क्रिया के द्वारा इसे समझा जा सकता है।
- **जब दोनों प्लेटें महाद्वीपीय हों** तो बेनी ऑफ जोन क्षेत्र में क्षेपण इतना प्रभावी नहीं हो पाता कि ज्वालामुखी उत्पन्न हो सकें परन्तु ये क्षेत्र भूगर्भिक रूप से अस्थिर क्षेत्र होते हैं एवं यहाँ बड़े मोड़दार पर्वतों का निर्माण होता है। यूरेशियन प्लेट व इंडियन प्लेट के टकराने से टेथिस भूसन्नति के अवसादों के वलन व प्लेटीय किनारों के मुड़ाव से उत्पन्न **हिमालय पर्वत** का उदाहरण इस संदर्भ में दिया जा सकता है।
- **संरक्षी किनारा (Conservative Margin)**- जब दो प्लेटें एक-दूसरे के समानांतर खिसकती है तो उनमें कोई अन्तः क्रिया नहीं हो पाती, अतः इसे **'संरक्षी किनारा'** कहते हैं। यहाँ रूपांतर भ्रंश (Transform Fault) का निर्माण होता है। इस सीमा के सहारे न तो प्लेट का क्षय होता है और न ही नई क्रस्ट का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए **केलिफोर्निया** के निकट निर्मित **सान एंड्रियास।**

फॉल्ट प्लेट प्रवाह दरें (Rates of Plate Movement)

- सामान्य व उत्क्रमण चुंबकीय क्षेत्र की पट्टियाँ जो मध्य-महासागरीय कटक के समानांतर हैं, प्लेट प्रवाह की दर समझने में वैज्ञानिकों के लिए सहायक सिद्ध हुई हैं। प्रवाह की ये दरें बहुत भिन्न हैं। आर्कटिक कटक की प्रवाह दर सबसे कम है (2.5 सेंटीमीटर प्रतिवर्ष से भी कम)। ईस्टर द्वीप के निकट पूर्वी प्रशांत महासागरीय उभार, जो चिली से 3,400 किमी. पश्चिम की ओर दक्षिण प्रशांत महासागर में है, इसकी प्रवाह दर सर्वाधिक है (जो 5 सेमी- प्रतिवर्ष से भी अधिक है)।

प्लेट को संचालित करने वाले बल (Forces for the plate movement)

जिस समय वेगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत प्रस्तुत किया था, उस समय अधिकतर वैज्ञानिकों का विश्वास था कि पृथ्वी एक ठोस, गति रहित पिण्ड है। यद्यपि सागरीय अधस्तल विस्तार और प्लेटें विवर्तनिक-दोनों सिद्धांतों ने इस बात पर बल दिया कि पृथ्वी का धरातल व भूगर्भ दोनों ही स्थिर न होकर गतिमान हैं। प्लेट विचरण करती हैं- यह तथ्य अकाट्य सत्य है। इनकी गति को प्रभावित करने वाले निम्न बल हैं-

- **पृथ्वी का घूर्णन**- इस बल के कारण प्लेटों की गति का वर्णन सर्वप्रथम आयलर महोदय ने किया था। पृथ्वी का भू-मध्य रेखीय भाग अधिक तीव्र गति से घूर्णन करता है अर्थात यहाँ पर केन्द्रापसारी बल ध्रुवों से अधिक होता है। इसी कारण यदि कोई प्लेट ध्रुवीय भाग में स्थित होती है तो वह भूमध्य रेखीय क्षेत्र की ओर गति करती है जैसे- भारतीय प्लेट का दक्षिणी ध्रुव से भू-मध्य रेखा की ओर प्रवाहित होना। इसी प्रकार इस बल के कारण ऐसी प्लेटें जो उत्तर से दक्षिण तक विस्तृत है वे पूरब से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। जैसे- अमेरिकी व प्रशान्त प्लेटों की पश्चिम की ओर गति होना।

- **प्लूम-** ऐसा माना जाता है कि दृढ़ प्लेट के नीचे चलायमान चट्टानें **वृत्ताकार रूप** में चल रही है। उष्ण पदार्थ धरातल पर पहुँचता है, फैलता है और धीरे-धीरे ठंडा होता है, फिर गहराई में जाकर नष्ट हो जाता है। यही चक्र बारंबार दोहराया जाता है और वैज्ञानिक इसे **संवहन प्रवाह (Convenction flow)** कहते हैं। ऊपर उठती तरंग को प्लूम कहा जाता है और यही प्लेटों के संचलन का प्रमुख कारण है। पृथ्वी के भीतर ताप उत्पत्ति के दो माध्यम हैं- रेडियोधर्मी तत्वों का क्षय और अवशिष्ट ताप। आर्थर होम्स ने सन् 1930 में इस विचार को प्रतिपादित किया जिसने बाद में हैरी हेस की सागरीय तल विस्तार अवधारणा को प्रभावित किया। दृढ़ प्लेटों के नीचे दुर्बल व उष्ण मेंटल है जो प्लेट को प्रवाहित करता है।

भारतीय प्लेट का संचलन (Movement of the Indian Plate)

भारतीय प्लेट में प्रायद्वीपीय भारत और ऑस्ट्रेलिया का महाद्वीपीय भाग सम्मिलित है। हिमालय पर्वत श्रेणियों के साथ-साथ पाया जाने वाला प्रविष्ठन क्षेत्र (Subduction Zone), इसकी उत्तरी सीमा निर्धारित करता है- जो **महाद्वीपीय महाद्वीपीय अभिसरण (Continent-continent convergence)** के रूप में है (अर्थात् दो महाद्वीप प्लेटों की सीमा है)। यह पूर्व दिशा में **म्यांमार** के **अराकानयोमा पर्वत** से होते हुए एक चाप के रूप में जावा खाई तक फैला हुआ है। इसकी पूर्वी सीमा एक विस्तारित तल (Spreading site) है, जो ऑस्ट्रेलिया के पूर्व में दक्षिणी-पश्चिमी प्रशांत महासागर में महासागरीय कटक के रूप में है। इसकी पश्चिमी सीमा **पाकिस्तान** की **किरथर श्रेणियों** का अनुसरण करती है। यह आगे मकरान तट के साथ-साथ होती हुई दक्षिण-पूर्वी **चागोस द्वीप समूह (Chagos Archipelago)** के साथ-साथ **लाल सागर द्रोणी** (जो विस्तारण तल है) में जा मिलती है। भारतीय तथा आर्कटिक प्लेट की सीमा भी महासागरीय कटक से निर्धारित होती है [जो एक अपसारी सीमा (Divergent Boundary) है।] और यह लगभग पूर्व-पश्चिम दिशा में होती हुई न्यूजीलैंड के दक्षिण में विस्तारित तल में मिल जाती है।

- भारत एक वृहत् द्वीप था, जो ऑस्ट्रेलियाई तट से दूर एक विशाल महासागर में स्थित था। लगभग 22.5 करोड़ वर्ष पहले तक टेथीस सागर इसे एशिया महाद्वीप से अलग करता था। ऐसा माना जाता है कि लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले, जब पैंजिया विभक्त हुआ तब भारत ने उत्तर दिशा की ओर खिसकना आरंभ किया। लगभग 4 से 5 करोड़ वर्ष पहले भारत एशिया से टकराया व परिणामस्वरूप हिमालय पर्वत का उत्थान हुआ। आज से लगभग 14 करोड़ वर्ष पहले यह उपमहाद्वीप सुदूर दक्षिण में 50^0 दक्षिणी अक्षांश पर स्थित था। इन दो प्रमुख प्लेटों को टेथीस सागर अलग करता था और तिब्बतीय खंड, एशियाई स्थलखंड के करीब था। भारतीय प्लेट के एशियाई प्लेट की तरफ प्रवाह से दक्कन ट्रैप का निर्माण हुआ। ऐसा लगभग 6 करोड़ वर्ष पहले आरंभ हुआ और एक लंबे समय तक यह जारी रहा। याद रहे कि यह उपमहाद्वीप तब भी भूमध्यरेखा के निकट था। लगभग 4 करोड़ वर्ष पहले और इसके पश्चात् हिमालय की उत्पत्ति आरंभ हुई। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह प्रक्रिया अभी भी जारी है और हिमालय की ऊँचाई अब भी बढ़ रही है।

भारतीय प्लेट की उत्तर-पूर्व ओर गति के प्रमाण

- भारतीय प्लेट के उत्तरी किनारे का अभी भी प्लेट विवर्तनिकी दृष्टि से सक्रिय होना अर्थात भूकंप आना।
- हिमालय श्रेणियों का वार्षिक दर से उत्थान होना।
- अवसाद की गहराई हिमालय पर्वत पाद के पास अधिक (ट्रेंच के निर्माण के कारण) तथा दक्षिण पठार के पास कम होना।
- छोटा नागपुर पठार के पूर्वी व दक्षिणी कगारों के सहारे कोयला पाया जाना इस बात को दर्शाता है कि कभी इस क्षेत्र में भूमध्य रेखीय वन आच्छादित थे।
- मध्य प्रदेश में भूमध्य रेखीय वन की कोकोनट प्रजाति वाले फल का 7 करोड़ वर्ष पुराना जीवाश्म पाया जाना।

कुछ महत्वपूर्ण गर्त

गर्त	गहराई (मीटर)	स्थिति
1. मेरियाना	11,033	प्रशांत महासागर
2. टोंगा	9,000	प्रशांत महासागर
3. मिंडनाओ	10,500	प्रशांत महासागर
4. प्यूरिटो रिको	8,392	अटलांटिक महासार (प. द्वीप समूह)
5. रोमशे	7,254	दक्षिणी अटलांटिक महासागर
6. सुण्डा	8,152	पूर्वी हिन्द महासागर (जावा द्वीप)

विश्व की प्रमुख प्लेटें

- **प्रशान्त प्लेट (Pacific Plate)-** विश्व की सबसे बड़ी प्लेट है। इसने प्रशान्त महासागर का अधिकांश भाग घेर रखा है और यह उत्तर पश्चिम-दिशा में आगे बढ़ती है।
- **उत्तर अमेरिकी प्लेट (The North American Plate)-** उत्तर अमेरिका के विशाल महाद्वीपीय भाग पर विस्तृत है और साथ ही इसने उत्तरी अटलांटिक महासागर के पश्चिमी भाग का अधिकांश भाग घेर रखा है। यह पश्चिमी दिशा में आगे बढ़ती है।
- **दक्षिण अमेरिकी प्लेट (The South American Plate)-** पूरे दक्षिणी अमेरिका तथा दक्षिणी अटलांटिक महासागर के पश्चिमी भाग में विस्तृत है। यह भी पश्चिम की दिशा में ही आगे बढ़ती है।

- **यूरेशियन प्लेट (The Eurasian Plate)**- मुख्यतः महाद्वीपीय प्लेट है, जो यूरेशिया (यूरोप + एशिया) के अधिकांश भाग में विस्तृत है।
- **अफ्रीकन प्लेट (The African Plate)**- अफ्रीका के सम्पूर्ण महाद्वीप तथा इससे संलग्न हिन्द महासागर एवं अटलांटिक महासागर के विस्तृत भाग को घेरे हुए है। यह अपेक्षाकृत स्थिर प्लेट है।
- **भारतीय प्लेट (The Indian Plate)**- हिन्द महासागर के अधिकांश भाग, प्रायद्वीपीय भारत तथा ऑस्ट्रेलिया को घेरे हुए है। यह सामान्यतः उत्तरी दिशा में आगे बढ़ती है।
- **अंटार्कटिक प्लेट (The Antarctic Plate)**- समस्त अंटार्कटिक महाद्वीप तथा इसके इर्द-गिर्द स्थित सभी समुद्री भागों में विस्तृत है। इसके विभिन्न भाग विभिन्न दिशाओं में आगे बढ़ते हैं।
- **नजका प्लेट (The Nazca Plate)**- दक्षिणी अमेरिका के पश्चिम में प्रशांत महासागर के दक्षिणी-पूर्वी भाग में स्थित है और यह पूर्वी दिशा में आगे बढ़ती है।
- **कोकोस प्लेट (The Cocos Plate)**- एक छोटी-सी प्लेट है, जो दक्षिणी अमेरिका के पश्चिम में स्थित है। यह उत्तरी दिशा में आगे बढ़ती है।
- **केरीबियाई प्लेट (The Caribbean Plate)**- केरीबियाई सागर में है और इसके किनारे ट्रांसफॉर्म भ्रंश प्रकृति के हैं।
- **फिलीपींस प्लेट (The Phillippines Plate)**- फिलीपींस द्वीप समूह को घेरे हुए है और यह पश्चिम की ओर अग्रसर है।
- **अरेबियन प्लेट (The Arabian Plate)**- समस्त अरब प्रायद्वीप पर विस्तृत है और उत्तर-पूर्वी दिशा में आगे बढ़ती है।

महाद्वीपीय एवं महासागरीय नितल: एक नजर में

- पृथ्वी के 29 प्रतिशत भाग पर महाद्वीप तथा बाकी भाग पर महासागर फैले हुए हैं।
- 1596 ई. में डच मानचित्रवेत्ता अब्राहम आरटेलियस ने सर्वप्रथम बताया था कि सभी महाद्वीप एक-दूसरे से जुड़े हुए थे।
- जर्मन मौसमविद् अल्फ्रेड वेगनर ने "महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त" सन् 1912 में प्रस्तावित किया।
- महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत महाद्वीप एवं महासागरों के वितरण से संबंधित है।
- महासागर नितल में स्थल से भी अधिक उच्चावच (Relief) संबंधी विविधता है। 'सोनार' (ध्वनि गंभीरता मापी यंत्र) की मदद से समुद्री गहराइयों का परोक्ष रूप से मापन कर इसका मानचित्रण संभव हुआ है।
- किसी तरल अथवा गैस में स्वयं के अणुओं के स्थानान्तरण द्वारा एक भाग से दूसरे भाग में होने वाला ऊर्जा संचार संवहन कहलाता है।
- संवहन धारा सिद्धान्त 1930 में आर्थर होम्स द्वारा दिया गया।
- 1960 में हेरी हेस द्वारा सागर नितल प्रसरण का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया जो धरातलीय सतह के विस्तार की संकल्पना प्रस्तुत करता है।
- स्थलीय दृढ़ भूखण्ड को प्लेट कहा जाता है, सम्पूर्ण पृथ्वी 6 बड़ी तथा अन्य छोटी प्लेटों से निर्मित मानी जाती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

भूकंप एवं सुनामी
(Earthquake & Tsunami)

भूकंप: परिचय (Earthquake : Introduction)

पृथ्वी के भूपटल में अंतर्जात एवं बहिर्जात बलों तथा प्राकृतिक या कृत्रिम कारणों से होने वाले कम्पन्न को भूकंप (Earthquake) कहते हैं। इसे भूपटल में कम्पन अथवा उस लहर के रूप में भी जाना जाता है, जो धरातल के नीचे अथवा ऊपर चट्टानों के लचीलेपन या गुरुत्वाकर्षण की समस्थिति या सन्तुलन की दशा में क्षणिक अव्यवस्था के कारण उत्पन्न होती है। यह भूपटल में असंतुलन की दशा का परिचायक तथा धरातल पर विनाशकारी प्रभावों का जनक होता है।

भूकंप मूल अथवा उत्पत्ति केन्द्र (Focus)

- धरातल के नीचे जिस स्थान पर भूकंप की घटना का प्रारम्भ होता है, उसे भूकंप का उत्पत्ति केन्द्र या भूकंप मूल कहा जाता है।
- विश्व के अधिकांश भूकंप मूल भूतल से 50 से 100 किमी. नीचे होते हैं।

भूकंप अधिकेन्द्र (Epicenter)

- भूकंप मूल के ठीक ऊपर स्थित वह लम्बवत् स्थान, जहाँ सबसे पहले भूकंपीय तरंगों का पता चलता है, अधिकेन्द्र कहलाता है।
- भूकंप से प्रभावित क्षेत्रों में अधिकेन्द्र ही ऐसा बिन्दु है, जो भूकंप मूल के सबसे समीप स्थित होता है।

भूकंपलेखी या भूकंपमापी यंत्र (Seismograph)

- जिस यंत्र के द्वारा भूकंपीय लहरों का अंकन किया जाता है, उसे भूकंपीय यंत्र या सीस्मोग्राफ कहते हैं। भूकंप के दौरान विमुक्त हुई ऊर्जा का मापन रिएक्टर स्केल पर किया जाता है। यह एक लघुगणकीय (Logarithmatic) स्केल है जिस पर मान 1 से 9 तक अंकित होते हैं। इस स्केल पर 1 मान की वृद्धि विमुक्त हुई ऊर्जा से 32 गुना की वृद्धि को दर्शाती है।

सिस्मोलॉजी या भूकंपविज्ञान (Seismology)

- भूकंपमापी यंत्र द्वारा अंकित लहरों का अध्ययन करने वाला विषय या विज्ञान सिस्मोलॉजी के नाम से जाना जाता है।

भूकंपीय तीव्रता का मापन

भूकंपों की तीव्रता का मापन वर्तमान समय में दो पैमानों के आधार पर किया जाता है-

- **मरकेली पैमाना (Mercalli Scale)-** वर्तमान मरकेली पैमाने पर भूकंपीय तीव्रता का मापन 1 से 12 तक के अंकों के द्वारा दर्शाया जाता है, जिनका आधार अनुभावात्मक पर्यवेक्षण है।
- **रिक्टर स्केल (Richter Scale)-** इसका प्रयोग भूकंपीय परिणाम के मापन के लिए वर्तमान में सर्वाधिक किया जाता है। इस पैमाने का विकास सन् 1935 में अमेरिकी भूवैज्ञानिक चार्ल्स फ्रांसिस रिक्टर ने किया था। इसमें आगे वाली संख्या अपने पीछे वाली संख्या के 10 गुना भूकंपीय परिणाम को प्रस्तुत करती है।

भूकंप के कारण (Reason of Earthquake)

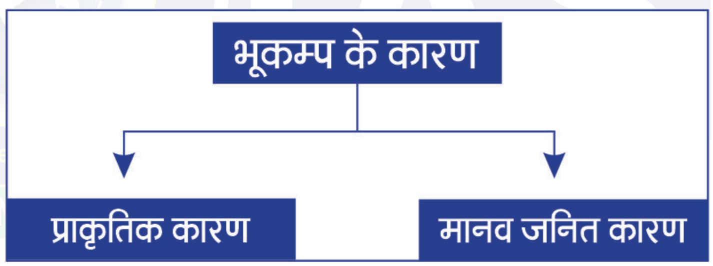

प्राकृतिक कारण (Natural Causes)

- **भ्रंश-** भूगर्भिक हलचलों द्वारा भूपटलीय भ्रंशन तथा वलन होता है, जिसका प्रमुख कारण तनावमूलक तथा संपीडन बल है। तनावमूलक बल से प्रायः भ्रंशों का निर्माण होता है जबकि संपीडन बल के कारण वलन एवं क्षेपण की प्रक्रियाएँ होती हैं, जिसके फलस्वरूप भूकंप की उत्पत्ति होती है।
- उत्तरी अमेरिका का जुआन-डी-फूका भ्रंश तथा अफ्रीका की महान भ्रंश घाटी इसके उदाहरण हैं।
- **ज्वालामुखी क्रिया-** ज्वालामुखी तथा भूकंप की क्रिया एक-दूसरे से अंतर्संबंधित है। प्रत्येक ज्वालामुखी क्रिया के साथ सामान्यतः भूकंप की उत्पत्ति होती है तथा इस भूकंप की तीव्रता ज्वालमुखी क्रिया की तीव्रता पर निर्भर करती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक भूकंपीय क्रिया के साथ ज्वालमुखी क्रिया भी हो।

- **गैसों का फैलाव-** भूपटल के नीचे गैसों के प्रसार से सामान्यतः भूकंप का अनुभव होता है। जब भूपटल के नीचे जल पहुँचता है तो पृथ्वी के आंतरिक भाग में अत्यधिक ताप के कारण उसके गैस और वाष्प में बदलने से आयतन में वृद्धि होती है तथा वह ऊपर की ओर गतिशील होता है, इससे भूकंप की उत्पत्ति होती है।
- **प्लेट विवर्तनिकी-** इन संकल्पना के अनुसार, स्थल भाग कठोर प्लेटों से निर्मित गतिमान अवस्था में विद्यमान है और इन्हीं रचनात्मक, विनाशात्मक तथा संरक्षी प्लेटों के सीमांतों के सहारे भूकंपीय घटनाएँ घटित होती हैं।

मानव जनित कारण (Anthropogenic Causes)

- खनन क्रिया जिसमें जीवश्म ईंधन एवं अन्य खनन शामिल हैं।
- सड़क, बांध, जलाशय निर्माण के लिए प्रधंसक (डाइनेमाइट) द्वारा शैलों का विस्फोट किया जाना।
- परमाणु विस्फोट एवं भूमिगत परमाणु परीक्षण आदि विभिन्न तीव्रता और परिमाण भूकंपों को बढ़ावा देते हैं।

भूकंप के प्रकार (Types of Earthquake)

भूकंप मूल की गहराई के आधार पर भूकंपों को तीन वर्गों में रखा जाता है-

- **छिछले उद्गम केन्द्र के भूकंप (Normal Earthquake)-** ऐसे भूकंपों में भूकंप का मूल धरातल से 50 किमी. तक की गहराई पर स्थित होता है।
- **मध्यम उद्गम केन्द्र के भूकंप (Intermediate Earthquake)-** ऐसे भूकंपों की उत्पत्ति केन्द्र की गहराई में 50 से 250 किमी. तक होती है।
- **गहरे उद्गम केन्द्र के भूकंप (Deep focus Earthquake)-** इनके केन्द्र की गहराई धरातल के नीचे 250 से 700 किमी. के बीच होती है। इनके बारे में अभी विशेष जानकारी का अभाव है।

स्थिति के आधार पर भूकंप दो प्रकार के होते हैं-

- स्थलीय भूकंप और
- सागरीय भूकंप आदि।

भूकंपीय तरंगें (Seismic Waves)

भूकंप की उत्पत्ति के समय भूकंप मूल से उठने वाली लहरों को भूकंपीय लहरें कहते हैं। ये लहरें सबसे पहले भूकंप मूल के ठीक ऊपर धरातल पर स्थित अधिकेन्द्र (Epicentre) पर पहुँचती हैं। भूकंपीय तरंगे P, S और L प्रकार की होती हैं।

P तरंगें

- P तरंगें अनुदैर्ध्य तरंगें होती हैं जो ध्वनि तरंगों के समान ठोस, द्रव तथा गैस तीनों माध्यमों से होकर गुजर सकती हैं। इन तरंगों की सर्वाधिक गति ठोस माध्यम में होती है। पृथ्वी की सतह पर सबसे पहले 'P' तरंगों का ही अनुभव होता है। इसलिए इन्हें 'प्राथमिक तरंगें' (Primary Waves) भी कहते हैं।

S तरंगें

- P तरंगों के पश्चात् S तरंगें पृथ्वी की सतह पर पहुंचती हैं, यही कारण है कि इन्हें 'द्वितीय तरंगें' (Secondary Waves) अथवा 'गौण तरंगें' भी कहते हैं।
- ये प्रकाश तरंगों के समान 'अनुप्रस्थ तरंगें' होती हैं।
- इनकी गति P से कम एवं L से अधिक होती है।
- इनकी तीव्रता P से अधिक एवं L से कम होती है।
- ये केवल 'ठोस माध्यम' में गमन करती हैं।

L तरंगें

- इन्हें 'लव वेव' (Love Waves) भी कहते हैं। इनका नामकरण वैज्ञानिक 'एडवर्ड हफ लव' के नाम पर किया गया है। इनकी गति सबसे (P एवं S से) कम होती है, अतः L तरंगें पृथ्वी की सतह पर P तथा S के पश्चात प्रकट होती हैं। इनकी तीव्रता P एवं S से अधिक होती है तथा ये सर्वाधिक विनाशकारी होती हैं।

समभूकंप रेखाएँ (Isoseismal Lines)

भूकंपीय लहरों द्वारा उत्पन्न समान तीव्रता वाले बिंदुओं (Places of Equal Intensity) को मिलाने वाली रेखाओं को 'समभूकंपी' के नाम जाना जाता है। ये रेखाएँ अधिकेन्द्र से प्रायः वृत्ताकार होती हैं।

भूकंपीय तरंगों का छाया क्षेत्र (Shadow Zone of Seismic Waves)

पृथ्वी पर एक ऐसा क्षेत्र जहाँ पर भूकंपलेखी द्वारा भूकंपीय तरंगों का अभिलेखन नहीं हो पाता, उसे भूकंपीय तरंगों का 'छाया क्षेत्र' कहते हैं अर्थात् इस क्षेत्र में भूकंपीय तरंगों का संचरण नहीं होता है।

- भूकंप के अधिकेन्द्र से 105° के भीतर सभी स्थानों पर P एवं S दोनों तरंगें गति करती हैं, जबकि 105° से 145° के बीच दोनों तरंगों का अभाव होता है इसलिए यह क्षेत्र दोनों तरंगों (P एवं S) के लिए 'छाया क्षेत्र' होता है। 145° के बाद P तरंगें पुनः प्रकट हो जाती हैं, जबकि S तरंगें यहाँ भी लुप्त ही रहती हैं। इस प्रकार, 105° से 145° के बीच पृथ्वी के चारों तरफ P तरंगों के छाया क्षेत्र की एक पट्टी पाई जाती है, जिसे 'भूकंपीय तरंगों का छायाक्षेत्र' कहते हैं।
- भूंकपीय छाया क्षेत्र बनने का प्रमुख कारण 'P' तथा 'S' तरंगों की प्रवृत्ति है क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी का आंतरिक भाग तरल तथा ठोस अवस्था में है। अतः P तरंगों की गति तरल भागों में धीमी हो जाती है, वहीं S तरंगें तरल भाग में लुप्त हो जाती हैं। S तरंगों का छाया क्षेत्र, P तरंगों के छाया क्षेत्र से अधिक होता है।

भूकंपों का विश्व वितरण

विश्व में भूकंपों का वितरण उन्हीं क्षेत्रों से सम्बन्धित है, जो अपेक्षाकृत कमजोर तथा अव्यवस्थित हैं। भूमण्डल के लगभग 40% भूकंप क्षेत्र महासागर तथा महाद्वीपों या द्वीपों के मिलन बिन्दु पर पाए जाते हैं।

भूकंप के ऐसे क्षेत्र इस प्रकार हैं-

- नवीन मोड़दार/वलित पर्वतों के क्षेत्र।
- महाद्वीपीय तथा महासागरीय सम्मिलन के क्षेत्र।
- विश्व के ज्वालामुखी क्षेत्र।
- दरार एवं भूपटल भ्रंश की क्रिया वाले क्षेत्र।

विश्व में भूकंप की कुछ विस्तृत पेटियाँ इस प्रकार हैं-

- **प्रशांत परिधि पेटी (Circum Pacific Belt)**- इस पेटी में सम्पूर्ण विश्व के 63% भूकंपों का अनुभव किया जाता है। प्रशांत महासागर के इस विशाल क्षेत्र को 'अग्नि वलय' के नाम से जाना जाता है।

इस पेटी के अंतर्गत तीन प्रमुख क्षेत्र शामिल हैंः-

- ✓ सागर तथा स्थल भागों के मिलन बिन्दु।
- ✓ नवीन मोड़दार पर्वतीय क्षेत्र।
- ✓ ज्वालामुखी क्षेत्र।

- इस क्षेत्र में चिली, केलिफोर्निया, अलास्का, जापान, फिलीपींस, न्यूजीलैण्ड तथा मध्य महासागरीय भागों में भूकंप के विस्तृत क्षेत्र आते हैं।
- **मध्य महाद्वीपीय पेटी (Mid-Continental Belt)**- इस पेटी में विश्व के 21% भूकंप आते हैं। यह पट्टी मैक्सिको से शुरू होकर अटलांटिक महासागर, भूमध्य सागर और आल्पस, काकेशस जैसे नवीन वलित पर्वत श्रेणियों से होती हुई हिमालय पर्वत तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र तक फैली हुई है। यह पट्टी विषुवत रेखा के लगभग समानांतर है। इसमें आने वाले अधिकांश भूकंप संतुलनमूलक तथा भ्रंशमूलक भूकंप हैं। इस क्षेत्र के सबसे प्रमुख भूकंप क्षेत्र इटली, चीन, एशिया माइनर तथा बाल्कन प्रायद्वीप हैं। भारत में भूकंप क्षेत्र घाटी इसी पेटी के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है। भारत में भूकंप मुख्यतः हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में या पर्वत पदीय क्षेत्र तक सीमित है। इसका प्रमुख कारण है कि हिमालय पर्वत की निर्माण प्रक्रिया अभी जारी है तथा भारतीय प्लेट यूरेशियाई प्लेट की ओर खिसक रही है। भारत का प्रायद्वीपीय भाग स्थिर और दृढ़ स्थल खण्ड होने के कारण न्यूनतम भूकंप प्रभावित क्षेत्र के अंतर्गत आता है।
- **मध्य अटलांटिक पेटी (Mid-Atlantic Belt)**- इस पेटी का विस्तार मध्य अटलांटिक कटक के सहारे पाया जाता है। इसमें भूमध्य रेखा के समीपवर्ती क्षेत्रों में सर्वाधिक भूकंप आते हैं। इस पेटी में भूकंप आने का मुख्य कारण सागर तल प्रसरण है।

अन्य क्षेत्र

विश्व में भूकंप के अन्य क्षेत्र हैं-

- नील नदी से लेकर सम्पूर्ण अफ्रीका का पूर्वी भाग।
- अदन की खाड़ी से अरब सागर तक का क्षेत्र।
- हिन्द महासागरीय क्षेत्र।

भूकंप के प्रभाव (Effect of Earthquake)

भूकंप को उसकी विनाशकारी प्रभाव के कारण मानव के लिए अभिशाप माना जाता है। यद्यपि भूकंप के कुछ लाभकारी प्रभाव भी होते हैं।

विनाशकारी प्रभाव

- नगरों का नष्ट होना एवं जान-माल की क्षति।
- आधारभूत संरचनाओं, जैसे- पुल, रेल की पटरियाँ, भवन आदि की क्षति।
- भूकंप के कारण भूस्खलन, बाढ़, आग लगना जैसे आकस्मिक दुर्घटनाओं का जन्म होना।
- कई बार समुद्री भाग में भूकंप आ जाने से सुनामी जैसी आपदा पैदा हो जाती है, जिससे तटीय क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर तबाही होती है।

लाभकारी प्रभाव

- भूकंप से गर्तों का निर्माण होता है, इससे जल एकत्र होने से झीलों का निर्माण होता है।
- सागर के तटीय भागों में भूकंपीय क्रियाओं के कारण निर्मित खाड़ियाँ प्राकृतिक बंदरगाहों के लिए उचित स्थान प्रस्तुत करती हैं।

- भूकंप से उत्पन्न दबाव व भ्रंशन के कारण मूल्यवान तथा दुर्लभ खनिज पदार्थ पृथ्वी के आंतरिक भाग से धरातल पर आ जाते हैं।
- ज्वालामुखीय भूकंप से नए धरातलीय क्रस्ट का निर्माण होता है।
- भूकंपीय लहरों द्वारा पृथ्वी की आंतरिक बनावट के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

भारत के भूकंप क्षेत्र (Earthquake Zone of India)

भारत के हिमालय क्षेत्र में अधिकांश भूकंप आते हैं। गंगा के मैदान में भी भूकंपों का प्रभाव दिखाई देता है। पिछले वर्षों तक दक्षिणी पठार को भूकंप से मुक्त माना जाता था, किन्तु 1968 में महाराष्ट्र के कोयना बाँध क्षेत्र में आये भूकंप ने इस धारणा को गलत सिद्ध कर दिया। भारत के भूकंप क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

- **हिमालय क्षेत्र-** यह क्षेत्र नवीन पर्वतीय श्रृंखलाओं का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में संतुलन की अवस्था अभी पूर्ण नहीं हो पायी है जिसके कारण निर्माण कार्य का अभी जारी रहना है। इस प्रकार भूगर्भिक अव्यवस्था के कारण इस क्षेत्र में भूकंप का उद्भव होता रहता है। यह भारत का सबसे बड़ा भूकंप क्षेत्र है। इस क्षेत्र में भूकंप का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यूरेशियन तथा भारतीय प्लेटों का आपस में टकराव है।
- **मैदानी क्षेत्र-** इस क्षेत्र के अंतर्गत भारत का उत्तरी मैदानी भाग आता है, जिसमें गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र का मैदानी भाग सम्मिलित है। इस क्षेत्र पर हिमालय क्षेत्र की भूगर्भिक घटनाओं का प्रभाव अधिक पड़ता है जिसके कारण इस क्षेत्र में भूकंपीय घटनाएँ प्रेरित होती हैं।
- दूसरा कारण, इस मैदान का निर्माण जलोढ़ मिट्टी से होना है, जिसमें हिमालय के निर्माण के समय से ही कई दरारों का विकास हो गया था। इन दारारों के सहारे भी भूकंपों का उद्भव होता है।
- **दक्षिण प्रायद्वीपीय क्षेत्र-** प्रायद्वीपीय क्षेत्र, संसार के प्राचीनतम एवं कठोर स्थलखण्डों में आता है। इसी कारण इस क्षेत्र को संतुलन की दृष्टि से स्थिर माना जाता है तथा उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों की तुलना में इस क्षेत्र में भूकंपीय घटनाओं का उद्भव कम होता है। इस क्षेत्र में भूकंप प्रायः प्राचीन प्राकृतिक दरारों और भ्रंशों के सहारे उत्पन्न होते हैं। 1968 के कोयना भूकंप तथा 1993 में लातूर भूकंप का कारण प्राकृतिक दरारे ही थीं।

भूकंपीय जोन

भूकंप जोन अंचल	भूकंपीय तीव्रता	कुल क्षेत्र का प्रतिशत	प्रमुख क्षेत्र
V (अत्यधिक जोखिम क्षेत्र)	9 (या अधिक)	12%	समस्त उत्तर- पूर्वी क्षेत्र जम्मू - कश्मीर के कुछ क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के कुछ प्रदेश उत्तराखंड के कुछ क्षेत्र गुजरात के कच्छ का रन उत्तरी बिहार एव अंडमान- निकोबार द्वीप समूह के कुछ भाग
IV (अधिक जोखिम क्षेत्र)	8	18%	जम्मू-कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के शेष भाग दिल्ली सिक्किम उत्तर प्रदेश, बिहार व पश्चिम बंगाल के उत्तरी भाग गुजरात, राजस्थान व महाराष्ट्र के कुछ भाग
III (मध्यम जोखिम क्षेत्र)	7	27%	केरल, गोवा व लक्षद्वीप उत्तर प्रदेश, गुजरात व पश्चिम बंगाल का शेष भाग पंजाब, बिहार राजस्थान, मध्य प्रदेश, झारखंड, ओडिशा, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु व कर्नाटक के कुछ भाग
I तथा II (निम्न जोखिम क्षेत्र)	6 (या कम)	43%	देश के शेष अन्य क्षेत्र

सुनामी (Tsunamis)

भूकंपों के प्रभाव से सागरीय भागों में उत्पन्न होने वाली ऊँची तथा तीव्रगति की लहरों को सुनामी कहा जाता है। अंग्रेजी का Tsunami शब्द जापानी भाषा के दो भागों 'tsu' =harbour अर्थात पोताश्रय तथा nami = wave अर्थात् तरंग से बना है। सुनामी एक तरंग नहीं होती बल्कि तरंगों की श्रृंखला होती है जो महासागरीय नितल के निकट अथवा उसके नीचे भूगर्भिक परिवर्तनों के कारण पैदा होती है। उल्लेखनीय है कि जितने भी भूकंप आते हैं सभी से सुनामी

की उत्पत्ति नहीं होती है। सुनामी के लिए आवश्यक है कि भूकंप समुद्री सतह के नीचे हो या समुद्र के पास हो।

सुनामी के कारण

- **भूकंप-** सुनामी महासागरीय नितल पर भूकंप व ज्वालामुखी उद्गार से पैदा होती है। परंतु अधिकांश सुनामी भूकंपों से पैदा होती है और ये सबसे अधिक विनाशकारी होती हैं।
- जब कभी महासागरीय नितल पर रिक्टर मापनी के अनुसार 7.5 से अधिक शक्ति का भूकंप आता है तो नितल पर बड़े पैमाने पर हलचल मच जाती है और उसके ऊपर के जल का संतुलन बिगड़ जाता है। जैसे ही जल दुबारा अपना संतुलन प्राप्त करने का प्रयास करता है, वैसे ही तरंगें पैदा हो जाती हैं। ये तरंग भूकंप के अधिकेन्द्र पर जल के ऊपर उठ जाने से बनती हैं और अधिकेन्द्र से चारों ओर समकेन्द्रीय वृत्तों के रूप में आगे बढ़ती हैं। स्मरणीय है कि सभी भूकंप सुनामी को जन्म नहीं देते। सुनामी उसी स्थिति में पैदा होती है जब भूकंप के कारण ऊर्ध्वाधर दिशा में समुद्री जल में हलचल पैदा हो। यह हलचल महासागरीय नितल पर भूकंप, भ्रंश अथवा प्लेटों के अभिसरण से पैदा होती है।
- **ज्वालामुखी-** जब समुद्र में ज्वालामुखी फटता है तो यह बड़ी मात्र में समुद्र जल का विस्थापन कर देता है और सुनामी पैदा होती है। 26 अगस्त, 1883 को इण्डोनेशिया के सुण्डा जलडमरूमध्य में क्राकाताओं ज्वालामुखी के फटने से 40 मीटर ऊँची लहरें पैदा हो गई थीं। (विद्वानों की मान्यता है कि, 1490 ई. पू. यूनान की मिनोअन सभ्यता का विनाश उस सुनामी से हुआ था जो एजियन सागर में ज्वालामुखी फटने से पैदा हुई थी।)
- यद्यपि सुनामी की उत्पत्ति का मुख्य कारण शक्तिशाली भूकंप (समान्यता रिक्टर मापनी पर 7.5 से अधिक) है और भूकंप मुख्यतः भूकंपीय क्षेत्रों में ही आते हैं, तथापि सुनामी का कोई निश्चित क्षेत्र नहीं है और यह विश्व के किसी भी भाग में विनाश लीला कर सकती है। परंतु फिर भी यह देखा गया है कि विश्व का सबसे बड़ा प्रशांत महासागर सुनामी द्वारा सबसे अधिक प्रभावित है। इसका कारण यह है कि प्रशान्त प्लेट बड़ी अस्थिर प्लेट है जिसके पश्चिमी किनारे पर अभिसरण तथा पूर्वी किनारे पर की क्रियाएं होती रहती हैं। इन क्रियाओं से भूकंप आते रहते हैं और ज्वालामुखी फटते रहते हैं। अधिक शक्तिशाली भूकंप अथवा ज्वालामुखी उद्गार से सुनामी का जन्म होता है। उदाहरणतया पश्चिमी प्रशांत महासागर की गहरी खाइयों में भूकंप आने से प्रायः सुनामी बनती रहती हैं। अनुमान है कि जब से सुनामी का रिकॉर्ड रखा गया है तब से अब तक जापान के तट को 150 सुनामियों ने प्रभावित किया है। इसी प्रकार इंडोनेशिया में अब तक 30 सुनामियां आ चुकी हैं जिनसे 50,000 से भी अधिक व्यक्तियों की जानें गई हैं। इसमें 26 जनवरी, 2004 की सुनामी सम्मिलित नहीं है। प्रशान्त महासागर में औसतन दो सुनामी प्रति वर्ष आती हैं। प्रशांत प्लेट के किनारों पर विश्व के दो-तिहाई से भी अधिक भूकंप आते हैं। प्रशान्त महासागर का अग्नि वलय फिजी, पापुआ न्यूगिनी, फिलीपींस, जापान एवं रूस के पूर्वी तट तथा अलास्का, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको तथा दक्षिणी अमेरिका तक विस्तृत है। भारत इस अग्नि वलय से बाहर और अपेक्षाकृत सुरक्षित माना जाता है। परन्तु 2004 की सुनामी से यह स्पष्ट हो गया है कि भारत भी सुनामी के प्रकोप से सुरक्षित नहीं है।

सुनामी के प्रभाव (Effects of Tsunamis)

शक्तिशाली सुनामी के दूरगामी प्रभाव भयंकर होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण प्रभाव इस प्रकार हैं-

- **जन-धन की हानि-** सुनामी से तटीय क्षेत्रों में जन-धन की अपार क्षति होती है। 26 दिसंबर, 2004 को हिन्द महासागर की सुनामी से 11 विभिन्न देशों में 2,80,000 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी, अतः इसे अंतराष्ट्रीय त्रसदी का नाम दिया गया है। दस लाख से अधिक व्यक्ति बेघर हो गये। इसके अतिरिक्त अरबों रूपए की सम्पत्ति क्षतिग्रस्त हो गई। घरों, सरकारी भवनों, रेलों एवं सड़कों आदि की भारी हानि हुई।
- **भू-आकृतिक परिवर्तन-** 26 दिसम्बर, 2004 की सुनामी इतनी शक्तिशाली थी कि इससे कई भू-आकृतिक परिवर्तन हो गए। सुमात्र के निकट कई छोटे-छोटे द्वीप या तो पूर्णतया नष्ट हो गये या उनमें बड़े पैमाने पर विकार आ गया। भारत का दक्षिणतम छोर इंदिरा प्वाइंट, लगभग पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था। भारतीय एवं म्यांमारी प्लेटों के आपस में टकराने से हिन्द महासागर में 1200 किमी. लंबा तथा 150-200 किमी. चौड़ा भ्रंश पड़ गया था।
- **पृथ्वी का घूर्णन-** 2004 में आये 9.1 तीव्रता के भूकंप से इतनी ऊर्जा निकली कि पृथ्वी की घूर्णन गति को 3 माइक्रोसेकेंड तेज कर दिया और पृथ्वी के घूर्णन अक्ष में 2.5 सेमी. का विस्थापन हो गया।
- **मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का ह्रास-** इस सुनामी के पश्चात् बहुत से निम्न तटीय भागों में समुद्र का खारा जल भर गया, जिससे मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का बहुत ह्रास हुआ। भारत (तमिलनाडु) श्रीलंका, इंडोनेशिया आदि क्षेत्रों में विस्तृत क्षेत्र पर मृदा अपरदन हुआ और इसकी उर्वरक शक्ति क्षीण हो गई।
- **महासागरीय जीवन (Marine Life)-** हिन्द महासागर में आई सुनामी से अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह में 45 प्रतिशत प्रवाल भित्तियां (Coral Reefs) नष्ट हो गई। विद्वानों का विचार है कि इस क्षति की पूर्ति के लिए 700-800 वर्ष तक समय लगेगा। इसके अतिरिक्त हिन्द महासागर में मत्स्य उत्पादन को भी गहरा धक्का लगा।

सुनामी से संबंधित पूर्व चेतावनी

भूकंप की भांति सुनामी के संबंध में भी कोई भविष्यवाणी संभव नहीं है परंतु शक्तिशाली भूकंप आने से सुनामी उत्पन्न होने के संकेत अवश्य मिल जाते हैं। यदि हिन्द महासागर की 26 दिसंबर, 2004 की सुनामी की पूर्व सूचना जन-साधारण को मिल जाती तो हजारों व्यक्तियों की जानें बचाई जा सकती थीं और करोड़ों रुपये की संपत्ति को क्षतिग्रस्त होने से बचाया जा सकता था।

- भारत ने 26 दिसंबर, 2004 की सुनामी के बाद अपना स्वतंत्र सुनामी पूर्व सूचना तंत्र स्थापित करने का निर्णय लिया और इसका विधिवत उद्‌घाटन 15 अक्टूबर, 2007 को किया गया। इस तंत्र के अंतर्गत महासागरीय नितल पर आने वाले भूकंपों को रिकॉर्ड करने के लिए भूकंपीय केन्द्र अधोभाग पर दाब रिकॉर्ड तथा ज्वार-भाटा गेज स्थापित किए गए हैं। इससे रिक्टर पैमाने पर 6 से अधिक शक्ति वाले भूकंप की सूचना प्राप्त की जा सकती है और इससे पैदा होने वाली सुनामी का अनुमान लगाया जा सकता है। सुनामी के बारे में 13 मिनट के अन्दर सूचना प्रसारित की जा सकती है। हिन्द महासागर में कुल छः (Bottom Pressure Recorders (BPRs) लगाए गए हैं, जिनमें से चार बंगाल की खाड़ी तथा दो अरब सागर में हैं। इस तंत्र का सफल परीक्षण इण्डोनेशिया में 12 सितम्बर, 2007 के भूकंप के समय किया। रिक्टर पैमाने पर इसकी तीव्रता 8ण्4 थी। इस तंत्र से उपग्रह की सहायता से सूचना प्राप्त की जाती है। इसे आधुनिकतम तंत्र बताया गया है।

डार्ट (Deep-ocean Assessment & Reporting of Tsunamis-DART)

- सुनामी का पता लगाने तथा प्राप्त सूचनाओं को प्रभावित क्षेत्रों तक त्वरित रूप से पहुँचाने के लिए यह खास तकनीक है।
- इससे सुनामी से होने वाले प्रभावों व विनाश से पूर्व बचाव का उचित प्रबंधन किया जा सकेगा।

इसके दो प्रमुख भाग होते हैं-

- **सुनामीमीटर-** इससे समुद्र तल में आए भूकंप की तीव्रता की जानकारी मिलती है।
- **सिग्नलिंग एंड कम्युनिकेटिंग-** इससे सुनामी के सभी संभावित क्षेत्रों में खतरे की चेतावनी दी जाती है।

स्व कार्य हेतु

ज्वालामुखी
(Volcanoes)

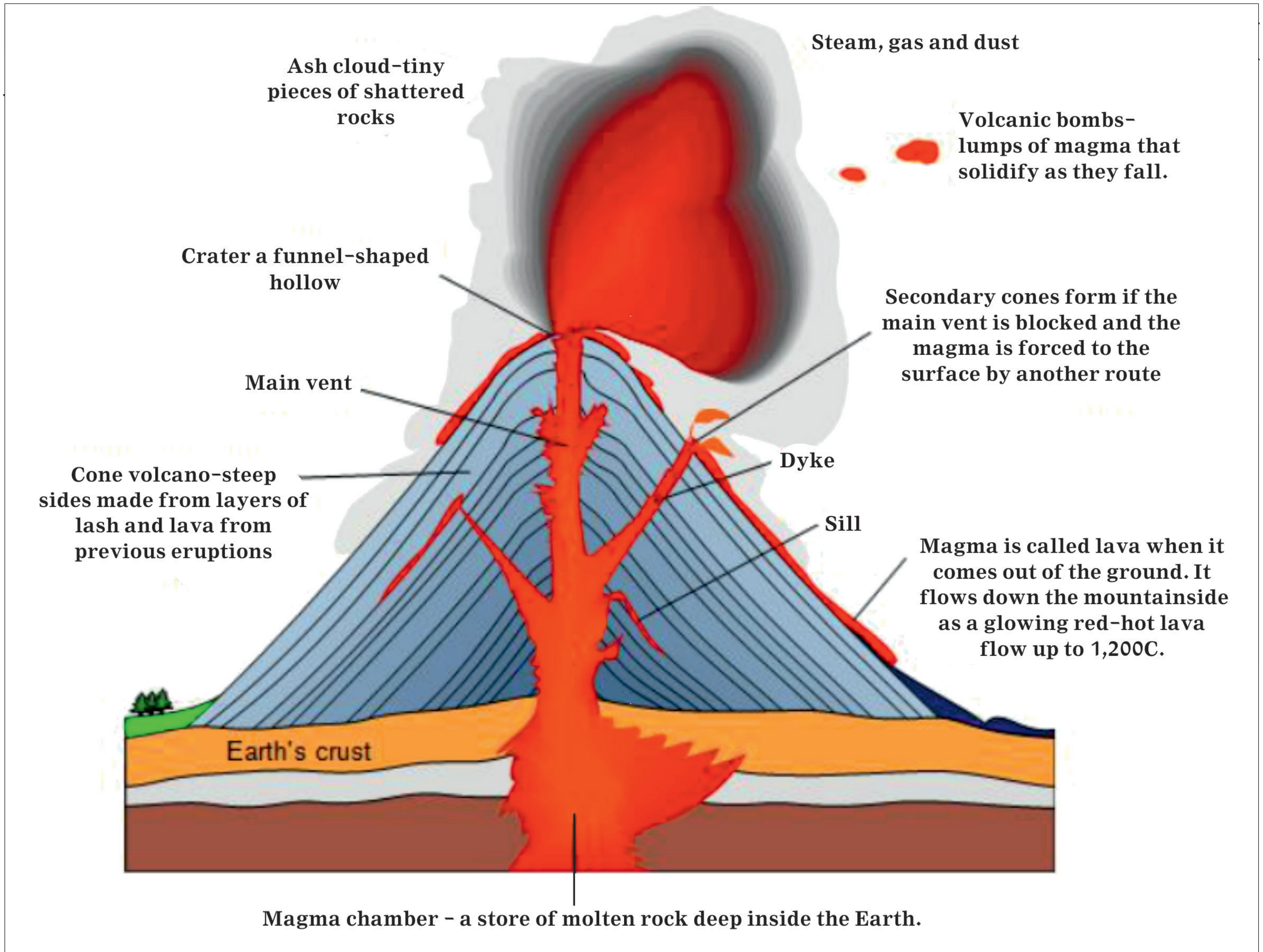

- **ज्वालामुखी की क्रिया दो रूपों में संपन्न होती है।**
  - ✓ धरातल के नीचे भूगर्भ में मैग्मा आदि के नीचे ही जमकर शीतल हो जाने की क्रिया, जिसमें बैथोलिथ, फैकोलिथ, लोपोलिथ, सिल तथा डाइक का निर्माण होता है।
  - ✓ धरातल के ऊपर घटित होने वाली क्रिया, जिसका अवलोकन ज्वालामुखी धरातलीय दरार प्रवाह (Fissure Flow) के रूप में किया जाता है।

ज्वालामुखी उद्गार के कारण
(Reasons for Volcanic Eruption)

ज्वालामुखीयता की प्रक्रिया में शैलों का पिघलना और ठोस शैलों का तरल रूप में परिवर्तित होना शामिल है। इसके लिए आवश्यक है कि या तो पृथ्वी के भीतर तापमान में पर्याप्त वृद्धि हो जाए या ऊपर स्थित चट्टानों का दबाव घट जाए, ताकि नीचे की चट्टानें अपने गलनांक से नीचे ही पिघल जाएं। तापमान में वृद्धि जब होती है तब रेडियोधर्मी क्षय के कारण पदार्थ स्वयं विखंडित होकर अल्फा, बीटा एवं गामा किरणें अवमुक्त करते हैं,

जिनके साथ ताप में भी वृद्धि होती है, जिससे चट्टानें पिघलने लगती हैं। इसके अलावा, दो प्लेटों के मिलन क्षेत्र में घर्षण से अतिरिक्त ऊष्मन उत्पन्न होता है, जिसके परिणामस्वरूप भी शैलों का पिघलाव होता है। कभी-कभी धरातलीय जल दरारों एवं छिद्रों से रिसकर नीचे चला जाता है और आंतरिक भाग में तापमान एवं दबाव की दशाओं में अस्थिरता उत्पन्न कर देता है।

प्लेट विर्वतनिकी की सहायता से ज्वालामुखी उद्गार को आसानी से समझाया जा सकता है-

- द्वीप चापों के सहारे ज्वालमुखीयता के कारण एक महासागरीय प्लेट का किसी अन्य महासागरीय प्लेट के नीचे अधोगमन के कारण होने वाले शैलों का पिघलाव है। कटकों के सहारे ज्वालामुखी उद्गार तब होता है, जब किसी कटक के शीर्ष (Crest) पर दरार खुल जाती है फलतः उस दरार के नीचे दबाव में कमी हो जाती है, (दबाव में कमी के कारण द्रवणांक कम हो जाता है)। फलतः नीचे की चट्टानें पिघल जाती हैं। इस पिघले मैग्मा का आयतन ठोस शैल से अधिक होता है तथा यह अपेक्षाकृत हल्का भी होता है, अतः मैग्मा दरार के सहारे ऊपर उठने लगता है।
- ज्वालामुखी शृंखलाएं प्रायः वलित पर्वतों से संबंधित होती हैं। इनके सहारे ज्वालामुखीय गतिविधियों की उत्पत्ति का कारण एक महासागरीय प्लेट का दूसरे महाद्वीपीय प्लेट के नीचे अधोगमन और उसके अग्र भाग का पिघल जाना है। इसका उदाहरण एंडीज पर्वतीय क्षेत्र में देखा जा सकता है।
- ज्वालामुखी गुच्छ एवं ज्वालामुखी रेखाएँ प्रायः भूप्रवार पिच्छकों (Mantle Plumes) के ऊपर निर्मित होती हैं। ये पिच्छक ऊपर उठते मैग्मा के स्तम्भों के स्थायी केन्द्र या बिंदु हैं, यहाँ उद्गार होते रहते हैं। यदि प्लेट स्थिर हैं तो यह उद्गार लघु ज्वालामुखी के गुच्छ के रूप में दिखाई पड़ते हैं, जैसे अफ्रीका में, परंतु यदि प्लेट गतिशील है, तो ऐसे ज्वालामुखी के दोनों ओर एक के पीछे एक रेखाओं का निर्माण हो जाता है। हवाई शृंखला इसके उदाहरण हैं।

ज्वालामुखी के प्रकार (Types of Valconaes)

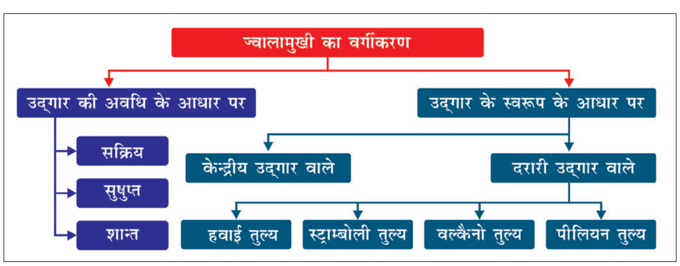

- सक्रियता के आधार पर ज्वालामुखी तीन प्रकार के होते हैं-

✓ **सक्रिय ज्वालामुखी (Active Volcano)-** इस प्रकार के ज्वालामुखी से लावा, गैसों एवं विखंडित पदार्थों का सदैव उद्गार होता रहता है। इटली के एटना तथा स्ट्राम्बोली एवं मैक्सिको का कोलिमा सक्रिय ज्वालामुखी का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

✓ **प्रसुप्त ज्वालामुखी (Dormant Volcano)-** जिन ज्वालामुखियों में उद्गार के पश्चात् एक ऐसा शांत काल आ जाता है कि इनके पुनः उद्गार की संभावना नहीं रह जाती, किंतु अचानक ही उनसे पुनः उद्गार हो जाता है, उन्हें प्रसुप्त ज्वालामुखी कहते हैं। इटली का विसूवियस, जापान का फ्यूजीयामा तथा फिलीपींस का मेयन प्रसुप्त ज्वालामुखी का प्रमुख उदाहरण हैं।

✓ **शांत ज्वालामुखी (Extinct Volcano)-** ऐसा ज्वालमुखी जिसमें हजारों वर्षों से कोई उद्भेदन नहीं हुआ है तथा जिसके मुख में जल भर जाने से झीलों का निर्माण हो गया है। ईरान में कोह सुल्तान तथा देवबन्द एवं बर्मा (म्यांमार) में पोपा, अफ्रीका में किलीमंजारो तथा दक्षिण अमेरिका में चिम्बारजो शांत ज्वालामुखी के उदाहरण हैं।

- **उद्गार के आधार पर ज्वालामुखी दो प्रकार के होते है-**

✓ **1. केन्द्रीय उद्भेदन-** ज्वालामुखी के किसी एक केन्द्रीय मुख से भारी धमाकों को केन्द्रीय उद्भेदन कहते है। यह विनाशात्मक प्लेटों के किनारों पर होता है। इनके कई प्रकारों जैसे- हवाई तुल्य, स्ट्राम्बोली तुल्य, पीलियन तुल्य तथा विसुवियस तुल्य में पीलियन तुल्य ज्वालामुखी सबसे अधिक विनाशकारी एवं विस्फोटक होते हैं। उदाहरण- पश्चिमी द्वीप समूह का पीली ज्वालामुखी, सुण्डा जलडमरूमध्य का क्राकाटोआ आदि।

✓ **2. दरारी उद्भेदन-** जब भू-गर्भिक हलचलों से भूपर्पटी की शैलों में पड़ी दरारों से लावा धरातल पर प्रवाहित होता है तो इसे दरारी उद्भेदन कहते हैं। यह रचनात्मक प्लेट किनारों के सहारे होता है। इस प्रकार के उद्गार क्रिटैशियस युग में बड़े पैमाने पर हुए थे तथा इससे लावा पठारों का निर्माण हुआ था।

ज्वालामुखी से निकलने वाले पदार्थ

ज्वालामुखी क्रिया के अंतर्गत चट्टानी टुकड़े, गैस, राख व तरल पदार्थ पृथ्वी की सतह पर पहुँचते हैं। इस प्रक्रिया में निकलने वाले खनिज पदार्थों तथा चट्टान के टुकड़ों को सम्मिलित रूप से ज्वलखंडाश्मि पदार्थ (Pyroclastic Material) कहते हैं।

- **गैस तथा जल वाष्प-** ज्वालामुखी उद्गार के **समय सबसे पहले गैसें**

एवं जलवाष्प ही क्रस्ट को एकाएक तोड़कर धरातल पर प्रकट होते हैं और इसमें जलवाष्प की मात्र सर्वाधिक (60% से 90% तक) होती है। जलवाष्प के अतिरिक्त कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन, सल्फर डाईऑक्साइड आदि गैसें भी धरातल पर आ जाती हैं।

- **विखंडित पदार्थ-** ज्वालामुखी से निकलने वाले विखंडित पदार्थों में बारीक ज्वालामुखी धूल व टुकड़ों से लेकर बड़ी-बड़ी चट्टानों तक को शामिल किया जाता है। आकार एवं बनावट के अनुसार इन्हें निम्न नामों से जाना जाता है-

✓ **लावा बम (Lava Bomb)-** कुछ इंच से लेकर कई फीट तक के व्यास वाले बडे़-बड़े चट्टानी टुकड़े।
✓ **लैपिली (Lapilli)-** मटर के दाने या अखरोट के आकार वाले टुकड़े।
✓ **टफ (Tuff)-** धूल कणों तथा राख से बने चट्टानी टुकड़े।
✓ **राख या धूल (Ash)-** अत्यंत बारीक तथा महीन ठोस कण।
✓ **प्यूमिस (Pumice)-** लावा के ठंडा होने पर छोटे-छोटे ठोस चट्टानी भाग।

- **लावा (Lava)-** ज्वालामुखी उद्गार के समय भूगर्भ में स्थित तरल एवं तप्त मैग्मा जब धरातल पर प्रकट होता है, तब उसे **लावा (Lava)** कहा जाता है। लावा जब धरातल पर बहता है तो उसे **लहर** कहते हैं। हल्के पीले रंग वाला तथा अत्यंत गाढ़े द्रव के रूप में अत्यधिक तापमान पर पिघलने वाला लावा **अम्लप्रधान या एसिडिक लावा** के नाम से जाना जाता है। जबकि गहरे काले रंग वाले, अधिक भार वाले तथा पतले द्रव के रूप में स्थित लावा को **क्षारीय अथवा बेसिक लावा** कहते हैं। यह पतला होने के कारण धरातल पर शीघ्रता से फैलकर ठंडा हो जाता है।

विश्व के प्रमुख ज्वालामुखी

नाम	ऊँचाई	श्रेणी या स्थिति	देश
ओजोसडेल सेलेडो	6885	एण्डीज	अर्जेण्टीना- चिली
गुआल्लाटीरी	6060	एण्डीज	चिली
कोटोपैक्सी	5897	एण्डीज	इक्वेडोर
लैसकर	5641	एण्डीज	चिली
टुपुंगटीटो	5640	एण्डीज	चिली
पोपोकेटेपिटल	5651	अप्टीप्लानो डि मैक्सिको	मैक्सिको
सैंगे	5230	एण्डीज	इक्वेडोर
क्लयूचेव्सकाया सोप्का	4850	कमचटका प्रायद्वीप	रूस
प्यूरेस	4590	एण्डीज	कोलम्बिया
टाजुमुल्को	4220	-	ग्वाटेमाला
मोनालोआ	4170	हवाई द्वीप	सं. रा. अमेरिका
टकाना	4078	सियरामाद्रे	ग्वाटेमाला
माउण्ट केमरून	4070	-	केमरून (अफ्रीका)
माउण्ट इरेबस	3795	रॉस	अंटार्कटिका
रिन्दजानी	3726	लाम्बोक	इंडोनेशिया
पिकोडिटीडे	3718	चेरेरिफ (कनारी द्वीप)	स्पेन
सेमेरू	3676	जावा	इंडोनेशिया
नीरागोंगा	3456	विरुगा	जायरे
कोरयाक्सकाया	3452	कॉर्डिलेश सेंट्रल	कोस्टारिका
स्लामाट	3428	जावा	इंडोनेशिया
माउण्ट स्पर	3374	अलास्का श्रेणी	सं. रा. अमेरिका
माउण्ट एटना	3374	सिसिली	इटली
लैसेन पीक	3186	कास्केड श्रेणी	सं. रा. अमेरिका केलीफोर्निया
माउण्ट सेण्ट हेलेन्स	2949	कास्केड श्रेणी,	सं. रा. अमेरिका
टैम्बोरा	2850	सुमात्र	इंडोनेशिया
द पीक	2060	त्रिस्तां डि-कुन्हा	द. अटलांटिक
माउण्ट लेमिंग्टन	1687	-	पापुआ-न्यूगिनी
माउण्ट पीली	1463	-	मार्टिनीक
हेक्ला	1447	-	आइसलैंड
लासाओफैरी	1280	सेण्ट विंसेण्ट द्वीप	अटलांटिक
विसूवियस	1280	नैपल्स की खाड़ी	इटली
किलाउया	1240	हवाई द्वीप	एजोर्स
स्ट्राम्बोली	926	भूमध्य सागर	आइसलैंड
सैण्टोरिनी	584	थेरा	ग्रीस (यूनान)
बलकेनो	499	भूमध्य सागर	लिपारीद्वीप
पेरीक्यूटिन	370	-	मैक्सिको
सरट्से	173	आइसलैण्ड के समीप	आइसलैंड
एनैक क्राकाटाओ	155	-	इंडोनेशिया

ज्वालामुखी द्वारा निर्मित भू-आकृतियाँ

ज्वालामुखी से निर्मित भू-आकृतियाँ बाह्य तथा आंतरिक दो प्रकार की होती हैं-

बाह्य भू-आकृतियाँ (Extrusive Topography)

ज्वालामुखी से निर्मित बाह्य स्थलाकृतियाँ निम्न हैं-

- **ज्वालामुखी शंकु (Volcanic Cones)-** यह ज्वालामुखी उद्गार से बनने वाली पहली आकृति है। उद्गार से निकलने वाले पदार्थों के जमाव से इस प्रकार की आकृति का निर्माण होता है। ज्वालामुखी शंकु कई प्रकार के होते हैं।
- **अम्लीय लावा शंकु (Acid Lava Cone)-** ऐसे शंकु तेज ढाल वाले होते हैं। ये कम जगह घेरते हैं, और शीघ्रता से नष्ट नहीं होते। यह लावा अधिक गाढ़ा तथा इसमें सिलिका की मात्र अधिक होने के कारण शीघ्र ठंडा हो जाता है। उदाहरण-स्ट्राम्बोली शंकु।
- **क्षारीय लावा शंकु (Basic Lava Cone)-** जब लावा में सिलिका की मात्र कम और बेसाल्ट की मात्र अधिक होने से लावा पतला होता है तब क्षारीय लावा शंकु का निर्माण होता है। हवाई द्वीप का मोनालोआ शंकु इसका उत्तम उदाहरण है।
- **मिश्रित शंकु (Composite Lava Cone)-** अधिकांश शंकु इसी तरह के होते हैं इसका निर्माण परतों के जमा होने से होता है, इस कारण इन्हें परतदार शंकु भी कहते हैं। इसकी रचना में एक परत लावा की तथा दूसरी परत राख, पंक व ठोस शिलाखण्ड व चूने आदि की होती है। ये शंकु सबसे ऊँचे होते हैं। उदाहरण-शस्ता, रेनियर हुड (U.S.A.), मेयन (फिलिपींस) फ्यूजीयामा (जापान) आदि।
- **राख अथवा सिण्डर शंकू (Ash or Cinder Cone)-** निकास के बाहर हवा में उड़ा हुआ लावा शीघ्र ही ठंडा होकर ठोस टुकड़ों में परिवर्तित हो जाता है जिसे सिण्डर कहते हैं। ये देखने में राख के समान होता है। इस प्रकार विस्फोटीय ज्वालामुखी द्वारा जमा की गई राख तथा अंगार से बनने वाली शंक्वाकार आकृति को राख अथवा सिण्डर शंकु कहते हैं। ये अपनी रचना में पूर्ण शंकु होते हैं, परंतु इनकी ऊँचाई 300 मीटर से अधिक नहीं होती। इनके किनारे अवतल (Concave) होते हैं। ऐसे शंकु हवाई द्वीप में अधिक पाए जाते हैं।
- **परजीवी शंकु (Parasitic Cone)-** ऐसे शंकु मुख्य शंकु पर निर्मित होते हैं। कई बार ज्वालामुखी शंकु का अत्यधिक विस्तार हो जाता है तो ज्वालामुखी की मुख्य नली से कई शाखाएँ निकल जाती हैं जिन पर छोटे-छोटे नवीन शंकुओं का निर्माण हो जाता है।
- **क्रेटर (Creater)-** ज्वालामुखी शंकु शीर्ष पर एक विदर क्रेटर (Creater) होता है जिसका आकार कीप (Funnel) जैसा होता है। ज्वालामुखी विस्फोट के बाद इस क्रेटर में वर्षा का जल भर जाता है। इससे एक झील का निर्माण होता है, जिसे क्रेटर झील कहते हैं। उत्तरी सुमात्र की तोबा झील (Lake Toba) विश्व की विशालतम क्रेटर झीलों में से एक है। इसका क्षेत्रफल 1900 वर्ग किमी. है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ऑरीगन की क्रेटर झील (Creater Lake or Oregon) तथा आइसलैंड में ओस्कजएटन (Oskjuation) अन्य प्रसिद्ध क्रेटर झीलें हैं। महाराष्ट्र की सोनार झील भी इसी प्रकार से बनी है।
- **काल्डेरा (Caldera)-** काल्डेरा स्पेन की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'कड़ाहा' होता है। तीव्र विस्फोट से शंकु का ऊपरी भाग उड़ जाने से या क्रेटर के धंस जाने से काल्डेरा का विकास होता है। विश्व का सबसे बड़ा काल्डेरा जापान का माउंट एसो (Mount Aso) है, जिसकी परिधि 112 किमी. तथा अधिकतम चौड़ाई 27 किमी. है।
- **ज्वालामुखी प्लग (Volcanic Plug)-** ज्वालामुखी प्लग का निर्माण ज्वालामुखी के शांत हो जाने पर उसके छिद्र में लावा भर जाने से होता है। ज्वालामुखी शंकु के अपरदन के बाद यह डाट स्पष्ट दिखाई देने लगता है। इस प्रकार के प्लग हवाई द्वीप में अनेक स्थानों पर पाए जाते हैं। कभी-कभी इसे ज्वालामुखी ग्रीवा (Volcanic Neck) भी कहा जाता है। ज्वालामुखी ग्रीवा का व्यास 300 से 600 मीटर तक होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका के वायमिंग राज्य में डेविल टॉवर (Devil Tower) इसका सबसे उत्तम उदाहरण है।
- **लावा पठार (Lava Plateau)-** जब ज्वालामुखी उद्गार दरारी उद्गार वाला होता है तो बेसाल्टिक लावा दरारों द्वारा बाहर निकलकर बड़े क्षेत्र में फैल जाता है। इस तरह का जमाव जब निचले भाग में होता है तो लावा मैदान तथा ऊँचे भाग पर होता है तो लावा पठार का निर्माण होता है। उदाहरण भारत में दक्कन का लावा पठार, पश्चिम संयुक्त राज्य अमेरिका का ओरेगन राज्य का लावा पठार इसके अतिरिक्त जापान एवं आइसलैंड के लावा मैदान आदि।

आंतरिक भू-आकृतियाँ (Intrusive Topography)

जब किसी कारण से ज्वालामुखी लावा धरातल पर नहीं आ पाता और भूगर्भ में ही ठंडा होकर जमा हो जाता है तो इससे बनने वाली विभिन्न आकृतियों को आंतरिक भू-आकृतियाँ कहते हैं। ये आकृतियाँ निम्नलिखित हैं-

- **बैथोलिथ (Batholith)-** जब लावा धरातल के नीचे गुंबद की भाँति जम जाता है तो इसे बैथोलिथ कहते हैं। इसका जमाव काफी गहराई पर होता है। इसका अधिकांश भाग ग्रेनाइट शैलों का बना होता है। बैथोलिथ किसी भी प्रकार की चट्टानों के बीच बन सकता है। उदाहरण-संयुक्त राज्य का ब्रिटिश कोलम्बिया प्रदेश का कोस्टरेज।
- **लैकोलिथ (Laccolith)-** जब परतदार चट्टानों के मध्य लावा उत्तल ढाल की आकृति में जमा हो जाता है तो इसे लैकोलिथ कहते हैं। उदाहरण-संयुक्त राज्य अमेरिका के उटाह राज्य के हेनरी पर्वत तथा कोलेरेडो पठार में अधिक पाये जाते हैं।

- **फैकोलिथ (Phacolith)-** फैकोलिथ एक लहर के समान आकृति है। इसका निर्माण मोड़दार पर्वतों की अपनति (Anticline) तथा अभिनति (Syncline) में लावा का जमाव हो जाने से होता है।
- **लोपोलिथ (Lopolith)-** जब मैग्मा धरातल के नीचे तश्तरीनुमा आकार के छिछले बेसिन में जमा हो जाता है तो उसे लोपोलिथ कहते हैं। उदाहरण- दक्षिण अफ्रीका के ट्रांसवाल पठार प्रांत का बुराबैल्ड लोपोलिथ।
- **बिसमेलिथ (Bysmalith)-** जब मैग्मा का जमाव बड़े पैमाने पर चट्टानों के मध्य बेलनाकार रूप में जमा हो जाता है तो इसे बिसमेलिथ कहते हैं।
- **सिल (Sill)-** जब मैग्मा परतदार या रूपांतरित शैलों के मध्य मौलिक चट्टानों के समानांतर क्षैतिज रूप में जम जाता है तो उसे सिल कहते हैं। जब मैग्मा पतली परत के रूप में जमा होता है तो उसे शीट (Sheet) कहते हैं।
- **डाइक (Dyke)-** जब मैग्मा सिल के विपरीत चट्टानों के मध्य लंबवत रूप में जमता है तो उसे डाइक कहते हैं। यह कठोर होता है जिससे अपरदन का प्रभाव इस पर कम पड़ता है।
- **गीजर (Geyser)-** ये गर्म जल के स्रोत हैं। इनसे समय-समय पर अवकाश के बाद गर्म जल तथा वाष्प फुहारों की तरह निकलता रहता है। गेसर का मुख भूमिगत जल भंडार से जुड़ा होता है। दक्षिण अमेरिका तथा अफ्रीका को छोड़कर प्रत्येक महाद्वीप में गेसर मिलते हैं।

ज्वालामुखी का विश्व वितरण

ज्वालामुखी का विश्व वितरण मूल रूप से प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर और हिन्द महासागर के पास स्थित है। ये ज्वालामुखी असमान रूप से वितरित हैं।

- **परिप्रशान्त महासागरीय पेटी (Circum Pacific Belt)-** विनाशात्मक प्लेट किनारों के सहारे विस्तृत इस पेटी में विश्व के सर्वाधिक दो-तिहाई ज्वालामुखी पाये जाते हैं। ये ज्वालामुखी प्लेटों के अभिसरण क्षेत्र में स्थित हैं। इसका विस्तार अंटार्कटिका महाद्वीप के माउन्ट इरेबस से लेकर प्रशांत महासागर के दोनों किनारों पर चारों ओर विस्तृत है। इसे प्रशांत महासागर की अग्नि शृंखला भी कहा जाता है। इस पेटी का विस्तार पूर्वी तट पर दक्षिणी अमेरिका के अंतरीप हॉर्न से लेकर उत्तरी अमेरिका के अलास्का तक है। पश्चिमी तट पर इसका विस्तार एशिया के पूर्वी तट के साथ-साथ है। यहाँ यह पेटी क्यूराइल द्वीप समूह, जापान, फिलीपींस तथा पूर्वी द्वीप समूह तक फैली हुई है।

अन्य ज्वालामुखी एवं उनकी स्थिति

नाम	देश
माउण्ट रैंजल	कनाडा
लॉकी	आइसलैंड
कटमई	अलास्का
देवबन्द	ईरान
माउण्ट रेनियर	सं. रा. अमेरिका
एलबुर्ज जार्जिया	ईरान
माउंट शस्ता	सं. रा. अमेरिका
माउंट अरारात	आर्मीनिया
चिम्बारजो	इक्वेडोर
किलीमंजारो	तंजानिया
फ्यूजीयामा	जापान
माउंट कीनिया	कीनिया
माउंट पिनाटुबो	फिलीपींस
मेयन	फिलीपींस
माउंट उनजने	जापान
माउंट पोपा	म्यांमार

मध्य महाद्वीपीय पेटी (Mid-Continental Belt)

- इस क्षेत्र में यूरेशियन, अफ्रीकन एवं इंडियन प्लेट के अभिसरण क्षेत्र में ज्वालामुखी क्षेत्र स्थित हैं। इसकी दो शाखाएँ हैं- पहली शाखा अटलांटिक (अंध) महासागर से होती हुई पश्चिमी द्वीप समूह तक जाती है एवं दूसरी स्पेन, इटली होते हुए हिमालय की ओर आगे बढ़ती हुई दक्षिण में प्रशांत महासागरीय पेटी में मिल जाती है।
- इस पेटी के हिमालयन क्षेत्र में ज्वालामुखी क्रियाएं नहीं होती क्योंकि इस क्षेत्र में प्लेटों का क्षेपण उस अनुपात (गहराई) में नहीं है, जिस अनुपात में ज्वालामुखी क्रिया के लिए होना चाहिए।

मध्य अटलाण्टिक पेटी (Mid Atlantic Belt)

इस क्षेत्र में रचनात्मक प्लेट किनारों के सहारे ज्वालामुखी क्रियाएं होती रहती हैं, जिसमें अपसरण से भ्रंश घाटी एवं महासागरीय कटकों का निर्माण होता है।

इस क्षेत्र में पाये जाने वाले ज्वालामुखी निम्नलिखित हैं-

- आइसलैंड का हेकला एवं लॉकी जवालामुखी।
- दक्षिणी अटलांटिक महासागर का सेंट हेलना।

स्व कार्य हेतु

चट्टान
(Rocks)

परिचय (Introduction)

पृथ्वी के क्रस्ट में मिलने वाले पदार्थ, चाहे वे ग्रेनाइट तथा बालुका पत्थर की भांति कठोर प्रकृति के हों या चीका (Clay) या रेत की भाँति कोमल व प्रवेश्य हो, चट्टान अथवा शैल कहे जाते हैं। इनकी रचना विभिन्न प्रकार के खनिजों के सम्मिश्रण से होती है। इस प्रकार प्रत्येक चट्टान की संरचना एक से अधिक प्रकार के खनिजों का संयोग होती है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पृथ्वी की क्रस्ट में 100 से भी अधिक तत्व पाये जाते हैं किन्तु उसके लगभग 98% भाग की संरचना में निम्नलिखित 8 तत्वों का ही प्रमुख योगदान रहता है, शेष 2% भाग में ही अन्य तत्व सम्मिलित होते हैंः-

क्रमांक	तत्व	क्रस्ट में प्रतिशत मात्र
1.	ऑक्सीजन	46.80
2.	सिलिकॉन	27.72
3.	एल्युमीनियम	8.13
4.	लोहा	5.00
5.	केल्शियम	3.63
6.	सोडियम	2.83
7.	पोटैशियम	2.59
8.	मैग्नीशियम	2.09
	योग	**98.79%**

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के क्रस्ट में यद्यपि 2,000 खनिजों की उपस्थिति स्वीकार की जाती है, किन्तु इसमें से भी मात्र 6 खनिज ही प्रधान रूप में पाये जाते हैं।

इन खनिजों में उल्लेखनीय हैं-

- फेल्सपार (Felspar)
- क्वार्ट्ज या स्फटिक (Quartz)
- पायरॉक्सींस (Pyroxenes)
- एम्फीबोल्स (Amphiboles)
- अभ्रक (Mica)
- ओलिवीन (Olivine)

- इन 6 तत्वों के साथ ही कुल 24 खनिज ऐसे हैं जिनसे क्रस्ट की अधिकांश चट्टानों का निर्माण हुआ है। इन खनिजों को 'चट्टान निर्माता खनिज' की संज्ञा दी जाती है। चट्टानों के निर्माण में योगदान करने वाले ये खनिज विभिन्न तत्वों के ऑक्साइड (जैसे काट्र्ज हेमेटाइट, मैग्नेटाइट आदि), सिलिकेट (जैसे फेल्सपार, अभ्रक आदि) तथा कार्बोनेट (जैसे केल्साइट, डोलोमाइट आदि) हैं।

चट्टानों के प्रकार (Types of Rocks)

विभिन्न आधारों पर किया गया चट्टानों का वर्गीकरण इस प्रकार हैं-

बनावट की प्रक्रिया के आधार पर चट्टानों के प्रकार-

- आग्नेय चट्टान (Igneous Rock)।
- अवसादी या परतदार चट्टान (Sedimentary Rock)।
- कायांतरित या रूपांतरित चट्टान (Metamorphic Rock)।

सामान्य आधार पर चट्टानों के प्रकार

- रवेदार चट्टान (Crystalline Rocks) जैसे- आग्नेय चट्टान, रूपातंरित चट्टान।
- ढेरयुक्त चट्टान (Stacked Rocks) जैसे- अवसादी चट्टानें।

आग्नेय शैल (Igneous Rock)

आग्नेय (Igneous) शब्द लैटिन भाषा के शब्द-इग्नीस (Ignis) से बना है, जिसका अर्थ **'आग'** होता है। आग्नेय शैल की रचना धरातल के नीचे स्थित तप्त एवं तरल मैग्मा के शीतलन के परिणामस्वरूप उसके ठोस हो जाने पर होती है।

- इन शैलों में **लोहा** तथा **मैग्नीशियम** युक्त सिलिकेट खनिजों की अधिकता होती है। आग्नेय चट्टानों से ही लगभग सम्पूर्ण भू-पृष्ठ की उत्पत्ति हुई है। रूपान्तरित तथा अवसादी चट्टानें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इनसे ही संबंधित होती हैं। ज्वालामुखी उद्गार के समय भूगर्भ से निकलने वाला गैसीय अंश वायुमंडल में विलीन हो जाता है। इस गैस रहित मैग्मा को लावा कहते हैं। लावा भी धरातल पर जमकर ठण्डा हो जाने के पश्चात आग्नेय शैलों में परिवर्तित हो जाता है।
- इस प्रकार के आग्नेय शैलों को **बहिर्भेदी आग्नेय शैल** कहते हैं। ये कठोर चट्टानें हैं, जो रवेदार तथा दानेदार भी होती हैं। आग्नेय

चट्टानों में परतों का पूर्णतः अभाव पाया जाता है। **अप्रवेश्यता** अधिक होने के कारण इन पर रासायनिक अपक्षय का बहुत कम ही प्रभाव पड़ता है, लेकिन यांत्रिक एवं भौतिक अपक्षय के कारण इनका विघटन तथा नियोजन प्रारम्भ हो जाता है। इन चट्टानों में **जीवाश्म** (Fossil) **नहीं** पाये जाते हैं। इनका अधिक विस्तार ज्वालामुखी क्षेत्रों में ही पाया जाता है।

आग्नेय शैलों के प्रकार (Types of Igneous Rock)

आग्नेय शैलों को निम्नलिखित आधार पर विभाजित किया जा सकता है-

उत्पत्ति की प्रक्रिया के आधार पर (According to Process of Origin)

- **आंतरिक आग्नेय शैल (Intrusive Igneous Rock)-** इसका निर्माण धरातल के नीचे थोड़ी गहराई पर मैग्मा के ठोस रूप धारण करने से होता है। डोलोमाइट इस प्रकार की शैलों के उदाहरण हैं।

- **आंतरिक आग्नेय शैलों के दो सामान्य प्रकार हैं-**
  - ✓ पातालीय आग्नेय शैल (Plutonic Igneous Rock)।
  - ✓ अधिवितलीय आग्नेय शैल (Hypabyssal Igneous Rock)।

- धरातल के नीचे अधिक गहराई पर मैग्मा के ठोस बनने में और अधिक समय लगता है। इसमें **रवों का आकार बड़ा** होता है ऐसे शैलों को पातालीय आग्नेय (प्लूटोनिक) शैल कहते हैं। **ग्रेनाइट पातालीय आग्नेय शैल का उत्कृष्ट उदाहरण** है।
- दक्षिणी भारत के दक्कन पठार, छोटानागपुर पठार, राजस्थान तथा हिमालय के कुछ भागों में विभिन्न रंगों जैसे भूरे, लाल, गुलाबी या सफेद ग्रेनाइट मिलते हैं। ग्रेनाइट का उपयोग भवन निर्माण तथा सड़क-निर्माण के लिए किया जाता है।
- **बाह्य आग्नेय शैल (Extrusive Igneous Rock)-** इसे **ज्वालामुखी शैल** भी कहते हैं। क्योंकि इसका निर्माण तरल मैग्मा के पृथ्वी की सतह पर पहुँचने के कारण होता है। इस प्रकार के शैलों में **बहुत छोटे आकार के रवे** होते हैं। ये शैलें देखने में महीन कणों वाली लगती हैं। जब इनके कण इतने छोटे हों कि उन्हें पहचाना न जा सके तो ये कांच जैसे दिखते हैं। **बेसाल्ट** महीन कणों वाले बहिर्भेदी अथवा बाह्य आग्नेय शैल का उत्तम उदाहरण है। इसका उपयोग सड़क निर्माण में किया जाता है। इस प्रकार के क्षरण से उपजाऊ काली मिट्टी का निर्माण होता है, जिसे **रेगुर** कहते हैं। इस मृदा के क्षेत्र को प्रायद्वीपीय ट्रैप कहा जाता है। यह लगभग 5,00,000 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैली हुयी है।

बाह्य आग्नेय शैल के दो प्रकार हैं-

- विस्फोटक प्रकार (Explosive Type) से निर्मित।
- शांत प्रकार (Quiet Type) से निर्मित।

रासायनिक संरचना के आधार पर (According to Chemical Composition)

- **अम्ल प्रधान (Acidic) आग्नेय शैल-** जिन शैलों में सिलिका की मात्र अधिक होती है उन्हें अम्ल प्रधान आग्नेय शैल कहा जाता है। सिलिका की मात्र अधिक होने के कारण इन शैलो का रंग हल्का होता है। इसमें सिलिका की मात्र 45 से 85 प्रतिशत तक होती है। इसका औसत घनत्व 2.75 से 2.8 होता है। इसमें कार्टज तथा सफेद या पीले रंग के फेल्सपार कण अधिक मात्र में पाये जाते हैं, जिसके कारण इसका रंग पीला होता है। कड़ी होने के कारण इसमें अपरदन कम होता है। **ग्रेनाइट** इस प्रकार के शैल का प्रमुख उदाहरण है।
- **क्षारीय या आधारी (Basic) आग्नेय शैल-** जिन शैलों में सिलिका की मात्र कम होती है, उन्हें क्षारीय अथवा आधारी आग्नेय शैल कहते हैं। इसमें सिलिका की मात्र 45 से 50 प्रतिशत होती है तथा इसका औसत घनत्व 2.8 से 3.0 तक होता है। इन शैलों में ऑक्साइड की मात्र अधिक होती है तथा ये अधिक सघन और देखने में अत्याधिक गहरे रंग के होते हैं। इसमें फेरो-मैग्नीशियम अधिक मात्र में पाए जाते हैं। **बेसाल्ट, ग्रेबों** तथा **डोलोमाइट** इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- **पातालीय आग्नेय शैल (Plutoinc Igneous Rock)-** इनका निर्माण भूगर्भ में अत्याधिक गहराई में होता है। धीरे-धीरे मैग्मा के शीतल होने के कारण इनमें क्रिस्टल अधिक पाये जाते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण **ग्रेनाइट** है।
- **अधिवितलीय आग्नेय शैल (Hypabyssal Igneous Rock)-** इस प्रकार की शैल का निर्माण ज्वालामुखी उद्गार के समय लावा के मार्ग में पड़ने वाली दरारों, छिद्रों एवं नली में ही उसके जमकर ठोस हो जाने से होता है। इसका निर्माण पृथ्वी की सतह के नीचे ही होता है, किन्तु अपरदन के कारण कभी-कभी ये ऊपर प्रकट हो जाती हैं।

- **ये शैलें धरातल के नीचे निम्नलिखित रूपों में पायी जाती हैं-**
  - ✓ **बैथोलिथ (Batholith)-** विशेष रूप से पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ ज्वालामुखी क्रियाशील होती है, धरातल के नीचे काफी खड़े ढाल वाले गुम्बदाकार रूप में लावा का जमाव हो जाता है।

अपरदन के कारण इनकी ऊपरी सतह तो दृष्टिगोचर होती हैं किन्तु आधार कभी नहीं दिखाई पड़ता है। यह किसी भी चट्टान में बन सकता है। यह सबसे बड़ा आग्नेय चट्टानी पिण्ड है। संयुक्त राज्य अमेरिका का इदाहों बैथोलिथ (Idaho Batholith) 48 से 80 किमी. चौड़ा तथा 40 हजार वर्ग किमी. से भी अधिक क्षेत्र में विस्तृत है। पश्चिमी कनाडा का कोस्ट रैंज बैथोलिथ इससे भी बड़ा है। यह मूलतः ग्रेनाइट से बना है।

- ✓ **लैकोलिथ (Laccolith)**- विशेष रूप से परतदार चट्टानों के बीच में गुम्बदाकार रूप में उत्तल ढालों के बीच लावा का जमाव हो जाने से लैकोलिथ का निर्माण हो जाता है।
- ✓ **फैकोलिथ (Phacolith)**- ज्वालामुखी उद्गार के समय वलित पर्वतों की अपनति के सहारे होने वाले लावा के जमाव से फैकोलिथ बन जाता है।
- ✓ **लैपोलिथ (Lapolith)**- जब लावा का जमाव धरातल के नीचे अवतल ढाल वाली छिछली बेसिन में होता है, तब उसके आकार को लैपोलिथ कहा जाता है।
- ✓ **सिल (Sill)**- ज्वालामुखी उद्गार के समय जब लावा कायान्तरित होकर तथा अवसादी चट्टानों की परतों के बीच प्रवेश करके शीतल हो जाता है, तब उस आकृति को सिल कहते हैं। इनके जमाव की मोटाई काफी अधिक होती है। इसके विपरीत पतली सिल को शीट (sheet) कहा जाता है।
- ✓ **डाइक (Dyke)**- डाइक सिल तथा शीट के विपरीत लम्बवत एवं पतले रूप में मिलने वाला लावा का जमाव है। यह कुछ सेंटीमीटर से कई मीटर तक मोटी हो सकती है। अपने समीपवर्ती शैलों की अपेक्षा इस पर अपरदन का प्रभाव कम पड़ता है और इसी कारण कभी-कभी यह धरातल के ऊपर भी प्रकट हो जाती है।

मैग्मा के रासायनिक विभेदन के आधार पर
(According to Chemical Differentiation of Magma)

- **मैग्मा के रासायनिक विभेदन के आधार पर आग्नेय शैल दो प्रकार की होती हैं-**
  - ✓ मैफिक।
  - ✓ फेल्सिक।
- आग्नेय शैलों के आकार का संबंध शैलों में उपस्थित खनिज क्रिस्टलों के गठन तथा उनके प्रतिरूपों से होता है। आग्नेय शैल में खनिज क्रिस्टलों का आकार बहुत हद तक मैग्मा के ठंडा होने की दर पर निर्भर करता है। सामान्यतः मैग्मा के शीघ्र ठंडा होने पर छोटे क्रिस्टल तथा धीरे-धीरे ठंडा होने पर बड़े क्रिस्टल बनते हैं। अतिशीघ्र ठंडा होने से प्राकृतिक कांच या ग्लास की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के ग्लास क्रिस्टल विहीन होते हैं। भूपटल के निर्माण में आग्नेय एवं रूपांतरित चट्टानों का योगदान 95% है तथा शेष 5% भाग अवसादी चट्टानों से निर्मित है।

आग्नेय चट्टानों की विशेषताएँ

- ये रवेदार होती हैं। इनका आकार मैग्मा के ठंडा होने की दर पर निर्भर करता है।
- इनमें परत नहीं होती हैं।
- इनमें रंध्र न होने के कारण जल सुगमता से प्रवेश नहीं कर सकता है।
- इनमें अपरदन क्रिया कम होती है।
- इनमें जीवाश्म नहीं पाए जाते हैं।
- इस प्रकार की चट्टानों में खनिज तत्व की प्रधानता होती है। चुम्बकीय लोहा, निकिल, तांबा, सीसा, जस्ता, क्रोमाइट, मैगनीज, टिन, क्वार्टज, ग्रेनाइट, खनिज इसमें मिलते हैं।
- आग्नेय शैलों के प्रमुख उदाहरण हैं- **ग्रेनाइट, बेसाल्ट, ग्रेबो, आब्सीडियन, डायोराइट, एण्डेसाइट, पोरिडोटाइट, फेलसाइट, पिचस्टोन, प्यूमिस, परलाइट आदि।**

परतदार या अवसादी शैल (Sedimentary Rock)

अपक्षय एवं अपरदन के विभिन्न साधनों द्वारा मौलिक चट्टानों के विघटन, वियोजन एवं चट्टान-चूर्ण के परिवहन तथा किसी स्थान पर जमाव के फलस्वरूप उसके अवसादों (Debris) से निर्मित शैल को अवसादी शैल कहा जाता है। इसकी रचना परतों के रूप में होने के कारण इसे परतदार शैल भी कहते हैं।

- इनका निर्माण जल तथा स्थल दोनों भागों में होता है। इनके निर्माण में चट्टान-चूर्ण के साथ ही जीवावशेषों तथा वनस्पतियों का भी योगदान होता है। जीवावशेषों की उपस्थिति से चट्टान विशेष के समय का भी आसानी से पता लगा लिया जा सकता है। संपूर्ण भूपृष्ठ के लगभग 75% भाग पर अवसादी शैलों का विस्तार पाया जाता है। जबकि भूपृष्ठ की बनावट में इसका योगदान मात्र 5% ही है। यह शैल रवेदार तो नहीं होती है, किन्तु इसमें परतें पायी जाती हैं। इनमें सन्धियाँ तथा जोड़ बहुतायत से मिलते हैं। ये कोमल स्वभाव वाली शैलें हैं तथा इन पर अपरदन की क्रियाओं का प्रभाव शीघ्र पड़ता है।

अवसादी शैलों का वर्गीकरण

निर्माण में भाग लेने वाले अवसादों के अनुसार वर्गीकरण

- **यांत्रिक क्रियाओं द्वारा अथवा चट्टानी चूर्ण से निर्मित (Mechanically formed of Clastic Rock) जैसे-**

  ✓ बालुका पत्थर (Sand Stone)।
  ✓ जल से निर्मित बालुका पत्थर।
  ✓ कांग्लोमरेट अथवा गोलाश्म (Conglomerate)।
  ✓ चीका मिट्टी (Clay)।
  ✓ शेल (Shale)।
  ✓ लोएस (Loess)।

- **जैविक तत्वों से निर्मित (Organically fromed) जैसे-**

  ✓ चूने का पत्थर (Lime Stone)।
  ✓ कोयला (Coal)।
  ✓ पीट (Peat)।

- **रासायनिक तत्वों से निर्मित (Chemically formed) जैसे-**

  ✓ खड़िया मिट्टी (Chalk)।
  ✓ सेलखड़ी या जिप्सम (Gypsum)।
  ✓ नमक की चट्टान (Salt Rock)।

- **निर्माण में भाग लेने वाले साधनों के अनुसार वर्गीकरण-**
- **जल शैल (Argillaceous of Aquaeous Rock) जैसे-**
  ✓ सागर में निर्मित तलछट शैल (Marine Rock)।
  ✓ झील से निर्मित तलछट शैल (Lacustrine Rock)।
  ✓ नदी से निर्मित शैल (Riverine Rock))।

- **वायु द्वारा निर्मित शैल (Aeoline Rock) जैसे-** लोएस।
- **हिमानी द्वारा निर्मित शैल (Glacial Rock) जैसे-** मोरेन।

अवसादी चट्टानों की विशेषतायें

- इन चट्टानों में परत या स्तर होते है जो एक-दूसरे पर समतल रूप से जमे रहते हैं।
- इन चट्टानों में जीवाश्म (वनस्पति व जीव जंतु) पाये जाते हैं।
- इन्हीं चट्टानों में कोयला, स्लेट, संगमरमर, नमक, पेट्रोलियम आदि खनिज प्राप्त किये जाते हैं।
- ये चट्टानें अपेक्षाकृत मुलायम एवं छिद्रमय होती है।
- इन चट्टानों का निर्माण जल, पवन, हिम, जीव-जंतु या रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होता है।

रूपांतरित या कायांतरित शैल (Metamorphic Rock)

अवसादी एवं आग्नेय शैलों में ताप एवं दबाव के कारण परिवर्तन या रूपांतरण हो जाने से रूपांतरित शैलों का निर्माण होता है। रूपांतरण की क्रिया के दौरान मौलिक चट्टानों के संगठन तथा स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है एवं इनकी पहचान भी कठिन हो जाती है।

- आग्नेय एवं अवसादी चट्टानों के अतिरिक्त कभी-कभी रूपांतरित चट्टानों का भी रूपान्तरण हो जाता है जिसे **अति रूपांतरण** तथा **घोलीकरण** कहते हैं।

रूपान्तरण के प्रकार

- तापीय रूपांतरण
- गति रूपांतरण
- जलीय रूपांतरण
- ताप-जलीय रूपांतरण

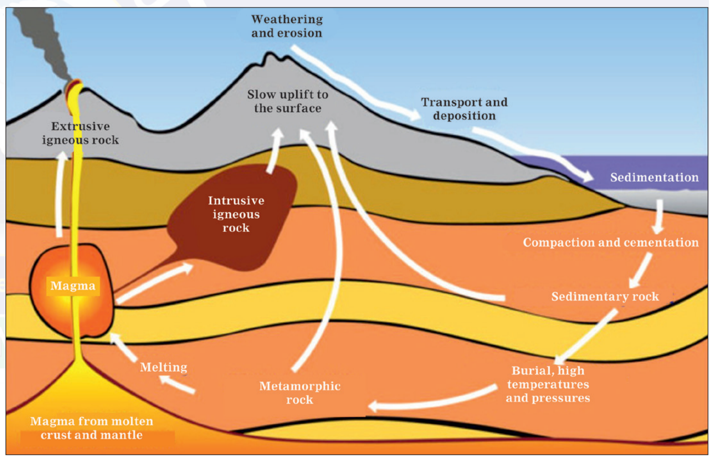

चट्टानों का रूपांतरण क्रम

- गोलाश्म (Gravel) ⟶ कांग्लोमरेट ⟶ कांग्लोमरेट शिस्ट
- **बालू** (Sand) ⟶ **बालू पत्थर** (Schist) ⟶ **क्वार्टजाइट**
- कांप (Clay) ⟶ शेल ⟶ फाइलाइट ⟶ शिस्ट
- **केल्शियम कार्बोनेट ⟶ चूना पत्थर ⟶ संगमरमर**
- ग्रेनाइट ⟶ नीस

आग्नेय चट्टानों के रूपांतरण से बनी शैलें

- ग्रेनाइट (Granite) ⟶ नीस (Gneiss)
- बेसाल्ट (Basalt) ⟶ एम्फीबोलाइट (Amphibolite)
- बेसाल्ट (Basalt) ⟶ सिस्ट (Schist)

रूपांतरित चट्टानों के पुनः रुपांतरण से बनी शैलें

- स्लेट (Slate) ⟶ फाइलाइट (Phyllite)
- फाइलाइट (Phyllite) ⟶ सिस्ट (Schist)
- गैब्रो (Gabbro) ⟶ सरपेंटाइन (Serpentine)
- कांग्लोमरेट (Conglomerate) ⟶ क्वार्टजाइट (Quartzite)

कायांतरित चट्टानों की विशेषताएँ

- इन चट्टानों का गुण, रंग, खनिज संरचना एवं रवे पूर्णतः नये सिरे से निर्धारित होते हैं।
- इन चट्टानों में कठोरता व दृढ़ता सर्वाधिक होती है।
- इन चट्टानों में सामान्यतः जीवाश्मों का अभाव पाया जाता है।
- इन चट्टानों में हीरा, संगमरमर, अभ्रक एक क्वार्टजाइट आदि पाये जाते हैं।

चट्टानी चक्र (Rocks Cycle)

भूपर्पटी पर मिलने वाले पदार्थ नष्ट नहीं होते अपितु इनके रूप परिवर्तित होते रहते हैं। इस प्रकार अपरदन के कारण आग्नेय व अवसादी शैलें कुछ समय बाद रूपांतरित शैलों में परिवर्तित होती रहती हैं। अवसादी शैलें धरातल पर बनती हैं, किन्तु शैलों का रूपांतरण भूपर्पटी के कारण होता है। अवसादी शैलें फिर से गहराई में दफन होकर और पिघल कर आग्नेय शैल बन सकती हैं। इस प्रकार एक वर्ग की शैल के विभिन्न परिस्थितियों में दूसरे वर्ग में बदलने को ही चट्टानी चक्र कहते हैं।

स्व कार्य हेतु

पर्वत, पठार मैदान एवं घाटियाँ (Mountains, Plateau Plains and Valleys)

पर्वत (Mountains)

पर्वत धरातल के ऐसे ऊपर उठे भागों के रूप में पहचाने जाते हैं, जिनकी ढाल तीव्र होता है और शिखर भाग संकुचित होती है। यद्यपि पठार भी धरातल से ऊँचे उठे हुए भाग ही होते हैं किन्तु पर्वत से इस बात में उनकी भिन्नता होती है कि पठारों का शिखर भाग चौरस तथा सपाट होता है। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि पर्वतीय भाग समुद्र तल से ऊँचे तो होते ही हैं, साथ ही अपने समीपवर्ती धरातल से इतने ऊँचे अवश्य होते हैं कि दूर से ही स्पष्ट रूप से देखे जा सकें। पर्वत विश्व का 26% भाग घेरे हुए हैं परन्तु पर्वतों पर विश्व की केवल 1% जनसंख्या ही निवास करती है।

धरातल पर आकार एवं स्वरूप की भिन्नता के अनुसार निम्नलिखित प्रकार की पर्वतीय स्थलाकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं-

- **पहाड़ी (Hill)**- इनकों पर्वतों का लघु भाग कहा जा सकता है क्योंकि एक तरफ जहाँ इनका क्षेत्रीय विस्तार कम होता है, वहीं दूसरी तरफ इनकी ऊँचाई भी अपने सीमावर्ती धरातल से 1000 मीटर से कम होती है।
- **पर्वत कटक (Mountain Ridge)**- संकीर्ण एवं ऊँची पहाड़ियों के क्रमबद्ध स्वरूप को पर्वत कटक कहा जाता है। इनकी उत्पत्ति में चट्टानों के स्तरों के मुड़ने का सर्वाधिक योगदान होता है और इनका एक ओर का ढाल तीव्र तथा दूसरी ओर का सामान्य होता है। ढाल के संबंध में इनमें समानता एवं असमानता दोनों ही दशाएँ मिल सकती हैं।
- **पर्वत श्रेणी (Mountain Range)**- पहाड़ों एवं पहाड़ियों का ऐसा क्रम जिसमें कई शिखर, कटक, घाटियाँ आदि सम्मिलित हों, **'पर्वत श्रेणी'** के नाम से जाने जाते हैं। पर्वत श्रेणियाँ एक सीधी रेखा में अपेक्षाकृत संकरे स्वरूप में विस्तृत होती हैं। **हिमालय पर्वत श्रेणी** इसका एक प्रमुख उदाहरण है।
- **पर्वत शृंखला (Mountain Series)**- विभिन्न युगों में निर्मित लंबे एवं संकरे पर्वतों का समान्तर विस्तार पर्वत शृंखला या पर्वतमाला कहलाती है, जैसे- **अप्लेशियन पर्वतमाला, रॉकीज पर्वतमाला** आदि।
- **पर्वत तंत्र (Mountain System)**- पर्वत तंत्र विभिन्न तंत्र श्रेणियों का समूह होता है, किन्तु पर्वत शृंखला के विपरीत इसमें एक ही युग में निर्मित पर्वतों को शामिल किया जाता है। अप्लेशियन पर्वत इसका भी प्रमुख उदाहरण है।
- **पर्वत वर्ग (Mountain Group)**- जब पर्वतों का समूह एक गोलाकार रूप में विस्तृत होता है तथा उसकी श्रेणियाँ एवं कटक असमान रूप में विस्तृत होती हैं, तब उसे पर्वत वर्ग की संज्ञा दी जाती है।
- **कॉर्डिलेरा (Cordillera)**- जब विभिन्न युगों में निर्मित पर्वत श्रेणियाँ, पर्वत तंत्र एक साथ ही बिना किसी क्रम के विस्तृत होते हैं, तब उसे कॉर्डिलेरा या पर्वत समूह कहा जाता है। उत्तरी अमेरिका महाद्वीप के प्रशांत तटीय भाग में स्थित **'प्रशांत कॉर्डिलेरा'** पर्वत समूह का प्रमुख उदाहरण है।

पर्वतों के प्रकार (Types of Mountains)

- विश्व में मिलने वाले पर्वतों में ऊँचाई, स्थिति, उत्पत्ति अथवा उनकी निर्माण प्रक्रिया तथा उत्पत्ति या पर्वत निर्माणकारी घटना के आधार पर अनेक प्रकार की विभिन्नताएँ पायी जाती हैं। यदि कोई दो पर्वत एक आधार पर समान हैं तो अन्य आधार पर उनमें अत्यधिक भिन्नता भी स्वाभाविक रूप में पायी जाती है।
- इस दृष्टि से पर्वतों का निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा सकता है-

ऊँचाई के आधार पर पर्वतों के प्रकार

- **निम्न या निचले पर्वत**- इस प्रकार के पर्वतों की ऊँचाई 700 से 1000 मीटर तक पायी जाती है। ये विश्व के प्राचीन पर्वत हैं, जो अनाच्छादन के कारण नीचे हो गये हैं। भारत के अरावली एवं विन्ध्याचल पर्वतों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।
- **कम ऊँचे पर्वत**- ऊँचाई 1000 मीटर से 1500 मीटर तक।
- **घर्षित या मध्यम ऊँचाई के पर्वत**- ऐसे पर्वतों की ऊँचाई 1500 से 2000 मीटर के बीच पायी जाती है। अप्लेशियन (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका), अरावली तथा पश्चिमी घाट (भारत) इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- **ऊँचे पर्वत**- विश्व के अधिकांश नवीन मोड़दार पर्वत इसी प्रकार के पर्वत हैं। इसकी ऊँचाई 2000 मीटर से अधिक है।

स्थिति के आधार पर पर्वतों के प्रकार

- स्थिति की दृष्टि से सम्पूर्ण पृथ्वी पर मिलने वाले पर्वतों को स्थलीय एवं सागरीय पर्वतों के वर्गों में रखा जा सकता है।
- स्थलीय या महाद्वीपीय पर्वत वर्ग में पर्वतों की दो प्रकार की स्थितियाँ पायी जाती हैं-

✓ **तटीय पर्वत-** इनका विस्तार महासागरों के समानान्तर महाद्वीपों के तटवर्ती भागों में पाया जाता है। ऐसे पर्वतों के प्रमुख उदाहरण हैं- रॉकीज, अप्लेशियन, एण्डीज, अल्पाइन पर्वतमाला, एटलस पर्वत, पश्चिमी घाट तथा पूर्वी घाट आदि।

✓ **आंतरिक पर्वत-** ये ऐसे पर्वत हैं, जिनका विस्तार महाद्वीपों के मध्यवर्ती आंतरिक भागों में पाया जाता है। ऐसे पर्वतों के उदाहरण हैं- यूराल, वॉस्जेस, ब्लैक फॉरेस्ट, हिमालय, कुनलुन, त्यानशान, शिगालिगशान, अल्टाई आदि। यहाँ यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि महाद्वीपों की भाँति ही महासागरों में भी ऊँचें एवं विस्तृत पर्वत पाये जाते हैं। ऐसे पर्वतों का विस्तार महासागरीय द्रोणियों तथा महाद्वीपीय निमग्न तटों वाले क्षेत्रों में मिलता है। ऐसे सागरीय पर्वतों के उदाहरण के रूप में **'मौना की' (Mauna Kea) हवाई द्वीप,** संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा एंटीलियन पर्वत समूह का नाम लिया जा सकता है, जो अपने आधार से मापे जाने पर कई स्थलीय पर्वतों से भी ऊँचे हैं।

निर्माण प्रक्रिया के आधार पर पर्वतों के प्रकार

सामान्यतः पर्वतों के निर्माण में स्थल के उभार, अपरदन के प्रभाव, ज्वालामुखी के उद्गार, संपीडनात्मक क्रियाओं तथा खिचाव की शक्तियों का योगदान होता है। पर्वतों के निर्माण में कभी एक ही शक्ति की क्रियाशीलता पायी जाती है तो कभी अनेक शक्तियाँ इसके लिए उत्तरदायी होती हैं। निर्माण में भाग लेने वाली क्रियाओं के आधार पर इनको अनेक उपवर्गों में रखा जाता है जो इस प्रकार हैं-

- **मोड़दार अथवा वलित पर्वत (Fold Mountains)-** पृथ्वी की आंतरिक शक्ति द्वारा धरातलीय चट्टानों में मोड़ या वलन पड़ने के परिणामस्वरूप बने हुए पर्वतों को मोड़दार अथवा वलित पर्वत कहा जाता है। भूसन्नति की परतदार चट्टानों के पार्श्विक संपीडनात्मक बल के कारण मोड़दार पर्वत का निर्माण होता है। यही कारण है कि मोड़दार पर्वत में छिछले सागर में रहने वाले जीवों के अवशेष पाए जाते हैं।
  वर्तमान में सर्वाधिक विस्तृत क्षेत्र पर मिलने वाले सबसे ऊँचे पर्वत ऐसे पर्वतों के ही उदाहरण हैं। ऐसे पर्वतों का विस्तार सामान्यतः प्रत्येक महाद्वीप में है और ये उनके किनारे वाले भागों पर उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम दिशा में मिलते हैं। हिमालय, एंडीज, अल्पाइन, रॉकीज इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- **अवरोधी या ब्लॉक पर्वत (Block Mountains)-** ऐसे पर्वतों को 'भ्रंशोत्थ पर्वत' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इनका निर्माण पृथ्वी की आंतरिक हलचलों के कारण तनाव अथवा खिचाव की शक्तियों के कारण धरातल के किसी भाग में भ्रंश या दरार पड़ जाने के परिणामस्वरूप होता है। ब्लॉक पर्वतों की उत्पत्ति निम्नलिखित तीन दशाओं में सम्भव होती है-

  ✓ दो सामान्य दरारों (Rifts) के मध्यवर्ती भाग के ऊपर उठ जाने के परिणामस्वरूप मेज की भाँति सपाट तथा तीव्र ढाल वाले ब्लॉक पर्वतों का निर्माण हो जाता है, जिन्हें भ्वतेज भी कहा जाता है।

  ✓ किसी स्थलीय भाग के दोनों ओर के स्थलखंडों के नीचे धंस जाने के कारण भी ऐसे पर्वतों का निर्माण हो जाता है। यह दशा प्रथम दशा के विपरीत घटित होती है क्योंकि बीच का खंड अपनी जगह पर स्थिर रहता है भले ही ऊपर उठा दिखाई दे।

  ✓ जब किसी स्थलखंड के बीच का भाग नीचे बैठ जाता है तो उसके दोनों ओर ब्लॉक पर्वत बन जाते हैं। बीच के बैठे हुए भाग को दरार घाटी (Rift Valley) कहा जाता है।

  ✓ उत्तरी अमेरिका महाद्वीप का **सियरा नेवादा पर्वत विश्व का सबसे बड़ा ब्लॉक पर्वत** है। यहाँ के अन्य ब्लॉक पर्वत हैं- एल्बर्ट वासाच रेंज तथा बर्नर।

  ✓ यूरोप में **ब्लैक फॉरेस्ट** (जर्मनी) तथा **वास्जेस** (फ्रांस) एवं **पाकिस्तान में साल्ट रेंज** भी ऐसे पर्वतों के प्रमुख उदाहरण हैं।
- **गुम्बदाकार पर्वत (Dome Mountains)-** जब पृथ्वी के धरातलीय भाग में चाप के आकार में उभार होने से धरातलीय भाग ऊपर उठ जाता है तो उसे 'गुंबदाकार' पर्वत कहा जाता है। ऐसे उभार को रचना क्रम की दृष्टि से 2 वर्गों, साधारण गुम्बद (Slat Dome) तथा लावा गुम्बद में विभाजित किया जाता है। गुम्बदाकार पर्वतों में लावा गुम्बद पर्वत ही विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इनका उभार तथा विस्तार बड़े क्षेत्र पर पाया जाता है। ऐसे पर्वतों में **हेनरी पर्वत (ऊटाह, सं. रा. अमेरिका), ब्लैक हिल्स** एवं **बिग हार्न्स** प्रमुख हैं।
- **संग्रहित पर्वत (Mountains of Accumulation)-** किसी भी साधन द्वारा धरातल पर मिट्टी, कंकड़, पत्थर, बालू आदि का धीरे-धीरे जमाव होने से कालांतर में निर्मित बड़ी पर्वताकार स्थलाकृति को संग्रहित पर्वत के रूप में जाना जाता है। ऐसे पर्वतों का सर्वप्रमुख रूप तो ज्वालामुखी उद्गार के समय बनने वाले लावा तथा अन्य जमावों वाले पर्वत ही हैं। इन पर्वतों का निर्माण ज्वालामुखीय उद्गार से उत्पन्न पदार्थों से होता है, अतः इन्हें **ज्वालामुखी पर्वत** भी कहते हैं।
- मरुस्थलों से निर्मित विशाल बालुका स्तूपों को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। ज्वालामुखी पदार्थों के जमाव से निर्मित संग्रहित पर्वतों के प्रमुख उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका के **शास्ता, रेनियर हुड, लासेन पीक,** जापान का **फ्यूजीयामा** इटली के **विसूवियस** तथा **एटना,** अफ्रीका का **कीनिया,** मैक्सिको का **पोपोकेटीपीटल** तथा चिली का माउंट **एकांकागुआ** आदि हैं। एण्डीज पर्वतमाला पर स्थित माउंट कोटेपैक्सी विश्व का जागृत ज्वालामुखी से निर्मित सर्वोच्च संग्रहीत पर्वत है।
- **मिश्रित या जटिल पर्वत (Complex Mountains)-** मिश्रित पर्वतों का निर्माण विभिन्न प्रकार के चट्टानों के सम्मिलित

स्वरूप से होता है और जब उसमें बनावट तथा संरचना सम्बन्धी जटिलताएँ पायी जाती हैं तब उसे जटिल पर्वत के नाम से जाना जाता है। ऐसे पर्वतों के प्रमुख उदाहरण हैः- **सियरा नेवादा पाइक पीक प्रदेश, द- रॉकी पर्वत (USA)।**

- **अवशिष्ट अथवा घर्षित पर्वत (Residual or Circum Erosional Mountains)-** उच्च पर्वतीय भागों पर अपरदन के कारकों के अधिक प्रभावी रहने के कारण कालान्तर में उनका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। वे एक अवशेष के रूप में होते हैं, अतः इन्हें घर्षित पर्वत कहा जाता है। इन पर्वतों में उच्चावच प्रतिलोमन (Inversion of Relief) की दशाएँ भी परिलक्षित होती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का अप्लेशियन, ओजार्क गैसिफ तथा केटस्किल एवं भारत के **अरावली, सतपुड़ा, पारसनाथ, पश्चिमी घाट, विंध्याचल** और **महादेव** अवशिष्ट पर्वतों का ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

पर्वत निर्माणकारी घटना के अनुसार पर्वतों के प्रकार

पृथ्वी पर पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के पर्वत अपनी निर्माणकारी घटना एवं आयु के आधार पर भी काफी भिन्नता रखते हैं और इसको जन्म देने वाली भूगर्भिक हलचलें भी पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास के विभिन्न कालों में घटित हुई हैं। इस दृष्टि से पृथ्वी के सर्वाधिक प्राचीनकाल-केम्ब्रियन युग से लेकर वर्तमान समय तक घटित होने वाली पर्वत निर्माणकारी घटनाओं को इस प्रकार रखा जा सकता है।

- **केम्ब्रियन युग के पूर्व के पर्वत-** केम्ब्रियन युग के पूर्व से लेकर आज से 40 करोड़ (400 मिलियन) वर्षों पूर्व तक पृथ्वी पर घटित हुई पर्वत निर्माणकारी घटना को प्री-केम्ब्रियन या पर्मियन हलचलों के नाम से जाना जाता है। इस युग में निर्मित पर्वतों के प्रमुख उदाहरण **अरावली, धारवाड़ युगीन वलित चट्टानों, छोटानागपुर, कुड़प्पा समूह** एवं दिल्ली क्रम के रूप में भारत में आज भी देखे जा सकते हैं।
- **केलिडोनियन युग के पर्वत-** इस युग के पर्वतों का निर्माण आज से 320 मिलियन वर्षों पूर्व सिल्यूरियन, डिवोनियन तथा पर्मियन युगों में संपन्न हुआ। ये सभी युग पेलियोजोइक कल्प के अंतर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। इस हलचल के परिणामस्वरूप उत्तरी अमेरिका में **अप्लेशियन**, यूरोप में **स्कॉटलैंड के पर्वत**, आयरलैंड के पर्वत, **स्केण्डीनेविया के पर्वत,** दक्षिण अमेरिका में **ब्राजील के पर्वत,** अफ्रीका में **सहराई वलन,** ऑस्ट्रेलिया में **नारीगुण्डा वलन** तथा एशिया में **बैकाल झील** के समीपवर्ती पर्वतों का निर्माण हुआ है। वर्तमान समय में इसमें से अधिकांश पर्वत घर्षित या अवशिष्ट पर्वतों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं तथा कुछ में अपरदन चक्र की कई घटनाओं के पूर्ण हो जाने के कारण ये पर्वत पेनीप्लेन (Peneplane) में परिवर्तित हो गये हैं।
- **हर्सीनियन युग के पर्वत-** वर्तमान से लगभग 270 मिलियन वर्ष पूर्व कार्बोनीफेरस युग के अंतिम चरण तथा पर्मियन युग में तीसरी पर्वत निर्माणकारी हलचल का आविर्भाव हुआ। इस हलचल को हर्सीनियन, वारिस्कन, आर्मेनियन, अप्लेशियन अथवा अल्टाइड हलचलों के नाम से भी जाना जाता है।
  पर्वत निर्माणकारी इस हलचल के परिणामस्वरूप यूरोप में अधिकांशतः ब्लॉक पर्वतों का निर्माण हुआ जो अल्पाइन पर्वत के उत्तर में स्थित हैं। इनके प्रमुख उदाहरण हैं- पेनाइन, हॉर्ज, वास्जेस, ब्लैक फॉरेस्ट, बोहेमिया, **फ्रांस का मध्यवर्ती उच्च प्रदेश, स्पेन का मोसोटा पठारी क्षेत्र** (यूरोप), तियेनशान अल्टाई, खिंगन, जुंगेरियान, तारिमबेरियन, नानाशान (एशिया), पूर्वी कॉर्डिलेरा (ऑस्ट्रेलिया) तथा ब्रिटेन का होवी घाटी क्षेत्र।
- **अल्पाइनयुगीन पर्वत-** हर्सीनियन हलचलों के पश्चात् पर्वत निर्माणकारी सर्वाधिक अर्वाचीन हलचल टर्शियरी युग में आज से 30 मिलियन वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई, जिसे अल्पाइन हलचल के नाम से जाना जाता है। **'अल्पाइन'** नामकरण यूरोप के आल्पस पर्वतों के आधार पर किया गया है। इस युग में वर्तमान समय में विश्व के मिलने वाले सर्वोच्च एवं सबसे नवीन पर्वतों का निर्माण हुआ। इस हलचल के परिणामस्वरूप विश्व में नवीन मोड़दार पर्वतों का निर्माण हुआ है जिनमें **आल्पस, रॉकीज, एण्डीज, पाण्टिक, एल्बुर्ज, जैग्रोस, हिंदुकुश, हिमालय, कुनलुन, काराकोरम, अराकान** आदि प्रमुख हैं।

पर्वतों का वर्गीकरण

पर्वत के प्रकार	पर्वत	देश/ अवस्थिति
मोड़दार पर्वत	आल्पस, यूराल, रॉकी, एंडीज हिमालय, एटलस	मध्यवर्ती यूरोप, मध्य रूस, प. उ. अमेरिका, प. द. अमेरिका, भारत, अफ्रीका
अवरोधी /ब्लाक पर्वत	वॉस्जेस तथा ब्लैक, फारेस्ट, साल्ट रेंज, वासाज रेंज, सियरा नेवादा, सतपुड़ा, नीलगिरि	यूरोप (राइन नदी के किनारे), पाकिस्तान, सं. रा. अमेरिका, केलिफोर्निया, भारत
गुम्बदाकार पर्वत संग्रहीत पर्वत	सिनसिनाती उभार, हुड, रेनियर मैयन, पोपोकेटपिटल, लैसनपीक, विसुवियस एकांकागुआ, कोटेपैक्सी	सं. रा. अमेरिका,ब्लैक हिल्स, बिग होर्न्स, सं. रा. अमेरिका, फिलीपींस, मैक्सिको, केलिफोर्निया, इटली, चिली, इक्वेडोर
अवशिष्ट पर्वत	कोलोटैंड, अन्नामलाई, नीलगिरि गिरनार, विंध्याचल अरावली, सतपुड़ा	सं. रा. अमेरिका, भारत

विश्व की प्रमुख पर्वत श्रेणियाँ		
नाम	**स्थिति**	**सर्वोच्च बिंदु**
कॉर्डिलेरा डि लॉस एंडीज	पश्चिमी-दक्षिण अमेरिका	एकांकागुआ
रॉकी पर्वत श्रेणी	पश्चिमी उत्तरी अमेरिका	माउंट एल्बर्ट
हिमालय- काराकोरम-हिन्दुकुश	दक्षिणी मध्य एशिया	माउंट एवरेस्ट
ग्रेट डिवाइटिंग रेंज	पूर्वी ऑस्ट्रेलिया	कोस्यूस्को
ट्रान्स अंटार्कटिका पर्वत	अंटार्कटिका	माउंट विन्सन मैसिफ
तियेन शान	दक्षिणी मध्य एशिया	पीके पोवेडा
अल्टाई माउंटेंस	मध्य एशिया	गोरा वेलुखा
यूराल पर्वत श्रेणी	मध्य रूस	गोरा नैरोड्नाया
कमचटका स्थित श्रेणी	पूर्वी रूस	क्ल्यूचेव्सकाया सोपका
एटलस पर्वत	उत्तरी-पश्चिमी अफ्रीका	जेवेल टाउब्काल
वर्खोयान्स्क पर्वत	पूर्वी रूस	गोरा मास खाया
पश्चिमी घाट	पश्चिमी भारत	अनाइमुदी
सियरा माद्रे ओरिएंटल	मैक्सिको	ओरीजावा
जैग्रोस पर्वत श्रेणी	ईरान	जाड कुह
एल्बुर्ज	ईरान	देमाबंद
स्कैंडिनेवियन रेंज	पश्चिमी नॉर्वे	गैलढोपिजेन
पश्चिमी सियरा माद्रे	मैक्सिको	नोवाडो डि कोलिमा
डेकन्सबर्ग	दक्षिण-पूर्व अफ्रीका	दवाना एन्टलेन्याना
काकेशस	रूस	एलब्रुश (पश्चिमी चोटी)
अलास्का श्रेणी	अलास्का (सं. रा. अमेरिका- कनाडा)	माउंट मिचेल
कास्केड रेंज	सं. रा. अमेरिका - कनाडा	माउंट रेनियर
एपेनाइन	इटली	कोर्नो ग्रैण्डे
अप्लेशियन्स	पूर्वी सं. रा. अमेरिका, कनाडा	माउंट मिचेल
आल्प्स	मध्यवर्ती यूरोप	माउंट ब्लैंक
सियरा माद्रे डेल सुर	मैक्सिको	टियोटेपेक

पर्वत: स्मरणीय तथ्य

- पर्वत निर्माण का भू-सन्नति सिद्धांत **'कोबर ने दिया'**।
- केलिफोर्निया का **सियरा नेवादा विश्व का सर्वाधिक बड़ा ब्लॉक पर्वत** है।
- कॉर्डिलेरा डि लॉस **एण्डीज विश्व की सबसे लम्बी पर्वत** शृंखला है। इसके बाद क्रमशः रॉकी, हिमालय व ग्रेट डिवाइडिग रेंज है।
- हिमालय विश्व की सबसे ऊँची पर्वत श्रेणी है। विश्व की सर्वोच्च पर्वत चोटी एवरेस्ट (8848 मीटर) यहाँ पर स्थित है।
- **माउंट मैकिन्ले** उत्तरी अमेरिका की सबसे ऊँची पर्वत चोटी है।
- विश्व में अवशिष्ट पर्वतों की संख्या सर्वाधिक है।
- संसार का सबसे पुराना पर्वत **अरावली पर्वत** है। इसकी रचना प्री-केम्ब्रियन काल (Pre Cambrinan Period) में हुई।
- भारत का विन्ध्याचल पर्वत पुराजीव कल्प (Palaeozoic Era) के केम्ब्रियन युग (Tertiary Period) में बना है।
- विश्व की 14 सर्वाधिक ऊँची चोटियाँ हिमालय पर स्थित है।
- हिमालय के बाद **एण्डीज** विश्व का सबसे ऊँचा पर्वत है।
- **एकान्कागुआ एण्डीज** की सर्वोच्च चोटी है।
- भारत की सबसे लम्बी पर्वतमाला **हिमालय** है।
- अरावली पर्वत की सबसे ऊँची चोटी **माउण्ट आबू** (गुरु शिखर) है जिसकी समुद्रतल से ऊँचाई 1727 मीटर है।
- भारत के अरावली एवं विंध्याचल पर्वतों को निचले पर्वतों की श्रेणी में रखा जाता है।
- एप्लेशियन, अरावली तथा पश्चिमी घाट घर्षित पर्वतों के उदाहरण है।
- विश्व के अधिकांश नवीन पर्वत मोड़दार पर्वतों के उदाहरण हैं, जैसे- रॉकीज, एण्डीज तथा हिमालय।
- रॉकीज, एप्लेशियन, एण्डीज, अल्पाइन तथा एटलस तटीय पर्वतों के उदाहरण है।
- यूराल, वॉसजेस, ब्लैक फॉरेस्ट, हिमालय, कुनलुन, त्यानशान आदि आंतरिक पर्वतों के उदाहरण हैं।
- **'माउंट मौना की'** सागरीय पर्वत का उदाहरण है।
- स्कॉटलैंड तथा स्केण्डनेवियन के पर्वत एप्लेशियन पर्वत, टिएनशान तथा नानशान पर्वत, विंध्याचल तथा अरावली मोड़दार अवशिष्ट पर्वतों के उदाहरण हैं।
- ब्लैक फॉरेस्ट, वॉसजेस तथा सॉल्ट रेंज ब्लॉक पर्वतों के उदाहरण हैं।
- हेनरी पर्वत, ब्लैक हिल्स एवं बिग बर्न्स गुम्बदाकार पर्वत के उदाहरण हैं।
- अमेरिका का शास्ता, रेनियर हुड व लासेन पीक, जापान का फ्रयूजीयामा, इटली का विसुवियस एवं एटना, अफ्रीका का कीनिया, मैक्सिको का पोपोकेटिपिटल तथा चिली का माउण्ट एकांकागुआ आदि संग्रहित पर्वतों के उदाहरण हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका का एप्लेशियन, भारत के अरावली, सतपुड़ा तथा पारसनाथ आदि अवशिष्ट पर्वतों के उदाहरण हैं।
- आल्पस, एण्डीज, रॉकीज, एल्बुर्ज, जाग्रोस, हिन्दुकुश, हिमालय, कुनलुन, काराकोरम, अराकान अल्पाइन युगीन पर्वत के उदाहरण हैं।
- पेनाइन, हार्ज, वॉसजेस, ब्लैक फॉरेस्ट, बोहेमिया, स्पेन का मोसोटा पठारी क्षेत्र आदि हर्सीनियन युग के पर्वत हैं जिनका निर्माण कार्बोनिफेरस युग के अन्तिम चरण में हुआ है।
- भारत के अरावली, कुड़प्पा व धारवाड़ समूह के पर्वत केम्ब्रियन युगीन हैं।

- विश्व की सबसे ऊँची चोटियाँ नवीन मोड़दार पर्वतों में पायी जाती हैं।
- विश्व की सर्वाधिक लम्बी पर्वत **श्रृंखला एण्डीज** है।
- **दक्षिणी आल्पस पर्वतमालायें** न्यूजीलैंड में स्थित हैं।
- अराकान योमा पर्वत म्यांमार में स्थित है।
- ब्लैक फॉरेस्ट पर्वत जर्मनी में स्थित है।
- माउण्ट टिटलिस स्विट्जरलैंड में अवस्थित है। यह ज्वालामुखी के लावा के शीतलन से निर्मित है।

पठार (Plateau)

पठार धरातल पर ऊँचे उठे हुए ऐसे भू-भाग हैं जिनका शीर्ष सपाट हो तथा जो अपने समीपवर्ती भू-भाग से एक या एक से अधिक तरफ से तीव्र ढाल द्वारा अलग हो गये हों। पठारों को प्रायः मेज के आकार की भू-आकृति (Tableland) भी कहा जाता है, किन्तु यही एकमात्र आधार अपर्याप्त है, क्योंकि कभी-कभी पठार, जहाँ मध्यवर्ती विशाल मैदान से नीचा होता है, वहीं तिब्बत का पठार अपने समीपवर्ती तमाम पर्वतों से भी ऊँचा है। तुलनात्मक रूप में पठार मैदानों से नीचे तथा पर्वतों से भी ऊँचे हो सकते हैं। उदाहरण के लिए सं.रा. अमेरिका के पूर्वी भाग में स्थित पीडमाण्ट साधारणतः समुद्र तल से इनकी ऊँचाई 300 मीटर से 1000 मीटर तक होती है, परन्तु केवल ऊँचाई के आधार पर पठार का निर्धारण नहीं किया जा सकता। पठार में अधिकांशतः परतों में वलन या मोड़ों का अभाव पाया जाता है तथा वे क्षैतिज रूप में व्यवस्थित होते हैं।

पठारों की उत्पत्ति में सामान्य रूप से निम्नलिखित क्रियाएँ प्रभावी होती हैं-

- भू-गर्भिक हलचलों, जिनके कारण कोई समतल भू-भाग अपने समीपवर्ती धरातल से ऊपर उठ जाता है।
- ऐसी हलचलें जिनके कारण समीपवर्ती भू-भाग नीचे बैठ जाता है तथा कोई समतल भाग ऊपर रह जाता है।
- ज्वालामुखी-क्रिया के समय निकले लावा के जमाव से समतल तथा ऊँचें भू-भाग का निर्माण हो जाता है।
- पर्वतों के निर्माण के समय किसी समीपवर्ती भाग के अधिक ऊपर न उठ पाने से पठार की उत्पत्ति हो जाती है।
- पर्वत निर्माणकारी शक्तियों के अधिक तीव्र न होने पर भूसन्नति के बीच वाले भाग से अप्रभावित रहने के कारण पठार की उत्पत्ति हो जाती है।
- अनाच्छादन (Denudation) के परिणामस्वरूप पर्वतों का क्षय होने पर वे पठार के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।
- पठारों की औसत ऊँचाई समुद्र तल से 300 से 1000 मीटर तक मानी जाती है, लेकिन विश्व के अनेक पठार ऐसे भी हैं, जिसकी ऊँचाई 2000 मीटर से भी अधिक है जैसे कोलराडो पठार (2500 मीटर से भी अधिक) तथा तिब्बत का पठार 6100 मीटर ऊँचा है।
- दूसरी ओर कई पठार ऐसे भी हैं जो मैदानों के धरातल से भी नीचे हैं, जैसे उत्तरी अमेरिका का अप्लेशियन पर्वत, समुद्रतल से केवल 900 मीटर ऊँचा है जबकि मिसीसिपी से पश्चिम में वृहद मैदान 1500 मीटर ऊंचा है।
- इस प्रकार पठारों का निर्धारिण केवल उसके ऊँचाई के आधार पर नहीं बल्कि उनके आकार तथा धरातलीय उच्चावच के आधार पर भी किया जाता है।

पठारों का वर्गीकरण

धरातल पर मिलने वाली किसी भी स्थलाकृति को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। पठार भी इसके अपवाद नहीं हैं। इनका वर्गीकरण भी निम्नलिखित आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

उत्पत्ति के आधार पर पठारों का वर्गीकरण

- भूपटल में द्वितीय श्रेणी के स्थल रूप-पठार की उत्पत्ति में पृथ्वी के अंतर्जात (Endogenetic) एवं बहिर्जात (Exogenetic) दोनों प्रकार के बलों का योगदान रहता है। इतना अवश्य है कि जहाँ अन्तर्जात बलों के द्वारा विशाल एवं ऊँचे पठार बनते हैं, वहीं बहिर्जात बल पठार के अपरदन द्वारा विनाश भी अधिक करते हैं, क्योंकि इनका मुख्य कार्य ही धरातल पर समानता स्थापित करना है। फिर भी, कुछ छोटे पठारों का निर्माण इनके द्वारा हो जाता है।

अन्तर्जात बलों से उत्पन्न पठार

पटल विरूपणी बल के कारण विश्व के सर्वाधिक ऊँचे तथा विस्तृत पठारों की उत्पत्ति हुई है क्योंकि इनसे चट्टानों में लम्बवत तथा क्षैतिज संचलन बड़े पैमाने पर संपन्न होते हैं।

इनसे निर्मित प्रमुख पठार स्थिति के अनुसार निम्नलिखित हैं-

- **अंतरापर्वतीय पठार (Intermountain Plateau)-** ऐसे पठारों का निर्माण भूगर्भ की आंतरिक शक्तियों के परिणामस्वरूप उच्च पर्वत श्रेणियों के निर्माण के साथ ही सम्पन्न होता है तथा ये चारों ओर से घिरे रहते हैं। तिब्बत का पठार, बोलिविया, पेरू, कोलंबिया तथा मैक्सिको के पठार ऐसे ही पठार हैं। **तिब्बत का पठार** विश्व का सबसे ऊँचा पठार है जो सागर तल से 16000 फीट ऊँचा है।
- **पीडमॉण्ट या पर्वतपदीय पठार (Piedmont Plateau)-** उच्च पर्वतों की तलहटी में स्थित पठारो को **'पीडमॉण्ट'** पर्वतीय या गिरिपद पठार के नाम से जाना जाता है, ये वास्तव में पर्वत तल तथा मैदानी भागों अथवा पर्वतों के समुद्रों के बीच ऊपर उठे हुए भाग होते हैं। सं. रा. अमेरिका की **पीडमॉण्ट पठार** तथा दक्षिणी अमेरिका का **पेंटागोनिया का पठार** ऐसे पठारों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं। भारत का **शिलांग पठार** भी इस श्रेणी का पठार है।

- **तटीय पठार (Coastal Plateau)-** समुद्र के किनारे अवस्थित पठारों को तटीय पठार कहा जाता है तथा इनकी उत्पत्ति समीपवर्ती भाग के उत्थान से ही होती है। प्रायद्वीपीय भारत का **कोरोमंडल का पठार** ऐसा ही पठार है।
- **गुंबदाकार पठार (Dome-shaped Plateau)-** पृथ्वी की आंतरिक हलचलों के कारण जब किसी भाग में गुम्बद के आकार का उभार हो जाता है, तब ऐसे पठारों की उत्पत्ति होती है। ज्वालामुखी लावा के नीचे से उभार के कारण ऐसे पठारों का अधिक निर्माण हुआ है। सं. रा. अमेरिका का **ओजार्क पठार** ऐसा ही पठार है। भारत में **छोटा नागपुर पठार** व **रामगढ़ का पठार** इसका उदाहरण हैं।
- **महाद्वीपीय पठार (Cotinental Plateau)-** ऐसे पठारों का निर्माण पटलविरूपणी बलों द्वारा धरातल के किसी विस्तृत भू-भाग के ऊपर उठ जाने से होता है। कभी-कभी ज्वालामुखी लावा का काफी बड़े क्षेत्र पर विस्तार हो जाने से भी ऐसे पठारों का निर्माण हो जाता है। भारत का प्रायद्वीपीय पठार इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इन पठारों को शील्ड भी कहा जाता है। जैसे- **कनाडियन शील्ड, ब्राजील शील्ड** एवं **साइबेरियन शील्ड आदि।**
- **ज्वालामुखी से उत्पन्न पठार (Volcanic Plateau)-** पृथ्वी के आंतरिक भाग से उत्पन्न होने वाली ज्वालामुखी आकस्मिक संचलन की क्रिया से निर्मित पठारों को ज्वालामुखी पठार कहते हैं। ये पठार ज्वालामुखी उद्‌गार के समय धरातल के बड़े क्षेत्र पर लावा का प्रवाह हो जाने के परिणास्वरूप निर्मित होते हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है- **कोलंबिया का पठार** (सं. रा. अमेरिका) जो लगभग 1 लाख वर्ग मील क्षेत्र पर फैला है। भारत में **दक्कन का पठार** इसी का उदाहरण है।

बहिर्जात बलों के कारण उत्पन्न पठार

यह स्पष्ट है कि बहिर्जात बल धरातल पर समानता लाने का कार्य करते हैं। अतः इनके द्वारा पठारों का अपरदन अधिक तथा निर्माण कम हो जाता है, जो निम्नलिखित प्रकार के होते हैं-

- **जलीय पठार (Plateau of Acqueous Origin)-** नदियों द्वारा समुद्र में पहुँचने के पूर्व उनके द्वारा बहाकर लाये गये निक्षेपों के जमाव से ऐसे पठार बनते हैं जिनकी उत्पत्ति कालान्तर में ऐसे निक्षेपों के शैलों में परिवर्तित हो जाने से ही होती है। भारत का **विंध्याचल पठार, चेरापूंजी का पठार, म्यांमार (बर्मा) का शान का पठार** आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
- **वायव्य पठार (Plateau of Aeolin Origin)-** ऐसे पठारों का निर्माण वायु के परिवहन एवं निक्षेपण के परिणामस्वरूप होता है। चीन के उत्तर-पश्चिम में स्थित **लोयस का पठार** तथा पाकिस्तान का **पोतवार का पठार** ऐसे ही पठार हैं।
- **हिमानी निर्मित पठार (Plateau of Aeolin Origin)-** पर्वतीय क्षेत्रों में कई भू-भाग हिमानी क्रिया से अपरदन एवं निक्षेपण के कारण पठारों में परिवर्तित हो गये हैं। ग्रीनलैण्ड एवं अंटार्कटिका के पठार ऐसे ही हैं। भारत के उत्तराखण्ड राज्य का **गढ़वाल पठार** भी हिमानी निर्मित पठार माना जाता है।
- **उत्स्यन्द पठार (Plateaus of Effusive Origin)-** ऐसे पठारों की उत्पत्ति ज्वालामुखी उद्‌गार के समय लावा के धरातल पर फैलकर जमा हो जाने के परिणामस्वरूप होती है। भारत के प्रायद्वीपीय पठार तथा सं. रा. अमेरिका की **कोलम्बिया का पठार** ऐसे पठारों के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

जलवायु के आधार पर पठारों का वर्गीकरण

- जलवायु के आधार पर पठार तीन प्रकार के होते हैं-

✓ **शुष्क पठार (Arid Plateau)-** शुष्क प्रदेशों में स्थित पठारों को शुष्क पठार कहते हैं। जैसे- **पोतवार का पठार।**

✓ **आर्द्र पठार (Humid Plateau)-** सघन वर्षा के प्रदेशों में पाये जाने वाले पठार आर्द्र पठार कहलाते हैं। जैसे- **असम का पठार।**

✓ **हिम पठार (Ice Plateau)-** ध्रुवीय प्रदेशों या हिमाच्छादित भागों में पाये जाने वाले पठार हिम पठार कहलाते हैं। जैसे- **ग्रीनलैंड** और **अंटार्कटिका का पठार।**

प्रमुख पठार व उनकी स्थिति

नाम	स्थिति
एशिया माइनर	तुर्की
अनातोलिया का पठार	तुर्की
मेसेटा पठार	आइबेरिया प्रायद्वीप (स्पेन)
चियापास पठार	द. मैक्सिको
अलास्का/यूकॉन पठार	संयुक्त राज्य अमेरिका
कोलम्बिया पठार	संयुक्त राज्य अमेरिका
ग्रेट बेसिन पठार	संयुक्त राज्य अमेरिका
कोलोरेडो पठार	संयुक्त राज्य अमेरिका
ग्रीनलैंड पठार	ग्रीनलैंड

भारतीय पठार (Indian Plateau)

भारत के प्रायद्वीपीय भाग में अनेक पठार मिलते हैं। इसके प्राचीन भूखंड के उत्तर-पूर्वी भाग में अनेक पठार हैं जिन्हें सामूहिक रूप से छोटानागपुर पठार कहते हैं। इस पठार में रांची, हजारीबाग और कोडरमा के पठार सम्मिलित हैं। ग्रेनाइटिक नीस से निर्मित इन पठारों का ढाल उत्तर की ओर है। रांची

पठार, ऊंचे पठारों का एक समूह है जिनके समतल शीर्ष लैटेराइट से ढंके हैं, जिन्हें 'पत' कहा जाता है।

- छोटानागपुर पठार की दामोदर घाटी में विशाल कोयला क्षेत्र पाये जाते हैं। प्रायद्वीपीय भारत के बाहर लद्दाख का ऊँचा पठार है। इसी प्रकार दक्कन में तीन विस्तृत पठारी क्षेत्र मिलते हैं। ये क्षेत्र हैं- महाराष्ट्र का लावा पठार तथा कर्नाटक और तेलंगाना के उत्थित महाद्वीपीय पठार।

पठार से संबंधित प्रमुख शब्दावलियाँ एवं तथ्य

- **मार्ग या मर्ग (Mergs)**- भारत के जम्मू-कश्मीर राज्य में हिमानी निक्षेप से निर्मित छोटे-छोटे भागों को मार्ग या मर्ग कहा जाता है। जैसे सोनमर्ग, गुलमर्ग आदि।
- कोलोरेडो का पठार युवा पठार (Young Plateau) जबकि अप्लेशियन की गणना प्रौढ़ पठार (Mature Plateau) के अंतर्गत की जाती है।

ब्यूट या बुटी (Bute)

- स्पष्ट दृष्टिगोचर होने वाली सपाट शिखरीय एक लघु पहाड़ी, जो प्रायः प्रतिरोधी शैल स्तरों से ढकी रहती है।

मेसा (Mesa)

- प्राचीन पठार कठोर शैलों वाले पठारी भागों पर अपरदन की क्रिया की अधिकता के कारण उनका स्वरूप विकृत हो जाता है, फिर भी कुछ मेज के आकार की सपाट संरचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिन्हें **मेसा** कहा जाता है। मेसा की उपस्थिति किसी पठार के जीर्ण या वृद्ध (Old) होने की प्रमुख पहचान होती है।
- मिसौरी का पठार (सं.रा. अमेरिका) पुनर्युवनित पठार (Rejuvenated Plateau) का सर्वोत्तम उदाहरण है।

पठार: स्मरणीय तथ्य

- जीर्ण वृत पठार की पहचान उसमें उपस्थित मेसा से होती है।
- मेसा कठोर चट्टानों से निर्मित सपाट संरचनाएँ होती हैं जो पठार पर अवशेष के रूप में अपरदन के प्रभाव के बाद बची रह जाती हैं।
- तिब्बत का पठार विश्व का सबसे ऊँचा पठार है जबकि इसका कुछ भाग 18,000 फीट तक ऊँचा है।
- यूनान का पठार चीन में तथा शान का पठार म्यांमार में स्थित है।
- राँची का पठार पुनर्युवनित (Rejuvenated) पठार का प्रमुख उदाहरण हैं।
- सम्पूर्ण विश्व में स्थलखंड के 26% भू-भाग पर पर्वत एवं पहाड़ी, 33% भाग पर पठार हैं।
- भारत में दक्कन का पठार एवं सं.रा. अमेरिका में कोलंबिया का पठार लावा निर्मित पठार के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।
- संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पीडमांट पठार व दक्षिणी अमेरिका के पैंटागोनिया पठार गिरिपद के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

मैदान (Plains)

धरातल पर मिलने वाले अपेक्षाकृत समतल और निम्न भू-भाग को मैदान कहा जाता है। इनका ढाल एकदम न्यून होता है तथा ऐसे क्षेत्रों में नदियों का प्रवाह मन्द पड़ जाता है। समुद्रतल से ऊँचाई की दृष्टि से मैदानों में काफी असमानता पायी जाती है। उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका का बड़ा मैदान या **ग्रेट प्लेन** जहाँ एक ओर अपने समीपवर्ती अप्लेशियन पर्वतीय क्षेत्र से ऊँचा है वहीं समुद्र तल से इसकी ऊँचाई कहीं-कहीं 150 मीटर से भी अधिक है जबकि दूसरी ओर **जॉर्डन नदी की घाटी** तथा **हॉलैण्ड का पोल्डर्स मैदान** समुद्रतल से भी नीचे हैं।

मैदानों के प्रकार (Types of Plains)

स्थिति, विस्तार, उत्पत्ति, ऊँचाई, जलवायु एवं वनस्पति के आधार पर मैदानों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है-

स्थिति के आधार पर मैदानों के प्रकार

- **तटीय मैदान (Coastal Plains)**- सागर तटों के निकट के मैदान तटीय मैदान कहलाते हैं। जैसे- **फ्लोरिडा का मैदान** तथा **भारत के पूर्वी** एवं **पश्चिमी समुद्र तटीय मैदान**।
- **अन्तः स्थलीय मैदान (Interior Plains)**- महाद्वीपों के आंतरिक भाग में पाये जाने वाले मैदान, आंतरिक मैदान कहलाते हैं। जैसे- **उत्तरी अमेरिका** एवं **यूरोप के विशाल मैदान** आदि।

उत्पत्ति के आधार पर मैदानों के प्रकार

- उत्पत्ति के आधार पर वर्गीकृत उपर्युक्त तीनों मैदानों का विवरण निम्नवत है-

रचनात्मक या पटलविरूपणी मैदान (Constructive or Diastraphic Plains)

रचनात्मक मैदानों का निर्माण पटलविरूपणी बलों के परिणामस्वरूप समुद्री भागों में निक्षेपित जमावों के ऊपर उठने से होता है। इसके अतिरिक्त महादेशजनक (Epeirogenetic) या विवर्तनिक (Tectonic) बलों द्वारा

भूपटल के स्थान एवं अवतलन (Uplift and Subsidence) अथवा समुद्रतल से स्थलखंडों के उन्मज्जन या निमज्जन (Emergence or Submergence) के कारण भी धरातल पर रचनात्मक मैदानों का निर्माण हो जाता है। इनकी रचना के अधिमहाद्वीपीय समुद्रों में निमज्जित भाग के ऊपर उठने या अवतलित हो जाने के परिणामस्वरूप उस पर जमे निक्षेपों का सर्वाधिक योगदान रहता है।

- अधिमहासागरीय भाग से उत्थान (Upliftment) के कारण निर्मित मैदानों में सं. रा. अमेरिका के वृहत् मैदान (Great Plains province) अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके साथ ही संयुक्त राज्य अमेरिका का अटलांटिक तटीय मैदान तट स्थलखंड के सागर तल से ऊपर (Emergence) का उदाहरण है।
- समुद्रतटीय भाग का अवतलन (Subsidence) हो जाने तथा कालांतर में उस पर निक्षेपों के जमाव हो जाने से भी मैदानों का निर्माण हो जाता है, जिसे तटीय मैदान कहते हैं। भारत में कोरोमण्डल तथा उत्तरी सरकार मैदान ऐसे ही मैदान हैं।
- पर्वत निर्माण के समय पटलविरूपणी बलों के कारण सामने के भाग के अवलित हो जाने और कालान्तर में नदियों द्वारा लाये गये निक्षेपों के जमाव से भी रचनात्मक मैदानों का निर्माण हो जाता है। भारत में उत्तर का विशाल मैदान ऐसा ही मैदान है।
- पर्वत निर्माण के समय भू-सन्नतियों के किनारों में संपीडनात्मक बल (Compressional Force) के कारण वलन की क्रिया होती है। जब यह बल कम होता है तो भू-सन्नतियों के किनारों पर वलन पड़ते हैं जबकि बीच का भाग अप्रभावित रहता है जो मैदान का रूप ले लेता है, जैसे- हंगरी का मैदान।

अपरदनात्मक या विनाशात्मक मैदान (Erosional or Destructional Plains)

ऐसे मैदानों का निर्माण अपक्षय तथा अपरदन की क्रियाओं के परिणामस्वरूप होता है, किन्तु अपरदन के प्रभावी कारक की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों में रखा जाता है-

- **समप्राय मैदान-** समप्राय मैदान (Peneplain) के निर्माण में बहते हुए जल या नदियों का सबसे अधिक योगदान रहता है। यह धरातल के किसी उच्च भू-भाग के अपरदन की सबसे अन्तिम अवस्था का द्योतक है। नदियों द्वारा अपरदन की अपनी चरम सीमा प्राप्त कर लेने पर संपूर्ण भू-भाग एक समतल मैदान में परिवर्तित हो जाता है। इतना अवश्य है कि इनके बीच-बीच में कठोर शैलों के कुछ अवशिष्ट दिखायी पड़ते हैं, जिन्हें **'इन्सेलबर्ग'** (Monadnock) कहा जाता है।
- समप्राय मैदान के विशिष्ट उदाहरण हैं- **पेरिस बेसिन, अमेजन बेसिन का दक्षिणी भाग, मिसीसिपी बेसिन का ऊपरी भाग, रूस का मध्यवर्ती मैदान, पूर्वी इंग्लैंड का मैदान** तथा **भारत का अरावली क्षेत्र**।
- **हिमानी निर्मित मैदान (Glacial Plains)-** धरातल पर हिमानी के प्रवाह से निर्मित मैदानों को इस वर्ग में रखा जाता है। पृथ्वी के भूगर्भिक इतिहास में चार बार हिमानियों का प्रवाह निरूपित किया गया है, जिसके कारण उत्तरी **अमेरिका में कनाडा** तथा **संयुक्त राज्य** एवं **यूरोप के फिनलैंड** तथा **स्वीडन** में मैदानी भागों की उत्पत्ति हुई है।
- **कार्स्ट मैदान (Karst Plains)-** चूना पत्थर (Lime Stone) वाली शैलों पर जल का प्रवाह होने से अपरदन एवं घुलनशीलता के कारण सम्पूर्ण भू-भाग एक समतल मैदान में परिवर्तित हो जाता है, जिससे कार्स्ट मैदानों की उत्पत्ति होती है। **यूगोस्लाविया में एड्रियाटिक सागर के समीपवर्ती कार्स्ट क्षेत्रों** में मिलने के कारण ऐसे सभी मैदानों को कार्स्ट मैदान ही कहा जाता है। इस प्रकार के मैदान सं. रा. अमेरिका एवं फ्रांस में भी पाये जाते हैं। भारत में **चित्रकूट, रामगढ़** और **अल्मोड़ा** के पास विस्तृत चूने के चट्टान वाले भाग देखने को मिलते हैं।
- **मरुस्थलीय मैदान (Desert Plains)-** ऐसे मैदानों का निर्माण विश्व के मरुस्थलीय भागों में वायु की क्रियाओं के परिणामस्वरूप हुआ। ऐसे मैदानों में अन्तः प्रवाह (Inland Drainage) पाया जाता है, क्योंकि वर्षाकाल में छोटी-छोटी जलधाराएँ अन्दर की ओर प्रवाहित हो जाती है और बाद में सूख जाती हैं।

निक्षेपात्मक मैदान (Depositional Planis)

अपरदन के कारकों द्वारा धरातल के किसी भाग से अपरदित पदार्थों को परिवहित करके उन्हें दूसरे स्थान पर निक्षेपित कर देने से ऐसे मैदानों की उत्पत्ति होती है।

- विश्व के अधिकांश मैदान इन्हीं मैदानों की श्रेणी में आते हैं। निक्षेप के साधनों एवं निक्षेप के स्थान के आधार पर ऐसे मैदानों को निम्न वर्गों में रखा जाता है-
- **जलोढ़ मैदान (Alluvial Plains)-** ऐसे मैदानों का निर्माण पर्वतीय भागों से निकलने वाली नदियों द्वारा अपने साथ बहाकर लाये गये निक्षेपों के जमाव के परिणामस्वरूप होता है। ये मैदान काफी बड़े क्षेत्र पर विस्तृत एवं बहुत उपजाऊ होते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े मैदान काफी बड़े जलोढ़ मैदान ही हैं। इस पर सघन जनसंख्या का जमाव पाया जाता है। मिसीसिपी का मैदान (सं. रा. अमेरिका), **गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान** (उत्तरी भारत), **ह्वांगहों** तथा

यांग्टीसीक्यांग का मैदान (चीन), नील नदी का मैदान (मिस्र), **वोल्गा** तथा **डेन्यूब** का मैदान आदि ऐसे ही मैदान हैं।

- **पर्वतपदीय मैदान (Piedmont Plains)-** नदियों द्वारा अपरदित और प्रवाहित जलोढ़ जब पर्वतपाद पर निक्षेपित होता है तो इससे निर्मित होने वाले मैदान पर्वतपादीय मैदान कहलाता है। हिमालय की तराई में उत्तराखण्ड एवं उत्तर प्रदेश का भाबर क्षेत्र पर्वतपादीय मैदान के उदाहरण हैं।
- **अपोढ़ मैदान (Drift Plains)-** ऐसे मैदानों की रचना पर्वतीय मैदानों से हिमानियों के नीचे उतरते समय उनके द्वारा बहाकर लाये गये निक्षेपों के जमाव से होती है। इन जमावों में बड़ी मात्र में कंकड़ पत्थर, शिलाखंड, बालू बजरी आदि शामिल होते हैं। हिमरेखा (Snowline) के समीप पहुँचने पर हिमानियाँ पिघलने लगती हैं तथा उनके साथ बहाकर लाये गये पदार्थों का निक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है, जिससे अपोढ़ मैदान बन जाते हैं। ऐसे मैदानों के प्रमुख उदाहरण उत्तर-पश्चिम यूरोप तथा कनाडा में मध्यवर्ती भागों में मिलते हैं। भारत के लद्दाख के श्योक नदी के पूर्व तथा चांग चेंगों नदी के उत्तर में स्थित मैदान इसी श्रेणी के मैदान हैं।
- **झीलीय मैदान (Lacustrine Plains)-** झीलों में गिरने वाली नदियों द्वारा अपने साथ बहाकर लाये गये पदार्थों का उनमें निक्षेपण होते रहने से वे धीरे-धीरे भरती रहती हैं तथा कालांतर में एक मैदान में बदल जाती हैं और सूख जाती हैं। ऐसे मैदान भी जलोढ़ मैदानों की भांति समतल तथा उपजाऊ होते हैं। सं. रा. अमेरिका, कनाडा तथा उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में ऐसे मैदान पाये जाते हैं।
- **लावा मैदान (Lava Plains)-** ऐसे मैदानों का निर्माण ज्वालामुखी उद्गार के समय निकलने वाले लावा तथा अन्य पदार्थों के निक्षेपण से होता है। ये मैदान अत्यधिक उपजाऊ होते हैं, क्योंकि इनमें खनिज पदार्थों की अधिकता पायी जाती है। भारत का प्रायद्वीपीय भाग लावा निर्मित मैदान का मुख्य उदाहरण है। इटली, न्यूजीलैंड, सं. रा. अमेरिका, अर्जेंटीना आदि देशों में भी लावा निर्मित मैदान पाये जाते हैं।
- **लोएस मैदान (Loess Plains)-** ऐसे मैदानों का निर्माण पवन के अपरदनात्मक कार्यों के पश्चात् किसी स्थान पर उसके साथ उड़ाकर लायी गयी बालू, रेत आदि के निक्षेपण से होता है। ऐसे मैदान समतल एवं विस्तृत होते हैं, इनमें परतों का सर्वथा अभाव होता है, लेकिन पारगम्यता अधिक होती है। इनके नीचे प्राचीन वनस्पतियों आदि के अवशेष मिलते हैं तथा मिट्टी उपजाऊ होती है। **लोएस के मैदान उत्तरी चीन, तुर्कमेनिस्तान** तथा **मिसीसिपी नदी के किनारे, अफ्रीका के सहारा** व **भारत के थार मरुस्थल** में पाये जाते हैं।

मैदानों का वर्गीकरण	
मैदान	**स्थिति**
संरचनात्मक मैदान	बेल्जियम, हालैण्ड, जर्मनी, सं. रा. अमेरिका मैक्सिको की खाड़ी का मैदान, अटलांटिक महासागर का तटीय मैदान, रूस का मैदान, अफ्रीका की गिनी तट, भारत का मालाबार तथा कोरोमण्डल तटीय मैदान।
अपरदन जनित मैदान	
उपान्त मैदान	पेरिस बेसिन, मिसीसिपी बेसिन का ऊपरी भाग, रूस का मध्य भाग तथा भारत का अरावली क्षेत्र।
कार्स्ट मैदान	यूगोस्लाविया के एड्रियाटिक सागरतट के समीप, सं. रा. अमेरिका में केण्टुकी, टैनेसी, फ्रलोरिडा, भारत में नैनीताल तथा अल्मोड़ा जिले में।
हिम अपरदित मैदान	कनाडा, साइबेरिया, स्वीडन, फिनलैंड आदि।
मरुस्थलीय मैदान	निक्षेप जनित मैदान (Depositional Plains)
निक्षेपात्मक मैदान	
जलोढ़ मैदान	हिमालय की तराई में उत्तर प्रदेश का भावर क्षेत्र।
अपोढ़ मैदान	उत्तरी अमेरिका तथा उत्तर-पश्चिमी यूरोप में विस्तृत मैदान, भारत में लद्दाख में श्योक नदी (Shyoke River) के पूर्व तथा चॉग चेन्गों नदी के उत्तर में स्थित मैदान।
झील के मैदान	संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा सरोवरी मैदान विस्तृत मैदान, भारत में कश्मीर की निम्न भूमि तथा मणिपुर पहाड़ियों में स्थित इम्फाल बेसिन।
लोएस मैदान	उत्तरी-पश्चिमी चीन तथा रूसी एवं तुर्किस्तान में। भारत में राजस्थान का पश्चिमी सीमावर्ती क्षेत्र।
लावा के मैदान	भारत में दक्कन का लावा पठार तथा इंडोनेशिया का जावा द्वीप।

मैदान: एक नजर में

- संपूर्ण विश्व में स्थलमंडल के 41% भाग पर मैदान हैं (33% पठार व 26% पर्वत व पहाड़ी)।
- पठारों से भी ऊँचे मैदानों के उदाहरण हैं मिसीसिपी का मैदान, जो अप्लेशियन पठार से भी ऊँचा है।
- समुद्र तल से नीचे भी मैदान के उदाहरण है नीदरलैंड का मैदान।
- संरचनात्मक मैदान या भूसंचलन से बने मैदान का उदाहरण है यूएसए का विशाल मैदान, अटलांटिक तटीय मैदान, भारत का कर्नाटक व पूर्वी तटीय मैदान व रूस का रूसी प्लेटफार्म।
- अपरदनात्मक मैदान के उदाहरण हैं- भारत का लद्दाख मैदान, यूगोस्लाविया का कार्स्ट प्रदेश, अमेरिका के फ्रलोरिडा व युकाटन आदि।

- निक्षेपात्मक मैदान के उदाहरण हैं यूएसए में सैक्रोमेटो की घाटी, डेल्टा मैदान, हंगरी का मैदान आदि।
- अमेरिका का ग्रेट प्लेन समीपवर्ती अप्लेशियन पर्वतीय क्षेत्र से ऊँचा है।
- जॉर्डन नदी की घाटी तथा हॉलैंड का पोल्डर्स मैदान समुद्रतल से भी नीचे हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका का अटलांटिक तटीय मैदान तट के पास स्थलखंड के सागर तल से ऊपर का उदाहरण है।
- भारत के कोरोमंडल तथा उत्तरी सरकार मैदान समुद्र तट के अवतलन तथा कालांतर में निक्षेपित हो जाने से बने हैं।
- हंगरी का मैदान संपीडनात्मक बल के कारण बना है।
- समतल मैदान के बीचों-बीच स्थित कठोर शैलों के अवशिष्टों को मोनॉडनैक (इन्सेलबर्ग) कहा जाता है।
- कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, फिनलैंड तथा स्वीडेन में हिमानियों द्वारा निर्मित मैदान पाए जाते हैं।
- यूगोस्लाविया में एड्रियाटिक सागर के समीपवर्ती कार्स्ट क्षेत्रों में कार्स्ट मैदानों को यह नाम दिया गया है।
- भारत में चित्रकूट, रामगढ़ और अल्मोड़ा के पास विस्तृत चूने के चट्टान वाले भाग देखने को मिलते हैं।
- मिसीसिपी का मैदान, गंगा-ब्रह्मपुत्र का मैदान, ह्वांगहो तथा यांग्टीसीक्यांग का मैदान, नील नदी का मैदान, वोल्गा तथा डेन्यूब के मैदान जलोढ़ मैदान के उदाहरण हैं।
- अपोढ़ मैदान (Drift Plains) उत्तर पश्चिमी यूरोप तथा कनाडा में मध्यवर्ती भागों में मिलते हैं। भारत के लद्दाख के श्योक नदी के पूर्व तथा चांग चेंगो नदी के उत्तर में स्थित मैदान अपोढ़ मैदान हैं।
- लावा मैदानों में खनिज पदार्थों की अधिकता पाई जाती है। भारत का प्रायद्वीपीय भाग लावा निर्मित मैदान का प्रमुख उदाहरण है।
- लोएस मैदान उत्तरी चीन, तुर्कमेनिस्तान तथा मिसीसिपी नदी के किनारे, अफ्रीका के सहारा व भारत के थार मरुस्थल में पाए जाते हैं।

घाटियाँ (Valleys)

धरातल पर स्थित तृतीय श्रेणी के उच्चावचों- पर्वतों, पठारों तथा मैदानों के बीच विभिन्न प्रकार की भू-हलचलों एवं नदी, हिमानी आदि द्वारा निर्मित निम्न क्षेत्रों को 'घाटी' (Valley) के रूप में जाना जाता है। ये घाटियाँ अपने समीपवर्ती क्षेत्रों की अपेक्षा नीची होने के साथ ही काफी लम्बी भी होती हैं। बाह्य कारकों में नदियों द्वारा कटाव, अपनयन एवं जमाव की क्रियाएं घाटियों के निर्माण में मुख्य रूप से योगदान देती हैं, यद्यपि इनके निर्माण में वायु, हिम आदि का भी सामान्य योगदान निरूपित किया जाता है। सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न स्रोतों से बनी घाटियाँ मिलती हैं। **इनकी चरमसीमा का निर्धारण माध्य समुद्र तल** के आधार पर ही किया जाता है। घाटियों के आकार में भी पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है और एक घाटी दूसरी से सर्वथा भिन्न होती है।

घाटियों के प्रकार (Types of Valleys)

अवस्था के अनुसार नदी-घाटियों के प्रकार-

पर्वतीय क्षेत्रों से उत्पन्न होने के पश्चात् नदी विभिन्न अवस्थाओं में प्रवाहित होकर घाटियों का निर्माण करती हुई समुद्र तक पहुँचती है। नदी की अवस्था के समान ही उसकी घाटी की भी निम्नलिखित तीन अवस्थाएं पायी जाती हैः-

- **युवावस्था की घाटी-** ऐसी घाटियों का निर्माण विशेषकर पर्वतीय या उच्च क्षेत्रों में ही सम्भव हो पाता है। ये घाटियाँ असमतल एवं अत्यधिक गहरी होती हैं। घाटियों की इस अवस्था में जलप्रपातों का बाहुल्य पाया जाता है।
- **प्रौढ़ घाटी-** नदी की प्रौढ़ावस्था में मैदानी भागों में चौड़ी घाटियों का निर्माण होता है। ऐसी घाटियाँ समतल होती हैं और इनके किनारे प्राकृतिक तटबन्धों या लेवीज (Levees) द्वारा सीमित किये गये रहते हैं।
- **वृद्ध घाटी-** नदी की वृद्धावस्था की घाटियाँ अत्यधिक चौड़ी होती हैं और इनकी ढाल में कभी-कभी इतनी कमी आ जाती है कि नदी का पानी चारों ओर फैल जाता है। इस अवस्था की घाटियों में नदी की अपरदन की क्षमता समाप्त हो जाती है।

नदी घाटी के आधार तल (Base Level) में परिवर्तन से बनी घाटियाँ

विभिन्न प्राकृतिक या कृत्रिम कारणों से नदी घाटी के आधार तल में परिवर्तन आ जाने के परिणामस्वरूप निम्नलिखित प्रकार की घाटियों का निर्माण हो जाता है-

- **धंसी हुई घाटी (Downed Valley)-** इस प्रकार की घाटियों का निर्माण स्थल भाग के नीचे धंसने के कारण होता है। विश्व के कुछ भागों में ऐसी घाटियाँ भी मिलती हैं, जो **प्लीस्टोसीन युग** के हिमानी आवरण के पीछे हटने के उपरान्त पिघली हुई बर्फ से उठे हुए समुद्र तल के कारण नीचे धंसी हुई प्रतीत होती हैं। जैसे- सं. रा. अमेरिका में स्थित **चेसापीक खाड़ी,** जो कि सरक्केहाना नदी की घाटी का नीचे धंसा हुआ भाग है।
- **पुनर्युवनित घाटियाँ (Rejuvenated Valleys)-** नदी के आधार-तल में किसी भी कारण से उभार उत्पन्न होने पर वह अपनी घाटी को और अधिक गहरा करना प्रारम्भ कर देती है, क्योंकि उसकी घाटी का तल आधार-तल से ऊपर उठ जाता है। इस प्रकार घाटियों के अंदर घाटियों अथवा सीढ़ीनुमा घाटियों का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार की घाटियाँ **पुनर्युवनित घाटियाँ** कहलाती हैं।

स्वरूप के अनुसार घाटियों के प्रकार

विश्व में स्वरूप के आधार पर भी अनेक प्रकार की घाटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे-

- **'V' (वी) आकार की घाटी-** नदियों द्वारा पर्वतीय भाग में उच्च धरातल एवं तीव्र ढाल के कारण उत्पन्न हुई तीव्र गति से पार्श्ववर्ती अपरदन की अपेक्षा निम्नवर्ती अपरदन (Downward erosion) तेजी से किया जाता है। इससे घाटियाँ 'V' के आकार की हो जाती हैं। 'V' आकार की घाटियाँ नदी की युवावस्था की परिचायक होती हैं। आकार के आधार पर 'V' आकार की घाटी को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है-
- **गॉर्ज-** इसमें किनारे की दीवाल अत्यन्त खड़े ढाल वाली होती है तथा चौड़ाई की अपेक्षा गहराई बहुत अधिक होती है। इस प्रकार बहुत गहरी तथा संकरी घाटी को सामान्य रूप से गॉर्ज या कंदरा कहते हैं। सिन्धु नदी हिमालय की श्रेणियों को काटकर 17,000 फीट गहरे गॉर्ज से प्रवाहित होती है।
- यह गॉर्ज का विस्तृत रूप है। इसका आकार बहुत विशाल तथा संकरा होता है। घाटी के दोनों किनारों की दीवारें खड़ें ढाल वाली होती हैं तथा नदी तल से ऊँची होती हैं। गॉर्ज तथा केनियन के उदाहरण सभी महाद्वीप में मिलते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के एरिजोना प्रान्त में कोलोरैडो नदी का ग्रांड केनियन, केनियन का प्रमुख उदाहरण है।
- **केनियन-** केनियन या सीधे खड़े ढाल वाली श्टश् आकार की घाटियाँ जब एकदम सीधे एवं खड़े ढ़ाल वाली तथा अत्यधिक गहरी होती हैं, तब उन्हें 'केनियन' (Canyon) के नाम से जाना जाता है।
- **चौड़ी या छिछली घाटी-** ये घाटियाँ नदी की प्रौढ़ावस्था की परिचायक हैं। मैदानी भागों में पहुँचने पर नदियों द्वारा अपरदन की अपेक्षा परिवहन का कार्य अधिक किया जाता है और उनका जल एक विस्तृत क्षेत्र में फैलकर प्रवाहित होता है। इससे चौड़े आकार की विस्तृत घाटियों का निर्माण हो जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है- मैदानी भागों में गंगा नदी की घाटी।
- **'U'(यू) आकार की घाटी-** प्रमुख रूप से इस आकार की घाटी का निर्माण हिमानियों द्वारा किया जाता है, क्योंकि ये अत्यधिक विस्तार के साथ पार्श्ववर्ती अपरदन करते हुए पर्वतीय या उच्च क्षेत्रों से नीचे की ओर सरकते हुए चलती हैं। नदियों द्वारा भी पर्वतीय या उच्च भागों में ढाल कम हो जाने पर श्न्श् आकार की घाटियों का निर्माण किया जाता है जो उनके पार्श्ववर्ती अपरदन का परिचायक है।

स्थिति के अनुसार घाटियों के प्रकार

घाटियों की अवस्थिति सम्पूर्ण विश्व के जल एवं थल दोनों में पायी जाती है। अपनी स्थिति के अनुसार घाटियाँ निम्नलिखित प्रकार की होती हैं-

- **पर्वतीय क्षेत्रों की घाटियाँ-** पर्वतीय क्षेत्रों में 'V' आकार, 'U' आकार, सीधे एवं खड़े ढाल वाली या केनियन तथा असमान तलों वाली घाटियाँ पायी जाती हैं। उनके निर्माण में विभिन्न बाह्य परिवर्तनकारी प्रक्रमों की तीव्र अपरदन क्रिया का सर्वाधिक योगदान रहता है। असमान तलों वाली घाटियाँ इन्हीं भागों में विभिन्न प्रकार के पदार्थों के निक्षेपण एवं चट्टानों के स्वभाव के आधार पर निर्मित हो जाती हैं।
- **मैदानी या समतल क्षेत्रों की घाटियाँ-** मैदानी या समतल क्षेत्रों में कम ढाल वाली चौड़ी घाटियों का निर्माण होता है। इनके निर्माण में पार्श्व अपरदन (Lateral Erosion) एवं जमाव (Deposition) की क्रिया का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। ऐसी घाटियों का किनारा उन्नत कगारों या लेवीज (Levees) द्वारा परिसीमित कर दिया जाता है। विश्व में मानव बसाव की दृष्टि से ऐसी घाटियाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। यही घाटियाँ प्राचीन सभ्यताओं की पालना भी रही हैं और आज भी किसी देश की समृद्धि में इनका अतुलनीय योगदान है।
- **महासागरीय घाटियाँ-** स्थल भागों की भांति ही महासागरों में भी गहरी, संकरी एवं चौड़ी घाटियाँ पायी जाती हैं, जिन्हें खाई या ट्रेंच (Trench) के नाम से जाना जाता है। इनकी गहराई महासागरीय बेसिन से भी काफी अधिक होती है।

घाटियों के अन्य प्रकार

- **नतिलम्ब घाटियाँ (Strike Valleys)-** भ्रंशन वाले क्षेत्रों में चट्टानों में नतिलम्ब के सहारे प्रवाहित होने वाली नदियों द्वारा बनायी गयी घाटियाँ नतिलम्ब या स्ट्राइक घाटियाँ कहलाती हैं। उदाहरण के लिए कांगड़ा घाटी एक नतिलंब घाटी है जो धौलाधर श्रेणी की तलहटी से व्यास नदी के दक्षिण तक विस्तृत है।
- **अपनति घाटियाँ (Anticlinal Valleys)-** चट्टानों में वलन के परिणामस्वरूप बनी अपनतियों के सहारे पायी जाने वाली घाटियों को अपनति घाटियाँ कहा जाता है। ये वलन के ऊपरी अपनतिक भागों में निर्मित होती हैं और कालान्तर में उच्चावच प्रतिलोमन (Inversion of Relief) को जन्म देती हैं। इनका निर्माण विशेष रूप से चट्टानी आवरण का क्षय हो जाने के कारण घाटी के खिसकने से होता है।
- **अभिनति घाटियाँ (Synclinal Valleys)-** वलन के कारण निर्मित चट्टानों के निम्नवर्ती या अभिनति वाले भागों पर बनी घाटियाँ अभिनति घाटियाँ कहलाती हैं। राइन नदी की घाटी इसका प्रमुख उदाहरण है।
- **अक्रमवर्ती घाटियाँ (Insequent Valleys)-** ऐसी नदियाँ, जो चट्टानों की संरचना के अनुसार न प्रवाहित होकर कुछ विशेष कारणवश उसकी विपरीत दिशा में प्रवाहित होने लगती हैं, द्वारा बनायी गयी घाटियों को अक्रमवर्ती घाटियों के नाम से जाना जाता है।
- **नवानुवर्ती घाटियाँ (Resequent Valleys)-** नदी के प्रवाह की दिशा में अर्थात् चट्टानों के ढाल के अनुरूप प्रवाहित होने वाली नदियों द्वारा अनुवर्ती घाटियों के समान ही उससे कम ऊँचाई पर बनायी गयी घाटियाँ, नवानुवर्ती घाटियाँ कहलाती हैं।

- **आरोपित घाटियाँ (Superimposed Valleys)-** भूगर्भिक चट्टानों के आर-पार उनकी संरचना के विपरीत बनी घाटियों को आरोपित घाटियों के नाम से जाना जाता है। इनकी उत्पत्ति सर्वप्रथम आधारी चट्टानों के ऊपरी किसी आवरण पर होती है और कालांतर में आवरण का क्षय हो जाने से ये उस चट्टान पर आरोपित की गयी घाटी की भांति प्रतीत होती हैं।
- **पूर्ववर्ती घाटियाँ (Antecedent Valleys)-** ऐसी घाटियों की उत्पत्ति तब होती है, जब पहले से प्रवाहित होने वाली नदी के मार्ग में अचानक कोई पर्वतीय बाधा आ जाती है और नदी उस बाधा को काटकर अपनी पुरानी घाटी से ही प्रवाहित होती रहती है। पर्वतीय बाधा के कटाव के स्थान पर नदियों द्वारा गहरे गॉर्ज का निर्माण कर लिया जाता है। हिमालय क्षेत्र में गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु आदि नदियां अपनी पूर्ववर्ती घाटियों से ही प्रवाहित होती हैं।
- **भ्रंश-घाटियाँ (Fault-Valleys)-** पृथ्वी की आंतरिक हलचलों के परिणामस्वरूप पृथ्वी की क्रस्ट में खिंचाव एवं तनाव के कारण बनी हुई दरारों या भ्रंशनों (Faults) पर निर्मित घाटियों को भ्रंश-घाटियाँ कहा है।
- **रिफ्रट घाटियाँ (Rift Valleys)-** भू-धरातल पर भूगर्भ की आंतरिक खिंचाव की शक्तियों अर्थात् तनाव बल (Tension Forces) के कारण जब कोई भाग अपने समीपवर्ती क्षेत्र की अपेक्षा नीचे बैठ जाता है और उसकी ओर खड़े ढाल वाले ऊँचे भाग स्थित होते हैं, तब रिफ्रट घाटियों का निर्माण होता है। रिफ्रट घाटियों को 'भ्रंश-द्रोणी' (Fault Tough) के रूप में भी जाना जाता है। मध्य अफ्रीका की अनेक झीलें, लाल सागर तथा बार्टलैण्ड द्वीप के समीप असंख्य सागरों का निर्माण रिफ्रट घाटियों में ही हुआ है।
- **विश्व की प्रमुख रिफ्रट घाटियाँ निम्नलिखित हैं-**
  - ✓ **जॉर्डन नदी की घाटी,** (अफ्रीका की महान घाटी) जो पश्चिम में सीरिया से लेकर पूर्वी अफ्रीका तक विस्तृत है, एक विखंडित रिफ्रट घाटी है जिसमें मृत सागर (Dead Sea) तथा अफ्रीका की अल्बर्ट, टंगानिका, न्यासा आदि झीलों तथा अकाबा की खाड़ी का निर्माण हुआ है।
  - ✓ रियोग्रैण्ड नदी की घाटी, न्यू मैक्सिको।
  - ✓ कोलोरेडो नदी की घाटी-कोलोरेडो पठार (सं.रा. अमेरिका)।
  - ✓ वॉसजेस तथा ब्लैक फॉरेस्ट पर्वतों के बीच राइन नदी की घाटी (यूरोप)।
  - ✓ स्कॉटलैंड की मिडलैंड घाटी।

घाटियाँ: एक नजर में

- मृत घाटी (Death Valley) अत्यधिक उष्णता के लिए जानी जाती है। यह पूर्वी केलीफोर्निया, अमेरिका में है।
- पंजशीर घाटी अफगानिस्तान के पंजशीर प्रांत में काबुल के उत्तर में स्थित है।
- सिलिकॉन घाटी संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी केलिफोर्निया में सैन फ्रांसिस्को खाड़ी के दक्षिणी भाग पर स्थित है। इस घाटी को वृहत्तम स्तर पर कंप्यूटर चिप्स के उत्पादन क्षेत्र के रूप में जाना जाता है।
- टेलर घाटी अंटार्कटिका में अवस्थित है।
- ग्रेट आर्टिजन बेसिन ऑस्टेलिया के शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में ग्रेट डिवाइडिंग पर्वत व मध्यवर्ती उच्च भूमि के मध्य विस्तृत विश्व की वृहत्तम भूमिगत जल बेसिनों में से एक है।
- राजाओं की घाटी मिस्र में अवस्थित है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

झीलें
(Lakes)

परिचय (Introduction)

धरातल पर बने वे सभी छोटे और बड़े खड्डे, जो अस्थायी या स्थायी रूप में जलयुक्त होते हैं, झील कहलाते हैं। साधारण बोलचाल में गाँव के समीप छोटे जल भरे गड्ढों को विस्तार के आधार पर पोखर या तलैया, उससे बड़ों को तालाब या ताल, उससे बड़े को सरोवर या झील और सबसे विस्तृत जलाशय को सागर, जैसे- काला सागर, केस्पियन सागर, अरल सागर आदि कहते हैं। किन्तु भौगालिक भाषा में हम सभी प्रकार के आकार, विस्तार एवं गहराई वाले जलाशयों को, जो चारों ओर से थल से घिरे रहते हैं 'झील' कहते हैं।

झीलों के प्रकार (Types of Lakes)

सम्पूर्ण विश्व में अनेक प्रकार की झीलों का मिलना ही उनके वर्गीकरण के विभिन्न आधारों को महत्त्व प्रदान करता है क्योंकि इनमें बनावट, स्थिति, जल का स्वभाव, उत्पत्ति आदि के आधार पर विभिन्नताएँ पायी जाती हैं।

- बनावट के आधार पर झीलें दो प्रकार की होती हैंः-
  - ✓ **प्राकृतिक झील (Natural Lake)**- भू-गर्भिक हलचलों एवं धरातल के बहिर्जात बलों से उत्पन्न झीलों को प्राकृतिक झीलें कहा जाता है। उत्तरी अमेरिका की **ग्रेट लेक्स,** अफ्रीका की **न्यासा, टंगानिका, विक्टोरिया** आदि झीलें तथा भारतीय उपमहाद्वीप की **डल, वूलर, मानसरोवर** तथा **राकस ताल** आदि प्राकृतिक झील के प्रमुख उदाहरण हैं।
  - ✓ **कृत्रिम झील (Artificial Lake)**- मानव क्रिया द्वारा निर्मित झीलों को कृत्रिम झीलों के अन्तर्गत रखा जाता है। इनका निर्माण मानव द्वारा निम्न भूमियों में या नदी-मार्गों में बांध बनाकर किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की **हूवर झील,** भारत में भाखड़ा बांध के पीछे निर्मित **गोविन्द सागर झील,** चम्बल की **गांधी सागर झील** तथा राजस्थान की **जयसमंद, राजसमंद** एवं **पिछौला झीलें** इसी प्रकार की झीलें हैं।

जल प्रकृति के आधार पर झीलों के प्रकार

जल की प्रकृति के आधार पर सम्पूर्ण विश्व में सामान्यतः दो प्रकार की झीलें पायी जाती हैं-

- **खारे जल की झीलें**- जिन झीलों में बाहर से पानी आकर गिरता तो है किन्तु निकलकर बाहर नहीं जा पाता है, वे प्रायः खारी झीलें होती हैं। इस कारण नदियों द्वारा या बरसात के समय आने वाले जल के साथ नमक एवं अन्य खनिज पदार्थ उसमें मिलते रहते हैं और वाष्पीकरण के कारण पानी के वाष्प बनकर उड़ते जाने से खारेपन की मात्र बढ़ती जाती है।
- **केस्पियन सागर विश्व की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है** जबकि **लेक वॉन (तुर्की) सर्वाधिक खारे पानी की झील** है।
- **ताजे या मीठे पानी की झीलें**- ऐसी झीलें, जिनमें नदियों के माध्यम से निरन्तर ताजे जल का प्रवाह होता रहता है, वे मीठे पानी की झीलें होती हैं, क्योंकि इसमें विभिन्न प्रकार के लवणों का जमाव नहीं हो पाता। पर्वतीय भागों तथा शीतोष्ण प्रदेशों में वाष्पीकरण की मात्र कम होने के कारण भी मीठे पानी की झीलें पायी जाती हैं।
- मीठे पानी की प्रसिद्ध झीलें हैं- **बैकाल** (एशिया), **जेनेवा** (यूरोप), **टिटिकाका** (दक्षिण अमेरिका) आदि।

उत्पत्ति के आधार पर झीलों के प्रकार

भू-गर्भिक हलचलों के कारण निर्मित झीलों को विवर्तनिक झील के अन्तर्गत रखा जाता है। वास्तव में विवर्तनिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप झीलों के लिए निर्मित उपयुक्त स्थलों पर जल भर जाने से ही ऐसी झीलों की उत्पत्ति होती है।

- उनसे बनी झीलों के प्रमुख उपभेद निम्नलिखित हैं-
  - ✓ **नवीन उत्क्षेप से बनी झीलें**- जब सागर का कोई समीपवर्ती भाग समुद्रतल से ऊपर उठ जाता है, तब उसके उच्चावच में मिलने वाले गहरे स्थानों पर जल भर जाने से ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। ये झीलें लम्बी, छिछली तथा अल्पकालिक होती हैं। **भारत के कोरोमण्डल** तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के **फ्लोरिडा** तट पर ऐसी झीलें पायी जाती हैं।
  - ✓ **वलन क्रिया से निर्मित झीलें**- वलन क्रिया के परिणामस्वरूप धरातल पर अपनतियों तथा अभिनितियों का निर्माण हो जाता है। अभिनितियों में जल भर जाने से बनी झीलें इसी वर्ग में सम्मिलित की जाती हैं। स्विट्जरलैंड की **जेनेवा** तथा अफ्रीका की **एडवर्ड झीलों** का निर्माण अभिनतियों में जल भर जाने से ही हुआ है।
  - ✓ **भ्रंशन द्वारा बनी झीलें**- भू-गर्भिक हलचलों के कारण धरातल के किसी भाग के नीचे धंस जाने या ऊपर उठ जाने से बनी, बेसिनों में जल भर जाने के परिणामस्वरूप ऐसी झीलों का निर्माण होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की **सैन एण्ड्रियाज झील** इसका प्रमुख उदाहरण है।

- ✓ **दरार घाटी (Rift Valley) झीलें-** धरातल की दो समानान्तर दरारों के मध्यवर्ती भाग के नीचे धंस जाने एवं उसमें जल भर जाने के फलस्वरूप ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। ये झीलें काफी लम्बी, संकरी तथा गहरी होती हैं। ऐसी झीलों के प्रमुख उदाहरण हैं- **टंगानिका, न्यासा, रूडोल्फ** (अफ्रीका महाद्वीप), **मृतसागर** या **डेड सी** (Dead Sea) (इजराइल), ग्रेट साल्ट लेक (उत्तरी अमेरिका) आदि।

ज्वालामुखी क्रिया से बनी झीलें

ज्वालामुखी क्रिया से भी धरातल पर कई प्रकार की झीलों का निर्माण हो जाता है जो, निम्नलिखित हैं-

- **लावा बांध से बनी झीलें या कूली झीलें (Coluee Lakes)-** ऐसी झीलों का निर्माण ज्वालामुखी उद्गार के समय उससे निकलने वाले लावा द्वारा समीपवर्ती नदियों या हिमानियों के प्रवाह-मार्ग को अवरुद्ध कर देने के कारण हो जाता है। **निकारागुआ झील** तथा इथियोपिया की **ताना झील** ऐसी ही झीलें हैं।
- **क्रेटर झीलें (Crater Lakes)-** शान्त ज्वालामुखियों के वृहदाकार मुखों या क्रेटरों में जल भर जाने से ऐसी झीलों की उत्पत्ति हो जाती है। ऐसी झीलें प्रायः गोलाकार होती हैं। इनके प्रमुख उदाहरण हैं- **विक्टोरिया झील** (अफ्रीका), **क्रेटर झील** (ओरेगन राज्य, संयुक्त राज्य अमेरिका), **एवरन झील** (इटली), **गस्टेविला झील** (मैक्सिको), **टिटिकाका झील** (एण्डीज पर्वत-दक्षिण अमेरिका) आदि।

हिमानी निर्मित झीलें

प्लीस्टोसीन युग में सम्पन्न हिमानी विस्तार की क्रिया के परिणामस्वरूप विश्व के अनेक भागों में ऐसी झीलों का निर्माण हुआ, जिनकों हिमानी निर्मित झीलों के अन्तर्गत रखा जाता है। इनके निम्नलिखित उपवर्ग हैं-

- **हिमोढ़ द्वारा निर्मित झीलें-** हिमानी के प्रवाह के साथ ही साथ ढेर सारे अवसाद भी बहते चलते हैं और हिमानी का निवर्तन होने पर ये ऊँचे-ऊँचे टीलों के रूप में पार्श्ववर्ती, मध्यवर्ती, तलस्थ एवं अग्रास्थ हिमोढ़ जमाव के रूप में जमा हो जाते हैं। हिमोढ़ों के इस जमाव से धरातलीय सतह में असमानता आ जाती है और निचले भागों में जल भर जाने से झीलों का निर्माण हो जाता है। **सं. रा. अमेरिका की महान झीलें** (Great Lakes) इसी प्रकार की झीलें हैं, जिनका निर्माण हिमानी के अग्रवर्ती भाग में हुआ है।
- **हिमावरोधी या हिमबांध निर्मित झीलें-** आगे बढ़ते हुए हिमानी द्वारा सहायक नदी के मार्ग में बाधा उपस्थित कर देने के परिणामस्वरूप ऐसी अस्थायी झीलों का निर्माण हो जाता है, क्योंकि बर्फ पिघलने के बाद ये झीलें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। स्विट्जरलैण्ड की **मारजेलन सी** (Marjelen Sea) ऐसी झील का सर्वोत्तम उदाहरण हैं, जिसका निर्माण **एलेच हिमनद** (Aletch Glacier) द्वारा किया गया है।
- **हिम अपरदन द्वारा बनी झीलें-** हिमानियों के सरकते समय उनके पार्श्व एवं तलीय भाग में अपरदन की क्रिया के परिणामस्वरूप निम्नवर्ती धरातल पर जल भर जाने से बनी झीलों को इस वर्ग में रखा जाता है। आल्पस पर्वतों की तलहटी में, कश्मीर में **पीरपंजाल** तथा **कुमायूं** हिमालय क्षेत्र में ऐसी झीलें अधिक मिलती हैं। वेल्स के केडर इडरिस झील, जेनेवा की **ल्युसर्न** एवं **कौंटेंस** (Contence) आदि ऐसी ही झीलें हैं।
- **हिमगर्त झीलें-** महाद्वीपीय भागों में हिमोढ़ जमावों के बीच बर्फ के पिघल जाने पर केतली (Kettle) के समान छोटी-छोटी गोलाकार झीलों का निर्माण हो जाता है, जिन्हें हिमगर्त झीलें कहा जाता है। उत्तरी अमेरिका की **पैचेन झीलें** (Patchen Lakes) ऐसी ही झीलें हैं।
- **कोग्लियंट झीलें (Cogliant Lakes)-** हिमानी के मार्ग में पर्वतीय अवरोध आ जाने से उसके तीव्र अपरदन के परिणामस्वरूप सतह पर संकरे एवं लम्बे गड्ढों का निर्माण हो जाता है, जिनमें जल भर जाने से कालान्तर में झीलें बन जाती हैं। ऐसी झीलों को **कोग्लिण्ट झील,** टार्न झील या **कोरी झील** (Corrie Lake) कहा जाता है। यूरोप के उत्तरी लैपलैंड क्षेत्र में स्थित **टार्नट्रैस्ट** (Torntrast) ऐसी ही झील है।
- **पैटनास्टर झीलें (Paternoster Lakes)-** ग्लेशियर के गिरने से पर्वतीय घाटी में निर्मित गड्ढों में जल भर जाने से ऐसी झीलों का निर्माण होता है। ये झीलें सीढ़ीदार रूप में दिखाई देती हैं। इन्हें **मालाकार झीलें** (Beaded Lakes) भी कहा जाता है।
- **घाटी हिमोढ़ झीलें-** पूर्वनिर्मित हिमनदीय घाटी में किसी अन्य ग्लेशियर द्वारा लाये गये अन्तिम एवं पार्श्ववर्ती हिमोढ़ का जमाव हो जाने से उसके पीछे ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। इंग्लैंड के लेक डिस्ट्रिक्ट की **ब्लीवाटर टार्न** (Bleawater Tarn) ऐसी झील का एक प्रमुख उदाहरण है।
- **सीमांत झीलें (Border Lakes)-** हिमानियां पर्वतीय भागों से गिरिपद प्रदेश (Piedmont Region) में नीचे आकर फैल जाती हैं तथा अपने साथ लाये गये हिमोढ़ का जमाव कर देती हैं। हिमोढ़ों के अवरोध के कारण जल भर जाने से ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। जेनेवा की **कॉण्टेंस** ऐसी ही झील है।
- **शैल-मातीय झीलें (Land-Slide Lakes)-** भूस्खलन द्वारा जब नदियों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो इस प्रकार की झीलों का निर्माण होता है, लेकिन ये झीलें अस्थायी होती है क्योंकि नदियों के मार्ग में रुकावट से पहले भाग में पानी का आयतन अधिक हो जाता है, जिसके दबाव के कारण या भूस्खलन से छोटे-छोटे भागों में टूट जाता है या पानी इस प्रकार के बांध के ऊपर से बहने लगता है। इस

प्रकार की झीलें हिमालय के पर्वतीय भागों की तलहटी में प्रायः बन जाती हैं। 1925 में पश्चिमी अमेरिका के **ग्रास पेंटर पर्वत** में भूस्खलन द्वारा एक विस्तृत झील का निर्माण हो गया था।

नदी द्वारा निर्मित झीलें

यद्यपि नदियों को **झीलों के शत्रु** के रूप में जाना जाता है क्योंकि ये झीलों के जल को भी अपने साथ बहा ले जाती हैं। किन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में नदियों भी झीलों का निर्माण हो जाता है। नदियों द्वारा निर्मित झीलें निम्नलिखित हैं-

- **आनति गर्त झीलें (Plunge Pool Lakes)-** नदियों के मार्ग में जलप्रपातों के नीचे चट्टानी भागों के अपरदन से बने गड्ढों को आनति गर्त या प्लंज पूल (Plunge Pool) कहा जाता है। जलप्रपात के पीछे हटने से इनमें जल भर जाने के कारण ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की **ग्रैण्ड कूली झील** ऐसी ही झील है।
- **रैफ्रट झीलें (Raft Lakes)-** जंगली भागों में बहने वाली नदियों में लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठें भी बहते हैं। जब ये लट्ठे नदी की धारा की दिशा के आड़े रूप में (Transverse) होते हैं तब इनसे घास-पात रुकने लगती है और धीरे-धीरे तलछट के जमा होने से नदी का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और इससे इन अस्थायी झीलों का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार की झीलें **अफ्रीका की नील नदी** में पायी जाती हैं।
- **छाड़न, गोखुर (Ox-bow) या धनुषाकार झीलें-** मैदान में प्रवेश के समय प्रौढ़ावस्था की नदियां अपने क्षैतिज अपरदन (Lateral Erosion) के कारण बड़े-बड़े मोड़ों से होकर प्रवाहित होती हैं। इन मोड़ों को **नदी विसर्प** (Meander) कहा जाता है। जब ये घुमाव अधिक हो जाते हैं तो नदियां सीधे मार्ग से बहने लगती हैं। इस तरह के परित्यक्त विसर्प में जल भर जाने से निर्मित झीलों को **गोखुर झील** कहते हैं। भारत के तराई क्षेत्रों में इस प्रकार की झीलों के उदाहरण मिलते हैं।
- **तश्तरी के आकार की झीलें (Saucer Lakes)-** ऐसी झीलों का निर्माण नदी की मुख्य धारा एवं उसके समानांतर प्रवाहित होने वाली सहायक नदी के बीच में जल भर जाने के परिणामस्वरूप होता है। तश्तरी के आकार वाली ऐसी झीलें अमेरिका में **मिनीसोटा** नदी तथा भारत में **गंगा** नदी के **दोआब क्षेत्रों** में पायी जाती हैं।
- **नदी-अपरदन से निर्मित झीलें-** नदियों द्वारा उनकी घाटियों से मुलायम चट्टानों को बहा ले जाने से बने बड़े आकार वाले गड्ढ़ों में जल भर जाने से ऐसी झीलों का निर्माण हो जाता है। उत्तरी आयरलैंड की लोनी या डर्ग ऐसी झील का प्रमुख उदाहरण है।
- **पर्वतपादीय (Piedmont) या जलोढ़ पंख (Alluvial fan) झीलें-** पर्वतों के पाद प्रदेश में नदियों की मंदगति के कारण निक्षेपित जलोढ़ से उसका मार्ग अवरुद्ध हो जाने पर ऐसी झीलों का निर्माण होता है। ये झीलें अल्पकालिक एवं अस्थायी प्रकृति की होती हैं। पूर्वी केलीफोर्निया की **ओवेन्स झील** इसी प्रकार की झील है।
- **बाढ़ के मैदान में निर्मित झीलें-** बाढ़ के मैदानों में जलोढ़ों के निक्षेप से छिछली झीलों का निर्माण हो जाता है। ऑस्ट्रेलिया में मरे नदी के बाढ़ क्षेत्र में बनी **बिलीबांग झील** एक ऐसी ही झील है।
- **उपडेल्टा झीलें (Side Delta Lakes)-** मुख्य नदी में मिलते समय सहायक नदियों द्वारा अपने साथ लाये गये पदार्थों का निक्षेपण कर देने से मुख्य नदी का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तथा बीच में छोटी तथा बड़े आकार की झीलों का निर्माण हो जाता है। कश्मीर की **पैंगोंग झील,** संयुक्त राज्य अमेरिका में **मिनिसोटा राज्य** की वारेन नदी की ट्रैवर्स तथा **बिगस्टोन लेक** उपडेल्टा झीलें ही हैं।
- **डेल्टा झीलें-** नदियों द्वारा समुद्री तटों के समीप भारी मात्र में कांप या जलोढ़ (Alluvium) जमा कर देने से उसकी घाटी ऊँची होने लगती है और नदी कई उपशाखाओं में विभाजित हो जाती है। जलोढ़ के अत्यधिक जमाव से नदियों एवं सागरों का जल झीलों के रूप में अवरुद्ध हो जाता है, जिसे डेल्टा झील की संज्ञा दी जाती है। भारत में कृष्णा तथा गोदावरी नदियों के बीच **कोलेरू झील** डेल्टा झील का उदाहरण है।

समुद्री लहरों अथवा धाराओं द्वारा निर्मित झीलें

समुद्रों के तटवर्ती क्षेत्रों में उनकी लहरों एवं धाराओं द्वारा भी झीलों का निर्माण हो जाता है। ऐसी झीलों को तट-गत या स्ट्रैण्ड झीलें (Strand Lakes) भी कहा जाता है। ये झीलें दो प्रकार की होती हैं-

- **अवरोधक झीलें (Barrier Lakes)-** तटीय भागों में समुद्री लहरों द्वारा रेत आदि पदार्थों का जमाव कर देने से अवरोधक बन जाते हैं और सागरों का जल एक झील के रूप में अलग दिखायी पड़ता है, ऐसी झीलों को पश्चजल या **लैगून** (Lagoon) झीले भी कहा जाता है। भारत में उड़ीसा राज्य की **चिल्का झील** लैगून या **अवरोधक झील** का सर्वोत्तम उदाहरण है।
- **बालुका स्तूपीय झीलें (Dune Lakes)-** समुद्री तटों पर पवन द्वारा बहाकर लाये गये पदार्थों का जमाव हो जाने से बालुका स्तूपों का निर्माण हो जाता है, जिनके अवरोध से झीलें बन जाती हैं। ये झीलें कभी-कभी सागरीय भागों से मिली हुई भी रहती हैं और इनमें ज्वार का पानी आता रहता है। बिस्के की खाड़ी में ऐसी अनेक झीलों का निर्माण हो गया है।

पवन निर्मित झीलें

शुष्क एवं अर्द्धशुष्क प्रदेशों में पवन का कार्य ज्यादा प्रभावी होता है, जिसके कारण अनेक दूसरी स्थलाकृतियों के साथ ही झीलों का भी निर्माण हो जाता है।

पवन द्वारा निर्मित झीलें निम्नलिखित प्रकार की होती हैं-

- **वायु अपरदन द्वारा बनी झीलें-** पवन के अपरदनात्मक कार्य के फलस्वरूप धरातल की सतह असमान हो जाती है तथा इस पर अनेक गड्ढों एवं बेसिनों का निर्माण हो जाता है। यही गड्ढे या बेसिन वर्षा काल में जल भर जाने पर झीलों में परिवर्तित हो जाते हैं।
- **बालुका स्तूप झीलें-** शुष्क एवं अर्धशुष्क मरुस्थलीय भागों में हवा द्वारा निर्मित बालुका स्तूपों के बीच जहाँ-तहां गड्ढे बन जाते हैं, जिनमें जल भर जाने से छिछली झीलों का निर्माण हो जाता है। क्षारीय एवं दलदली प्रकृति की ऐसी झीलों को प्लाया झील (Playa Lakes) कहा जाता है। सूडान की **चाड झील** (Lake Chad) इसका सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है।

भू-गर्भिक जल द्वारा निर्मित झीलें

भूगर्भिक जल द्वारा भी चूना प्रदेशों या मुलायम चट्टानों वाले क्षेत्रों में अनेक प्रकार की झीलों का निर्माण किया जाता है, जो निम्नलिखित हैंः-

- **खड्ड झीलें (Sink Lakes)-** चूना प्रदेशों में भूमिगत जल के नीचे जाकर गुफा का निर्माण कर देने पर जब गुफा की छत टूटकर नीचे बैठ जाती है और जल का प्रवाह मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब ऐसी गहरी झीलें बन जाती हैं। इनकी प्रकृति अस्थायी होती है।
- **कार्स्ट झीलें-** चूना प्रदेशों में निर्मित विशाल गड्ढों या पोलिए अथवा पोलजे (Polje) का तल कठोर चट्टानों से निर्मित होता है, जिसके नीचे जल के न जा पाने के कारण झीलें बन जाती हैं।
- **घोलक झीलें (Solution Lakes)-** धरातल के नीचे भूगर्भिक जल की उपस्थिति में नमक की चट्टानों के घुल जाने के कारण ऊपरी सतह नीचे बैठ जाती है तथा उसमें ऊपर से जल भर जाने पर झीलों का निर्माण हो जाता है। ऐसी झीलें भारत में कुमायूं के कुछ क्षेत्रों में पायी जाती हैं।

प्रमुख झीलें

झील	स्थिति/देश	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	अधिकतम गहराई मी.
केस्पियन सागर	रूस, अजरबेंजान, तुर्कमनिस्तान, कजाखस्तान तथा ईरान	3,71,800	980
सुपीरियर झील	कनाडा तथा सं. रा. अमेरिका	82,350	406
विक्टोरिया	युगाण्डा, तंजानिया तथा केन्या	69,500	80
अरल सागर	उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान	65,500	68
छारन झील	कनाडा तथा सं. रा. अमेरिका	59,600	228
मिशिगन झील	संयुक्त राज्य अमेरिका	58,000	281
टंगानिका झील	जायरे, तंजानिया, जाम्बिया तथा बुरुडी	32,900	1,435
ग्रेट बैरियर झील	कनाडा	31,800	82
बैकाल झील	रूस	30,500	1,940
मलावी झील (वर्तमान में न्यासा झील)	तंजानिया, मलावी तथा मोजाम्बिक	29,600	678
ग्रेट स्लेव झील	कनाडा	28,500	163
इरी झील	कनाडा तथा सं, रा, अमेरिका	25,700	64
विनीपेग झील	कनाडा	24,500	36
ओंटारियो झील	कनाडा तथा सं, रा, अमेरिका	19,500	237
लैडोगा झील	रूस	17,700	225
बाल्खश झील	रूस	17,400	26
चाड झील	नाइजर, नाइजीरिया, चाड, केमरून	16,300	4.8
ओनेगा	रूस	9,600	110
आयर झील	ऑस्ट्रेलिया	9,580	19.8

टिटिकाका	पेरू तथा बोलीविया	8,300	278
अथाबास्का झील	कनाडा	8,100	124
साइमा कॉम्पलेक्स	फिनलैंड	8,030	-
लैगोडि	निकारागुआ	8,000	60

महाद्वीपों की सबसे बड़ी झील एवं सबसे बड़ी नदी

महाद्वीप	सबसे लम्बी नदी	सबसे बड़ी झील
एशिया	यांग्टीसीक्यांग	केस्पियन सागर
यूरोप	वोल्गा	लैडोगा
उ. अमेरिका	मिसीसिपी- मिसौरी	सुपीरियर
द. अमेरिका	अमेजन	टिटिकाका
अफ्रीका	नील	विक्टोरिया
ऑस्ट्रेलिया	मर्रे डार्लिंग	आयर
द. पू. एशिया	मेकांग	टान्ले सैप
द. प. एशिया	यूफ्रेट्स	उर्मिया

वोस्टोक झील

- रूसी वैज्ञानिकों के एक दल ने अंटार्कटिका की बर्फ के नीचे दबी एक झील को ढूढ़ निकाला।
- वैज्ञानिकों ने इस झील तक पहुँचने के लिए बर्फ की मोटी चादर की खुदाई की।
- वोस्टोक नामक इस झील तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिकों ने लगभग ढाई मील मोटी बर्फ की चादर की खुदाई की।
- जब खुदाई का स्तर 3700 मीटर नीचे तक पहुँचा तो दाब प्रवणता के चलते झील का जल अंटार्कटिका की सतह से 40 मीटर की ऊंचाई तक चला गया।
- वैज्ञानिक इस झील के जल से बने बर्फ की जाँच कर यह पता लगाएंगे कि इसमें कभी कोई जीव-जन्तु रहे थे या नहीं वैज्ञानिकों का यह दल पहला ऐसा दल है जिसने अंटार्कटिका के उपहिमानी (Subglacial) पर्यावरण के इतने अंदर तक जाने में सफलता पाई।
- वोस्टोक झील अंटार्कटिका के दक्षिणी छोर पर रूस के अंटार्कटिका अनुसंधान केन्द्र वोस्टोक के निकट स्थित है।

झील: एक नजर में

- संसार की सबसे ऊँची झील है, ओजोस डेल सलाडो, अर्जेंटीना।
- क्षेत्रफल की दृष्टि से यूरेशिया की केस्पियन सागर (क्षेत्रफल 3,71,800 वर्ग किमी.) विश्व की सबसे बड़ी झील है।
- साइबेरिया की बैकाल झील (गहराई 4700 फीट) विश्व की सबसे गहरी झील है।
- उत्तरी अमेरिका की सुपीरियर झील विश्व की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील है।
- केस्पियन सागर विश्व की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है।
- पेटरनास्टर झील का निर्माण हिमानी की अपरदन क्रिया द्वारा होता है। फिनलैंड हिमानी द्वारा निर्मित अंगुली के आकार की झीलों के लिए प्रसिद्ध है।
- भारत के मालाबार तट पर स्थित लैगून को 'कयाल' के नाम के जाना जाता है।
- उड़ीसा की चिल्का, आंध्र प्रदेश की पुलीकट एवं केरल की बेम्बनाद लैगून के उदाहरण हैं।
- लूसियाना में मिसीसिपी डेल्टा में निर्मित पोचास्ट्रियन झील डेल्टा झील का प्रमुख उदाहरण है। इसके अतिरिक्त नील नदी की मायेह झील तथा नाइजर नदी की मेरीगाट झील डेल्टा झील के अन्य उदाहरण है। बैकाल, मृतसागर, टंगानिका, न्यासा, अल्वर्ट, एडवर्ड आदि झीलें दरार घाटी में स्थित हैं।
- फिनलैण्ड में हिमानी द्वारा निर्मित अंगुली के आकार की अनेक झीलें पायी जाती हैं। इसे 'झीलों का देश' भी कहा जाता है।
- मृत सागर संसार की सबसे नीची झील है। इसकी तली समुद्र तल से 2500 फीट या 393 मीटर नीचे है।
- पेरू व बोलीविया की सीमा पर स्थित टिटिकाका झील विश्व की सबसे ऊँची नौकागम्य झील है।
- भारत की सबसे ऊँची झील देवताल है, जो गढ़वाल हिमालय पर 17,745 फीट की ऊँचाई पर स्थित है।
- ओनकाल (युगांडा) एवं हवाई स्वान (मिस्र) मानव निर्मित झीलें हैं।

- अरल सागर कजाकिस्तान व उज्बेकिस्तान की सीमा बनाता है।
- विक्टोरिया झील जो पूर्वी अफ्रीका की भू-भ्रंश घाटी पर स्थित है, युगांडा, तंजानिया एवं केन्या की सीमा बनाती है।
- सुपीरियर, ह्यूरन, मिशिगन, ओंटारियो व इरी उत्तरी अमेरिका की पाँच प्रमुख झीलें हैं।
- लोपनोर झील चीन में स्थित है। यहाँ पर ही चीन का आण्विक परीक्षण संस्थान है।
- बैकाल, मृत सागर, टंगानिका, न्यासा, अल्बर्ट, एडवर्ड आदि झीलें दरारी घाटी में स्थित हैं।
- भू-संचलन से निर्मित झील का उदाहरण स्विट्जरलैंड की जिनेवा झील, टंगानिका, न्यासा, अल्बर्ट, मृतसागर, बैकाल एवं केस्पियन सागर आदि हैं।
- ज्वालामुखी क्रिया द्वारा निर्मित झील के उदाहरण इथीयोपिया की ताना झील व अमेरिका का निकारागुआ, संयुक्त राज्य अमेरिका का क्रेटर झील, बोलीविया का टिटिकाका, इटली की एवरन झील, भारत की लूनर व पुष्कर झील आदि हैं।
- हिमानीकृत झीलों में फिनलैंड की अधिकांश झीलें, कॉन्सटेन्स व लूसर्न झीलें आदि हैं।
- नदियों द्वारा निर्मित झील उत्तर प्रदेश की चचाई झील, संयुक्त राज्य अमेरिका की वाशिंगटन झील, गोखुर झील, डेल्टाई झील जैसे गोदावरी डेल्टा की कोलेरू झील, मिसीसिपी डेल्टा की पोंचास्ट्रियन झील, नील नदी की मायेह झील, नाइजर नदी की मेरीगाट झील आदि हैं।
- पवन द्वारा निर्मित झील के अन्तर्गत प्लाया या ऐलिना झील जिसका निर्माण पवन के अपरदन द्वारा होता है तथा ये अस्थायी होती हैं।
- भूमिगत जल द्वारा निर्मित झील के अन्तर्गत गर्त या खड्ड झीलें आती हैं।
- विश्व में अधिकांश झीलों का निर्माण हिमानीकरण द्वारा हुआ है एवं यही कारण है कि सर्वाधिक झीलें उच्च अक्षांशों एवं उच्च पर्वतीय क्षेत्रों पर पायी जाती हैं।
- गंगा नदी के डेल्टाई क्षेत्रों में स्थित डेल्टाई झीलों को बिल कहा जाता है।
- विश्व की सबसे नीची झील (समुद्र सतह से 1270 फीट नीचे) मृत सागर है एवं विश्व की सबसे ऊँची झील टिटिकाका है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

द्वीप एवं जलसंधियाँ
(Islands and Straits)

द्वीप (Islands)

द्वीप स्थलखण्ड के ऐसे भाग होते हैं, जिनके चारों ओर जल का विस्तार पाया जाता है। द्वीपों का आकार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। इनका क्षेत्रफल कुछ वर्ग मीटर से लेकर हजारों वर्ग किमी- तक भी पाया जाता है। अत्यधिक विशाल आकार वाले द्वीपों को महाद्वीप की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप एक विशाल आकार का द्वीप ही है।

द्वीपों के प्रकार (Types of Islands)

विश्व में द्वीपों की उत्पत्ति तथा उनके आकार में पर्याप्त विविधता के दर्शन होते हैं, अतः इनके स्पष्टीकरण के लिए इन्हें कई प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है। स्थिति, निर्माण, आकार आदि की दृष्टि से विश्व में निम्नलिखित प्रकार के द्वीप पाये जाते हैं।

स्थिति के आधार पर द्वीपों के प्रकार

यद्यपि यह सत्य है कि द्वीप जल से घिरे हुए स्थलखण्ड हैं और उनकी स्थिति सदैव जल के भीतर ही होती है तथापि विश्व में स्थिति के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के द्वीप पाये जाते हैंः-

- **महाद्वीपीय द्वीप-** महाद्वीपों के समीपवर्ती सागरीय भागों में स्थित तथा महाद्वीपों के ही समान संरचना वाले द्वीपों को महाद्वीपीय द्वीप कहते हैं, ये महासागरीय मग्न तटों पर मौजूद होते हैं। उथले सागरों द्वारा ही ये मुख्य भू-भाग से अलग होते हैं। इनकी उत्पत्ति में महाद्वीप के तटवर्ती भागों में भूगर्भिक हलचलों द्वारा होने वाला निमज्जन ही सबसे प्रमुख कारण होता है। उदा. श्रीलंका।
- **महासागरीय द्वीप-** गहरे महासागरीय भागों में स्थित तथा अपने समीपवर्ती भू-खण्ड से पूर्णतः भिन्न संरचना वाले द्वीपों को महासागरीय द्वीप कहा जाता है। ऐसे द्वीप वास्तव में महासागरीय तल के ऊपर उठ जाने से बनते हैं। महासागरीय तली का यह उठाव सागरीय जल के परिमाण में कमी होने या भू-गर्भिक हलचलों से सम्पन्न होता है। **फिलीपीन्स द्वीप समूह** इसी प्रकार के द्वीपों के अन्तर्गत आता है।
- **आभ्यान्तरिक द्वीप-** नदियों अथवा झीलों के बीच में बने छोटे द्वीपों को इस वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता है। ये द्वीप अत्यधिक छोटे तथा अस्थायी प्रकृति के होते हैं। ब्रह्मपुत्र नदी के प्रवाह के बीच में ऐसे द्वीप परिलक्षित होते हैं। **उदा. असम के माजुली द्वीप, आसाम द्वीप।**

उत्पत्ति के आधार पर द्वीपों के प्रकार

- जलीय भागों में द्वीपों की उत्पत्ति के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं, जिनके आधार पर इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रखा जाता है-

विवर्तनिक द्वीप (Islands due to tectonic or Diastrophism)

ऐसे द्वीपों की उत्पत्ति भूगर्भिक हलचलों द्वारा भूमि के नीचे धंसने, समुद्री भागों में भूमि के ऊपर उठने, दरार घाटियों का निर्माण होने अथवा महाद्वीपीय भू-भागों के अलग हो जाने से होती है।

ऐसे द्वीप निम्नलिखित प्रकार से निर्मित होते हैं-

- **स्थलीय भाग के निमज्जन से बने द्वीप-** ऐसे द्वीपों का निर्माण भूगर्भिक हलचलों के परिणाम-स्वरूप किसी स्थल भाग के नीचे निमज्जित हो जाने से होता है। ऐसे द्वीपों का प्रमुख उदाहरण है- **ब्रिटिश द्वीप समूह,** जिसकी उत्पत्ति समीपवर्ती भू-भाग का निमज्जन हो जाने से ही हुई है।
- **समुद्री नितल के उमज्जन से बने द्वीप-** भूगर्भिक हलचलों के कारण समुद्री नितल में उभार या उमज्जन हो जाने से ऐसे द्वीपों का निर्माण होता है, क्योंकि सागरीय भागों में तली के ऊपर उठ जाने से वह जल के बाहर निकल आती है। अटलाण्टिक महासागर में स्थित पश्चिमी द्वीप समूह, **प्रशान्त महासागर** के अनेक द्वीपों का निर्माण इसी प्रक्रिया से हुआ है।
- **भू-भ्रंशन या दरार से निर्मित द्वीप-** भूगर्भिक हलचलों से किसी महाद्वीपीय भाग के तटवर्ती क्षेत्रों में भू-भ्रंश होने तथा उसके टूटकर अलग हो जाने से ऐसे द्वीपों की उत्पत्ति होती है। इसका प्रमुख उदाहरण है- **मेडागास्कर द्वीप,** जो कभी अफ्रीका की मुख्य भूमि का ही भाग था।
- **महाद्वीप प्रवाह से निर्मित द्वीप-** प्लेट विवर्तनिक एवं महाद्वीपीय प्रवाह से सम्बन्धित सिद्धान्तों से यह स्पष्ट है कि महाद्वीपीय भाग संचरणशील हैं। उनके प्रवाह के परिणामस्वरूप कुछ भागों के पीछे छूट जाने से द्वीपों की उत्पत्ति भी हुई है। ऐसे द्वीपों के प्रमुख उदाहरण हैं- **पूर्वी द्वीप समूह** तथा **आइसलैण्ड** एवं **ग्रीनलैण्ड** के पश्चिम में स्थित अनेक द्वीप।

निक्षेपमूलक द्वीप (Depositional Islands)

धरातल पर प्रवाहित होने वाली नदियों, हिमानियों या ग्लेशियर तथा सागरीय लहरों के द्वारा अपने साथ परिवहन किये गये पदार्थों के निक्षेपण से भी विभिन्न प्रकार के

द्वीपों की उत्पत्ति होती है। इनको निम्नलिखित उपविभागों में रखा जाता है-

- **नदी निक्षेप से बने द्वीप**– नदियों द्वारा अपने साथ बहाकर लाये गये जलोढ़ का जमाव कर देने से ऐसे द्वीपों का निर्माण सागरीय भागों में हो जाता है। ये द्वीप अस्थायी एवं आकार में छोटे होते हैं। गंगानदी के डेल्टा क्षेत्र में बंगाल की खाड़ी में ऐसे अनेक द्वीप मिलते हैं। उदा. **डेविस द्वीप** जो कि मिसीसिपी नदी पर निर्मित है।
- **हिमानी निक्षेप से बने द्वीप**– हिमानियों द्वारा भी निम्नवर्ती या सागरीय भाग में अपने साथ बहाकर लाये गये पदार्थों का निक्षेपण कर देने से छोटे आकार वाले अस्थायी द्वीपों का निर्माण हो जाता है।
- **तरंग निक्षेप से बने द्वीप**– सागरीय एवं तटीय भागों में लहरों या तरंगों द्वारा बालू आदि का जमाव कर देने से ऐसे द्वीप बन जाते हैं। इनकी प्रकृति भी सामान्यतः अस्थायी ही होती है। उदा. **रामेश्वरम् द्वीप**।

अपरदनमूलक द्वीप (Erosional Islands)

धरातल पर क्रियाशील परिवर्तनशील शक्तियों द्वारा समानता लाने के उद्देश्य से अपरदनात्मक कार्य शीघ्रता से संपन्न किये जाते रहते हैं। इनमें कोमल चट्टानी भाग तो आसानी से कटकर नीचे हो जाते हैं, किन्तु कठोर भाग अपरदन से अछूते रहते हैं। कालान्तर में निम्नवर्ती भागों में जल भर जाने से ऐसे द्वीपों की उत्पत्ति हो जाती है। विभिन्न प्रक्रमों के आधार पर ये द्वीप निम्नलिखित प्रकार के होते हैं:-

- **हिमानी अपरदन से बने द्वीप**– प्लायोसीन तथा मायोसीन युग में धरातल के अधिकांश भाग पर हिमानी प्रभाव विद्यमान था और इसके कारण महाद्वीपों का तटवर्ती भाग अत्यधिक अपरदन से घिसकर ऊँचा-नीचा हो गया था। निवर्तनकाल में हिमानियों के पीछे हटने तथा सागरीय भाग में जल की अधिकता के फलस्वरूप निम्नवर्ती भागों में तो जल भर गया किन्तु उच्च भाग ऊपर ही उठे रहे, जो बाद में द्वीप बन गये। ग्रीनलैंड एवं नॉर्वे के तटों पर ऐसे अनेक द्वीप आज भी विद्यमान हैं।
- **नदी अपरदन से बने द्वीप**– नदियों द्वारा मैदानी भागों में स्थल द्वीपों तथा डेल्टाई भागों में नये मार्गों या वितरिकाओं के निर्माण के समय द्वीपों का निर्माण कर दिया जाता है। उदाहरण गंगा सागर द्वीप।
- **सागरीय लहरों के अपरदन से बने द्वीप**– सागरीय लहरों तथा तटीय भागों का अत्यधिक अपरदन करने के कारण कोमल चट्टानी भाग तो और नीचे हो जाते हैं किन्तु कठोर भाग द्वीपों में बदल जाते हैं।

ज्वालामुखी द्वीप (Volcanic Islands)

- स्थलीय भागों की भांति महासागरीय नितल में भी निरंतर ज्वालामुखी उद्गार होते रहने से उससे निकलने वाला पदार्थ समीपवर्ती भागों में जमा होता रहता है। जब कभी यही जमाव वाला क्षेत्र बढ़कर समुद्री जल की सतह से ऊपर आ जाता है, तब द्वीपों के रूप में दिखायी पड़ता है। ऐसे द्वीप मध्य **अटलाटिंक कटक** के सहारे अधिक मिलते हैं। हवाई तथा एल्यूशियन द्वीप भी ऐसे ही ज्वालामुखी द्वीप हैं। भारत में **बैरन द्वीप** तथा **नारकोंडम द्वीप** इसके उदाहरण हैं।

प्रवाल या कोरल द्वीप (Coral Islands)

- उष्णकटिबन्धीय सागरों में महाद्वीपीय मग्नतटों पर केल्शियम पदार्थोंर् से अपना भोजन बनाने वाला जीव पाया जाता है जिसे कोरल या मूंगा कहा जाता है। इसके खोलों तथा मृत कीड़ों के जमाव से द्वीप का निर्माण हो जाता है क्योंकि यह जमाव बढ़कर सागरीय जल की सतह के ऊपर आ जाता है। हिन्द महासागर में स्थित लक्षद्वीप, मालदीव तथा बरमूडा द्वीप (अटलांटिक महासागर) ऐसे ही कोरल या प्रवाल द्वीप हैं।

विश्व के प्रमुख द्वीप

द्वीप	क्षेत्रफल (वर्ग किमी.)	स्थिति
ग्रीनलैण्ड महासागर	21,75,600	आर्कटिक (उत्तरी ध्रुव)
पपूआ न्यू गिनी	7,77,000	पश्चिमी प्रशांत महासागर
बोर्नियो	7,25,545	हिन्द महासागर
मेडागास्कर	5,90,000	हिन्द महासागर
बैफीन द्वीप	4,76,065	उत्तरी ध्रुव महासागर
सुमात्र	4,73,600	हिन्द महासागर
होन्शू	2,28,000	उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर
ग्रेट ब्रिटेन	2,18,041	उत्तरी अटलांटिक महासागर
विक्टोरिया द्वीप	22,197	उत्तरी ध्रुव महासागर
एलेसमेयर द्वीप	1,96,236	उत्तरी ध्रुव महासागर
सेलीबीज	1,89,035	हिन्द महासागर (सुलावेसी)
दक्षिणी द्वीप (न्यूजीलैंड)	1,50,460	दक्षिणी- पश्चिमी प्रशान्त महासागर
जावा द्वीप	1,26,295	हिन्द महासागर
उत्तरी द्वीप (न्यूजीलैंड)	1,14,687	दक्षिणी- पश्चिमी प्रशान्त महासागर
क्यूबा	1,14,522	केरीबियन सागर
न्यू फाउंडलैंड	1,12,300	उत्तरी-पश्चिमी अटलाण्टिक महासागर
लुजोन द्वीप	1,04,688	पश्चिमी प्रशान्त महासागर
आइसलैण्ड	1,03,000	उत्तरी अटलांटिक महासागर
मिण्डनाओ द्वीप	94,226	पश्चिमी प्रशान्त महासागर
आयरलैण्ड	82,460	उत्तरी अटलांटिक महासागर
होकेडो द्वीप	77,900	उत्तरी पश्चिमी प्रशान्त महासागर
हिस्पैनिओला (डोमिनिक गणतंत्र एवं हैती)	76,192	केरीबियन सागर
सखालिन द्वीप	74,060	उत्तरी-पश्चिम प्रशान्त महासागर
तस्मानिया	7,900	दक्षिण-प्रशान्त महासागर
श्रीलंका	65,600	हिन्द महासागर

जलसंधियाँ (Straits)

जलसंधियाँ दो भिन्न जलराशियों को जोड़ती हैं एवं दो स्थलखंडों को अलग करती हैं। इनका अपना व्यापारिक व सामरिक महत्त्व होता है। इस संदर्भ में जिब्राल्टर व मलक्का जलसंधियों का उदाहरण लिया जा सकता है। बेंरिग, जिब्राल्टर, बाब-अल-मन्देब, बास्पोरस व टॉरेस जैसी जलसंधियाँ महाद्वीपीय विभाजक हैं।

विश्व की प्रमुख जलसंधियाँ		
नाम	**किनको जोड़ती हैं**	**स्थिति**
मलक्का जलसंधि	अंडमान सागर एवं दक्षिण चीन सागर	इंडोनेशिया- मलेशिया
पाक जलसंधि	पाक खाड़ी एवं बंगाल की खाड़ी	भारत-श्रीलंका
सुंडा जलसंधि	जावा सागर एवं हिंद महासागर	इंडोनेशिया
यूकाटन जलसंधि	मैक्सिको की खाड़ी एवं केरीबियन सागर	मैक्सिको-क्यूबा
मेसिना जलसंधि	भूमध्य सागर	इटली-सिसली
ओरंटो जलसंधि	एड्रियाटिक सागर एवं आयोनियन सागर	इटली-अलबानिया
बाब-अल-मन्देब	लाल सागर-अदन की खाड़ी	यमन-जिबूती जलसंधि
कुक-जलसंधि	दक्षिण प्रशांत महासागर	न्यूजीलैंड (उत्तरी एवं दक्षिणी द्वीप)
मोजाम्बिक चैनल	हिंद महासागर	यमन-जिबूती जलसंधि
नार्थ चैनल	आयरिश सागर एवं अटलांटिक महासागर	आयरलैंड-इंग्लैंड
टॉरेस जलसंधि	अराफुरा सागर एवं पापुआ की खाड़ी	पापुआ न्यूगिनी- ऑस्टेलिया
बास जलसंधि	तस्मान सागर एवं दक्षिण सागर	ऑस्टेलिया
बेरिंग जलसंधि	बेरिंग सागर एवं चुकसी सागर	अलास्का-रूस
बोनी-फैसियो	भूमध्य सागर	कोर्सिका-सार्डीनिया
बास्पोरस जलसंधि	काला सागर एवं मरमरा सागर	तुर्की
डार्डेनलेज जलसंधि	मरमरा सागर एवं एजियन सागर	तुर्की
डेविस जलसंधि	बैफिन खाड़ी एवं अटलांटिक महासागर	ग्रीनलैंड-कनाडा
डेनमार्क जलसंधि	उत्तरी अटलांटिक एवं आर्कटिक महासागर	ग्रीनलैंड-आइसलैंड
डोबर जलसंधि	इंग्लिश चैनल एवं उत्तरी सागर	इंग्लैंड-प्रफ़ांस
फ्रलोरिडा जलसंधि	मैक्सिको की खाड़ी एवं अटलांटिक महासागर	संयुक्त-राज्य अमेरिका - क्यूबा
हॉरमुज जलसंधि	फारस की खाड़ी एवं ओमान की खाड़ी	ओमान-ईरान
हडसन जलसंधि	हडसन की खाड़ी एवं अटलांटिक महासागर	कनाडा
जिब्राल्टर जलसंधि	भूमध्य सागर एवं अटलांटिक महासागर	स्पेन-मोरक्को
मैगेलन जलसंधि	प्रशांत एवं दक्षिण अटलांटिक महासागर	चिली
मकास्सार जलसंधि	जावा सागर एवं सेलीबीज सागर	इंडोनेशिया
सुंगारू जलसंधि	जापान सागर और प्रशांत महासागर	जापान (होकेडो-होंशू द्वीप)
तातार जलसंधि	जापान सागर और ओखोटस्क सागर	रूस (पूर्वी रूस- सखालीन द्वीप)
फोवेक्स जलसंधि	दक्षिणी प्रशांत महासागर	न्यूजीलैंड
फार्मोसा जलसंधि	दक्षिण चीन सागर-पूर्वी चीन सागर	चीन-ताइवान

स्व कार्य हेतु

नदी के कार्य एवं स्थलरूप, डेल्टा एवं हिमानियाँ
(Work of river and Landform, Delta and Glacier)

परिचय (Introduction)

धरातल पर क्रियाशील बाह्य गतिशील शक्तियों में नदियों का कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है और ये धरातल पर समतल करने वाली सबसे प्रमुख शक्ति भी हैं। नदियों का निर्माण किसी ढाल वाले धरातल पर बहते हुए जल द्वारा या उच्च पर्वतीय भाग में जमी हुई बर्फ के नीचे खिसक कर हिमरेखा से नीचे आकर पिघलने पर होता है, जो किसी निश्चित मार्ग पर घाटियों का निर्माण करके प्रवाहित होता है।

नदी द्वारा अपरदनात्मक कार्य

नदी द्वारा अपरदन कार्य दो प्रकार से किया जाता है- (1) यांत्रिक तथा (2) रासायनिक। यांत्रिक क्रिया में नदी अपने प्रवाहित जल में विद्यमान ऊर्जा की सहायता से अपने तटों और तलछटों को काटती है। रासायनिक क्रिया में नदी चट्टानों में घुलनशील तत्वों को जल में घोल देती है और चट्टानों का अपरदन करती है। नदी, जलीय क्रिया, घर्षण, संघर्षण तथा संक्षारण विधियों द्वारा अपना अपरदन कार्य संपन्न कर लेती है-

- **घोलीकरण या संक्षारण की क्रिया (Solution or Corrosion)**- विभिन्न प्रकार की चट्टानों से होकर प्रवाहित होने वाली नदी का जल घोलीकरण के साथ रासायनिक क्रियाओं द्वारा अनेक प्रकार के चट्टानी खनिजों को उनसे अलग करके अपने साथ बहा ले जाता है। इस क्रिया से एक तो चट्टानों की संरचना में ढीलापन आ जाता है, दूसरे कालान्तर में वे पूर्णरूपेण जल के साथ बहा लिए जाते हैं। कार्बोनेशन की क्रिया द्वारा चट्टानों में मिलने वाला नमक जल के साथ घुलकर बहने लगता है।
- **घर्षण की क्रिया (Abrasion)**- नदी जल के साथ प्रवाहित होने वाले ठोस पदार्थ जैसे, कंकड़, पत्थर आदि अपने सम्पर्क में आने वाली चट्टानों को रगड़ते हुए प्रवाहित होते हैं और उनका क्षरण करते रहते हैं। चूँकि नदी के बहाव के साथ ही इन पदार्थों में शक्ति भी आ जाती है, अतः ये लम्बवत रूप में तली में तथा क्षैतिज रूप में किनारों पर स्थित मुलायम संरचना वाली चट्टानों को काटते हुए आगे बढ़ते हैं। जब ये शैलों के टुकड़े नदी के किनारों को रगड़ते हुए बहते हैं, तब घाटी चौड़ी होती जाती है तथा जब ये घाटी की तली को रगड़ते हुए प्रवाहित होते हैं, तब घाटी गहरी होती जाती है। लम्बवत अपरदन (Vertical Erosion) नदी की तरुणावस्था में सबसे अधिक होता है जबकि क्षैतिज पार्श्ववर्ती अपरदन (Horizontal or Lateral Erosion) नदी अपनी प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में अधिक करती है।
- **जलगति क्रिया (Hydraulic Action)**- बिना किसी अन्य पदार्थ की सहायता के मात्र जल द्वारा की जाने वाली अपरदन की क्रिया जलगति क्रिया कहलाती है। इसमें नदी का जल मार्ग में पड़ने वाली चट्टानों के कणों को धक्के द्वारा ढीला तथा कमजोर बनाकर उन्हें चट्टान से अलग करके अपने साथ लेकर बहता है। इस क्रिया में जल का वेग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। जल की इस यान्त्रिक क्रिया का सर्वाधिक प्रभाव रेत, बजरी, मृत्तिका आदि पर पड़ता है।
- **संघर्षण (Attrition)**- नदी के जल के साथ प्रवाहित होने वाले शैल खंडों, कंकड़, पत्थर आदि के आपस में टकराकर विखंडित होने की क्रिया संघर्षण कहलाती है। इस क्रिया के परिणामस्वरूप टुकड़ों के आपस में रगड़ने एवं टकराने से उनका आकार घटता जाता है और विशेष करके गोल हो जाता है। संघर्षण की क्रिया का महत्त्व इस बात में है कि इससे नदी के साथ प्रवाहित होने वाले पदार्थों का भार कम हो जाता है और नदी उनका परिवहन आसानी से कर लेती है।
- **आधार तल (Base Level)**- नदी द्वारा किये जाने वाले लम्बवत् अपरदन की अन्तिम सीमा आधार तल के रूप में जानी जाती है और इसके आगे नदी किसी भी प्रकार का अपरदन नहीं कर पाती है। जब किसी नदी की अपरदनात्मक क्षमता एकदम कम हो जाती है, तब यह कहा जाता है कि उसने अपने आधार तल को प्राप्त कर लिया है।

नदी द्वारा बनी अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ

- **'V' आकार की घाटी**- पर्वतीय क्षेत्रों में अपने उद्गम से लेकर संपूर्ण क्षेत्र तक नदी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य अपनी घाटी को गहरा करना होता है। ऐसे क्षेत्रों में नदी के तीव्र ढाल पर प्रवाहित होने के कारण उसकी धारा अत्यधिक तेज होती है और भार-वहन करने की शक्ति भी अधिक होती है। नदी द्वारा अपनी घाटी में की गई ऊर्ध्वाधर कटाव के कारण घाटी पतली, गहरी और 'V' आकार की होती जाती है। जहाँ चट्टानें अधिक कठोर होती हैं, वहाँ घाटी बहुत ही संकीर्ण होती है और गहराई के लगातार बढ़ते रहने से गॉर्ज या महाखड्ड बन जाते हैं।

उदाहरण- भारत में हिमालय क्षेत्र में सतलज, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र नदियों ने ऊँची पर्वत शृंखलाओं को काटकार महाखड्डों का निर्माण किया है।

- **'I' आकार की घाटी या केनियन (Canyon)-** शुष्क प्रदेशों में प्रवाहित होने वाली नदियों की घाटियों की चौड़ाई वर्षा की कमी के कारण अधिक नहीं बढ़ पाती है और इन क्षेत्रों में नदी केवल अपने तल को ही काटकर गहरा बनाती रहती है।
- इस प्रकार से निर्मित अत्यधिक गहरे महाखड्डों को केनियन की संज्ञा दी जाती है। स. रा. अमेरिका में कोलोरेडो नदी का केनियन विश्व प्रसिद्ध है, जो कि I (आई) के आकार में लगभग 200 किमी. की लम्बाई में विस्तृत है।
- **जलज गर्तिका (Pothole)-** जब नदी के जल के साथ बहते हुए कंकड़-पत्थर के टुकड़े कठोर चट्टानों में गड्ढ़े बना देते हैं तो इन गड्ढों में अवसाद के लंबे समय तक घूमते रहने के कारण ये गोल एवं गहरे हो जाते हैं। इन आकृतियों को जलज गर्तिका कहते हैं।
- **जल प्रपात (Waterfall)-** जब नदी घाटी के ऊपरी क्षेत्रों में उसके तल पर कोई कठोर चट्टान उभरी या मुड़ी अवस्था में स्थित होती है, तो जल की धारा उसके ऊपर से गुजरती हुई नीचे गिरती है। इसके ऊपरी भागों में निम्नवर्ती अपरदन तो होता रहता है, किन्तु मार्ग की कठोर चट्टान इस कार्य में बाधा पहुँचाती है। जब नदी चट्टानी कगार पर ऊपर से सीधे नीचे गिरती है, तब उस दशा को जल प्रपात कहा जाता है। जब नदी घाटी के तल पर कोई कड़ी चट्टान घाटी के आर-पार विस्तृत होती है, तभी जल प्रपात एवं क्षिप्रिकाओं (Rapids) का निर्माण होता है। जल प्रपात के नीचे जल से भरा एक गहरा कुन्ड होता है जो बाद में जल प्रपात के लगातार पीछे हटने के कारण एक संकरी किन्तु गहरी घाटी के रूप में परिवर्तित हो जाता हैं इस गहरी घाटी को महाखड्ड कहा जाता है। इस प्रकार महाखड्ड, क्षिप्रिकाएं और जल प्रपात नदी घाटी के ऊपरी भाग में स्थित युवावस्था के स्थलरूप हैं।
- उदाहरण के लिए उत्तरी अमेरिका का न्याग्रा जल प्रपात जिसमें पानी 51 मीटर की ऊँचाई से नीचे गिरता है।
- दक्षिण अफ्रीका की जाम्बेजी नदी पर स्थित विक्टोरिया जल प्रपात में भी पानी 108 मीटर की ऊँचाई से नीचे गिरता है।
- भारत में भी कर्नाटक राज्य में पश्चिमी घाट पर्वतीय क्षेत्र में कावेरी की सहायक शरावती नदी पर स्थित जोग या गरसोप्पा जल प्रपात में पानी 260 मी. की ऊँचाई से नीचे गिरता है।
- जबलपुर के निकट नर्मदा नदी की घाटी में संगमरमर चट्टान के मध्य स्थित धुआंधार जल प्रपात केवल 30 मीटर ऊँचा है किंतु यह प्राकृतिक भू-दृश्य के कारण आकर्षण का केन्द्र है।
- झारखंड स्थित छोटानागपुर पठार क्षेत्र से रांची के निकट सुबर्ण रेखा नदी पर स्थित हुन्डुरू जल प्रपात 97 मीटर ऊँचा है।

नदी द्वारा निक्षेपात्मक स्थलाकृतियाँ (Depositional Landform by River)

जलोढ़ पंख (Alluvial Fan)

- नदी घाटी के मध्यवर्ती या मैदानी भाग में उसके जल की मात्र में वृद्धि हो जाती है तथा ढाल में कमी के कारण उसकी गति भी धीमी हो जाती है। उस भाग में नदी द्वारा तली की अपेक्षा किनारों का कटाव अधिक किया जाता है और वह टेढ़े-मेढ़े एवं सर्पीले मार्ग से होकर प्रवाहित होने लगती है। जब नदी पर्वतीय भाग से उतरकर पर्वतपदीय क्षेत्रों में प्रवेश करती है तो कुछ अवसादों का निक्षेपण भी उसके द्वारा हो जाता है, जिसमें मोटे कणों के साथ ही बालू, बजरी, चट्टानी टुकड़े आदि मिले रहते हैं। इन अवसादों का जमाव पर्वतपदीय क्षेत्रों में पंखों की आकृति में किया जाता है। अतः इन आकृतियों को जलोढ़ पंख कहते हैं। उदाहरण के लिए गंगा के मैदान के उत्तरी भाग में अनेक जलोढ़ पंखों के आपस में मिल जाने से ही भावर प्रदेश का निर्माण हुआ है।

जलोढ़ शंकु (Alluvial Cones)

- जब नदी पर्वतपदीय क्षेत्र में जलोढ़ का निक्षेप त्रिकोणाकार आकृति में करती है तो इन्हें जलोढ़ शंकु कहते हैं। जलोढ़ पंक व जलोढ़ शंकु में केवल इतना अन्तर है कि शंकु की अपेक्षा पंक का ढाल मंद होता है। बड़े शंकु के निर्माण के लिए अधिक ढाल जबकि जलोढ़ पंख के लिए अपेक्षाकृत मंद ढाल की आवश्यकता होती है।

नदी विसर्प या नदी मोड़ (River Meander)

- मैदानी क्षेत्रों में नदी की धारा टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर घुमावदार मार्ग से होकर प्रवाहित होती है, जिससे S (एस) आकार की घाटी का निर्माण हो जाता है। इसे ही नदी विसर्प या मीयांडर कहते हैं।
- इस अवस्था में नदी की चाल एकदम सर्प की चाल के समान होती है, क्योंकि मैदानी क्षेत्र में अपनी मन्द गति एवं अत्यधिक अवसादी बोझ के कारण नदी घाटी में बार-बार मोड़ आने लगते हैं। वह कभी एक किनारे को काटकर दूसरे किनारे पर अवसादों को जमा करती है और कभी किसी अन्य के किनारे पर। नदी का यह क्रम बराबर चलता रहता है और शक्ति में कमी के कारण मार्ग में आने वाली रुकावटों को दूर करने की उसकी क्षमता भी कम हो जाती है। यहां तक कि नदी द्वारा अपनी तली पर छोड़ा गया अवसाद भी रुकावट पैदा करता है और वह उसे बहाने या हटाने की बजाय अपनी धारा को ही मोड़ लेती है इससे गोखुर झील का निर्माण होता है।

बाढ़ का मैदान (Flood Plains)

- नदी घाटी के सर्वाधिक निचले भाग में उसकी भार वहन की शक्ति बहुत ही कम हो जाती है और वह अत्यधिक अवसादों का जमाव करने लगती है। नदी द्वारा भारी मात्र में अपने तल पर ही अवसादों का निक्षेपण करने से उसकी धारा तक अवरुद्ध हो जाती है एवं उसका जल एक विस्तृत क्षेत्र में फैल जाता है। इस क्षेत्र में एक समतल एवं चौरस मैदान बन जाता है, जिसे बाढ़ का मैदान कहा जाता है। इसमें प्रतिवर्ष बाढ़ के कारण नये अवसादों का जमाव होता रहता है।

विश्व की प्रमुख नदियाँ

नाम	उद्गम स्थान	गिरने का स्थान	लंबाई (किमी. में)
नील	विक्टोरिया झील	भूमध्य सागर	6690
अमेजन	लैगो विलफेरा	अटलांटिक महासागर	6290
मिसीसिपी	रेड रॉक स्रोत	मैक्सिको की खाड़ी	6240
यांगसी कियांग	तिब्बत का पठार	चीन सागर	5797
ओबे	अल्टाई पर्वत	ओब की खाड़ी	5567
ह्वांगहो	कुनलुन पर्वत	पीला की खाड़ी	4667
येनीसी	रान्नु-ओला पर्वत	आर्कटिक महासागर	4506
कांगो	लूआलया और लआपूला नदी संगम	अटलांटिक महासागर	4371
आमूर	खिंगन श्रेणियां	टार्टर स्ट्रेट	4352
लीना	बैकाल पर्वत (रूस)	आर्कटिक महासागर	4268
मैकेंजी	फिनले नदी के मुहाने	ब्यूफोर्ट सागर	4241
नाइजर	गिनी (अफ्रीका)	गिनी की खाड़ी	4184
मीकांग	तिब्बत के पठार	दक्षिणी चीन सागर	4023
वोल्गा	ब्लडाई पठार (रूस)	केस्पियन सागर	3687
सैन फ्रांसिस्को	द. मिनास गेटस	अंध महासागर	3198
सेंट लॉरेंस	ओण्टेरियो झील	सेंट लारेंस की खाड़ी	3058
ब्रह्मपुत्र	मानसरोवर झील	बंगाल की खाड़ी	2900
सिंधु	मानसरोवर झील	अरब सागर	2880
डेन्यूब	ब्लैक फॉरेस्ट	काला सागर (जर्मनी)	2842
फरात	कारासुन और मूरत	शत-अल-अरब	2799
डार्लिंग	ऑस्ट्रेलिया	मर्रे नदी	2798
मर्रे	ऑस्ट्रेलियन आल्पस	हिंद महासागर	2589
नेलसन	बो नदी का भाग	हडसन की खाड़ी	2575
पेराग्वे	माटोग्रोसो (ब्राजील)	पेराना नदी	2549
यूराल	द. यूराल पर्वत	केस्पियन सागर	2533
गंगा	गोमुख हिमानी से	बंगाल की खाड़ी	2525
आमू-दरिया	निकोलस श्रेणी	अरल सागर	2414
सालवीन	तिब्बत क्युलुन पर्वत	मर्तावान की खाड़ी	2414
अरकंसास	मध्य कोलोरेडो	मिसीसिपी नदी	2348
कोलोरेडो	ग्रेंडकण्ट्री	केलीफोर्निया की खाड़ी	2333
नीपर	ब्लडाई पर्वत	कालासागर	2284
ओहियो	पोटरकन्ट्री	मिसीसिपी नदी	2102
इरावदी	माली और नामी नदी	बंगाल की खाड़ी	2092
ओरेंज	लिसोथो	अटलांटिक महासागर	2092
ओरीनीको	सिएरापरिमा पर्वत	अटलांटिक महासागर	2062
कोलंबिया	कोलंबिया झील	प्रशांत महासागर	1983
डॉन	टूला	अजोब सागर	1968
टिगरिस	टॉरस पर्वत	शत-अल-अरब	1899

नदियों के किनारे बसे विश्व के प्रमुख नगर			
नगर	**नदी**	**नगर**	**नदी**
बगदाद (ईराक)	टाइग्रिस	बेलग्रेड	डेन्यूब
बर्लिन (जर्मनी)	स्प्री	बुडापेस्ट	डेन्यूब
पर्थ (ऑस्ट्रेलिया)	स्वान	वाशिंगटन	पोटामेक
वारसा (पोलैंड)	विस्चुला	वियना (ऑस्ट्रिया)	डेन्यूब
अस्वान (मिस्र)	नील	टोकियो (जापान)	अराकावा
सेंट लुईस	मिसीसिपी	शंघाई (चीन)	यांग्त्सीक्यांग
रोम (इटली)	टाइबर	रंगून (म्यांमार)	इरावदी
लंदन (इंग्लैंड)	टेम्स	ओटावा (कनाडा)	सेंट लॉरेंस
पेरिस (प्रफ़ांस)	सीन	न्यूयॉर्क	हडसन
मास्को (रूस)	मोस्कावा	मैड्रिड (स्पेन)	मैजेनसेस
प्राग (गणराज्य)	विंतावा	लिस्बन (पुर्तगाल)	टंगस
बोन (जर्मनी)	राइन	लाहौर (पाकिस्तान)	रावी
खारतूम (सूडान)	नील	करांची (पाकिस्तान)	सिंधु
हांकोव (चीन)	यांग्त्सीक्यांग	डबलिन (आयरलैंड)	लीफे
काहिरा (मिस्र)	नील	दिल्ली (भारत)	यमुना
ब्यूनस आयर्स	लाप्लाटा	चटगांव (बांग्लादेश)	मैयाणी
अंकारा (टर्की)	किजिल	हैम्बर्ग (जर्मनी)	एल्ब
डुंडी (स्कॉटलैंड)	टे	शिकागो (अमेरिका)	मिसीसिपी
लीवरपुल (इंग्लैंड)	मर्सी	ब्रिस्टल (इंग्लैंड)	एवन
कोलोन (जर्मनी)	राइन	बसरा (ईराक)	दजला
मॉटिंयल	सेंट लॉरेंस	क्यूबेक (कनाडा)	सेंट लारेंस
सिडनी	डालिंग	लेनिनग्राड (रूस)	नेवा
कीव (रूस)	नीपर	स्टालिनग्राड	वोल्गा
मोलमीन	सालवीन	अकयाव (म्यामांर)	इरावदी
केन्टन (चीन)	सीक्यांग	डेजिंग (जर्मनी)	विस्टुला

प्राकृतिक तटबंध (Natural Levees)

- बाढ़ के समय नदी द्वारा अपनी घाटी के दोनों ओर जमा किये गये अवसादों से एक प्राकृतिक बांध का निर्माण हो जाता है और उसकी धारा उसके बीच से ही होकर प्रवाहित होती है। इन प्राकृतिक तटबन्धों के पीछे महीन जलोढ़ अवसाद प्रत्येक वर्ष परत-दर-परत जमा होता रहता है और इस निक्षेपण के कारण नदी का तल धीरे-धीरे ऊँचा उठता जाता है। ये प्राकृतिक तटबन्ध तीव्र वर्षा के साथ आने वाले पानी के दबाव को सहन नहीं कर पाते एवं टूट जाते हैं, जिससे समीपवर्ती क्षेत्रों में भयंकर बाढ़ आ जाती है। उदाहरण के लिए चीन की ह्वांगहो नदी इस प्रकार से लाने वाली भयंकर बाढ़ों के कारण चीन का शोक कहलाती है और बिहार में कोसी नदी 'बिहार का शोक' कहलाती है।

डेल्टा (Delta)

नदियां अपने स्रोत से निकलकर सागर या झील में गिरती हैं तो उसके प्रवाह में अवरोध एवं वेग में कमी के कारण (नदी द्वारा किए गये अपरदन से प्राप्त) मलवे का निक्षेप अपने मुहाने पर इकट्ठा करती हैं, जिससे एक विशेष प्रकार की आकृति का निर्माण होता है, इसे डेल्टा कहा जाता है। नील नदी के

मुहाने पर निक्षेपणात्मक स्थलरूप के लिए डेल्टा शब्द सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। नदी के मुहाने पर उसके द्वारा बहाकर लाये गये अवसादों के निक्षेपण के परिणामस्वरूप जब उसकी धारा अवरुद्ध हो जाती है, तो परिपक्वावस्था के कारण पदार्थों का परिवहन करने में असमर्थ होकर वह अनेक शाखाओं में विभाजित होकर प्रवाहित होती है। नदी की विभिन्न शाखाओं के बीच स्थित त्रिभुजाकार निक्षेपात्मक आकृति को डेल्टा (Delta) की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इसका आकार ग्रीक अक्षर 'डेल्टा' की भांति होता है।

- **चापाकार डेल्टा (Arcuate Delta)-** इस डेल्टा का आकार धनुष के समान होता है। इसका विस्तार मध्य में सर्वाधिक होता है। चापाकार डेल्टा का निर्माण बड़े कणों वाले पदार्थों से होता है, जिसमें बजरी, रेत तथा सिल्ट की अधिकता होती है। इस प्रकार के डेल्टा का निर्माण मुख्य रूप से अर्द्धशुष्क जलवायु वाले प्रदेशों में अधिक होता है। नील नदी, गंगा का डेल्टा, राइन, नाइजर, ह्वांगहो, इरावदी, वोल्गा, सिन्धु, मीकांग, पो, रोन, लीना डेल्टा आदि चापाकार डेल्टा के उदाहरण हैं।
- **पंजाकार डेल्टा (Bird-foot Delta)-** इसका निर्माण जल के साथ घोल के रूप में बारीक कणों से होता है। इसके लिए नदी का वेग अधिक होता है, जिससे नदी अपने बारीक कणों के साथ समुद्र में अधिक दूरी तक प्रवेश कर जाती है। इस डेल्टा के पदार्थ बहुत ही बारीक कण और रंध्रहीन (Non-Porous) होते हैं। अतः जल रिसकर नीचे नहीं जा पाता है। इससे नदी की मुख्य धारा की शाखाएं अपने किनारों पर कणों का निक्षेप करती हैं, जो मनुष्यों की हाथ की अंगुलियों के समान निकले रहते हैं। इस प्रकार की आकृति वाले डेल्टा को अंगुल्याकार डेल्टा भी कहा जाता है। उदाहरण के लिए मिसीसिपी नदी का डेल्टा इसी प्रकार का है।
- **ज्वारनदमुखी डेल्टा (Estuarine Delta)-** जब कोई नदी लम्बी एवं संकरी एश्चुअरी के माध्यम से सागर में प्रवेश करती है एवं उसके मुहाने पर जमा किया गया अवसादी पदार्थ ज्वार के समय बहाकर दूर ले जाया जाता है, तब उसका डेल्टा ज्वारनदमुखी डेल्टा कहलाता है।
  उदाहरण के लिए नर्मदा, ताप्ती, मैकेंन्जी, ओडर, विश्चुला, एल्ब, सीन, ओब, हडसन, साइन, लोअर आदि नदियों द्वारा इसी प्रकार के डेल्टा का निर्माण किया गया है।
- **रुण्डित डेल्टा (Truncated Delta)-** जब किसी नदी की मुख्य धारा एवं उसकी वितरिकाओं द्वारा निक्षेपित अवसाद समुद्री लहरों एवं ज्वार-भाटा द्वारा बहा लिया जाता है, तब उसके मुहाने पर बनने वाली कटी-फटी आकृति के डेल्टा को रुण्डित डेल्टा की संज्ञा दी जाती है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं- वियतनाम की होंग तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की रिओ ग्रान्डे नदियों के डेल्टा।
- **पालियुक्त या क्षीणाकार डेल्टा (Lobate Delta)-** जब किसी नदी की मुख्य धारा की अपेक्षा उसके मुहाने पर किसी वितरिका द्वारा अलग डेल्टा का निर्माण किया जाता है, तब मुख्य डेल्टा को पालियुक्त डेल्टा कहते हैं। इसमें मुख्य डेल्टा का विकास अवरुद्ध हो जाता है।
- **प्रगतिशील डेल्टा (Growing Delta)-** जब किसी नदी द्वारा सागर की ओर निरन्तर अपने डेल्टा का विकास किया जाता रहता है, तब उसे प्रगतिशील डेल्टा की संज्ञा दी जाती है। गंगा तथा मिसीसिपी नदियों के डेल्टा इसी प्रकार के हैं। गंगा नदी का डेल्टा प्रतिवर्ष बंगाल की खाड़ी में बढ़ता जा रहा है।
- **अवरोधित डेल्टा (Blocked Delta)-** जब किसी नदी का डेल्टा सागरीय लहरों अथवा धाराओं द्वारा अवरुद्ध कर दिया जाता है_ तब उसे अवरोधित डेल्टा कहते हैं।
- **परित्यक्त डेल्टा (Abandoned Delta)-** जब किसी नदी द्वारा पहले से निर्मित डेल्टा को छोड़कर अन्यत्र डेल्टा का निर्माण कर लिया जाता है, तब पहले वाला डेल्टा परित्यक्त डेल्टा कहलाता है। इसके अनेक उदाहरण ह्वांगहो नदी (चीन) द्वारा प्रस्तुत किए गये हैं। ह्वांगहो नदी का पुराना डेल्टा सांरग प्रायद्वीप के दक्षिण में था, जो अब उत्तर में है।
- **नौकाकार डेल्टा (Boat Shaped Delta)-** जब किसी नदी द्वारा निक्षेपित अवसादी पदार्थ धाराओं तथा लहरों द्वारा समीपवर्ती क्षेत्रों में फैला दिया जाता है, तब उसके आगे वाले भाग में नौकाकार डेल्टा बन जाता है। टाइबर नदी का डेल्टा नौकाकार डेल्टा का उदाहरण है।

हिमानी (Glacier)

नदी जल के समान बर्फ भी गतिमान होती है। ताजा हिम कुछ समय तक जमीन में दबे रहने से ठोस, सघन और रवेदार बर्फ बन जाती है। नमी के पुनः जमते रहने और दबाव के कारण ही उसमें यह परिवर्तन होता है। दबाव के कारण बर्फ के कणों के बीच की हवा जब बाहर निकल जाती है तो वह ठोस और संगठित रूप धारण कर लेती है तथा दाब व गुरुत्वाकर्षण बल के कारण गतिमान हो जाती है। बहुत ही धीमी गति से बहने वाली इस बर्फ की नदी को हिमानी अथवा हिमनद कहते हैं। समस्त हिमानियों को 4 वर्गों में वर्गीकृत किया गया है- महाद्वीपीय हिमानियाँ, हिमछत्रक, पर्वतपादीय हिमानियाँ तथा हिमनदी।

- **महाद्वीपीय हिमानियाँ-** इस प्रकार की हिमानियां विशाल क्षेत्र में हिम की विस्तृत चादर के समान होती हैं तथा अपने जमाव के मध्य भाग से चारों ओर हर दिशा में प्रवाहित होती रहती हैं। हालांकि ये हिमानियां अपने वर्ग की पुरानी हिमानियों से काफी छोटी होती हैं। प्राचीन काल में महाद्वीपीय हिमानियां उत्तरी यूरोप, एशिया तथा उत्तरी अमेरिका के

उत्तरी अर्द्धभाग के क्षेत्रों में विस्तृत थीं। वर्तमान में इनका विस्तार अंटार्कटिका महाद्वीप और ग्रीनलैंड में है।

- **हिमछत्रक-** हिमछत्रक ऊँची पर्वत चोटियों पर मिलने वाली वैसी हिमानियां होती हैं जिनसे हिमनदियां निकलती हैं। इस प्रकार हिमनदियों के स्रोत हिमछत्रक होते हैं।
- **पर्वतपादीय हिमानी-** वे हिम चादर जो ऊपरी अक्षांशों में पर्वतपादीय क्षेत्रों में मिलते हैं, उन्हें पर्वतपादीय हिमानी कहते हैं। इस प्रकार की हिमानी मूल रूप से दक्षिण अलास्का में मिलती हैं।
- **हिमनदी-** इसे पर्वतीय हिमानी या घाटी हिमानी भी कहा जाता है। हिमनदी जो वास्तव में बर्फ की नदी होती है, मूलरूप से ऊँची पर्वतश्रेणियों पर मिलती है। महाद्वीपीय हिमानियों के विपरीत हिमनदी पर्वतीय ढालों पर घाटी में सीमित होकर नीचे की ओर बर्फ की नदी के रूप में बहती है। हिमनदी की गति अत्यंत धीमी होती है, हालांकि उसकी यह गति घाटी के ढाल और हिमपर्तों की मोटाई पर भी निर्भर करती है। अतः किनारे पर हिम की मोटाई कम होने और दीवार तथा तल से घर्षण अधिक होने के कारण हिमनदी की गति बीच में अधिक और किनारों की ओर कम होती है। साथ ही हिमनदी के अंदर असमान गति होती है। इसकी ऊपरी सतह आधार की अपेक्षा अधिक तेज गति से चलती है। इस असमान गति के कारण हिम के फटने से उस पर जो दरारें पड़ जाती हैं, उन्हें हिम-विदर कहते हैं।

हिमरेखा (Snow Line)

- पर्वतीय एवं ध्रुवीय क्षेत्रों की वह रेखा, जिसके ऊपर वर्ष भर हिम का आवरण बना रहता है तथा बर्फ पिघल नहीं पाती है, हिमरेखा के रूप में जानी जाती है। समुद्र तल से जलवायविक प्रभाव आदि के कारण विभिन्न स्थानों पर हिमरेखा की ऊँचाई भी अलग-अलग होती है। एक तथ्य यह भी स्मरणीय है कि भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर हिम रेखा की ऊँचाई क्रमशः घटती जाती है और ध्रुवीय क्षेत्रों में यह प्रायः समुद्र तल के बराबर ही पायी जाती है।

हिमानी के कार्य एवं स्थलाकृति
(Work of Glacier and Landforms)

हिमानी या हिमनद द्वारा धरातलीय उच्चावच में परिवर्तन का कार्य प्रायः दो रूपों में सम्पन्न किया जाता है-

- **अपघर्षण की क्रिया-** जब आगे बढ़ती हुई हिमानी के साथ छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर एवं शैलचूर्ण भी आगे सरकते हैं तो उसकी अपरदनात्मक सक्रियता में वृद्धि हो जाती है। इन पदार्थों द्वारा हिमानी के किनारों तथा तली पर अपरदन की क्रिया तेजी से होती है, जिससे उसकी घाटी का आकार चौड़ा एवं गहरा हो जाता है क्योंकि हिमानी के साथ आने वाले पदार्थ रेगमाल या सैण्डपेपर की भांति कार्य करते हैं। इस क्रिया को अपघर्षण की क्रिया कहते हैं।
- **उत्पादन की क्रिया-** उत्पादन की क्रिया का तात्पर्य उखाड़ने या हटाने की क्रिया से है। इसमें हिमनद चट्टानों के बड़े-बड़े टुकड़ों को उखाड़कर अपने साथ सरकाते हुए आगे बढ़ता है। वर्षा के जल एवं हिमानी के पिघलने से प्राप्त जल के चट्टानी दरारों में प्रवेश कर जाने से चट्टानें कमजोर हो जाती हैं तथा हिमनद के सरकते समय उसके बड़े-बड़े टुकड़े अलग हो जाते हैं। इस क्रिया के माध्यम से हिमानी द्वारा शीर्षस्थ अपरदन किया जाता है एवं सर्क या कोरी का निर्माण अधिक होता है।

हिमानीकृत अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ
(Erosional landforms by glacier)

- **'U' आकार की घाटी-** हिमानी द्वारा निर्मित की गयी घाटी को U (यू) आकार की घाटी कहते हैं, क्योंकि पर्वतीय भागों में हिमानियों द्वारा बनायी गयी घाटियाँ पार्श्ववर्ती एवं तली अपरदन के कारण सपाट तल वाली तथा चारों तरफ से खुली हुई होती हैं। अपरदन के कारण इनके दोनों किनारे काफी समानान्तर एवं उन्नतोदर ढाल वाले बन जाते हैं।
- **लटकती या निलंबित घाटी (Hanging Valley)-** लटकती या निलम्बित घाटियों की रचना उस समय होती है, जब हिमानी की मुख्य घाटी में मिलने वाली सहायक हिमानियों की घाटियों का तल उसकी अपेक्षा काफी ऊँचा दिखायी देता है और ये सहायक घाटियाँ मुख्य घाटी पर लटकती-सी प्रतीत होती हैं। हिम के पिघल जाने पर जब इन लटकती घाटियों से जल निचली घटियों में गिरता है तो प्रपात का निर्माण होता है। इसी कारण लटकती घाटियों को प्रपाती घाटियाँ भी कहा जाता है। लटकती घाटियों का निर्माण मुख्य घाटी एवं सहायक घाटियों की अपरदन क्रिया में विभिन्नता के कारण होता है।

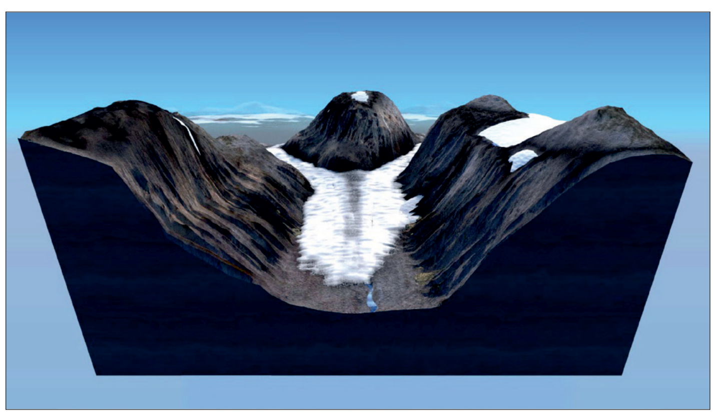

- **सर्क या हिमज गह्वर (Cirque)-** पर्वतीय क्षेत्रों में घाटी हिमनद द्वारा उत्पन्न स्थलरूपों में सर्क सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा यह

प्रायः प्रत्येक हिमानीकृत पर्वतीय भाग में मिलता है। सर्क घाटी के शीर्ष भाग पर एक अर्द्धवृत्ताकार या कटोरे के आकार का विशाल गहरा गर्त होता है। जिसका पार्श्व या किनारा खड़े ढाल वाला होता है। सर्क का आकार गहरी सीट वाली आरामकुर्सी से मिलता जुलता है। यह प्रायः हिम से भरे रहते हैं। इसका निर्माण तुषारचीरण द्वारा हिमनद की सतह पर बनता है। तापीय अंतर के कारण दिन रात के समय एक दूसरे के हिम व जल में परिवर्तन होने से चट्टान पर दबाव पड़ता है और इस प्रकार दबाव के कारण संलग्न चट्टानों के टूटने से विशाल गर्त का निर्माण होता है।

- **सर्क या हिमज गह्वर के निर्माण से संबंधित सिद्धांत-**
  - ✓ यफ. जे. गारवुड की परिकल्पना
  - ✓ जानसन का वर्गश्रुण्ड सिद्धांत
  - ✓ हाब्स की संकल्पना

- **सर्क झील या टार्न (Tarn)-** सर्क या हिमज गह्वर की घाटी में स्थित चट्टानों पर अत्यधिक हिम के दबाव तथा अधिक गहराई के कारण अपरदन की क्रिया सम्पन्न होने के कारण छोटे-छोटे अनेक गड्ढ़ों का निर्माण हो जाता है और हिम के पिघल जाने के पश्चात् सम्पूर्ण बेसिन में जल भर जाता है। सर्क बेसिन में जल भर जाने से बनी छोटी झील को ही सर्क झील या टार्न कहते हैं।
- **एरेट (Arete)-** पर्वतीय भागों में पहाड़ी के दोनों ओर के सर्क एक-दूसरे की तरफ सरकते हैं तो उनके मध्य का भाग अपरदित होकर नुकीला होने लगता है। धीरे-धीरे नुकीली चोटी का विकास होता है और यह कंघी या आरा (Saw) दांतों के समान दिखाई देती है। इस संरचना को एरेट या एरीटे (Arete) कहते हैं।
- **हॉर्न या गिरिश्रृंग (Horn)-** किसी पर्वतीय श्रेणी के चारों ओर निर्मित सर्कों द्वारा शीर्ष अपरदन के परिणामस्वरूप पहाड़ी का बचा हुआ भाग एक ऊँचे पिरामिड का रूप धारण कर लेता है, जिसका सिरा सींग की भांति ऊपर निकला रहता है। इस स्थलाकृति को ही गिरि श्रृंग या हॉर्न की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए स्विटजरलैंड में आल्पस पर्वत पर मैटर हॉर्न इसका प्रमुख उदाहरण है।
- **नुनाटक (Nunatak)-** विशाल हिमक्षेत्रों अथवा हिमानियों के बीच ऊपर उठे हुए ऊँचे टीलों को नुनाटक कहा जाता है। ये चारों ओर से हिम से घिरे रहते हैं। क्षैतिज अपरदन क्रिया के परिणामस्वरूप इनका आकार छोटा होते-होते कभी-कभी समाप्त भी हो जाता है। इनकों हिमान्तर द्वीप भी कहते हैं।
- **श्रृंग एवं पुच्छ (Crag & Tail)-** हिमानी के मार्ग में बेसाल्ट या अन्य किसी धातु की कठोर चट्टान के आ जाने से हिमानी उसका अपरदन नहीं कर पाती है, किन्तु चट्टान के अभिमुख ढाल की समीपवर्ती कोमल चट्टान को तीव्रता से काट डालती है लेकिन इस क्रम में दूसरी ओर की चट्टान कम अपरदित हो पाती है, क्योंकि हिमनद द्वारा यहां पर शैल को संरक्षण प्राप्त होता है। इस कारण दूसरी ओर का ढाल हल्का एवं मन्द होता है और यह दूर तक विस्तृत रहता है। दूर से देखने पर यह बेसाल्ट की ग्रीवा या श्रृंग के पीछे संलग्न एक लम्बी पूंछ के समान लगता है। हिमानी क्षेत्रों में मिलने वाली ऐसी स्थलाकृति को श्रृंग एवं पुच्छ का नाम दिया गया है।
- **भेड़-पीठ शैल या रॉशमुटोने (Roche Moutonnee)-** हिमानी के आगे बढ़ते समय उसकी तली में उपस्थित ऊबड़-खाबड़ चट्टानें तली अपरदन के कारण घिसकर चिकनी, चौरस एवं सपाट टीलों में परिवर्तित हो जाती हैं, जो दूर से देखने पर भेड़ की पीठ जैसी दिखती हैं। ऐसे टीलों को ही भेड़-पीठ शैल (Sheep Rock) या रॉशमुटोने के नाम से जाना जाता है।
- **फियोर्ड (Fiords)-** परिध्रुवीय अर्थात् उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में हिमानियों का आगे बढ़ते हुए समुद्रतटीय भागों तक पहुँचना एक आम बात है। इनके सागर तटीय क्षेत्रों में पहुँचने पर वहाँ अपरदन की क्रिया के कारण सागर तट अत्यधिक कट-फट जाता है एवं लंबी तथा संकरी घाटियों का निर्माण हो जाता है। इन घाटियों की गहराई कहीं-कहीं हजारों मीटर तक पायी जाती है। इन सीधी घाटियों के किनारे प्रायः खड़े ढाल वाले होते हैं। सागर के तटवर्ती भागों में डूबी हुई हिमानियों द्वारा निर्मित घाटियों वाली स्थलाकृति को ही **फियोर्ड** कहते हैं।
  उदाहरण- यद्यपि फियोर्ड की उपस्थिति दोनों गोलार्द्धों में पायी जाती है, किन्तु न्यूजीलैंड, ब्रिटिश कोलम्बिया, अलास्का, लेब्रोडोर, ग्रीनलैंड, नॉर्वे, चिली आदि क्षेत्रों में ये अधिकता से मिलते हैं।
- **हिमोढ़ या मोरेन (Moraine)-** हिमानी की निक्षेपजनित स्थलाकृतियों में हिमोढ़ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। इनका निर्माण हिमनदियों के साथ बहाकर लाये गये बारीक एवं बड़े कणों वाले पदार्थों के निक्षेपण से होता है, क्योंकि जब हिमानी इन पदार्थों को और आगे ले जाने में असमर्थ हो जाती है, तब इनका निक्षेपण कर देती है।
- इनका निक्षेपण प्रायः उन्ही स्थानों पर होता है, जहाँ हिमानियां पिघलकर जल में परिवर्तित होने लगती हैं। हिमोढ़ों का निक्षेपण प्रायः लम्बे-लम्बे कटकों अथवा असमान सतह वाली क्षैतिज परतों के रूप में होता है। हिमानियों के साथ बहाये जाने वाले पदार्थों को निक्षेपण स्थान के आधार पर निम्नलिखित प्रकार के हिमोढ़ों में विभाजित किया जाता है-
- **अन्तिम या अन्तस्थ हिमोढ़ (Terminal Moraines)-** इन हिमोढ़ों का जमाव हिमनदों के सर्वाधिक आगे वाले भाग में उनके पिघलने के पश्चात् निक्षेपों के जमाव से होता है। इनका आकार घोड़े की नाल अथवा अर्द्धचन्द्र के समान होता है।
- **पार्श्विक या पार्श्ववर्ती हिमोढ़ (Lateral Moraines)-** चूँकि हिमानियों द्वारा अधिकांश पदार्थों का परिवहन अपने पार्श्वों या किनारों के सहारे किया जाता है, अतएव उनके पिघलने पर इनका

जमाव भी पार्श्ववर्ती भागों में ही हो जाता है। इन पदार्थों का निक्षेपण लंबे एवं पतले कटकों के रूप में होता है तथा इनके ढाल खड़े होते हैं।

- **मध्यवर्ती या मध्यस्थ हिमोढ़ (Medial Morains)**- दो हिमानियों के परस्पर मिलने से उनके आंतरिक पार्श्व भी आपस में मिल जाते हैं। इस प्रकार इनके मिलने से निर्मित हिमोढ़ों को मध्यवर्ती या मध्यस्थ हिमोढ़ कहा जाता है।
- **तलीय या तलस्थ हिमोढ़ (Ground Morains)**- इन हिमोढ़ों का निर्माण हिमानियों की तली में होता है। इसमें बारीक रेत से लेकर बड़े-बड़े चट्टानी टुकड़े तक एक साथ जमा कर दिये जाते हैं।
- **ड्रमलिन (Drumlin)**- जब हिमानियों के तलस्थ हिमोढ़ का थोडे-थोड़े अन्तराल के बाद गुम्बदाकार टीलों के रूप में जमाव होता है, तब उससे बनी स्थलाकृति को ड्रमलिन कहा जाता है। इनका आकार **उलटी हुई नौका** के समान होता है। ड्रमलिन की संरचना मुख्य रूप से **मृत्तिका** से हुई रहती है। इनके मध्य में छोटे-छोटे गड्ढे तथा बेसिन पाये जाते हैं। आकार की दृष्टि से ड्रमलिन का हिमनद के मुख की ओर का भाग खड़े ढाल वाला तथा खुरदरा होता है परंतु दूसरा ढाल अर्थात जिस ढाल से होकर हिमनद उतरता है, वह मंद होता है। इसका निर्माण हिमनद मलवा के निक्षेप एवं उसमें आंशिक परिवर्तन के कारण होता है।
- इसका मलवा असंगठित पदार्थों से निर्मित होता है। यदि ड्रमलिन सैकड़ों की संख्या में होते हैं तो इस स्थलाकृति को अंडे की टोकरी (Basket of egg-TOPOGRAPHY) कहते हैं।

हिमानी-जलोढ़ निक्षेप

हिमानियों की सतह से पिघलने के बाद हिम सतह पर ही जलधाराओं के रूप में प्रवाहित होने लगता है अथवा हिम-कूपों (Mouhim) का निर्माण करके हिमानी की तली में पहुँच जाता है और वहाँ सुंरगों का निर्माण करके प्रवाहित होता है। हिमानियों के सबसे अन्तिम अग्रभाग में भी हिम के पिघलने से विशाल जलधाराएँ निर्मित हो जाती हैं। हिम के पिघलने की यह क्रिया तभी संभव होती है, जब हिमानियों का प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में पहुँचता है। इन जलधाराओं द्वारा हिमानी के माध्यम से बहाकर लाये गये पदार्थों का तीव्रता से परिवहन करके दूसरे स्थान पर उनका निक्षेपण कर दिया जाता है। इस प्रकार हिमानी तथा जलधाराओं दोनों के सम्मिलित प्रभाव से निर्मित होने वाली स्थलाकृतियां हिमानी-जलोढ़ (Glacio-Aluvial) स्थलाकृतियों के रूप में जानी जाती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

एस्कर एवं मालाकार एस्कर (Eskar and Beaded Eskar)

- हिमानी के पिघलने पर उसके जलोढ़ निक्षेपों विशेषकर बजरी, रेत, कंकड़-पत्थर आदि के निक्षेपण से निर्मित लम्बे, संकरे, लहरदार एवं किनारे पर तीव्र ढाल वाले टीलों को एस्कर कहते हैं।
- जब कभी कुछ दूरियों के अन्तर पर अनेक एस्करों का निर्माण इस प्रकार हो जाता है कि दूर से देखने पर वे किसी माले की मणियों की भांति दिखायी पड़ते हैं, तब उसे मालाकार एस्कर की संज्ञा दी जाती है।
- हिमानी जलोढ़ निक्षेपों द्वारा निर्मित स्थल रूपों में एस्कर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। एस्कर का विस्तार हिमनद तथा जलधारा दिशा के समानांतर होता है। इनकी ऊँचाई 66 से 100 मीटर होती है जबकि इनकी लंबाई कई किलोमीटर तक होती है। अनेक स्थानों पर एस्कर यातायात की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं, जैसे- स्वीडन तथा फिनलैंड।
- **केम (Kames)**- जब हिमानियों का अग्रभाग पिघलता है तो रेत एवं बजरी जैसे पदार्थों का टीलों के रूप में जमाव हो जाता है। किनारे से तीव्र ढाल वाले ऐसे टीलों को केम के नाम से जाना जाता है।
- **केटिल अथवा केतली (Kettles)**- केम अर्थात् निक्षेपजनित टीलों के विपरीत छोटे-छोटे गर्तों को केटिल या केतली कहा जाता है। इनका निर्माण हिम के बड़े-बड़े टुकडों के पिघल जाने पर होता है।
- **हमक (Hummock)**- केटिल के मध्य मिलने वाले छोटे-छोटे टीले हमक कहलाते हैं। इनका निर्माण प्रायः हिमोढ़ पदार्थों के निक्षेप से केम की भांति ही होता है, जबकि संरचना में ये पार्श्विक एवं तलस्थ हिमोढ़ों से मिलते-जुलते हैं।
- **अवक्षेप मैदान (Outwash Plain)**- हिमानी के पिघलने पर बने हिमजल के प्रवाहित होने से अन्तस्थ हिमोढ़ के रूप में जमा पदार्थ एक चादर की भांति काफी बड़े क्षेत्र पर विस्तृत हो जाते हैं। इन हिमोढ़ों का जमाव **क्रमिक रूप** में होता है अर्थात् ऊपरी भाग में बड़े पदार्थ तथा सबसे निचले भाग में सबसे बारीक पदार्थों का निक्षेपण होता है। हिम-जल द्वारा निर्मित पंखे के आकार वाले इन्हीं मैदानों को अवक्षेप मैदान कहते हैं। जब पिघला हुआ जल किसी निश्चित मार्ग या धारा से होकर बहता है, तो अवक्षेप मैदान का निर्माण नहीं होता है, वरन् उसकी घाटी में मलवा के भर जाने से घाटी हिमोढ़ (Valley Train) का निर्माण होता है।

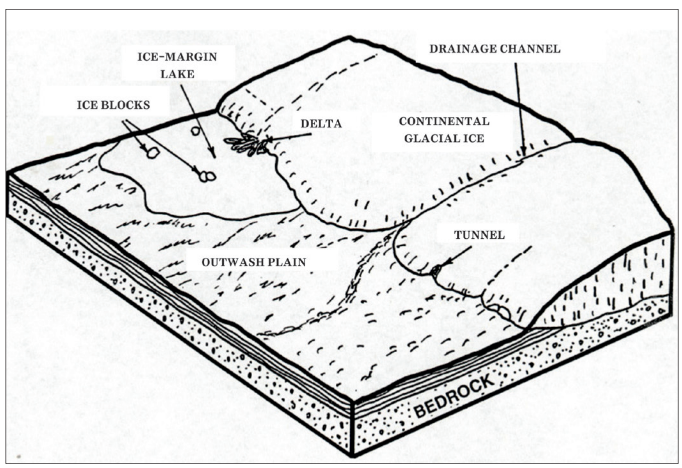

डेल्टा एवं हिमानी: एक नजर में

- ग्रीक भाषा के अक्षर-डेल्टा- से समरूपता होने के कारण नदी के त्रिभुजाकार स्थलाकृति को डेल्टा कहा जाता है।
- डेल्टा नाम सबसे पहले ग्रीक लोगों ने नील नदी को दिया था क्योंकि यह लगभग त्रिभुजाकार है।
- सिन्धु, ह्वांगहो, यांग-त्सी-क्यांग, पो, वोल्गा, डेन्यूब, नाइजर, मीकांग, इरावदी नदियां डेल्टा बनाकर समुद्र में गिरती है।
- विश्व में गंगा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा सबसे बड़ा डेल्टा है, इसका क्षेत्रफल 1,25000 वर्ग किमी. है।
- नील नदी तथा गंगा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा चापाकार डेल्टा है।
- मिसीसिपी एवं मिसौरी नदी का डेल्टा पंजाकार डेल्टा है।
- भारत में नर्मदा व ताप्ती नदी का डेल्टा ज्वारनदमुखी डेल्टा है।
- हिमानी की गति का पता 1834 ई. में लुई अगासिस ने लगाया था।
- हिमनदियों के स्रोत हिमछत्रक होते हैं।
- पर्वत पादिय हिमानी मूल रूप में अलास्का में मिलती है।
- हिमरेखा के ऊपर वर्ष भर हिम का आवरण बना रहता है।
- ड्रमलिन स्थलाकृति को अंडे की टोकरी भी कहते हैं। यह हिमानी द्वारा जलोढ़ों के निक्षेप से बनती है।
- स्वीडन तथा फिनलैंड में एस्कर यातायात की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं।
- हिम के अग्रभाग के पिघलने से केम का निर्माण होता है।
- केम टीलों के विपरीत छोटे-छोटे गर्तों को केटल कहा जाता है।
- केटल के मध्य मिलने वाले छोटे-छोटे टीले हमक कहलाते हैं।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

भूमिगत एवं सागरीय जल के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ (Work of Underground & Sea Water & Landforms)

भूमिगत जल (Underground Water)

धरातल के ऊपरी भाग पर मिलने वाले जल का जो अंश भूमि के नीचे चला जाता है, वह भूमिगत जल (Underground Water) अथवा अन्तः तल जल (Sub-Surface Water) के नाम से जाना जाता है। इसका अधिकांश भाग यद्यपि वर्षा के जल द्वारा ही प्राप्त होता है, किन्तु हिमावृत सतह, जल के भंडारों यथा नदी, झील, महासागर आदि से भी रिसकर जल की कुछ मात्र भूमिगत होती रहती है।

- **सहजात जल (Connate Water)**- महासागरों या सागरों की तली में स्थित परतदार चट्टानों में भरा हुआ जल जब ऊपरी दबाव के कारण चट्टानों से मुक्त होकर भूमिगत जल में मिल जाता है, तब उसे सहजात जल की संज्ञा दी जाती है।
- **मैग्माटिक जल (Magmatic Water)**- जल के अंश वाले खनिजों पर जब कभी आग्नेय क्रिया होती है, तब उनके पिघलने से निकलने वाले भूमिगत जल को मैग्माटिक जल अथवा तरुण जल (Juvenile Water) कहते हैं।

भूमिगत जल के कार्य एवं स्थलाकृतियां (Work of Underground Water & Landforms)

भूमिगत जल का सबसे प्रमुख कार्य अपरदन तथा निक्षेपण की क्रियाओं के रूप में सम्पन्न होता है। इस जल की गति कम होने से इसका कार्य नदी, हिमानी, सागरीय लहरों अथवा पवन के कार्यों जितना महत्त्वपूर्ण नहीं होता। इस प्रकार के जल का अपरदनात्मक कार्य घुलनक्रिया (Solution), जलगति क्रिया (Hydraulic Action), अपघर्षण (Corrasion or Abrasion) तथा रगड़ या संघर्षण (Attrition) के रूप में सम्पन्न होता है। भूमिगत जल की विभिन्न क्रियाओं का सर्वोत्तम प्रभाव कार्स्ट क्षेत्रों में पाया जाता है, जहाँ बड़ी मात्र में चूना प्रधान शैलें उपस्थित होती हैं। कार्स्ट शब्द यूगोस्लाविया के पश्चिमी तट पर पूर्वी एड्रियाटिक सागर के समीप स्थित कार्स्ट प्रदेश से ग्रहण किया गया है, जहाँ चूना प्रधान शैलों की अधिकता है तथा विशिष्ट प्रकार की स्थलाकृतियां पर्याप्त संख्या में दिखायी देती हैं।

अपरदनात्मक स्थलरूप (Erosional Landforms)

- **लैपीज (Lapies)**- जब कार्स्ट क्षेत्रों में जल की घुलन क्रिया के कारण ऊपरी सतह अत्यधिक ऊबड़-खाबड़ एवं पतली शिखरिकाओं तथा संकरे गड्ढों वाली हो जाती है, तो ऐसी स्थलाकृति को लैपीज कहते हैं। इनका निर्माण हो जाने के बाद चूना पत्थर की सतह इतनी अधिक असमान हो जाती है कि उस पर नंगे पैर चलना कठिन हो जाता है। विभिन्न कार्स्ट क्षेत्रों में लैपीज को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इंग्लैंड में इसे क्लिण्ट, जर्मनी में केरेन, सर्बिया में बोगाज तथा डालमेशियन क्षेत्र में लैपीज कहते हैं।
- **घोल रंध्र (Sink Holes)**- जल की घुलन क्रिया के कारण कीप के आकार के गर्तों का निर्माण हो जाता है, जिन्हें घोल रन्ध्र कहते हैं। इनका व्यास कुछ सेंटीमीटर से लेकर कई मीटर तक होता है। आकार की दृष्टि से ये कीपाकार के अतिरिक्त बेलनाकार भी होते हैं। कभी-कभी नदियां इन घोल रंध्रों में घुसकर लुप्त हो जाती हैं।
- **डोलाइन (Dolines)**- विस्तृत आकार वाले घोल रंध्र डोलाइन के नाम से जाने जाते हैं। युगोस्लाविया के कार्स्ट क्षेत्र में ऐसे विस्तृत छिद्रों को डोलाइन (Doline) तथा सर्बिया में डोलिनास (Dolinas) कहते हैं।
- **विलय रंध्र**- घोल रंध्र के निचले भाग से जुड़ी बेलनाकार नलिकाएँ विलय रंध्र कहलाती हैं। धरातलीय नदियां घोल रंध्रों में घुसकर इन विलय रंध्रों के रास्ते से ही लुप्त होती हैं।
- **युवाला (Uvala)**- निरंतर घोलीकरण की क्रिया के कारण जब कई डोलाइन मिलकर एक बड़ा आकार धारण कर लेते हैं तब उसे युवाला की संज्ञा दी जाती है। इनका निर्माण ऊपरी छत ध्वस्त हो जाने अथवा असंख्य घोल रंध्रों के आपस में मिल जाने पर भी हो जाता है। इनके विस्तार के कारण सतह पर प्रवाहित होने वाली नदियां इनमें विलीन हो जाती हैं। इनको संयुक्त या मिश्रित घोल रंध्र (Compound Sink Holes) भी कहते हैं।
- **जामा (Zama)**- छोटे-छोटे युवाला को **जामा** कहा जाता है। इनकी गहराई सैकड़ों मीटर तथा दीवारें प्रायः खड़ी होती हैं।
- **पोलिए या पोल्जे (Polje)**- युवाला से अधिक विस्तार वाले गर्त को पोलिए कहा जाता है। इनका क्षेत्रफल कई वर्ग किमी- तक पाया जाता है। पश्चिमी बाल्कन क्षेत्र (यूरोप) का सर्वाधिक विस्तृत पोलिए लिवनो पोलिए है।
- **कंदरा अथवा गुफा (Caverns)**- भूमिगत जल के विलय कार्य से बनी बहुत बड़ी गुफा कंदरा कहलाती है। भूमिगत जल की अपरदनात्मक स्थलाकृति है। इनका निर्माण घुलन क्रिया तथा अपघर्षण द्वारा होता है। यह ऊपरी सतह के नीचे खोखले भाग के

रूप में स्थित होती है और इनके अन्दर निरंतर जल का प्रवाह होता रहता है। भारत में देहरादून, बिहार में रोहतास पठार, मध्य प्रदेश में चित्रकूट आदि में ऐसी कंदराएं मिलती हैं।

- **कार्स्ट घाटी या गोल घाटी (Karst Valley)-** अधिक वर्षा के समय जब भूपृष्ठीय नदियां इस क्षेत्र में कुछ दूरी तक प्रवाहित होती हैं तथा अपनी 'U' आकार की घाटी का निर्माण कर लेती हैं तो इन घाटियों को गोल घाटी या कार्स्ट घाटी कहते हैं। जैसे ही इन क्षेत्रों की नदियों में पानी कम हो जाता है वैसे ही इन नदियों का पानी घोल रंध्र द्वारा नीचे चला जाता है। जैसे-जैसे भूमिगत जल का रासायनिक एवं यान्त्रिक अपरदन का कार्य आगे बढ़ता है, जमीन के नीचे गलियारों द्वारा आपस में संलग्न कंदराओं का एक जाल-सा विकसित हो जाता है। भूमिगत जल की विलयन क्रिया से ही प्रायः कंदराओं का निर्माण होता है।

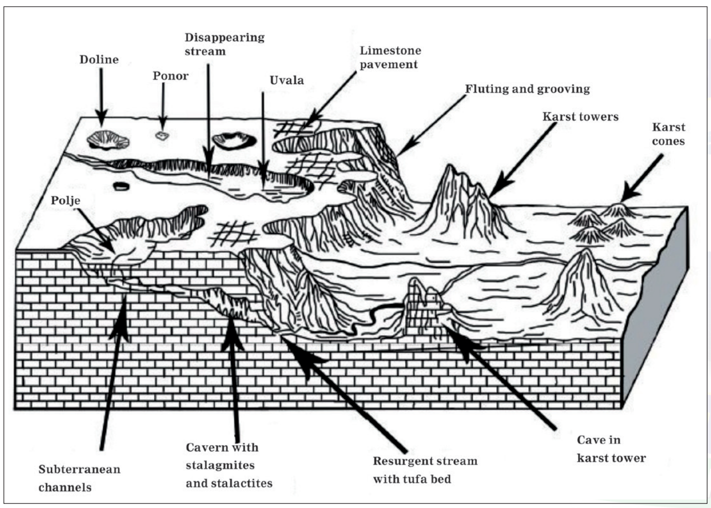

- **अंधी घाटी (Blind Vallay)-** कई बार विलय रन्ध्रों के नदी के प्रवाह मार्ग में आ जाने के कारण संपूर्ण नदियां इस में विलुप्त होकर पातालीय नदियों का रूप धारण कर लेती है। ऐसी स्थिति में शेष शुष्क घाटी अंधी घाटी बन जाती है।

निक्षेपात्मक स्थल रूप (Depositional Landforms)

भूमिगत जल की सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया अपरदनात्मक ही होती है, किन्तु इस क्रिया के साथ ही निक्षेपण की क्रिया स्वतः होती रहती है। निक्षेपात्मक क्रिया से निर्मित होने वाली सबसे प्रमुख स्थलाकृतियां हैं- स्टैलेक्टाइट, स्टैलेग्माइट तथा कन्दरा स्तम्भ, जिनका निर्माण कन्दराओं के अन्दर होता है।

- **स्टैलेक्टाइट (Stalactite)-** कंदराओं की छत से पानी की बूंदें लगातार टपकती रहती हैं। छत से रिसने वाले इस जल में चूने की भारी मात्र घोल के रूप में उपस्थित रहती है एवं टपकने वाली इन बूंदों का कुछ अंश छत से ही लटकता रहता है। वाष्पीकरण के बाद उसके साथ वाला चूना वहीं जमा हो जाता है। इस क्रिया के बार-बार होने से स्टैलेक्टाइट का निर्माण होता है। यह चूने से निर्मित, छत की लटकती हुई नुकीली एवं ठोस आकृति होती है।

- **स्टैलेग्माइट (Stalegmite)-** कंदराओं के अन्दर छत से टपकने वाली बूंदें जब उसके तल पर गिरकर बिखर जाती हैं, तब उनका पानी वाष्पीकृत हो जाता है और चूना वहीं जमा होता रहता है। यह तल से धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ता जाता है। स्टैलेक्टाइट की अपेक्षा यह मोटा और समतल शीर्षवाला होता है। इससे स्पष्ट है कि भूमिगत जल से निर्मित होने वाली निक्षेपात्मक स्थलाकृतियों का निर्माण छत से नीचे एवं तल से ऊपर की ओर होता रहता है।
- **कंदरा स्तंभ (Cave Pillars)-** कंदरा के अंतर्गत निरंतर निक्षेपण की क्रिया सम्पन्न होते रहने से स्टैलेक्टाइट एवं स्टैलेग्माइट धीरे-धीरे बढ़कर आपस में मिल जाते हैं एवं एक स्तम्भ का निर्माण हो जाता है। इसी स्तम्भ को कंदरा स्तम्भ या गुफा स्तम्भ कहते हैं। कभी-कभी स्टैलेक्टाइट के बढ़कर फर्श तक पहुँच जाने अथवा स्टेलेग्माइट के छत से जा मिलने पर स्तम्भों का निर्माण हो जाता है।

सागरीय जल के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ (Work of Sea water & Landforms)

धरातल पर स्थलाकृतियों के विकास से संबंधित अन्य कारकों की भांति महासागरीय तरंगों या सुनामी आदि द्वारा भी स्थलाकृतियों का निर्माण किया जाता है। इनके द्वारा अपरदन कार्य जलगति क्रिया, संघर्षण, घुलन क्रिया द्वारा किया जाता है। इसके द्वारा निर्मित मुख्य अपरदनात्मक स्थलाकृतियाँ निम्नलिखित हैं-

- **तटीय भृगु (Coastal Cliff)-** जब कोई सागरीय तट एकदम सीधा खड़ा होता है, तब उसे तटीय भृगु कहा जाता है। प्रारंभ में सागरीय

तरंगें समुद्री जलस्तर पर तटीय चट्टान में एक खांच का निर्माण करती हैं, जो धीरे-धीरे चौड़ी एवं गहरी होती जाती हैं। इसका आकार तब तक बढ़ता जाता है और तरंगें आधार भूमि को तब तक खोखला करती रहती हैं, जब तक कि चट्टान का ऊपरी भाग नीचे गिरकर धराशायी नहीं हो जाता है। इसके गिर जाने पर ही खड़े ढाल वाले भृगु का निर्माण होता है। इस पर लगातार तरंगों का आक्रमण होते रहने से यह पीछे खिसकता जाता है।

- **तटीय कंदरा (Coastal Cave)**- अवरोधी अथवा कठोर चट्टानों की अपेक्षा कोमल चट्टानों का अपरदन तरंगों द्वारा तेजी से किया जाता है। चट्टानों के बीच में जहाँ संधियां, भ्रंश एवं कमजोर चट्टानों के संस्तर विद्यमान होते हैं, वहीं तरंगों का विशिष्ट अपरदन कन्दराओं का निर्माण करता है। तटीय क्षेत्र में अधिकांश कंदराओं का निर्माण वहीं संभव हो पाता है, जहाँ ऊपर की चट्टान इतनी दृढ़ एवं मजबूत होती है कि आधार के खोखले हो जाने पर भी वह बिना किसी सहारे के टिकी रह सकती है।
- **प्राकृतिक मेहराब**- जब समुद्र की ओर आगे बढ़े हुए चट्टानी भाग पर दो विपरीत दिशाओं से तरंगों का आक्रमण होता है, तो उसके दोनों ओर कन्दराओं का निर्माण प्रारंभ हो जाता है। जब कन्दराएं आपस में मिल जाती हैं तो प्राकृतिक मेहराब बन जाता है। इसके नीचे की खुली जगह से आर-पार देखा जा सकता है।
- **स्टैक (Stack)**- कन्दराओं के मिलने से बने प्राकृतिक मेहराबों की प्रकृति अस्थायी होती है। जब मेहराब ध्वस्त हो जाता है, तो चट्टान का अगला भाग समुद्री जल के बीच में एक स्तम्भ के रूप में बचा रह जाता है, जिसे स्टैक कहते हैं।
- **लघु निवेशिका अथवा अण्डाकार कटाव (Cave)**- जब सागरीय जल कठोर चट्टान की संधियों में घुसकर इसके पीछे बिछी कोमल चट्टानों का अपरदन करके अण्डाकार खोखली आकृति का निर्माण करता है तो इस अण्डाकार कटान वाली आकृति को लघु निवेशिका अथवा अण्डाकार कटाव कहते हैं।

सागरीय जल की निक्षेपजनित प्रमुख स्थलाकृतियाँ निम्नलिखित हैं-

- **पुलिन (Beach)**- सागरतटीय भागों में भाटा-जलस्तर और समुद्र तटीय रेखा के मध्य बालू, बजरी, गोलाश्म आदि पदार्थों के अस्थायी जमाव से बनी स्थलाकृति को पुलिन कहा जाता है। कमजोर तरंगों की क्रिया की अवधि में तो इनका आकार विस्तृत होता है, किन्तु जब कभी तूफानी तरंगें तट से टकराती हैं तो ये निक्षेपित अवसाद सागरों में बहा लिए जाते हैं।
- **लूप (Loop)**- जब तट से संलग्न स्पिट का अग्रभाग मुड़कर तट से मिल जाता है तो एक बन्द गोल आकृति विकसित होती है जिसे लूप या छल्ला कहते हैं।
- **लूप रोधिका (Looped Bar)**- जब स्पिट का विकास किसी द्वीप के चारों-ओर हो जाता है तो उसे लूप रोधिका कहते हैं।
- **रोधिका (Bars)**- समुद्री तरंगों एवं धाराओं द्वारा समुद्र के तल पर बालू एवं बजरी आदि पदार्थों के निक्षेपण से बनाये गये कटकों अथवा बांधों (Embankments) को रोधिका के नाम से जाना जाता है। सामान्यतः रोधिका दो छोटे-छोटे अन्तरीपों को जोड़ती है तथा ये तट के लगभग समानान्तर होती है।
- **रोध (Barriers)**- रोध का निर्माण भी सागरतटीय भागों में रोधिका की भांति होता है, किन्तु इनकी ऊंचाई रोधिका से अधिक होती है। रोधिका हमेशा जल के अन्दर डूबी रहती है अथवा उच्च ज्वार आने के समय जल में अवश्य डूब जाती है जबकि रोध सदैव जल के ऊपर ही रहता है।

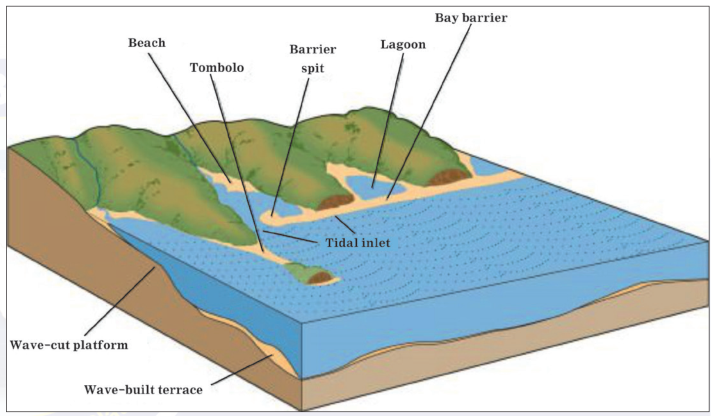

- **स्पिट (Spit)**- स्पिट अवसादों के निक्षेपण से बनी वह स्थलाकृति होती है, जिसका आकार कटक अथवा बांध की भांति होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि इसका एक सिरा तट से जुड़ा हो, जबकि दूसरा सागर की ओर हो।
- **हुक (Hook)**- जब कोई स्पिट सागरीय जल में अन्दर की ओर जाने के बाद तरंगों के द्वारा
- सिरे पर पदार्थों के जमाव से एक हुक का आकार धारण कर लेती है, जिसका मुंह तट की ओर होता है, तब ऐसी स्थलाकृति हुक कही जाती है। इसका आकार प्रायः अंकुश की भांति होता है। कभी-कभी जब एक स्पिट में अनेक हुकों का निर्माण हो जाता है, तब उसे मिश्रित हुक (Compound Hook) की संज्ञा दी जाती है।
- **संयोजक रोधिका (Connecting Bars)**- दो सुदूरवर्ती तटों अथवा किसी द्वीप को तटों से जोड़ने वाली रोधिका को **संयोजक रोधिका** कहते हैं। यह इसके काफी बड़े आकार को दर्शाता है। जब इसके दोनों छोर स्थल भाग से मिल जाते हैं, तो उनके द्वारा घिरे हुए क्षेत्र में समुद्री खारे जल वाली लैगून झीलों का निर्माण हो जाता है। जब यह दो शीर्ष स्थलों को मिलाती है तो संयोजन रोधिका कहलाती है जबकि तट से किसी द्वीप अथवा

शीर्षस्थल से किसी द्वीप को मिलाने वाली रोधिका को विशिष्ट नाम- 'टोम्बोलो' (Tombolo) से जाना जाता है। टोम्बोलो जैसी संयोजक रोधिका तट एवं द्वीप के बीच एक प्राकृतिक पुल की भूमिका निभाती है।

- **लैगून (Lagoon)**- तट तथा रोधिका के बीच बन्द सागरीय खारे जल को लैगून अथवा लैगून झील कहते हैं। उदाहरण भारत के पूर्वी तट पर ओडिसा की चिल्का तथा मद्रास तट पर पुलीकट खारे जल की लैगून झीलें हैं।
- **तट रेखा (Coast Line)**- समुद्र तट और समुद्री किनारे के मध्य की सीमा रेखा को तट रेखा कहते हैं। तट रेखाओं के निम्न मुख्य प्रकार हैंः-फियोर्ड तट, रिया तट, डॉल्मेशियन तट, हैफा तट या निम्नभूमि का तट, निर्गत समुद्र तट।

अध्याय: एक नजर में

- धरातल की निचली तथा आंतरिक सतह में पाये जाने वाले जल को भूमिगत जल कहते हैं।
- लैपीज, घोल रंध्र, डोलाइन, युवाला, जामा, पोल्जे, गुफा तथा कार्स्ट घाटी, भूमिगत जल द्वारा
- अपरदन से निर्मित प्रमुख स्थालाकृतियाँ हैं।
- भूमिगत जल निक्षेप द्वारा स्टैलेन्टाइट, स्टैलेग्माइट, स्तंभ आदि आकृतियाँ निर्मित करता है।
- सागरीय जल तरंगें भी अपरदन व निक्षेपण के फलस्वरूप विभिन्न स्थलाकृतियों का निर्माण करती है।
- ये अपरदन के फलस्वरूप भृगु, कंदरा, मेहराब, स्टैक व निवेशिका आदि स्थल रूपों का निर्माण करती है।
- पुलिन, लूप, लूपरोधिका, रोधिका, स्पिट, हुक व लैगून प्रमुख निक्षेपणात्मक स्थलाकृतियाँ हैं।

स्व कार्य हेतु

पवन के कार्य एवं स्थलाकृतियाँ
(Work of wind and Landforms)

परिचय (Introduction)

भू-धरातल पर स्थलाकृतियों के निर्माण के लिए उत्तरदायी अन्य कारकों के समान पवन द्वारा किया जाने वाला कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक नहीं होता है, क्योंकि पवन अपने आदर्श रूप में केवल मरुभूमियों अथवा मरुस्थलीय क्षेत्रों में ही क्रियाशील रहती है। इसका कारण स्पष्ट है कि मरुभूमियों में एक तो वर्षा नाममात्र की होती है तथा दूसरे, आर्द्रता की कमी तथा वनस्पतियों के अभाव के कारण मिट्टी के कण ढीले रहते हैं। इससे पवन को यान्त्रिक अपक्षय की क्रिया में काफी सहायता मिलती है। ढीले अपक्षयित पदार्थों की काफी मात्र मरुस्थलीय क्षेत्रों में प्राप्त होती है, जिसे पवन एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाकर अपने साथ ले जाती है। इससे एक स्थान पर जहाँ अपरदन होता है, वहीं दूसरे स्थान पर निक्षेपण की क्रिया सम्पन्न होती है। इन क्षेत्रों में ऊँचे प्राकृतिक अवरोधों का पूर्णतः अभाव होने के कारण पवन द्वारा दूर-दूर तक अपना कार्य स्वछन्द रूप में निर्बाध गति से किया जाता है।

पवन के अपरदनात्मक क्रिया द्वारा निर्मित स्थलाकृतियां

शुष्क एवं अर्द्धशुष्क मरुस्थलीय भागों में पवन ही अपरदन का सबसे शक्तिशाली साधन होता है। इन क्षेत्रों में तीव्रगति से प्रवाहित होने वाले पवन द्वारा बालू अथवा धूल के कणों की सहायता से अपरदन की क्रिया सम्पन्न होती है। इसका अपरदनात्मक कार्य मुख्यतः भौतिक ही होता है, जो अपघर्षण, संघर्षण तथा अपवाहन के रूप में किया जाता है। पवन के अपरदनात्मक कार्यों पर वायु का वेग, धूल कणों का आकार तथा ऊँचाई, चट्टानों की संरचना, जलवायु आदि कारकों का प्रभाव मुख्य रूप से पड़ता है। पवन के अपरदनात्मक कार्यों के परिणामस्वरूप निम्नलिखित भू-आकृतियों का निर्माण होता है-

- **वातगर्त (Blow out)**- पवन के अपवाहन कार्य द्वारा अर्द्धशुष्क मरुस्थलीय क्षेत्रों से धरातल पर बिछी कोमल एवं असंगठित चट्टानों को उड़ा दिये जाने के कारण छोटे-छोटे गर्तों का निर्माण हो जाता है, जो क्रमशः बढ़कर बड़ा आकार धारण कर लेते हैं। इन्हीं गर्तों को वातगर्त कहा जाता है। मरुभूमियों में भौम जलस्तर की अनुपस्थिति अथवा उसके अत्यधिक नीचे रहने के कारण इन गर्तों की गहराई काफी अधिक हो जाती है। वातगर्तों का सर्वाधिक निर्माण सहारा, कालाहारी, मंगोलिया तथा सं. रा. अमेरिका के पश्चिमी शुष्क भागों में हुआ है। वातगर्तों को अपवाहन बेसिन (Deflation Basin) के नाम से भी जाना जाता है।
- **ज्यूगेन (Zeugen)**- यह दावातनुमा आकृति है जिसका निर्माण वहाँ होता है जहाँ मुलायम और कड़ी चट्टानों की परतें क्षैतिज अवस्था में होती हैं। चट्टान की दरारों में ओस भरने और रात में तापमान कम होने से मुलायम चट्टानों का अपरदन होने लगता है। कठोर चट्टानी भाग टोपी की भांति नजर आता है, इन्हें ही ज्यूगेन कहते हैं।
- **छत्रक शिला या गारा (Mushroom Rock or Gara)**- मरुस्थलीय भागों में ऊपर निकली हुई चट्टानों का सबसे अधिक अपरदन धरातल से कुछ ऊपर ही होता है, क्योंकि यहाँ हवा में बालू के कणों की मात्र सर्वाधिक होती है और उस पर धरातलीय घर्षण क्रिया का प्रभाव भी नहीं पड़ता है। अधिकतम अपरदन वाली इस ऊँचाई की तुलना में ऊपर की ओर बालू के कणों की कमी के कारण तथा नीचे धरातलीय घर्षण के कारण अपरदन की क्रिया क्रमशः घट जाती है। इस प्रकार ऐसी चट्टानों का आकार छत्रक (Umbrella) की भांति हो जाता है, जिसे छत्रक शिला कहते हैं। ऊपर की ओर कड़े अवरोधी चट्टानों के शीर्ष वाले ये छत्रक शिला एक संकीर्ण आधार पर काफी लम्बे समय तक खड़े रहते हैं। छत्रक शिला (Umbrella Stone) को सहारा के रेगिस्तान में गारा कहा जाता है तथा जर्मनी में पिट्जफेल्सन के नाम से जाना जाता है।
उदाहरण- उत्तरी मध्य कंसास में स्थित स्मोकी हिल क्षेत्र।
- **यारडंग (Yardang)**- इसकी संरचना ज्यूगेन के विपरीत होती है। जब कठोर तथा कोमल चट्टानों की पट्टियां प्रचलित पवन की दिशा के अनुरूप फैली होती हैं, तो कोमल चट्टानों का शीघ्र अपरदन हो जाता है जबकि कठोर चट्टानें सामान्य धरातल के ऊपर की ओर उठी रहती हैं। हवा के अपघर्षण से कठोर चट्टानों के कटकों का पवनाभिमुख भाग चिकना एवं गोलाकार हो जाता है तथा सिरा नुकीला होता है। इस भू-आकृति को यारडंग कहा जाता है। इसकी ऊँचाई 20 फीट तथा चौड़ाई 30 से 120 फीट तक होती है।
उदाहरण- मध्य एशिया का कुर्रूक दरिया क्षेत्र।
- **इन्सेलबर्ग (Inselbergs)**- नग्न चट्टानों वाले मरुस्थलीय धरातल पर हवा की अपघर्षण एवं अपवाहन की क्रिया के कारण गर्त आदि पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं एवं धरातल समतल तथा चौरस बन जाता है। फिर भी कुछ कठोर चट्टानी भाग धरातल के ऊपर उठे रहते हैं, जो हवा की अपरदनात्मक क्रियाओं द्वारा गुम्बद का आकार धारण कर लेते हैं। कठोर चट्टानों वाले ये पहाड़ी टीले इन्सेलबर्ग के नाम से जाने जाते हैं। ये दूर से सागरीय द्वीपों की भांति दिखाई पड़ते हैं।
उदाहरण- उलूरू, ऑस्ट्रेलिया

- **भूस्तम्भ अथवा होडो (Demoiselles or Hodos)**- शुष्क प्रदेशों में जहाँ असंगठित तथा कोमल शैल के ऊपर कठोर तथा प्रतिरोधी शैल का आवरण होता है, वहाँ पर इस आवरण के कारण नीचे की कोमल शैल का अपरदन नहीं हो पाता परन्तु समीप की कोमल चट्टान का अपरदन होता है जिससे अगल-बगल की शैल कटकर हट जाती है और कठोर शैल के आवरण वाला भाग एक स्तंभ के रूप में सतह पर दिखाई पड़ता है, इसे भूस्तंभ कहा जाता है।
- **जालीदार शिला (Stone Lattice)**- जब तीव्रगति से चलने वाली धूल आदि से भरी हवा के मार्ग में विविधतापूर्ण संरचना वाली चट्टान उपस्थित होती है, तब उसके कोमल भागों को काटकर हवा आर-पार प्रवाहित होने लगती है जिससे वह चट्टान जाली की भांति बन जाती है। इस प्रकार की आकृति को जालीदार शिला कहा जाता है। ऐसी चट्टानें रॉकी पर्वतीय क्षेत्र में बालुका प्रस्तर वाली चट्टानों में पायी जाती हैं।
- **ड्राइकांटर (Dreikanter)**- धरातल पर बिछे कठोर चट्टानी टुकड़ों पर बालू युक्त हवा की चोट पड़ने से उनका आकार घिसकर चिकना एवं तिकोना हो जाता है। ये तिकोने टुकड़े ही ड्राइकांटर कहलाते हैं तथा 8 अपघर्षित फलक वाले बोल्डर को वेंटीफैक्ट कहते हैं।

पवन के निक्षेपणात्मक क्रिया द्वारा निर्मित स्थलाकृतियाँ

जब पवन की गति कम हो जाती है तो उसके द्वारा उड़ा कर लाये गये अवसादों का निक्षेपण प्रारम्भ हो जाता है। पवन की निक्षेपण क्रिया से निर्मित होने वाली प्रमुख स्थलाकृतियां निम्नलिखित हैं-

- **बालुका स्तूप (Sand Dunes)**- पवन द्वारा निर्मित निक्षेपणात्मक स्थलाकृतियों में बालुका स्तूप सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। ऐसे टीले अथवा कटक जो हवा द्वारा उड़ाकर लायी गयी बालू आदि पदार्थों के जमाव से बनते हैं, बालुका स्तूप कहलाते हैं। इनमें शिखर भाग का मिलना आवश्यक होता है। ये गोल अथवा अण्डाकार से लेकर छोटे कटकों अथवा लम्बे, सीधे एवं वक्राकार रूप में पाये जाते हैं।

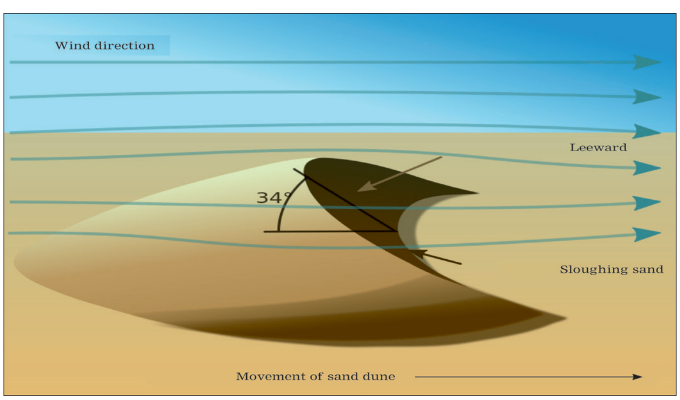

- एक आदर्श स्तूप में पवनाभिमुख भाग लम्बा एवं ढाल मन्द होता है जबकि विपरीत दिशा का ढाल अधिक तीव्र होता है। बालुका स्तूपों की आकृति अनुप्रस्थ अर्थात् वायु की दिशा के लम्बवत् अथवा उसके समानांतर (अनुदैर्ध्य) हो सकती है। कुछ मरुस्थलीय भागों में इनकी ऊँचाई 300 मीटर तक पायी जाती है, जबकि इनकी सामान्य ऊँचाई एक-दो मीटर से लेकर 150 मीटर तक होती है। यदि बालुका स्तूप (Sand Dunes) वनस्पतियों से अवरुद्ध नहीं होता है, तो पवन की दिशा में धीरे-धीरे आगे की ओर सरकता रहता है। स्तूपों के खिसकने की यह क्रिया पवन द्वारा इसके मन्द ढाँल से बालू को ऊपर उठाकर तीव्र ढाल की ओर लगातार गिरते रहने से सम्पन्न होती है। इसके खिसकाव की गति 5 से 30 मीटर प्रति वर्ष तक पायी जाती है। नामीब रेगिस्तान नामीबिया में 1256 फीट तक के बालुका स्तूप मिलते हैं। बालू के स्तूपों के दोनों तरफ ढालों में अन्तर पाया जाता है। मंद ढाल 5^0 से 15^0 तक होता है जबकि तीव्र ढाल 20^0 से 30^0 तक हो सकता है। भारत के थार रेगिस्तान में विभिन्न प्रकार के स्तूपों का निर्माण हुआ है, जैसे- अनुप्रस्थ बालुका स्तूपः बाड़मेर, जैसलमेर-गंगानगर क्षेत्र तथा सुजानगढ़, रतनगढ़-डूंगरगढ़ क्षेत्र में, बरखान स्तूप-जैसलमेर के पोखरन चट्टानी मरुस्थल में मिलता है।

- **लोएस (Loess)**- मरुस्थलीय क्षेत्रों के बाहर पवन द्वारा उड़ाकर लाये गये महीन कणों के बृहत् जमाव को लोएस कहा जाता है। ये कण इतने महीन होते हैं कि पवन इन्हें बहुत दूर तक उड़ा ले जाती है। लोएस के जमाव में अन्य अवसादी चट्टानों की भांति संस्तरों का पूर्णतः अभाव पाया जाता है। ऐसे जमावों का लोएस नाम जर्मनी के अल्सेस प्रांत में स्थित लोएस ग्राम के नाम के आधार पर पड़ा है, जहाँ ऐसी सूक्ष्म मिट्टियों का निक्षेप प्रचुर मात्र में मिलता है।

- लोएस मिट्टियां अधिक सरन्ध्र एवं उपजाऊ होती हैं। उत्तरी चीन में कई सौ मीटर की मोटाई वाला लोएस का जमाव पाया जाता है, जिसका निर्माण मध्य एशिया के गोबी मरुस्थल से पवन द्वारा उड़ाकर लायी गयी मिट्टियों से हुआ है। इस लोएस में कार्टज, फेल्सफार, अभ्रक तथा केल्साइट आदि खनिजों का मिश्रण पाया जाता है। चीन की लोएस रेगिस्तानी है जबकि यूरोप की लोएस (जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस) हिमनदीय है।

- **बरखान (Barkhans)**- यह एक विशेष आकृति वाला बालू का टीला होता है, जिसका अग्रभाग अर्द्धचन्द्राकार होता है और उसके दोनों छोरों पर आगे की ओर नुकीली सींग जैसी आकृति निकली रहती है। इसके आगे वाला पवनाविमुख ढाल तीव्र होता है जबकि पवनाभिमुख ढाल उत्तल एवं मन्द होता है। बरखान तुर्की भाषा का

शब्द है जिसका तात्पर्य किरगीज क्षेत्र में बालू की पहाड़ी से है। इनकी ऊँचाई 30 मी. तक पायी जाती है तथा ये भी सामान्य बालुका स्तूपों की भांति आगे खिसकते रहते हैं। बरखान सबसे अधिक संख्या में तुर्किस्तान में पाए जाते हैं। तुर्किस्तान में अलग-अलग मौसम में पवनें अलग-अलग (उत्तर-दक्षिण) दिशा में प्रवाहित होती है, जिस कारण बरखान की दिशा में भी परिवर्तन होता है। जब बरखान एक शृंखला के रूप में हो जाते हैं तो इनको पार करना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में बरखान की श्रेणियों के मध्य स्थित 'रेतमुक्त काडिरा' या गासी द्वारा मार्ग बनाया जाता है। इसी गासी से होकर मरुस्थल में ऊँट के काफिले चलते हैं। इस कारण गासी को कारवां मार्ग कहते हैं।

- **पेडीमेंट (Pediment)**- मरुस्थलीय प्रदेशों में मिलने वाले किसी पर्वत, पठार अथवा विशाल आकार वाले इन्सेलबर्ग के पाद प्रदेश (Foothill Region) में मिलने वाले सामान्य ढाँलयुक्त अपरदित शैल सतह वाले मैदान को पेडीमेंट कहा जाता है। इनका निर्माण अपक्षय तथा नदी की अपरदन क्रिया द्वारा विभिन्न संरचना वाली चट्टानों (Rocks) के कट जाने से होता है। पर्वतीय अग्रभाग से दूर जाने पर पेडीमेण्ट का ढाल क्रमशः घटता जाता है।

- **बजाडा या बहादा (Bajada or Bahada)**- पर्वतीय अग्रभाग में नदियों द्वारा मलवा के निक्षेपण से निर्मित मंद ढाल वाले मैदानों को बजाडा अथवा बहादा कहते हैं। यह प्लाया से मिला हुआ रहता है। इनका निर्माण पेडीमेंट के नीचे तथा प्लाया के किनारों पर जलोढ़ पंखों के मिलने से होता है। बजाडा के निचले भाग में मलवे की मोटाई कम तथा ऊपरी भाग में अधिक होती है।

- **प्लाया (Playas)**- रेगिस्तानी भागों में पर्वतों से घिरी बेसिन को बालसन (Balson) कहते हैं। चारों तरफ की छोटी-छोटी नदियां निकलकर बालसन में जाती हैं। मरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रवाहित होने वाली अन्तः अपवाह प्रणाली वाली नदियों के जल के एक स्थान पर जमा हो जाने से झीलों का निर्माण हो जाता है। ये झीलें सामयिक होती हैं और इनके सूख जाने पर नदियों द्वारा किये गये मलवा अथवा नमक के निक्षेपण से इनकी तली धीरे-धीरे भरकर एक समतल तथा ऊँचे मैदान में बदल जाती है। ऐसी झीलों को ही प्लाया की संज्ञा दी जाती है।

- अधिक नमक वाली प्लाया को सैलिनास कहते हैं। प्लाया को अरब के रेगिस्तान में खवारी तथा ममलाहा एवं सहारा में शॉट्ट कहते हैं। प्लाया झीलों का क्षेत्रफल कुछ वर्ग मीटर से लेकर सैकड़ों वर्ग किलोमीटर तक हो सकता है। इन झीलों के स्थानीय नाम इस प्रकार हैं- सहारा मरुस्थलीय क्षेत्र में सेबचास, ईरान मे कीवामर, मैक्सिको में सालार तथा उत्तरी अफ्रीका में शॉट्स या चॉट्स।

मरुस्थल एवं उनके विभिन्न प्रकार

सामान्यता मरुस्थलों (Deserts) को ऐसे शुष्क एवं वनस्पतिविहीन भूपटलीय दृश्यों के रूप में जाना जाता है, जहाँ की नग्न भूमि पर वायु द्वारा अपरदन, परिवहन एवं निक्षेपण की क्रिया सम्पन्न की जाती है। मरुस्थलों का वर्गीकरण मुख्यतः वायु के कार्यों से उत्पन्न स्थलाकृतिक विशेषताओं के आधार पर किया जाता है।

पवन के कार्यों के फलस्वरूप विकसित होने वाले मरुस्थल निम्नलिखित प्रकार के होते हैं-

- **वास्तविक मरुस्थल (True Deserts)**- बालू से परिपूर्ण धरातल वाले मरुस्थल ही वास्तविक मरुस्थल कहे जाते हैं। ऐसे मरुस्थलों को सहारा मरुभूमि वाले क्षेत्र में एर्ग (Erg) तथा तुर्किस्तान में कोम (Koum) की संज्ञा दी जाती है।

- **पथरीले मरुस्थल (Stony Deserts)**- ऐसे मरुस्थल जिनकी सतह से पवन की क्रियाओं द्वारा बालू के उड़ा दिये जाने के पश्चात् आधार भूमि पर कंकड पत्थर आदि जब अनुप्रस्थ अवस्था में बिखरे हुए पाये जाते हैं, तब उसे पथरीले मरुस्थल के नाम से जाना जाता है। स्थानीय रूप से ऐसे मरुस्थलों को अल्जीरिया में रेग (Reg) तथा लीबिया एवं मिस्र में सेरिर (Serir) कहते हैं।

- **चट्टानी मरुस्थल (Rocky Deserts)**- जब पवनों की अपरदनात्मक क्रियाओं के परिणामस्वरूप मरुस्थलीय भागों में एकदम नग्न चट्टानी धरातल ऊपर दिखायी पड़ने लगता है, तब उसे चट्टानी मरुस्थल कहते हैं। सहारा क्षेत्र में ये मरुस्थल हम्मादा (Hammada) के नाम से जाने जाते हैं।

- **पर्वत एवं बालसन मरुस्थल (Mountain and Balson Deserts)**- विशिष्ट रूप में जब कोई मरुस्थलीय भाग चारों ओर से पर्वतों से घिरा रहता है, तब उसे पर्वत एवं बालसन मरुस्थल कहते हैं।

मरुस्थलों की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- मरुस्थलों का प्रमुख लक्षण अल्प, असामयिक एवं अनिश्चित वर्षा का होना है। कभी-कभी कई वर्षों तक जल की एक बूंद भी नहीं बरसती, किन्तु कभी अधिक वर्षा होती है।
- यहाँ तापान्तर अधिक रहता है, अतः भौतिक अपक्षय की क्रिया अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है।
- मरुस्थलों में वाष्पीकरण की क्रिया बहुत तीव्र होती है।
- मरुस्थलों में नदियां छोटी होने पर इनमें बाढ़ तक आ जाती है।
- प्रायः मरुस्थल अल्प वनस्पति वाले क्षेत्र होते हैं। यहाँ कटीली झाड़ियां, छोटे-छोटे पेड़-पौधे तथा खजूर के वृक्ष मिलते हैं।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

वायुमंडलः संघटन और संरचना
(Atmosphere: Composition & Structure)

परिचय (Introduction)

पृथ्वी के चारों ओर सैकड़ों किलोमीटर की मोटाई में आवृत्त गैसीय आवरण ही 'वायुमंडल' कहलाता है। इसकी उत्पत्ति लगभग 1 अरब वर्ष पूर्व मानी जाती है, जबकि यह अपनी वर्तमान अवस्था में आज से लगभग 58 करोड़ वर्ष पूर्व आया।

- यह वायुमंडल अनेक प्रकार की गैसों का मिश्रण है और पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण ही इससे बंधा हुआ है। यदि गुरुत्वाकर्षण शक्ति न होती तो इस जीवनदायी वायुमंडल की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी और वर्तमान में तो यह पृथ्वी का एक अभिन्न अंग ही बन गया है।
- वायुमंडल गर्मी को रोककर रखने में एक विशाल **'काँच घर'** का काम करता है जो लघु तरंगी सौर विकिरण को पृथ्वी के धरातल पर आने देता है परंतु पृथ्वी से विकिरित होने वाली दीर्घ तरंगों को बाहर जाने से रोकता है। इस प्रकार वायुमंडल पृथ्वी पर **15^0 सें.ग्रे. का औसत तापमान** बनाये रखता है। भूमंडल के चतुर्दिक गैसों के इस विशाल आवरण को इसके वायव्य स्वरूप के कारण ही वायुमंडल कहा जाता है। इसमें रासायनिक रूप से सम्मिश्रित अनेक प्रकार की गैसें पायी जाती हैं, जिनमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन-डाइऑक्साइड, आर्गन, हाइड्रोजन, हीलियम, नियॉन, क्रिप्टॉन, जिनॉन तथा ओजोन मुख्य हैं। इतना अवश्य है कि धरातल के समीपवर्ती भाग में नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन ही प्रमुखता से मिलती है और सम्पूर्ण वायुमंडलीय आयतन का लगभग 99% भाग इन्हीं से निर्मित है। निम्नलिखित सारणी में वायुमंडल में मिलने वाली गैसों एवं उसके आयतन का प्रतिशत भाग दर्शाया गया है-

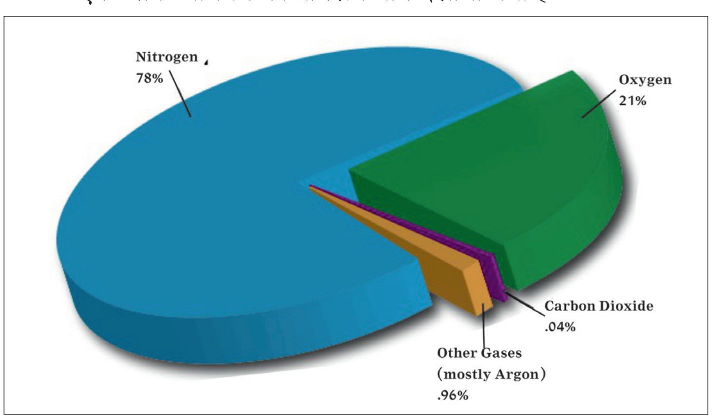

घटक	सूत्र	द्रव्यमान प्रतिशत
नाइट्रोजन	N_2	78.8
ऑक्सीजन	O_2	20.95
आर्गन	Ar	0.93
कार्बन डाईऑक्साइड	CO_2	0.036
नीऑन	Ne	0.002
हिलीयम	He	0.0005
क्रेप्टो	Kr	0.001
जेनन	Xe	0.00009
हाईड्रोजन	H_2	0.00005

- वायुमंडल में नाइट्रोजन 100 किमी. तथा हाइड्रोजन 125 किमी. तक पायी जाती हैं जबकि नियॉन, क्रिप्टॉन, हीलियम जैसी हल्की एवं निष्क्रिय गैसें अधिक ऊँचाई पर पायी जाती हैं।

वायुमंडल में स्थित महत्त्वपूर्ण गैसें

- **नाइट्रोजन-** वायुमंडल में नाइट्रोजन की उपस्थिति के कारण ही वायुदाब, पवनों की शक्ति तथा प्रकाश के परावर्तन का आभास होता है। नाइट्रोजन गैस का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह ऑक्सीजन को तनु या पतला (Dilute) करके प्रज्वलन को नियंत्रित करती है। **यदि वायुमंडल में नाइट्रोजन गैस न हो तो आग पर नियंत्रण करना कठिन हो जायेगा। नाइट्रोजन प्रोटीन का प्रमुख घटक होता है** जो भोजन का मुख्य अवयव है।

- **ऑक्सीजन (Oxygen)-** ऑक्सीजन गैस के बिना जीवन सम्भव नहीं है, श्वसन प्रक्रिया में जीव जंतु ऑक्सीजन का इस्तेमाल करते हैं। जल के मुख्य घटक भी ऑक्सीजन है। ऑक्सीजन के अभाव में प्रज्वलन प्रक्रिया संभव नहीं है। अतः यह ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। यह गैस वायुमंडल में 64 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली हुई है पर 16 किलोमीटर से ऊपर जाकर इसकी मात्र बहुत कम हो जाती है।

- **कार्बन डाइऑक्साइड (Carbon Dioxide)-** यह **सबसे भारी गैस** है। इसी कारण यह वायुमंडल के सबसे निचली परत से 72 किमी. तक की ऊँचाई में पायी जाती है। वायुमंडल में इसकी मात्र 0.03% पायी जाती है। यह गैस सूर्य से आने वाली विकिरण के लिए पारगम्य जबकि पृथ्वी द्वारा परावर्तित विकिरण के लिए अपारगम्य है। अतः यह हरित गृह (Green House) प्रभाव के लिए उत्तरदायी गैसों में से एक है। हरे पौधे द्वारा इस गैस का प्रयोग प्रकाश संश्लेषण हेतु किया जाता है।

- **हाइड्रोजन (Hydrogen)**- वायुमंडल की यह **सबसे हल्की गैस** है। असंयुक्त हाइड्रोजन अल्प मात्र में वायुमंडल में पायी जाती है। ऊपरी वायुमंडल में इसकी मात्र अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

- **ओजोन (Ozone)**- ओजोन गैस ऑक्सीजन का ही रूप है। वायुमंडल में यह गैस 15-35 किमी. की ऊँचाई तक अधिक सकेंद्रित होती है। यह गैस सूर्य से आने वाली तेज पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet Radiation) को धरातल पर आने से रोकती है जिसके कारण पृथ्वी पर जीवन सम्भव है।

- **जलवाष्प (Water Vapour)**- अंग्रेजी भाषा का शब्द 'Atmosphere' ग्रीक भाषा के atmos शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है 'वाष्प'। इस प्रकार वायुमंडल को यदि 'वाष्प प्रदेश' (Region of Vapour) कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक अनुमान है कि धरातल से प्रति सेकंड 1.6 करोड़ टन जलवाष्प वायुमंडल को प्राप्त होता है। यदि वायुमंडल की संपूर्ण आर्द्रता घनीभूत होकर वर्षा के रूप में धरातल पर गिर जाए तो भूतल पर 2.5 सेमी वर्षा के बराबर होगी।

- धरातल के निकट की वायु में सदा और सर्वत्र जलवाष्प न्यूनाधिक मात्र में पायी जाती है। आर्द्रता तथा तापक्रम के अनुसार जलवाष्प की मात्र में परिवर्तन होता रहता है। धुव्रीय क्षेत्रों के शुष्क वायुमंडल में जलवाष्प की मात्र बहुत कम (0.02%) होती है तथा इसके विपरीत, भूमध्यरेखीय प्रदेशों के उष्णार्द्र, वायुमंडल में (आयतन की दृष्टि से) 4% तक होती है। जलवाष्प अधिकांशतः वायुमंडल की निचली पर्तों तक सीमित रहती है। ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ इसकी मात्र कम होती जाती है। वायुमंडल के संपूर्ण जलवाष्प का 90% भाग 8 किलोमीटर ऊँचाई तक सीमित है। 8 किलोमीटर की ऊँचाई पर वायुमंडल में जलवाष्प की मात्र बिल्कुल कम जो जाती है। वायुमंडल की संपूर्ण आर्द्रता का केवल 1 प्रतिशत 10 किलोमीटर के ऊपर पाया जाता है।

- जलवाष्प का महत्त्व मौसम व जलवायु की दृष्टि से वायुमंडल के अन्य तत्वों की अपेक्षा अधिक है। यह सौर विकिरण तथा पार्थिव विकिरण (Terrestrial Radition) को अंशतः सोख लेती है। जलवाष्प सौर विकिरण के लिए अधिक पारदर्शक होने के कारण धरातल के तापक्रम को सम रखने में सहायक होती है। घनीभूत आर्द्रता (Condensed Mositure) के विविध रूपों जैसे बादल, वर्षा, कुहरा, ओस, तुसार, पाला और हिम आदि का मूल स्रोत जलवाष्प ही है। वायुमंडलीय जलवाष्प से ही विभिन्न प्रकार के तूफानों तथा तड़ित झंझाओं (Thunder Stroms) को शक्ति प्राप्त होती है।

- किसी निश्चित तापक्रम पर किसी निश्चित वायु राशि में जब जलवाष्प की मात्र इतनी अधिक हो जाती है कि वायु और अधिक जलवाष्प ग्रहण नहीं कर सकती तो उसे संतृप्त वायु (Saturated Air) कहते हैं। वायु में जलवाष्प ग्रहण करने की क्षमता उसके तापक्रम पर निर्भर होती है। तापमान में वृद्धि के साथ उसकी जलवाष्प ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

- **धूलकण (Dust)**- वायुमंडल में गैस अथवा जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस पदार्थ कण के रूप में उपस्थित रहते हैं, उन सभी को धूल कणों की संज्ञा दी जाती है। वायुमंडल के विभिन्न भागों में विभिन्न मात्र में धूल के कण पाये जाते हैं। सौर विकिरण का कुछ भाग इन कणो के द्वारा सोख लिया जाता है। इनके द्वारा सूर्य विकिरण का परावर्तन (Reflection) तथा प्रकीर्णन (Scattering) भी होता है। इन्हीं के द्वारा उषा काल एवं गोधूलि की तीव्रता तथा उनकी अवधि निर्धारित होती है। वायुमंडलीय गैसों तथा धूलकणों के द्वारा जो 'वर्णनात्मक प्रकीर्णन (Selective Scattering) होता है, उसी से आकाश नीले रंग का दिखाई पड़ता है तथा उसी कारण सूर्योदय व सूर्यास्त के समय आकाश का रंग लाल हो जाता है। वायुमंडल में घनीभवन क्रिया के लिए जलग्राही नाभिक (Hygrosopic Nuclei) का होना आवश्यक है। औद्योगिक नगरों तथा शुष्क प्रदेशों की वायु में अपेक्षाकृत धूलकणों की संख्या अधिक होती है।

वायुमंडल का स्तरीकरण या संरचना (Stratification or Structure of Atmoshphere)

वायुमंडल में वायु एवं गैसों की अनेक सकेंद्रित परतें विद्यमान हैं, जो घनत्व, तापमान एवं स्वभाव की दृष्टि से एक-दूसरे से पूर्णतः भिन्न हैं। वायुमंडल में वायु का घनत्व धरातल पर सर्वाधिक रहता है तथा ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ ही यह घटता जाता है।

रासायनिक संघटन के आधार पर वायुमंडल दो विस्तृत परतों में वर्गीकृत किया जाता है-

- **सममंडल (Homosphere)**- इस मंडल का विस्तार पृथ्वी की सतह से 90 किमी. की ऊँचाई तक है। यहाँ रासायनिक संघटन में एकरूपता मिलती है। इसकी विशुद्ध शुष्क हवा में नाइट्रोजन (78.08%), ऑक्सीजन (20.93%), आर्गन (0.93%) एवं कार्बन डाइऑक्साइड (0.03%) एक निश्चित आयतन में विद्यमान रहती है। इस मंडल की तीन गैसीय परतें हैं- क्षोभमंडल, समतापमंडल तथा मध्यमंडल। प्रत्येक उप परत अपने साथ वाली परत से एक पतले संक्रमण क्षेत्र द्वारा अलग होती है, जिसे **'सीमा'** कहा जाता है। इस

सीमा को निचले परत के नाम के साथ जोड़कर उसका नामकरण किया जाता है, जैसे- क्षोभ सीमा, समताप सीमा आदि। सममंडल में ही ओजोन परत पायी जाती है। यह परत सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है।

- **विषममंडल (Heterosphere)-** इस मंडल की ऊँचाई समुद्रतल से 90 किमी. के ऊपर 10,000 किमी- तक मानी जाती है। इसमें मिलने वाली विभिन्न गैसीय परतों तथा गैसों के अनुपात में पर्याप्त विभिन्नता पायी जाती है, इसलिए इसे विषममंडल के नाम से जाना जाता है। इस मंडल को थर्मोस्फीयर (Thermosphere) भी कहा जाता है क्योंकि इसमें तापमान ऊँचाई के साथ-साथ वायुमंडल के अंतिम सीमा तक बढ़ता जाता है। इस भाग का अनुमानित उच्चतम तापमान 10,000^{0}F है। वायुमंडल के ऊपरी भाग में जहाँ गैसें अत्यधिक विरलित (Rarefied) हो जाती है इतना ऊँचा तापमान सौर विकिरण के फोटोरासायनिक प्रभाव के कारण उत्पन्न होता है। विषममंडल के निम्न भाग में 100 से 400 किमी. के मध्य की ऊँचाई पर वायुमंडलीय गैसों का आयनीकरण हो जाता है। अतः इस परत को **आयनमंडल** भी कहते हैं।

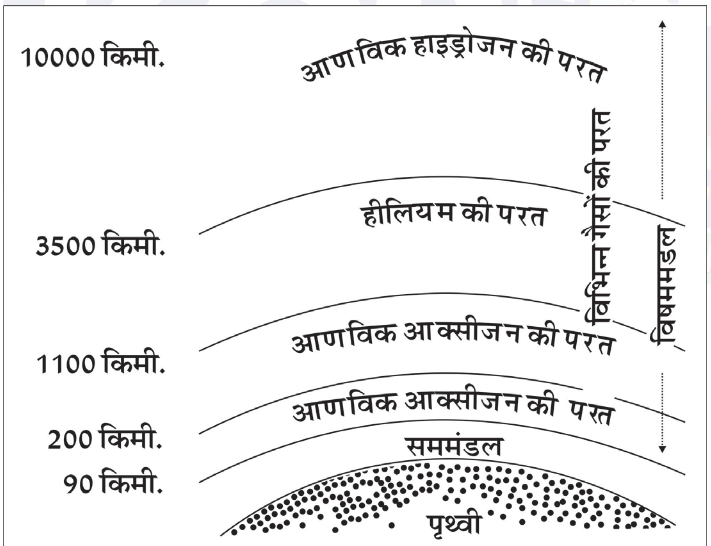

वायुमंडल की गैसीय संरचना

- **तापमान के उर्ध्वाधर वितरण के आधार पर वायुमंडल को पाँच प्रमुख परतों में विभाजित किया जाता है-**
  - ✓ क्षोभमंडल (Troposphere)।
  - ✓ समतापमंडल (Stratosphere)।
  - ✓ मध्यमंडल (Mesosphere)।
  - ✓ आयनमंडल (Ionosphere)।
  - ✓ बाह्यमंडल (Exosphere)।

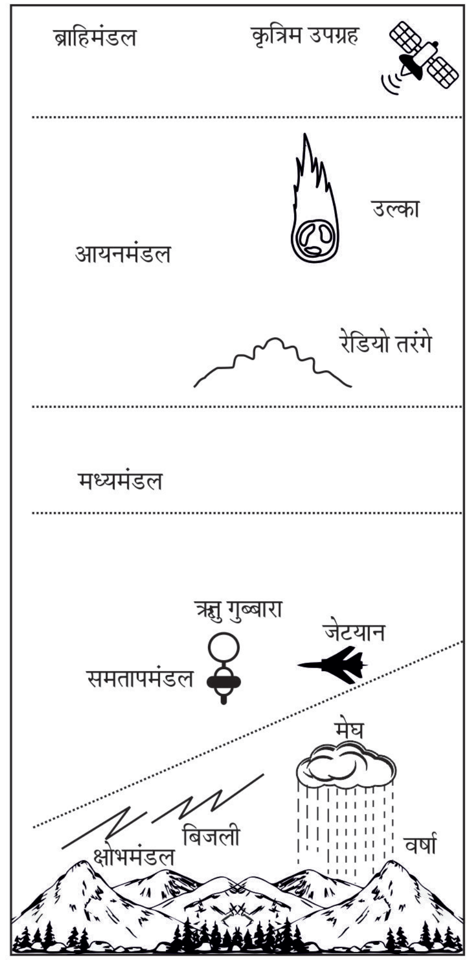

वायुमंडल की संरचना व विभिन्न परतें

क्षोभमंडल (Troposphere)

धरातल से सटा हुआ वायुमंडल का सबसे निचला एवं सघन भाग क्षोभ मंडल, **परिवर्तनमंडल या संवहनमंडल** के नाम से जाना जाता है। ट्रोपोज (Tropos) ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'मिश्रण अथवा विक्षोभ'।

- इस प्रकार 'ट्रोपोस्फीयर' का अर्थ हुआ 'मिश्रण प्रदेश' (Region of Mixing) धरातल से इस परत की औसत ऊँचाई लगभग 14 किमी. मानी जाती है। यह परत भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर पतली होते गयी है। भूमध्य रेखा पर इसकी ऊँचाई 18 किलोमीटर तथा ध्रुवों पर 8-10 किलोमीटर तक होती है।
- भूमध्य रेखा के ऊपर क्षोभमंडल की मोटाई सर्वाधिक होती है क्योंकि तेज हवाएँ धरातल की उष्मा को अधिक ऊँचाई तक ले जाती हैं। क्षोभमंडल की ऊपरी सीमा गर्मियों में ऊँची तथा जाड़ों में नीची हो जाती है। इस प्रकार इस मंडल में **ऋतुवत परिवर्तन** होता है।

- इस मंडल की सबसे प्रमुख विशेषता है कि इसमें धरातल से ऊपर जाने पर प्रति 1,000 मीटर की ऊँचाई पर तापमान में 6.5^0 सेल्सियस की गिरावट आती जाती है। इसे प्रति 165 मी. पर 1^0 सेल्सियस की गिरावट भी कहा जाता है। वायुमंडलीय तापमान में गिरावट की यह दर **सामान्य ह्रास दर** या **सामान्य ताप पतन की दर** (Normal Lapse Rate) कहलाती है।
- इस मंडल में जलवाष्प एवं धूल कणों की अत्यधिक मात्र विद्यमान रहने के कारण वायुमंडल के गर्म एवं शीतल होने हेतु विकिरण, संचालन तथा संवहन की क्रियाएँ संपन्न होती हैं और संवहनीय धाराओं तथा विक्षोभों का भी आविर्भाव होता है। इस कारण इस मंडल को **संवहनीयमंडल** (Convectional Zone) अथवा **विक्षोभमंडल** (Turbulent Zone) भी कहा जाता है। प्रायः **सभी वायुमंडलीय क्रियाएँ,** जिनसे जलवायु तथा मौसमी दशाओं में परिवर्तन होते हैं, भी इसी मंडल में घटित होती हैं। अतः इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मंडल माना जाता है। इस परत में पवन की तीव्र झोंकें या आंधी की उत्पति के कारण वायुयान चालक इस परत में अपनी वायुयान को उड़ान पसंद नहीं करते हैं।

क्षोभसीमा (Tropopause)

- क्षोभ या परिवर्तनमंडल तथा समतापमंडल के बीच स्थित एक संकरी तथा असमान मोटाई वाली मोटी परत को क्षोभसीमा या ट्रोपोपॉज के नाम से जाना जाता है। इस भाग में तापमान की सामान्य ह्रास दर रुक जाती है। क्षोभ सीमा पर हवा का तापमान भूमध्य रेखा के ऊपर -85^0C और ध्रुवों के ऊपर -60^0C होता है तथा सभी प्रकार के मौसमी परिवर्तन भी समाप्त हो जाते हैं। यह संक्रमण क्षेत्र क्षोभमंडल एवं समतापमंडल के बीच विभाजक का काम करता है।

समतापमंडल (Stratosphere)

क्षोभसीमा के ऊपर लगभग **50 किमी. की ऊँचाई** तक समतापमंडल का विस्तार पाया जाता है। स्ट्रेटोस्फीयर का अर्थ होता है 'स्तरण मंडल' (Region of Stratification)। यह मंडल अनेक स्थायी परतों में विभक्त होता है।

- इसकी मोटाई **भूमध्य रेखा पर कम** तथा **ध्रुवों पर अधिक** होती है। इस स्तर में ऊँचाई में वृद्धि के साथ तापमान का नीचे गिरना समाप्त हो जाता है। इसकी निचली सीमा अर्थात् 20 किमी. की ऊँचाई पर तापमान अपरिवर्तित रहता है, इसलिए इसे समतापमंडल कहते हैं, किन्तु ऊपर की ओर जाने पर ताप में थोड़ी वृद्धि होती जाती है। ऊपर की ओर तापमान की इस वृद्धि का कारण सूर्य की पराबैंगनी किरणों का अवशोषण करने वाली ओजोन गैस की उपस्थिति है।
- इस मंडल में बादलों का अभाव पाया जाता है तथा धूलकण एवं जलवाष्प भी नाममात्र में ही मिलते हैं। इस मंडल में वायु में क्षैतिज गति पायी जाती है। यह मंडल मौसमी हलचलों से रहित है। यहाँ वायु क्षैतिज दिशा में चलती है। यह मंडल जेट वायुयानों की उड़ानों हेतु अनुकूल माना जाता है। इस मंडल में 20 से 35 किमी. के बीच ओजोन परत की सघनता काफी अधिक है, इसलिए इस क्षेत्र को **ओजोनमंडल** भी कहा जाता है। इस परत में 60 Km की ऊँचाई तक तापमान में प्रति किलोमीटर 5^0C की वृद्धि होती है।
- ओजोन गैस वायुमंडल का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है। ज्ञातव्य है कि ओजोन गैस में ऑक्सीजन के 3 अणु (03) पाये जाते हैं। यद्यपि इस गैस की गणना अत्यधिक अस्थिर गैसों में की जाती है, तथापि वायुमंडल में इसका महत्त्व अत्यधिक होता है। यह पृथ्वी के लिए रक्षा आवरण का काम करता है, क्योंकि इसके द्वारा सूर्य से आने वाली तीव्र पराबैंगनी किरणों या अल्ट्रावायलेट किरणों का अवशोषण कर लिया जाता है एवं पृथ्वी इसके हानिकारक प्रभाव से बच जाती है। इस गैस की अनुपस्थिति में पराबैंगनी किरणें धरातल तक पहुँच जाती, जिससे पृथ्वी का तापमान अत्यधिक बढ़ जाता, जो मानव के लिए खतरनाक होता।

अल्ट्रावायलेट अथवा पराबैंगनी किरणें

- सूर्य की रोशनी का कुछ भाग अदृश्य होता है जिन्हें अल्ट्रावायलेट किरणें कहते हैं।
- इन किरणों के कारण त्वचा और आंखों को नुकसान पहुँचता है।
- सूर्य की किरणों के अलावा ये वेल्डिंग मशीन की चमक में भी मौजूद होती हैं।

- वर्तमान समय में कुछ विकसित देशों के द्वारा क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (CFC) के अत्यधिक प्रयोग के कारण ओजोन परत में छिद्र बन रहे हैं, जिसके कारण पराबैंगनी किरणें धरातल पर पहुंच कर मानव जीवन को प्रभावित कर रही हैं। इसके अतिरिक्त तीव्र गति से चलने वाले वायुयानों (सुपरसोनिक ट्रांसपोर्ट जेटयान) जो 18 से 22 किमी. की ऊँचाई पर अति तीव्र रफ्तार से उड़ते हैं, से निकले नाइट्रोजन ऑक्साइड द्वारा भी ओजोन का ह्रास होता है।

समतापसीमा (Stratopause)

- समतापमंडल की ऊपरी सीमा (50 किमी. की ऊँचाई) पर स्ट्रैटोपॉज या समतापसीमा पायी जाती है। जहाँ पर समतापमंडल में ऊँचाई के साथ तापमान के बढ़ने की स्थिति नगण्य हो जाती है। मौसमी परिवर्तन एकदम नहीं होते या बहुत ही कम होते हैं तथा क्षैतिज पवन संचरण पाया जाता है।

मध्यमंडल (Mesosphere)

- समतापमंडल के ऊपर सामान्यतः 50 से 80 किमी. की ऊँचाई वाला वायुमंडलीय भाग मध्य मंडल के नाम से जाना जाता है। इस मंडल की प्रमुख विशेषता है कि इसमें **ऊँचाई के साथ तापमान का ह्रास** होता है। यहाँ तापमान 80 किमी. की ऊँचाई पर -100^0 सेंटीग्रेड तक हो जाता है।

मध्यसीमा (Mesopause)

- मध्यमंडल के ऊपर 80 किमी. की ऊँचाई पर मध्य सीमा या मेसोपॉज की स्थिति मिलती है, जो कि तापमंडल एवं मध्य मंडल के बीच एक संक्रमण पेटी के रूप में है। इस सीमा के ऊपर पुनः ऊँचाई के साथ तापमान में वृद्धि परिलक्षित होती है, जबकि इस सीमा पर तापमान -100^0 सेंटीग्रेड तक पहुँच जाता है।

आयनमंडल (Ionosphere)

- तापमंडल का सबसे निचला भाग आयनमंडल के रूप में जाना जाता है। यह संस्तर 80 किमी. से 640 किमी. की ऊँचाई के मध्य स्थित है। इस भाग में वायु की कई परतें या तहें पायी जाती हैं। आश्चर्यजनक विद्युतीय एवं चुम्बकीय घटनाओं का घटित होना इस मंडल की मुख्य विशेषता है। इस भाग में प्रचुर मात्र में स्वतंत्र आयनों की उपस्थिति से ब्रह्मांडीय किरणें (Cosmic Rays) परिलक्षित होती हैं एवं उत्तरी ध्रुवीय प्रकाश एवं दक्षिणी ध्रुवीय प्रकाश दिखायी पड़ते हैं, जिन्हें क्रमशः **सुमेर ज्योति एवं कूमेरु ज्योति** के नाम से जाना जाता है। उल्काओं की चमक भी इस मंडल की एक प्रमुख घटना है।
- पृथ्वी से प्रेषित रेडियो तरंगें इसी मंडल से परावर्तित होकर पुनः पृथ्वी पर वापस लौट आती हैं। **इस मंडल में तापमान फिर से ऊँचाई के साथ बढ़ने लगता है।** यह मंडल प्लाज्मा अवस्था में है, मुक्त इलेक्ट्रॉन तथा धन आयन की अवस्था को प्लाज्मा कहते हैं। यह पदार्थ की चौथी अवस्था है। आयनमंडल को निम्नलिखित तीन उपमंडलों में विभाजित किया जाता है, जो इसके विशिष्ट गुणों के भी सूचक हैः-
- **'डी' परत ('D' Layer)**- यह आयनमंडल की सबसे निचली परत है, जिसकी ऊँचाई 60 से 90 किमी. तक पायी जाती है। इस परत से रेडियो की लम्बी तरंगों (Long Waves) का परावर्तन होता है।
- **'ई' परत ('E' Layer)**- 'डी' परत के ऊपर 90 से 130 किमी. की ऊँचाई तक 'ई' परत पायी जाती है, जिसके दो भाग 'E-1' तथा 'E-2' हैं। इस परत में रेडियो की मध्यम एवं लघु तरंगें (Medium Waves) परावर्तित होती हैं। इस परत की उत्पत्ति का कारण वायुमंडल में उपस्थित ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन के परमाणुओं पर सूर्य की पराबैंगनी फोटॉन्स की प्रतिक्रिया है। रात्रि में डी परत की भाँति यह परत भी विलुप्त हो जाती है।
- **'एफ' परत ('F' Layer)**- 'E' परत के ऊपर 144 से 360 किमी. की ऊँचाई तक 'F' परत मिलती है, जिसे 'F-1' तथा 'F-2' दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। 'F-1' परत की ऊँचाई 248 किमी. तक है। 'F-2' परत को अप्लेटन स्तर (Appleton Layer) के नाम से भी जाना जाता है। इस परत से रेडियो की लघु तरंगें (Short Waves) परावर्तित होती हैं।
- **'जी' परत ('G' Layer)**- इसकी ऊँचाई धरातल से लगभग 400 किलोमीटर है। इस स्तर से परावर्तित होने वाली सभी रेडियो तरंगे F-2 परत से भी परावर्तित होती है। इस परत की उत्पत्ति नाइट्रोजन के परमाणुओं पर पराबैंगनी फोटॉन्स की प्रतिक्रिया के कारण होती है।
- स्मरणीय तथ्य यह है कि यदि आयनमंडल में ये तीनों परतें न होतीं तो पृथ्वी पर रेडियो प्रसारण सुनना कदापि संभव नहीं हो पाता क्योंकि इनके अभाव में रेडियो तरंगें ऊपर अनंत अंतरिक्ष में जाकर विलीन हो जातीं।

बाह्यमंडल (Exosphere)

- वायुमंडल में पृथ्वी के धरातल से 640 किलोमीटर के ऊपर बाह्यमंडल का विस्तार मिलता है। इसकी ऊँचाई 500 से 1000 किलोमीटर तक मानी जाती है। इतनी अधिक ऊँचाई पर वायुमंडल निहारिका के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ की वायु में हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों की प्रधानता रहती है। वायुमंडल की बाह्य सीमा पर तापमान लगभग 5568^0C तक पहुंच जाता है, किंतु वायु के विरल होने के कारण इस तापमान को महसूस नहीं किया जा सकता है।

वायुमंडल: एक नजर में
वायुमंडल के निचले स्तर में कार्बन-डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन जैसी भारी गैसों की प्रधानता होती है, जबकि ऊपरी स्तर में हाइड्रोजन, हीलियम, नियॉन जैसी हल्की गैसों की बहुलता होता है।
ऑक्सीजन गैस प्रज्वलन के लिए आवश्यक है जबकि नाइट्रोजन गैस ऑक्सीजन को तनु (Dilute) करके प्रज्वलन को नियंत्रित करती है।
वायुमंडल की सबसे निचली एवं सघन परत क्षोभमंडल है। इस मंडल की ऊपरी सीमा- विषुवत रेखा पर तापमान लगभग -850C एवं ध्रुवों पर -600C पाया जाता है।
जलवाष्प एवं आर्द्रता ग्राही नाभिकों के क्षोभमंडल में संकेन्द्रित होने के कारण आंधी, तूफान, चक्रवात, बादल आदि की उत्पत्ति इसी मंडल में होती है।
क्षोभमंडल में, ऊँचाई में वृद्धि के साथ-साथ तापमान में 10C प्रति 165 मीटर की दर से कमी आती है, जिसे सामान्य ताप ह्रास दर कहा जाता है।
आयनमंडल में गैसें विद्युत आवेशित होती हैं जिसके कारण इस मंडल में गैसों के विसर्जन की घटना होती है। विद्युत विसर्जन के फलस्वरूप उत्पन्न प्रकाश को उत्तरी गोलार्द्ध में **उत्तरी ध्रुव ज्योति** (Aurora Borealis) तथा दक्षिण गोलार्द्ध में **दक्षिणी ध्रुव ज्योति** (Aurora Australis) के नाम से जाना जाता है।
वायुमंडल की सबसे ऊपरी परत बाह्यमंडल कहलाती है।
वायुयानों की उड़ान के लिए समतापमंडल आदर्शमंडल के रूप में जाना जाता है।
वायुमंडल का उद्भव केम्ब्रियन युग में माना जाता है।
जेट स्ट्रीम क्षोभमंडल में प्रवाहित होती है।
ओजोन गैस की सर्वाधिक सघनता 15-35 किमी. के बीच पायी जाती है।
पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 150C है।
अक्रिय गैसों में आर्गन एक भारी गैस है।
वायुमंडल की **समस्त जलवायु गतिविधियाँ क्षोभमंडल** में होती है।
आयनमंडल में विद्युत आवेशित आयनों की उपस्थिति के कारण रेडियो संचार संभव हो पाता है।

स्व कार्य हेतु

सूर्यताप एवं तापमान
(Insolation & Temperature)

परिचय (Introduction)

वायुमंडल एवं पृथ्वी पर मिलने वाली उष्मा का असीम स्रोत सूर्य है। सूर्य से विकिरित होने वाली सम्पूर्ण उष्मा को **सौर विकिरण** (Solar Radiation) कहा जाता है।

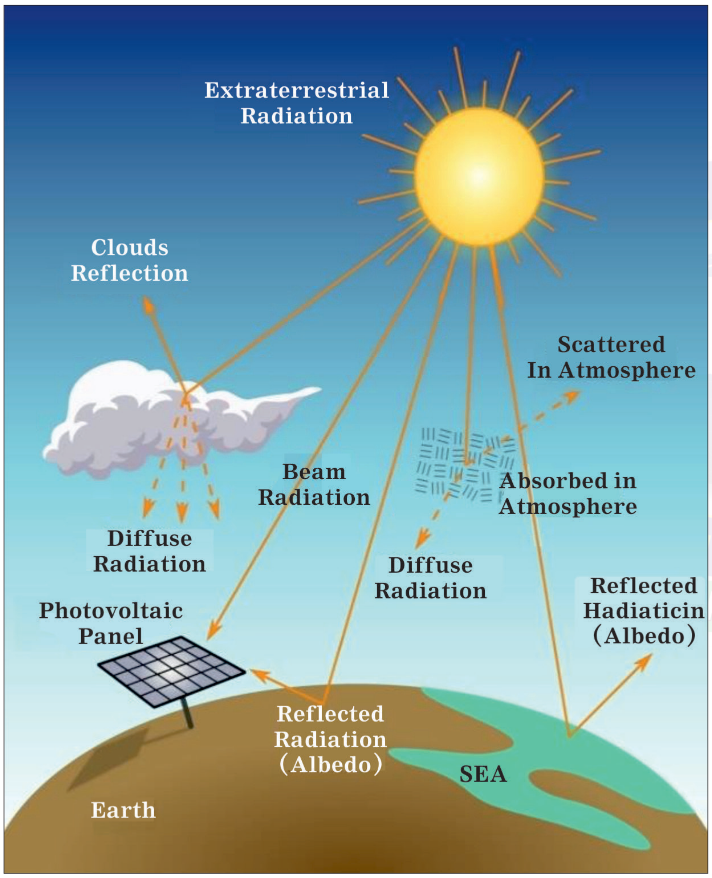

- यह सौर विकिरण अंतरिक्ष में चारों ओर फैलता रहता है और सूर्य से 15 करोड़ किलोमीटर की औसत दूरी पर स्थित हमारी पृथ्वी भी इसका एक सूक्ष्म अंश (2 अरब वां भाग) प्राप्त करती है। पृथ्वी की धरातल इस विकिरित ऊर्जा को **1.94 केलोरी प्रति वर्ग सेंटीमीटर** की दर से प्राप्त करता है। फिर भी पृथ्वी को प्राप्त होने वाला यही सूक्ष्म अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है और इसी से पृथ्वी की सम्पूर्ण भौतिक एवं जैविक घटनाएं नियंत्रित होती हैं। इन घटनाओं में धरातलीय पवन संचार, सागरीय धाराओं का प्रवाह तथा मौसम एवं जलवायु संबंधी सम्पूर्ण घटनाएँ शामिल हैं।
- सूर्य की ऊर्जा का प्रधान स्रोत उसका आन्तरिक भाग है जहाँ पर अत्यधिक दबाव तथा उच्च तापमान के कारण नाभिकीय संलयन के कारण **हाइड्रोजन का हीलियम में रूपांतरण** होता है जिसके फलस्वरूप उष्मा उत्पन्न होती है। यह उष्मा परिचालन तथा संवहन द्वारा सूर्य की बाहरी सतह तक पहुँचती है। सूर्य की बाहरी सतह से निकलने वाली ऊर्जा को **फोटॉन** कहते हैं। सूर्य की बाह्य सतह को **फोटोस्फीयर** कहा जाता है।
- पृथ्वी की सतह इस ऊर्जा का अवशोषण करती है तथा पुनः इस अवशोषित उष्मा को दीर्घ तरंगों के रूप में विकिरित करती है, **जिसे भौमिक विकिरण या पार्थिव विकिरण** कहा जाता है। वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प एवं कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसें बड़ी तरंग दैर्ध्य वाली विकिरण की अच्छी अवशोषक हैं। अतः वायुमंडल में आने वाले सौर विकिरण की तुलना में भौमिक विकिरण से अधिक ताप प्राप्त करता है।

सूर्यातप (Insolation)

पृथ्वी पर पहुँचने वाले सौर विकिरण को ही सूर्यातप (Insolation) की संज्ञा दी जाती है। अंग्रेजी भाषा में इन्सोलेशन (Insolation) Incoming Solar Radiation का संक्षिप्त रूप है। यह उष्मा या ऊर्जा, लघु तरंगों के रूप में पृथ्वी पर पहुंचती है और हमारी पृथ्वी का धरातल इसी विकिरित ऊर्जा को **1.94 केलोरी प्रति वर्ग सेमी. की दर** से प्राप्त करता है।

- वायुमंडल की सबसे बाह्य परत पर पहुँचने वाली कुल सौर विकिरित ऊर्जा का **51% भाग** ही पृथ्वी को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होता है, जबकि शेष **49% भाग** का वायुमंडल से गुजरते समय प्रकीर्णन, विसरण, अवशोषण एवं परावर्तन द्वारा वायुमंडल में ही अवक्षय हो जाता है। सौर विकिरण की इस परावर्तित मात्र को **पृथ्वी का एल्बिडो** (Albedo of the Earth) कहते हैं। भौमिक विकिरण से प्राप्त उष्मा के कारण वायुमंडल नीचे से ऊपर की ओर गर्म होता है, अतः ऊँचाई में वृद्धि के साथ-साथ तापमान में कमी आती है।

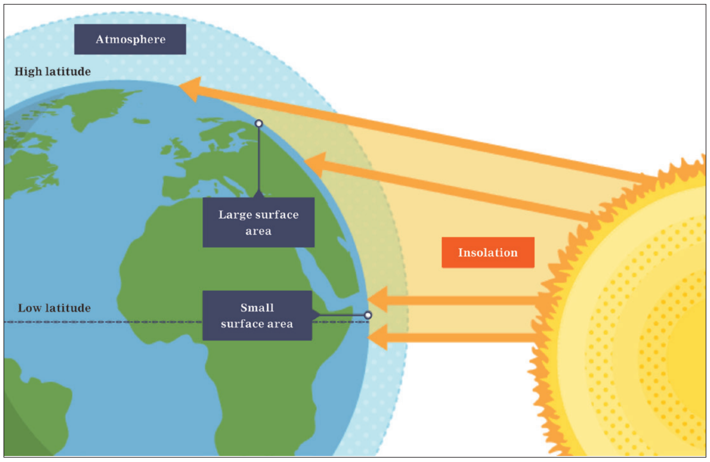

- पृथ्वी पर पहुंचने वाली सूर्यातप की मात्र तथा धरातल की प्रति इकाई क्षेत्रफल पर उसकी प्राप्ति मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करती है, जो इस प्रकार हैं-

  ✓ धरातल पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों का झुकाव या आपतन कोण।
  ✓ दिन की लंबाई तथा धूप की अवधि।
  ✓ वायुमंडल की पारगम्यता।

- सूर्य की किरणों का झुकाव पृथ्वी पर पहुँचने वाली सौर ऊर्जा की मात्र को दो प्रकार से प्रभावित करता है।

  ✓ **प्रथम,** मध्यान्ह की स्थिति में सूर्य की किरणें पृथ्वी पर लम्बवत् पड़ती हैं तो वह अत्यधिक संकेन्द्रित होती है। अतः इस स्थिति में सूर्यातप की तीव्रता भी अधिक होती है।
  ✓ **द्वितीय,** सूर्य की किरणें जब पृथ्वी पर तिरछी पड़ती हैं तो वह अधिक क्षेत्रों में फैल जाती है जिससे सूर्यातप की तीव्रता कम हो जाती है।

- **सीधी किरणों की अपेक्षा सूर्य की तिरछी किरणें वायुमंडल में अधिक दूरी तय करती हैं।** इस प्रकार सूर्य की किरणें वायुमंडल में जितनी अधिक दूरी तय करती है उनका बिखराव, परावर्तन और अवशोषण उतना ही अधिक होता है। इसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर सूर्य की किरणों की तीव्रता में कमी आ जाती है।
- सूर्यातप को प्रभावित करने में दिन की लंबाई की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है। दिन की अवधि जितनी अधिक होगी सूर्यातप की मात्र उतनी ही अधिक प्राप्त होगी। ऋतु और अक्षांश के अनुसार दिन की लंबाई में परिवर्तन होता है। वस्तुतः दिन की लंबाई और सूर्य की किरणों में झुकाव का कोण पृथ्वी के धरातल पर सूर्यातप के वितरण को नियंत्रित करते हैं।
- पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक अंडाकार पथ के सहारे परिभ्रमण करती है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी सूर्य से दूरी में परिवर्तन होता रहता है। पृथ्वी से सूर्य की औसत दूरी, 93,000,000 मील (149 मिलियन किमी.) है।
- **अपसौर** (Aphelion) की स्थिति (पृथ्वी और सूर्य के बीच की अधिकतम दूरी) **4 जुलाई** को तथा **उपसौर** (Perihelion) की स्थिति (पृथ्वी और सूर्य के बीच की न्यूनतम दूरी) **3 जनवरी** को आती है।

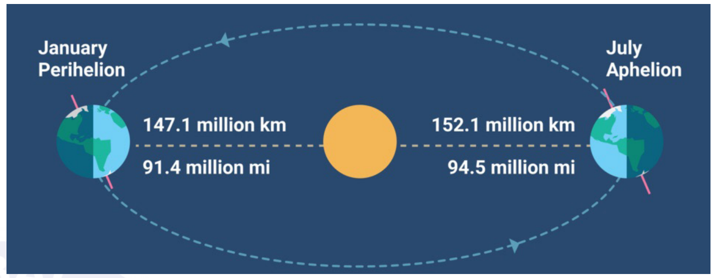

- सूर्य से पृथ्वी की दूरी भी पृथ्वी पर सूर्यातप की प्राप्ति को प्रभावित करता है।
- जब सूर्य पृथ्वी से अपेक्षाकृत कम दूरी पर होता है तो अधिक सूर्यातप की प्राप्ति होती है और इसके विपरीत जब अधिक दूरी पर होता है तो कम सूर्यातप की प्राप्ति होती है। भूमि का ढाल भी सूर्यातप की मात्र को प्रभावित करता है जो ढाल सूर्य के सामने होती है, उस पर सूर्य की किरणे सीधी पड़ती हैं तथा वहाँ पर अधिक मात्र में सूर्यातप प्राप्त होता है। इसके विपरीत, जो ढाल सूर्य के विमुख होती है, उस पर सूर्य की किरणें तिरछी पड़ती हैं अतः वहाँ पर सूर्यातप कम प्राप्त होता है। उत्तरी गोलार्द्ध में पर्वतों के दक्षिणी ढाल पर सूर्यातप की मात्र अधिक तथा उत्तरी ढाल पर कम होती है।
- सूर्यातप (Insolation) की **सर्वाधिक मात्र की प्राप्ति विषुवत रेखा के पास** होती है क्योंकि यहां दिन-रात की अवधि बराबर होती है, पर सूर्य की उत्तरायन एवं दक्षिणायन की स्थिति से इसमें परिवर्तन होता रहता है। जब सूर्य उत्तरायन होता है एवं कर्क रेखा पर चमकता है, तब उत्तरी गोलार्द्ध में दिन बड़ा तथा रात छोटा होता है। इस समय उत्तरी ध्रुव पर दिन की अवधि अधिक होने पर भी अधिक सूर्यातप नहीं हो पाता है क्योंकि इस पर वायुमंडल के परावर्तन एवं प्रकीर्णन आदि का प्रभाव पड़ता है। सूर्य के दक्षिणायन होने पर यह स्थिति विपरीत हो जाती है। सूर्यातप विषुवत रेखा से ध्रुवों की तरफ घटता जाता है अर्थात् विषुवत रेखा के सूर्यातप की मात्र का 40% भाग ही ध्रुवीय क्षेत्रों को प्राप्त हो पाते हैं।
- वायुमंडल की पारगम्यता भी सूर्यातप को प्रभावित करती है। वायुमंडल में बादलों का विस्तार, धूल के कण तथा जलवाष्प आदि पर सूर्यातप निर्भर करता है। वायुमंडल को पार करते समय सौर विकिरण (Solar Radiation) का कुछ अंश जलवाष्प अथवा गैसों द्वारा सोख लिया जाता है। वायुमंडल की निचली परतों में आर्द्रता की मात्र

जितनी ही अधिक होती है, सौर विकिरण का उतना ही अधिक अवशोषण होता है। अतः आद्र्र प्रदेशों की अपेक्षा शुष्क प्रदेशों को अधिक सूर्यातप की प्राप्ति होती है। बादलों के द्वारा बहुत अधिक परावर्तन होता है। अतः उन प्रदेशों में जहाँ वायुमंडल में बादलों की मात्र अधिक होती है, अपेक्षाकृत कम सूर्यातप की प्राप्ति होती है।

वायुमंडल का गर्म एवं ठंडा होना

अन्य पदार्थों की भांति वायु भी तीन विधियों से गर्म एवं ठंडी होती है-

- **विकिरण (Radiation)- किसी भी पदार्थ के उष्मा तरंगों के सीधे संचार द्वारा गर्म होने** की क्रिया **विकिरण** कहलाती है। यही एकमात्र ऐसी प्रक्रिया है जिसमें उष्मा बिना किसी माध्यम के अर्थात् शून्य से होकर भी यात्र कर सकती है। पृथ्वी पर आने तथा वापस जाने वाली सूर्यातप की विशाल मात्र इसी प्रक्रिया का अनुसरण करती है। विकिरण की मात्र तथा उसकी प्रकृति को नियंत्रित करने वाले कूछ आधारभूत नियम हैं, जो निम्नलिखित हैं-
  - ✓ सभी पदार्थ, चाहे उनका तापमान कूछ भी हो, विकिरण द्वारा ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं। इस प्रकार केवल सूर्य ही नहीं बल्कि पृथ्वी भी, जिसमें हिमाच्छादित क्षेत्र भी शामिल हैं, निरंतर विकिरण द्वारा ऊर्जा का उत्सर्जन करती रहती है।
  - ✓ किसी पदार्थ द्वारा उत्सर्जित तरंगों की लंबाई उस पदार्थ के तापमान द्वारा निर्धारित होती है। यही कारण है कि **सूर्य लघु तरंगों के रूप में उष्मा का विकिरण** करता है जबकि **पृथ्वी दीर्घ तरंगों के रूप में।**
  - ✓ जो पदार्थ विकिरण के अच्छे अवशोषक होते हैं, वही उसके अच्छे उत्सर्जक भी होते हैं। यदि पृथ्वी का धरातल सूर्यातप का सबसे अच्छा अवशोषक है तो उसका सबसे अच्छा उत्सर्जक भी है क्योंकि यह ग्रहण की जाने वाली शत प्रतिशत सूर्यातप की मात्र को पार्थिव विकिरण के रूप में वापस कर देती है।
  - ✓ जो वस्तु अपनी ओर आने वाली संपूर्ण विकिरण का अवशोषण करती है तथा किसी भी तापमान पर अधिकतम ऊर्जा का विकिरण करती है, उसे **पूर्ण कृष्णिका** (Black Body) कहते हैं।
  - ✓ पृथ्वी से होने वाले विकिरण को **भौमिक/पार्थिव विकिरण** कहते हैं।
  - ✓ वायुमंडल ऊपर से आने वाली सौर विकिरण की अपेक्षा भौमिक विकिरण से अधिक गर्म होता है क्योंकि वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प तथा कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसें लंबी तरंगों वाली विकिरण की अच्छी अवशोषक होती हैं। यही कारण है कि विशेषकर क्षोभमंडल में वायुमंडल ऊपर से नीचे की ओर गर्म होने के स्थान पर नीचे से ऊपर की ओर अधिक गर्म होता है।
- **संचालन (Conduction)-** आण्विक सक्रियता द्वारा पदार्थ के माध्यम से होने वाला ऊष्मा का संचार **संचालन** कहलाता है। जब असमान तापमान वाली दो वस्तुएं एक-दूसरे के संपर्क में आती हैं, तब अपेक्षाकृत गर्म वस्तु से ठंडी वस्तु में ऊष्मा का स्थानांतरण होता है। यह ऊष्मा स्थानांतरण तब तक क्रियाशील रहता है जब तक दोनों वस्तुओं का तापमान एक समान नहीं हो जाता या दोनों वस्तुओं के बीच का संपर्क टूट नहीं जाता। विभिन्न वस्तुओं के ऊष्मा के आदान-प्रदान की क्षमता में भी विभिन्नता पायी जाती है। एक तरफ जहाँ धातुएँ ऊष्मा की सुचालक होती हैं वहीं लकड़ी, वायु आदि इसके कुचालक हैं।
- ऊष्मा के संचालन की यह प्रक्रिया वायुमंडल के निचले भागों में अधिक होती है, जहाँ हवा का धरातल से सीधा सम्पर्क होता है। वायुमंडल में उष्मा के स्थानान्तरण में संचालन की क्रिया सबसे कम महत्त्वपूर्ण है।
- **संवहन (Convection)-** किसी पदार्थ में एक भाग से दूसरे भाग की ओर उसके तत्वों के साथ उष्मा के संचार की क्रिया **संवहन** कहलाती है। यह क्रिया केवल तरल तथा गैसीय पदार्थों में ही सम्भव होती है, क्योंकि इनके बीच स्थित अणुओं का पारस्परिक संबंध कमजोर होता है।
- उपर्युक्त विधियों के अलावा कूछ अन्य गौण विधियों से भी वायुमंडल गर्म होता है। जैसे- यौगिक एवं पार्थिव उष्मा का कूछ भाग वाष्पीकरण तथा संघनन के रूप में पड़ा रहता है, इस तरह संघनन की गुप्त उष्मा से भी वायुमंडल गर्म होता है।
- पृथ्वी **दोपहर (12 बजे)** के समय **सर्वाधिक सौर्यिक ऊर्जा** प्राप्त करती है एवं **अधिकतम ताप** दिन के **2 से 4 के बीच** प्राप्त होता है, क्योंकि इस समय पृथ्वी द्वारा प्राप्त की गयी ऊष्मा पृथ्वी द्वारा नष्ट की गयी ऊष्मा से अधिक होती है। इसे दिन का उच्चतम तापमान कहते हैं। **न्यूनतम तापक्रम रात्रि 12 बजे न होकर प्रातः 4 से 5 बजे के बीच होता है।**

संवहनी धाराएँ (Convectional Current)

वायुमंडल की निचली परत की हवा जब पार्थिव विकिरण या संचालन के कारण गर्म होती है तो उसमें प्रसार होता है। इस प्रसार के कारण घनत्व में कमी आने से वायु हल्की होकर ऊपर उठती है और वायुमंडल के ऊपरी भाग में स्थित वायु को अगल-बगल हटाती है, जिससे हटायी गयी वायु क्षैतिज दिशा में चलकर ठंडे क्षेत्रों के ऊपर पहुंचती है और वहाँ घनत्व अधिक हो जाने से नीचे बैठने लगती है।

- दूसरी ओर हवा के लगातार गर्म होकर ऊपर उठते रहने से नीचे के भाग में रिक्तता स्थापित होती जाती है। इस रिक्तता को भरने के लिए ठंडी हवा धरातल पर क्षैतिज दिशा में बहती हुई आती रहती है और गर्म क्षेत्रों में पहुंचने पर यह भी गर्म होकर ऊपर उठती है।

- इस प्रकार ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज पवनों के एक नियमित चक्र का निर्माण हो जाता है, जिसे संवहनीय धारा कहते हैं। ये संवहनीय धाराएँ वायुमंडल की निचली परत की उष्मा को ऊपरी परतों में पहुँचाकर उसे गर्म करती रहती हैं। ऊष्मीय असंतुलन के कारण पवनों और समुद्री धाराओं की उत्पत्ति होती है। अधिकांश ऊष्मा का आदान-प्रदान मध्य अक्षांशों (30^0 से 50^0) के बीच होता है जिससे इस क्षेत्र में तूफानी मौसम परिलक्षित होती है।

तापमान (Temperature)

अक्सर ऊष्मा (Heat) एवं तापमान (Temperature) शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे के पर्यायवाची के रूप में किया जाता है जबकि दोनों शब्दों में सूक्ष्म अंतर है। ऊष्मा वास्तव में ऊर्जा का एक रूप है, जो वस्तुओं को गर्म करती है। इसमें ऊर्जा की मात्र का ही ज्ञान होता है जबकि तापमान ऊष्मा की तीव्रता यानी वस्तु की तप्तता की मात्र का ज्ञान कराता है।

- दोनों शब्द अलग अवधारणाओं के द्योतक होने के बावजूद एक-दूसरे से संबंधित हैं, क्योंकि तापमान के बढ़ने एवं घटने के लिए क्रमशः ऊष्मा की प्राप्ति एवं उसका ह्रास आवश्यक है। इसके अतिरिक्त तापमान में अन्तर ऊष्मा के संचार की दिशा भी निर्धारित करता है।

तापमान को नियंत्रित करने वाले कारक

पृथ्वी पर तापमान का असमान वितरण मिलता है। तापमान को नियंत्रित करने वाले कूछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-

- सूर्यातप की मात्र में अक्षांशीय स्थिति के अनुसार विभिन्न कटिबंधों में अंतर होता है। विभिन्न अक्षांशों पर सूर्यातप की मात्र में अंतर होने के कारण ही उष्ण कटिंबध में तापमान अधिक और ध्रुवों की ओर क्रमशः कम होता है।
- स्थल और जल के गर्म होने की दर में विषमता के कारण भी तापमान में अंतर आता है। जल की अपेक्षा स्थल शीघ्र और अधिक गर्म या ठंडा होता है। जल और स्थल के तापमानों में अंतर शीत ऋतु में अधिक और ग्रीष्म ऋतु में कम होता है। महासागरों की अपेक्षा स्थल पर तापांतर अधिक होता है।
- तापमान को प्रभावित करने वाले कारकों में समुद्री धाराएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। तटवर्ती क्षेत्रों के तापमान समुद्री धाराओं द्वारा प्रभावित होते हैं। गर्म धारा जिन क्षेत्रों से होकर बहती है, उस क्षेत्र का तापमान अधिक होता है। इसके विपरीत, ठंडी धाराएँ जिन क्षेत्रों से होकर बहती हैं, उस क्षेत्र का तापमान **न्यून** होता है। जैसे- उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के तट पर **गल्फ स्ट्रीम की गर्म धारा** बहने के कारण उस क्षेत्र का तापमान ऊँचा बना रहता है। इसके विपरीत लगभग उसी अक्षांश पर लैब्राडोर के तट के साथ **लैब्राडोर की ठंडी धारा** बहती है जिसके कारण यह क्षेत्र लगभग 9 माह हिमाच्छादित रहता है। जिन स्थानों पर गर्म पवनें चलती हैं, वहाँ का तापमान अधिक तथा जहाँ ठंडी पवनें चलती हैं वहाँ का तापमान कम होता है। इटली में सहारा मरुस्थल से आने वाली सिराको पवन तथा उत्तरी अमेरिका के मैदान में चलने वाली चिनूक पवन (दोनों गर्म वायु है) के परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों के तापमान में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

एल्बिडो (Albedo)

- किसी भी सतह को प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्र एवं उसी सतह से परावर्तित की जाने वाली ऊष्मा की मात्र के बीच का अनुपात **एल्बिडो** कहलाता है। पृथ्वी का एल्बिडो लगभग 30 प्रतिशत है। अर्थात् पृथ्वी सतह से सौर विकिरण का 30 प्रतिशत भाग वापस अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाता है। एक हिमाच्छादित धरातल हेतु इसका मान सर्वाधिक तथा गहरे रंग की मृदा हेतु कम होता है। सामान्यतः गहरे रंगों का एल्बिडो कम तथा हल्के रंगों का एल्बिडो अधिक होता है।

समताप रेखा (Isotherms)

समान तापमान वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समताप रेखा के नाम से जाना जाता है। ऊँचाई के प्रभाव से इसे मुक्त रखने के लिए किसी भी स्थान के तापमान को घटाकर उसे समुद्र तल के तापमान के बराबर कर लिया जाता है और इसके बाद ही मानचित्र पर तुलनात्मक समताप रेखाएँ अंकित की जाती हैं।

- **समताप रेखाओं के तीन सामान्य लक्षण होते हैं, जो निम्नलिखित हैं-**
  - ✓ समताप रेखाएँ अधिकतर पूर्व-पश्चिम दिशा में अक्षांश रेखाओं का अनुसरण करती हुई मिलती हैं।
  - ✓ जहाँ स्थल एवं जल की विषमता के कारण तापांतर अधिक पाया जाता है, वहाँ ये अकस्मात् मुड़ जाती हैं।
  - ✓ समताप रेखाओं की परस्पर दूरी से अक्षांशीय ताप-प्रवणता या तापांतर दर की तीव्रता का पता चलता है।

- समताप रेखाओं में अक्षांश रेखाओं के साथ काफी हद तक समानता पायी जाती है, क्योंकि एक ही अक्षांश पर स्थित सभी स्थान बराबर सूर्यातप प्राप्त करते हैं। चूंकि स्थल एवं जल के गर्म होने की दर में असमानता पायी जाती है, अतएव एक ही अक्षांश पर स्थित महाद्वीपों एवं महासागरों पर स्थित वायु में भी तापमान संबंधी भिन्नता मिलती है। यही कारण है कि महाद्वीप से महासागर या महासागर से महाद्वीप पर आते समय रेखाएँ थोड़ी-सी मुड़ जाती हैं।

तापीय कटिबंध (Temperature Zone)

पृथ्वी पर तापमान के वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों में सबसे प्रभावशाली कारक **'भूमध्य रेखा से दूरी'** है। भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने में तापमान उत्तरोत्तर कम होता है। इस तथ्य के आधार पर ग्रीक विद्वानों ने सम्पूर्ण पृथ्वी को निम्नलिखित ताप कटिबंधों में बाँटा है-

- **उष्णकटिबंध (Tropical or Torrid Zone)-** यह कटिबंध भूमध्य रेखा के दोनों ओर $23\frac{1}{2}^0$ कर्क और मकर रेखा के बीच स्थित है। इस कटिबंध में सालों भर सूर्य की किरणें लगभग लंबवत पड़ती हैं। इसलिए यहाँ पर तापमान सदा उच्च रहता है। इस भाग में सर्दी नहीं पड़ती इसलिए इसे **शीतविहीन कटिबंध** भी कहते हैं।
- **शीतोष्ण कटिबंध (Temperate Zone)-** उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा ($23\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश) तथा उत्तरी ध्रुव वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश) और दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा ($23\frac{1}{2}^0$ दक्षिणी अक्षांश) तथा दक्षिणी ध्रुव वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ दक्षिणी अक्षांश) के बीच **शीतोष्ण कटिबंध** स्थित हैं। यहाँ पर शीत तथा उष्ण दोनों ही प्रकार की जलवायु पाई जाती हैं, जिस कारण इसे **शीतोष्ण कटिबंध** कहते हैं।
- **शीत कटिबंध (Frigid or Polar Zone)-** उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी ध्रुव वृत्त से उत्तर ध्रुव तक तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी ध्रुव वृत्त से दक्षिणी ध्रुव तक सूर्य की किरणें बहुत ही तिरछी पड़ती हैं और तापमान बहुत ही कम होता है। इसलिए यहां शीत बहुत अधिक होता है और इसे **शीत कटिबंध** कहते हैं।

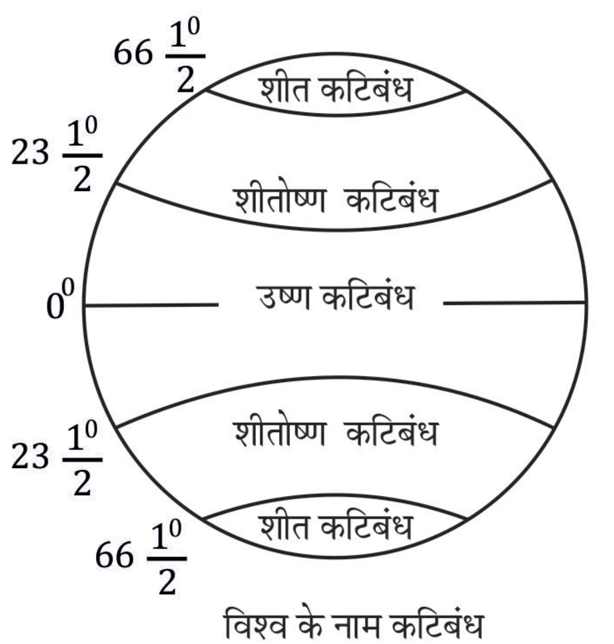

विश्व के नाम कटिबंध

वैश्विक तापक्रम स्वरूप (World Temperature Pattern)

- विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर तापक्रम घटता जाता है।
- आर्कटिक एवं उपआर्कटिक प्रदेशों में न्यून तापमान पाये जाते हैं।
- विषुवत रेखीय प्रदेशों में वार्षिक ताप परिसर न्यून रहता है।
- निम्न भूमि की अपेक्षा उच्च भूमि प्रदेश हमेशा अधिक ठंडे रहते हैं।
- चिरस्थायी बर्फ एवं हिम के क्षेत्र हमेशा तीव्र शीत के क्षेत्र होते हैं।
- सर्वाधिक वार्षिक ताप परिसर साइबेरिया में रिकॉर्ड किया गया है। तापक्रम का वार्षिक परिसर अक्षांशों के बढ़ने के साथ बढ़ता जाता है।

तापीय विसंगति (Temperature Anamoly)

आदर्श रूप में एक ही अक्षांश पर स्थित विभिन्न स्थानों का तापमान समान होना चाहिए परंतु ऐसा नहीं होता है। किसी स्थान विशेष के औसत तापमान तथा उसके अक्षांश के औसत तापमान के अंतर को **तापीय विसंगति** कहते हैं।

- समुद्रतल से ऊँचाई, स्थल एवं जल की विषमता, प्रचलित पवन तथा समुद्री धाराएँ आदि एक ही अक्षांश पर स्थित स्थान के औसत ताप से विचलन की मात्र एवं दिशा को प्रभावित करती है।
- उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलीय भाग अधिक होने के कारण यहाँ तापीय विसंगति अधिक पायी जाती है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में जलीय भाग अधिक होने के कारण तापमान की विसंगतियाँ न्यूनतम पायी जाती है।
- जब किसी स्थान का तापमान उसके अक्षांश के तापमान की अपेक्षा कम होता है, तब इस दशा को **'ऋणात्मक तापीय विसंगति'** और जब किसी स्थान का औसत तापमान उसके अक्षांश के तापमान की अपेक्षा अधिक होता है, तब उसे **'धनात्मक तापीय विसंगति'** कहते हैं। सम्पूर्ण वर्ष के महाद्वीपीय तापमान को देखने पर स्पष्ट होता है कि ये तापीय विसंगतियाँ **40^0 अक्षांश से ध्रुवों की ओर ऋणात्मक** तथा **विषुवतरेखा की ओर धनात्मक** होती हैं।
- **समताप विसंगति रेखा (Isonomals)-** समान तापीय विसंगति वाले स्थानों को मिलाते हुए मानचित्र पर खींची जाने वाली रेखा को **समताप विसंगति रेखा** कहते हैं।

तापमान का व्युत्क्रम या प्रतिलोमन (Inversion of Temperature)

सामान्यतः ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान में कमी देखी जाती है परंतु कभी-कभी वायु की निचली परतों में ऊँचाई के साथ तापमान में ह्रास होने के स्थान पर वृद्धि का परिलक्षण किया जाता है इसे ही **तापमान का व्युत्क्रमण** या **प्रतिलोमन** कहा जाता है और ऐसी स्थिति खासकर जाड़े की ठंडी रातों में देखी जाती है, जब आसमान साफ, हवा बहुत शुष्क एवं शांत होती है।

- ऐसी परिस्थिति में पृथ्वी की सतह तीव्र विकिरण के कारण ठंडी हो जाती है, अतः सतह के समीप की वायु ठंडी परत के संपर्क में आने के कारण तेजी से ठंडी हो जाती है। हवा की निचली परत ठंडी, घनी एवं भारी होने के कारण ठंडी हवा धरातल के समीप ही रहती है। ऊपर स्थित हवा, जिसमें ऊष्मा का विकिरण अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है, नीचे की हवा की तुलना में गर्म होती है।
- पर्वतीय क्षेत्रों में ढालों पर नीचे की ओर ठंडी हवा के खिसकने या नीचे आने से भी धरातल अत्यधिक ठंडा हो जाता है। ऐसी दशा में ऊँचाई के साथ तापमान घटने के बजाय बढ़ने लगता है और तापमान के ऊर्ध्वाधर वितरण क्रम उलट जाता है।
- तापमान के प्रतिलोमन के कारण धूल के कण एवं धुएँ के समान वायु प्रदूषक पदार्थ घाटी के तलीय भाग में ही एकत्रित होते हैं एवं इनमें बिखराव की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। इसी कारण से अन्तरापर्वतीय घाटियों में आवास एवं खेत ढालों के निचले भाग को छोड़कर ऊपरी भागों में स्थित होते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण हैं- **जापान के सुवा बेसिन में शहतूत की बागवानी** तथा **भारत में सेब की कृषि,** जो कि पर्वतीय ढाल वाले भागों में नहीं की जाती। इसी प्रकार हिमालय क्षेत्र में पर्यटकों के विश्रामस्थल एवं होटल ढालों के ऊपरी भागों में ही बनाये गये हैं।

तापमान के व्युत्क्रमण के लिए निम्नलिखित भौगोलिक परिस्थितियाँ सहयोगी होती हैं-

- **लम्बी रातें-** पृथ्वी दिन में ताप ग्रहण करती है और रात में उसे छोड़ती है, परिणामस्वरूप रात में पृथ्वी ठंडी हो जाती है। पृथ्वी के ठंडी हो जाने के कारण ही धरातल के समीप चलने वाली वायु भी ठंडी हो जाती है तथा ऊपर की वायु गर्म ही रहती है।
- **स्वच्छ आकाश-** मेघ विकिरण में बाधा डालते हैं तथा वायु को ठंडी होने से रोकते हैं। इसी कारण पृथ्वी के ठंडा होने के लिए स्वच्छ आकाश का होना आवश्यक है।
- **शुष्क वायु-** आर्द्र वायु में ऊष्मा को अवशोषित करने की क्षमता अधिक होती है जिस कारण तापमान की दर में कोई गिरावट नहीं होती। शुष्क वायु भौमिक विकिरण को अवशोषित नहीं कर सकती है इसलिए शुष्क वायु ठंडी होकर तापमान के व्युत्क्रमण की स्थिति उत्पन्न करती है।
- **हिमाच्छादन-** हिम सौर-विकिरण के अधिकांश भाग को परावर्तित कर देती है, परिणामस्वरूप वायु की परत ठंडी रहती है और तापमान का व्युत्क्रमण होता है।

उष्मा द्वीप (Heat Islands)

- नगरों का तापमान इसके चारों ओर के ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में काफी अधिक होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि शहरों का अधिकाधिक भू-भाग पक्की संरचना (सड़क, मकान आदि) के रूप में होता है। साथ ही, यहाँ वनस्पतियों का भी अभाव होता है। इस प्रकार इन अपेक्षाकृत उच्च ताप वाले नगरों को ही **उष्मा द्वीप** कहा जाता है।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट

पृथ्वी ऊष्मा का न तो संचय करती है न ही ह्रास करती है। यह अपने तापमान को स्थिर रखती है। ऐसा तभी संभव है, जब सूर्य विकिरण द्वारा सूर्यातप के रूप में प्राप्त ऊष्मा एवं पार्थिव विकिरण द्वारा अंतरिक्ष में संचरित ताप बराबर हो।

- सूर्य से जितनी ऊर्जा विकिरण होती है, उसका कुछ भाग ही पृथ्वी को प्राप्त हो पाता है, क्योंकि वायुमंडल द्वारा प्रकीर्णन, परावर्तन तथा अवशोषण के कारण कुछ भाग शून्य में लौटा दिया जाता है तथा कुछ भाग वायुमंडल में बिखेर दिया जाता है।
- सूर्य से विकिरण ऊर्जा का **35% भाग मौलिक रूप** से शून्य में वापस लौटा दिया जाता है। सौर ऊर्जा के इस 35% भाग का वायुमंडल तथा पृथ्वी को गर्म करने में कोई भूमिका नहीं होती है। शेष 65% भाग से वायुमंडल द्वारा 14% भाग का अवशोषण कर लिया जाता है। इस तरह 51% ऊर्जा ही पृथ्वी को प्राप्त हो पाती है। इसमें से 34% भाग प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश से तथा शेष 17% दिन के विसरित प्रकाश (Diffuse Day Light) द्वारा प्राप्त होता है। सूर्य से प्राप्त यही 51% ऊष्मा ही पृथ्वी का वास्तविक बजट है। पृथ्वी इस 51% ऊष्मा को भी वापस वायुमंडल में वापस लौटा देती है। सूर्यातप के रूप में पृथ्वी को प्राप्त ऊष्मा तथा पृथ्वी द्वारा निर्गत ऊष्मा का लेखा-जोखा ही पृथ्वी का ऊष्मा बजट कहलाता है।

भूमंडलीय तापन (Global Warming)

प्राकृतिक या मानवीय क्रियाओं के कारण पृथ्वी का औसत तापमान का बढ़ना भूमण्डलीय तापन कहलाता है। विगत 100 वर्षों से जीवाश्म ईधन के प्रयोग में अत्यधिक वृद्धि से वायुमंडल में CO_2 का सकेन्द्रण 300 ppm (भाग प्रति लाख) से 350 ppm अर्थात 23 प्रतिशत तक बढ़ गया है। इसके कारण ग्रीन हाउस प्रभाव में वृद्धि हुई है तथा इसके साथ ही पृथ्वी के औसत तापक्रम में भी वृद्धि हो रही है। पृथ्वी के औसत तापक्रम में हो रही तीव्र वृद्धि को ही भूमंडलीय तापन की संज्ञा दी जा रही है।

सूर्यातप/तापमान: एक नजर में

सूर्य से काफी अधिक दूर स्थित होने के कारण पृथ्वी सूर्य द्वारा विकिरित ऊर्जा का **2 अरब** वाँ भाग ही प्राप्त कर पाती है। पृथ्वी इस ऊर्जा को **1.94 केलारी प्रतिवर्ग सेमी प्रति मिनट की दर** से प्राप्त करती है जिसे **सौर स्थिरांक** कहा जाता है।
आर्कटिक एवं अंटार्कटिका वृत्त पर दिन की अधिकतम लम्बाई 24 घंटे की होती है।
उपसौर (Perihelion) की तुलना में अपसौर (Apehelion) की स्थिति में **7% कम सूर्यातप** प्राप्त होता है।
सूर्य से प्राप्त होने वाली कूल ऊर्जा का **35%** पृथ्वी के धरातल पर पहुंचने से पहले ही बादल, हिम आदि से परावर्तित होकर अंतरिक्ष में लौट जाती है, जिसे **एल्बिडो** कहा जाता है।
किसी भी दिन के उच्चतम एवं न्यूनतम तापमान के औसत को **औसत दैनिक तापमान** कहा जाता है।
किसी शुष्क वायु राशि के ऊपर उठने अथवा नीचे उतरने के कारण उसके तापमान में जिस दर से कमी या वृद्धि होती है उसे **शुष्क रुद्धोष्म ताप परिवर्तन दर** कहा जाता है। इसका मान 1^0C/1000 मीटर होता है।
ऊपर उठती हुई संतृप्त वायु जिस दर से शीतल होती है, उसे आर्द्र रुद्धोष्म ताप परिवर्तन दर कहा जाता है। इसका मान 6^0C प्रति 1000 मीटर होता है।
धरातल पर तापमान के वितरण में सर्वाधिक प्रभाव अक्षांश का पड़ता है।
विश्व में अधिकतम औसत वार्षिक तापमान इथियोपिया के **डलोल** (34.4^0C) में होता है न्यूनतम औसत वार्षिक तापमान रूस के **ओइमयाह्कोन** का होता है (-58^0C) है।
विश्व का **सर्वाधिक ठंडा प्रदेश अंटार्कटिका का वोस्टक** (-87.5^0C) है।
विश्व का **सर्वाधिक गर्म प्रदेश लीबिया का अल-अजीजिया** (58^0C) है।
विश्व में **सर्वाधिक तापान्तर का कारण महाद्वीपीयता** (Continentiality) है।
अक्षांशों के मध्य तापमान घटने की दर को **ताप प्रवणता** कहते हैं।
उच्च अक्षांशों पर ताप प्रवणता अधिक पायी जाती है।
भूमध्य रेखा पर दिन-रात सदैव बराबर होते हैं।
3 जनवरी को पृथ्वी सूर्य से सबसे निकट होता है इस स्थिति को **उपसौर** (Perihelion) कहा जाता है।
4 जुलाई को पृथ्वी सूर्य से सबसे दूर होता है। इस स्थिति को अपसौर कहा जाता है।
परिभ्रमण गति द्वारा पृथ्वी अपनी धुरी पर बराबर चक्कर लगाती है और परिक्रमण द्वारा वह अपनी कक्ष पर $66\frac{1}{2}^0$ कोण बनाती हुई सूर्य के चारों ओर घूमती है। इन गतियों के कारण ही पृथ्वी पर दिन-रात तथा ऋतु-परिवर्तन होता है।
21 मार्च एवं 23 सितंबर अर्थात बसंत विषुव और शरद विषुव को समस्त भूमंडल पर दिन-रात बराबर होते हैं।

स्व कार्य हेतु

KGS KHAN GLOBAL STUDIES IAS
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

वायुदाब एवं पवन
(Air Pressure & Wind)

वायुदाब (Air Pressure)

धरातलीय या सागरीय क्षेत्रफल की एक निश्चित इकाई पर वायुमंडल की समस्त परतों का पड़ने वाला दबाव ही **'वायुदाब'** (Air Pressure) है। इसका तात्पर्य है कि किसी दिये गये स्थान तथा समय पर वहाँ की हवा के स्तम्भ का सम्पूर्ण भार वायुदाब है। वायुमंडल पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण इससे सम्बद्ध है, इसलिए यह अपने भार से पृथ्वी के धरातल पर दबाव डालता है। इसके अतिरिक्त वायु एक भौतिक वस्तु है जो कि विभिन्न प्रकार की गैसों का यांत्रिक सम्मिश्रण है औरं इसका अपना स्वयं का भार होता है जिसके द्वारा यह दबाव डालती है।

- वायु के इस दबाव का मापन वायुदाबमापी यंत्र या **बैरोमीटर** की सहायता से किया जाता है। वायुदाब को प्रति इकाई क्षेत्रफल पर पड़ने वाले बल के रूप में मापते हैं। जलवायु वैज्ञानिकों द्वारा इसके मापन के लिए जिस इकाई का प्रयोग किया जाता है, वह **'मिलीबार'** कहलाती है। एक मिलीबार एक वर्ग सेंटीमीटर क्षेत्रफल पर एक ग्राम भार के बल के बराबर होता है।
- **समुद्र तल पर वायुदाब सर्वाधिक होता** है। समुद्र तल पर सामान्य वायुदाब लगभग 76 सेमी. या 1,013.25 मिलीबार के बराबर होता है।
- सामान्यतः वायुदाब प्रत्येक 300 मीटर की ऊँचाई पर 34 मिलीबार कम हो जाता है, किन्तु यह दर कूछ हजार फीट की ऊँचाई तक सम्भव होती है क्योंकि इसके आगे वायु की विरलता से यह सम्भव नहीं होता है। सामान्य रूप से 1800 फीट की ऊँचाई पर वायुदाब का लगभग 50% भाग कम होता है। अत्यधिक ऊँचाई पर ऑक्सीजन की कमी तथा वायुदाब की कमी से मानव के नाक एवं कान से खून आने लगता है तथा घुटन बढ़ जाती है। तापमान एवं वायुदाब में विपरीत सम्बन्ध होता है अर्थात जब ताप अधिक हो तो वायुदाब कम और जब ताप कम हो तो दाब अधिक होता है।
- वायुदाब के वितरण पर जल और स्थल के असमान वितरण और पृथ्वी की दैनिक घूर्णन गति का प्रभाव पड़ता है। भूमध्य रेखा (विषुवत् वृत्त) के पास ऊँचा तापमान होने के कारण वायु की निचली परतें अधिक गर्म हो जाती हैं और वायु फैलकर तेजी से ऊपर उठ जाती है जिससे यहां निम्न दाब का क्षेत्र बन जाता है। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण ध्रुवों पर वर्ष भर अत्यधिक ठंड पड़ती है जिससे वायु भारी होकर इकट्ठी हो जाती है और यहाँ उच्च दाब का क्षेत्र बन जाता है। वायुदाब मौसम में परिवर्तन उत्पन्न करने का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारक है क्योंकि यह मौसम एवं जलवायु के अन्य कारकों के साथ अंतर्संबंधित होता है।
- तापमान में अन्तर के कारण हवा के घनत्व में परिवर्तन होता है और इससे वायुदाब में भी अन्तर आ जाता है। वायुदाब में परिवर्तन के कारण वायु में क्षैतिज गति उत्पन्न हो जाती है, जिसे **'पवन'** कहते हैं। पवन ऊष्मा एवं आर्द्रता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार पवन द्वारा तापमान तथा आर्द्रता दोनों ही प्रभावित होते हैं। विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं जलवायु प्रदेशों में वायुदाब एवं पवन की दशाएँ विशिष्ट प्रकार की होती हैं, इसलिए वायुदाब को मौसम के पूर्वानुमान के लिए एक महत्त्वपूर्ण सूचक माना जाता है।
- **समदाब रेखा (Isobar)-** किसी मानचित्र पर समुद्रतल के बराबर घटाये हुए वायुदाब से तुलनात्मक रूप में समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाकर खींची जाने वाली रेखा **समदाब रेखा या आइसोबार** कहलाती है।
- **दाब प्रवणता (Pressure Gradient)-** किन्हीं भी दो समदाब रेखाओं की पारस्परिक दूरियाँ वायुदाब में अंतर की दिशा एवं उसकी दर को दर्शाती हैं, जिसे **दाब-प्रवणता** कहते हैं। पास-पास स्थित समदाब रेखाएँ तीव्र दाब-प्रवणता की सूचक होती हैं, जबकि दूर-दूर स्थित समदाब रेखाएँ मन्द दाब-प्रवणता की सूचक होती हैं।
- गैसों का यांत्रिक सम्मिश्रण होने के कारण वायु में यह क्षमता पायी जाती है कि वह दबाव पड़ने पर संकुचित हो सकें इसी कारण वायुमंडल के निचले भागों में वायु का घनत्व सर्वाधिक होता है, क्योंकि यहाँ की वायु ऊपरी वायु से भार से दबी रहती है। इसके परिणामस्वरूप वायुमंडल की निचली परतों की वायु का घनत्व एवं दबाव दोनों अधिक होते हैं।
- इसके विपरीत ऊपरी वायुमंडल की हवा कम दबी होती है, जिससे उसका घनत्व तथा वायुदाब दोनों कम होते हैं। ऊँचाई के साथ वायुदाब हमेशा घटता जाता है, लेकिन इसकी दर सर्वत्र एक समान नहीं होती है। इस पर हवा के घनत्व, तापमान, जलवायु की मात्र तथा गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रभाव पड़ता है। इन सभी तत्वों के परिवर्तनशील होने के कारण ऊँचाई एवं वायुदाब के बीच कोई सीधा आनुपातिक सम्बन्ध नहीं पाया जाता।
- धरातल पर वायुदाब का सर्वप्रथम अनुभव सन् 1650 में **ऑटोवान गैरिक** ने किया था।

धरातल पर वायुदाब की पेटियों का वितरण (Distribution of Atmospheric Pressure Belts on the Surface of the Earth)

वायुदाब के क्षैतिज वितरण को देखने पर धरातल पर वायुदाब की 4 स्पष्ट पेटियाँ पायी जाती हैं।

- इनमें से भूमध्य रेखीय निम्न वायुदाब की पेटी को छोड़कर अन्य तीनों पेटियाँ उत्तरी और दक्षिणी दोनों गोलार्द्धों में अनुरूप जोड़े बनाती हैं।

वायुदाब की पेटियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं-

- **भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब की पेटी-** धरातल पर भूमध्य रेखा के **दोनों ओर 5^0 अक्षांशों के बीच निम्न वायुदाब की पेटी** का विस्तार पाया जाता है, लेकिन इसकी स्थिति स्थायी न होकर परिवर्तनशील होती है, क्योंकि सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन होने के कारण इस पेटी में ऋतुवत् स्थानांतरण एवं खिसकाव होता रहता है। भूमध्य रेखा पर वर्ष भर सूर्य के लम्बवत् चमकने के कारण यहाँ सदैव उच्च तापमान की दशा पायी जाती है, जिसके कारण हवा गतिशील होकर ऊपर उठती है तथा उसमें प्रसार होता है। निम्न वायुदाब की इस पेटी का सीधा सम्बन्ध इस क्षेत्र में मिलने वाली तापमान की दशाओं से है। यहाँ हवा के ऊपर उठते रहने से क्षैतिज वायु संचरण की गति अत्यधिक मन्द होती है और वातावरण शान्त रहता है। शान्त वातावरण के कारण ही इस पेटी को **शांत पेटी या डोलड्रम** भी कहते हैं।
- **उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायुदाब की पेटियाँ-** भूमध्य रेखा से **30^0-35^0 अक्षांशों पर दोनों गोलार्द्धों** में उच्च वायुदाब की पेटियों की उपस्थिति पायी जाती है। इन अक्षांशों पर उच्च वायुदाब का निर्माण वस्तुतः विषुवतीय क्षेत्रों से ऊपर उठी गर्म वायु विषुवत रेखीय एवं उपध्रुवीय निम्न दाब से आने वाली वायु धाराओं का अपसरण तथा अवतलन भी होता है। वायुदाब की इस पेटी में वायु सदैव ऊपर से नीचे उतरती है, अतः उसका दाब बढ़ जाता है। विषुवतीय क्षेत्र एवं उपध्रुवीय निम्न दाब क्षेत्र से ऊपर उठती वायु का अवतलन इस पेटी में होता है। वायु के अवतलन के कारण यहाँ पर प्रतिचक्रवाती परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। विश्व के सभी मरुस्थल इसी पेटी में महाद्वीपों के पश्चिमी किनारे पर स्थित हैं।

- **यहाँ उच्च वायुभार होने के दो कारण हैं-**
  - ✓ भू-मध्यरेखीय कटिबन्ध से गर्म होकर ऊपर उठने वाली वायु उत्तरोत्तर ठंडी और भारी होती जाती है जो ऊपर पहुँच कर भू-घूर्णन के फलस्वरूप उत्तर तथा दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है। कर्क तथा मकर रेखाओं तक पहुँचकर यह वायु पूरी तरह घूमकर नीचे उतर आती है। इस वायु के भार से कर्क तथा मकर रेखाओं से 35^0 अक्षांशों के बीच उच्च वायुदाब उत्पन्न हो जाता है।
  - ✓ पृथ्वी की दैनिक गति के परिणामस्वरूप उपध्रुवीय क्षेत्रों से वायु की विशाल राशियाँ उपोष्ण प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं जिस कारण वहाँ पर उच्च वायुदाब उत्पन्न हो जाते हैं।

- उच्च वायुदाब वाली इस पेटी को **'अश्व अक्षांश'** (Horse Latitude) कहते हैं, क्योंकि अत्यधिक वायुदाब के कारण इस क्षेत्र में जलयानों की गति मंद हो जाती है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन काल में जब स्पेन से घोड़े लेकर पाल से चलने वाले जलयान नई दुनिया (उत्तरी अमेरिका) की ओर जाते थे, तब इन अक्षांशों में पवनों के चलने से उनका आगे बढ़ना कठिन हो जाता था। ऐसी स्थिति का सामना करने तथा जलयान का बोझ हल्का करने के लिए कुछ घोड़े समुद्र में फेंक दिये जाते थे। इसी कारण इन अक्षांशों को अश्व अक्षांश कहा जाने लगा। सर्वोच्च वायुदाब केंद्र महासागरों के ऊपर पाये जाते हैं। दक्षिणी अफ्रीका के पठारों के ऊपर ग्रीष्म ऋतु में भी साधारण कोटि का उच्च दाब केंद्र विकसित हो जाता है।
- इस पेटी के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ शीतकाल के दो महीनों को छोड़कर वर्ष के शेष भाग में ऊँचा तापमान पाया जाता है, इसलिए यहाँ निम्न वायुदाब की स्थिति मिलनी चाहिए, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। यह उच्च वायुदाब तापीय घटनाओं से संबंधित न होकर पृथ्वी की दैनिक गति तथा वायु के अवतलन या नीचे उतरने से सम्बन्धित है। भूमध्यरेखीय एवं उपध्रुवीय निम्न वायुदाब के क्षेत्रों से ऊपर उठी वायु इन क्षेत्रों में नीचे उतरकर बैठती है, जिससे उच्च वायुदाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि इस पेटी का उच्च वायुदाब गतिजन्य है न कि तापजन्य।
- **उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटियाँ-** दोनों गोलार्द्धों में **60^0 से 65^0 अक्षांशों के बीच** निम्न वायुदाब की पेटियाँ पायी जाती हैं। इन पेटियों का निम्न वायुदाब भी तापजन्य न होकर गतिजन्य ही है, क्योंकि यहाँ वर्ष भर कम तापमान पाया जाता है। इस पेटी में पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण हवा फैलकर स्थानांतरित हो जाती है और निम्न वायुदाब का क्षेत्र बन जाता है। यह पेटी उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक विकसित है।
- **ध्रुवीय उच्च वायुदाब की पेटियाँ-** उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों ध्रुवों पर अत्यधिक कम तापमान के कारण उच्च वायुदाब की पेटियों की उपस्थिति पायी जाती है। यह उच्च वायुदाब तापजन्य ही होता है, क्योंकि पृथ्वी की घूर्णन गति का प्रभाव तापमान के बहुत ही कम होने के कारण नगण्य हो जाता है। इन क्षेत्रों में न्यूनतम तापमान मिलने के कारण ही ठंडी एवं भारी हवा नीचे उतरती है और ध्रुवीय उच्च वायुदाब की पेटियों का निर्माण करती है। इन पेटियों का विस्तार दोनों ध्रुवों के

चारों ओर बहुत ही कम क्षेत्रफल पर सीमित होता है। ये प्रतिचक्रवातीय विशिष्टता वाले क्षेत्र होते हैं।

पवन (Wind)

पृथ्वी के धरातल पर वायुदाब में क्षैतिज विषमताओं के कारण हवा उच्च वायुदाब के क्षेत्रों से निम्न वायुदाब के क्षेत्रों की ओर संचालित होती है। क्षैतिज रूप में गतिशील होने वाली हवा को ही पवन कहते हैं।

- वायुदाब की विषमताओं को सन्तुलित करने की दिशा में यह प्रकृति का एक स्वाभाविक प्रयास है। चूँकि धरातल का असमान रूप से गर्म होना ही वायुदाब में आने वाली विषमताओं का एक मुख्य कारण है, अतः सूर्यातप को ही पवन का मूल प्रेरक बल कहा जा सकता है। यदि पृथ्वी स्थिर होती और इसका धरातल एक समान समतल होता तो पवन भी उच्च वायुदाब वाले क्षेत्र से निम्न वायुदाब वाले क्षेत्र की ओर समदाब रेखाओं पर समकोण बनाते हुए सीधा प्रवाहित होती किन्तु उपर्युक्त दोनों दशाओं के अभाव के कारण पवन की दिशा एवं गति अन्य कई कारकों द्वारा सम्मिलित रूप से प्रभावित होती है।
- **वायुदाब-प्रवणता एवं पवन (Pressure Gradient and Wind)**- वायु में क्षैतिज गति उत्पन्न होने का एक मात्र कारण वायुदाब का अंतर अथवा वायुदाब-प्रवणता होती है। इसी प्रवणता की दिशा और परिमाण के द्वारा वायु की दिशा और उसका वेग निर्धारित होता है। पवन प्रवाह की दिशा सदैव उच्च दाब से निम्न दाब की ओर होती है। सामान्यतया वायुदाब में जितना ही अधिक अंतर होगा, पवन का वेग उतना ही अधिक होगा। वायु प्रवणता जब अधिक होती है तब पवन का वेग तीव्र हो जाता है और जब प्रवणता मंद होती है तब वेग भी कम हो जाता है।
- **पृथ्वी का आवर्तन (Rotation)**- यदि वायुदाब-प्रवणता बल के द्वारा ही पवन की दिशा निर्धारित होती है, तो सर्वदा और सर्वत्र पवन की दिशा समदाब रेखाओं से 90^0 के कोण पर होती। पवन सदैव समभार रेखाओं के आर-पार उच्च दाब से निम्न दाब की ओर सीधे चला करता किंतु धरातल पर चलने वाला पवन अनिवार्य रूप से इस नियम का पालन नहीं करता है।
- पृथ्वी के आवर्तन के कारण उत्पन्न विक्षेपक बल (Deflective Force) जिसे कोरियॉलिस बल (Coriolis Force) भी कहते हैं, पवन की दिशा को मोड़ देता है। इसी कारण से उत्तरी गोलार्द्ध में पवन अपने पथ के दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाता है।

  ✓ **विक्षेपक बल (Coriolis Force)**- पृथ्वी की दैनिक गति द्वारा उत्पन्न विक्षेपक बल धरातल पर प्रत्येक गतिमान वस्तु को प्रभावित करता है। चाहे वह महासागरीय धारा हो अथवा पवन। न्यूटन द्वार प्रतिपादित गति के नियम के अनुसार, यदि कोई वस्तु समान वेग से एक सीधी रेखा में जा रही है, तो वह उसी वेग से उसी दिशा मे तब तक चलती रहेगी, जब तक कोई बाहरी बल उस पर आरोपित न किया जाए। जब वायुदाब-प्रवणता बल के कारण कोई वायु कण गतिमान होता है, तब उसमें एक सीधी रेखा में चलते रहने की सामान्य प्रवृत्ति विद्यमान रहती है, किंतु पृथ्वी के आवर्तन के कारण अक्षांश और देशांतर रेखाएँ अपनी स्थिति बदल देती हैं, जिससे पवन की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। विक्षेपक बल गतिमान वस्तु के वेग, गतिमान वस्तु की संहित तथा अक्षांश ज्या (Sine) का समानुपाती होती है।

  ✓ चूँकि विक्षेपक बल अक्षांश के ज्या (Sine) पर निर्भर करता है। अतः विषुवत रेखा पर यह शून्य होता है तथा ध्रुवों के पास इसकी मात्र अधिकतम होती है। विक्षेपक बल की एक अन्य विशेषता यह है कि वह गतिमान वस्तु से समकोण पर (लंबवत्) कार्य करता है, जिससे उस बल का प्रभाव उसकी दिशा पर पड़ता है न कि उसके वेग पर। इसके अतिरिक्त यह बल प्रत्येक दिशा में समान होता है। वास्तव में विक्षेपक बल वास्तविक बल नहीं, अपितु आभासी बल है, जो पृथ्वी के आवर्तन तथा उसके धरातल पर गतिशील वायु के कारण उत्पन्न होता है।

  ✓ विक्षेपक बल का प्रभाव केवल उत्तर से दक्षिण अथवा दक्षिण से उत्तर चलने वाली वस्तुओं पर नहीं पड़ता, बल्कि उसके द्वारा पूर्व-पश्चिम तथा पश्चिम-पूर्व अथवा किसी तिरछे मार्ग से चलने वाली वस्तुएँ भी समान रूप से प्रभावित होती हैं। प्रत्येक दशा में कोई भी गतिमान वस्तु उत्तरी गोलार्द्ध में अपने पथ के दायीं और दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती है।

  ✓ **भू-विक्षेपी पवन (Geostrophic Wind)**- पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न होने वाले विक्षेपक एवं प्रभावों की विवेचना सर्वप्रथम कोरियॉलिस नामक फ्रांसीसी भौतिक शास्त्री ने सन् 1844 में की। उन्हीं के नाम के आधार पर इस आभासी बल को 'कोरियॉलिस बल' की संज्ञा प्रदान की गयी। जब पवन का मार्ग, सीधा होता है, तब उस पर केवल दो प्रकार के बलों का नियंत्रण होता है- वायुदाब प्रवणता बल तथा भू-विक्षेपी (Geostrophic) बल। जब धरातल पर वायुदाब में अंतर उत्पन्न होता है तब वायु उच्च दाब से निम्न दाब की ओर सीधी रेखा में चल पड़ती है। किंतु पृथ्वी के आवर्तन से उत्पन्न कोरियॉलिस बल के प्रभाव के कारण पवन अपने प्रारंभिक पथ के दायीं ओर (उत्तरी गोलार्द्ध में) जुड़ जाता है। विक्षेपक बल गतिशील पवन पर निंरतर प्रभाव डालता रहता है जिसके फलस्वरूप अंत में वायु की दिशा समभार रेखाओं के समानांतर हो जाती है तथा उच्च दाब उसके दायीं ओर एवं निम्न दाब बायीं ओर हो जाता है।

- ✓ 'ज्योस्ट्रॉफिक' (Geostrophic) ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है 'पृथ्वी द्वारा मोड़ा गया'। जब वायुदाब प्रवणता बल तथा विक्षेपक बल में संतुलन हो जाता है, तब पवन प्रवाह समदाब रेखाओं के समानांतर होता है। इस प्रकार समदाब रेखाओं के समानांतर गतिशील पवन को भू-विक्षेपी पवन कहते हैं।
- ✓ भू-विक्षेपी पवन अपने आदर्श रूप से वायुमंडल के ऊपरी भागों में ही पाया जाता है, क्योंकि वहाँ घर्षण का प्रभाव नगण्य होता है तथा समदाब रेखाएँ सीधी होती है। धरातल के निकट घर्षण बल के हस्तक्षेप के कारण भू-विक्षेप पवन का विकास नहीं हो पाता है। भू-विक्षेपी पवन की गति पर वायुदाब प्रवणता, अक्षांश तथा वायु के घनत्व का प्रभाव पड़ता है। यह पवन वायुदाब-प्रवणता का समानुपाती होता है। समदाब रेखाएँ जितनी ही सघन होती है, इस पवन का वेग उतना ही अधिक होता है। यह पवन अक्षांश के ज्या (Sine of Latitude) का विलोमानुपाती होता है। इस पवन का वेग वायु के घनत्व का भी विलोमानुपाती होता है।
- ✓ **बाइज बैलट का नियम (Buys ballot Law)-** इस नियम के अनुसार, यदि उत्तरी गोलार्द्ध में कोई व्यक्ति पवन की दिशा की ओर पीठ करके खड़ा हो, तो उसकी बायीं ओर निम्न वायुदाब तथा दायीं ओर उच्च वायुदाब होगा। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में निम्न वायुदाब दायीं और तथा उच्च वायुदाब बायीं ओर होगा।

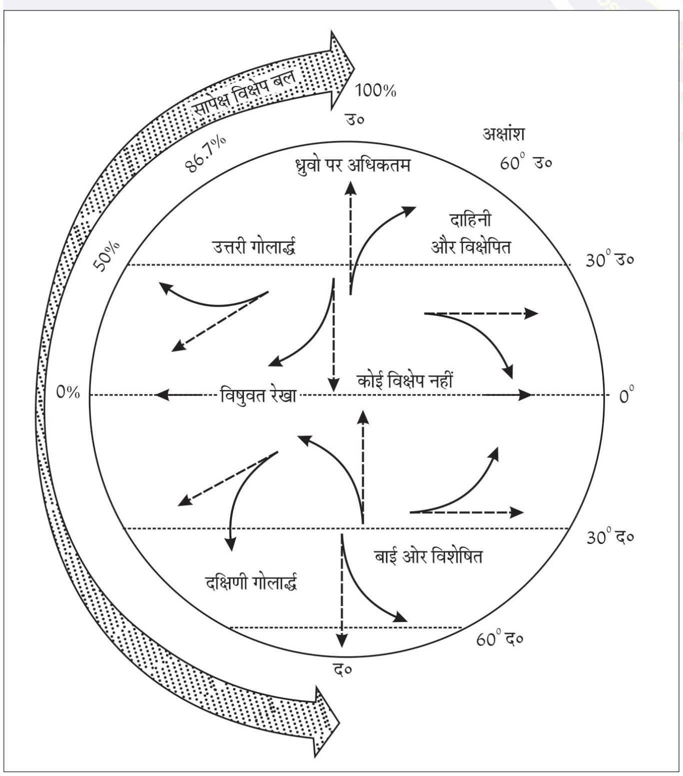

- ✓ **फेरेल का नियम- " जिस दिशा से पवन आ रही हो उस दिशा की ओर पीठ करके खड़े हो जायें तो हवाएँ उत्तरी गोलार्द्ध में दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर मुड़ जाती हैं।"**
- ✓ **अभिकेन्द्रीय त्वरण (Centripetal Acceleration)-** घूर्णन करती हुई पृथ्वी पर घूर्णन के केन्द्र की दिशा में वायु की अन्दर की ओर होने वाली गति के कारण पवन द्वारा स्थानीय उच्च अथवा न्यून वायुदाब के चारों ओर समदाब रेखाओं के लगभग समानांतर एवं वक्रभाग का अनुसरण करना सम्भव हो पाता है। इसी प्रक्रिया को अभिकेंद्रीय त्वरण कहते हैं।

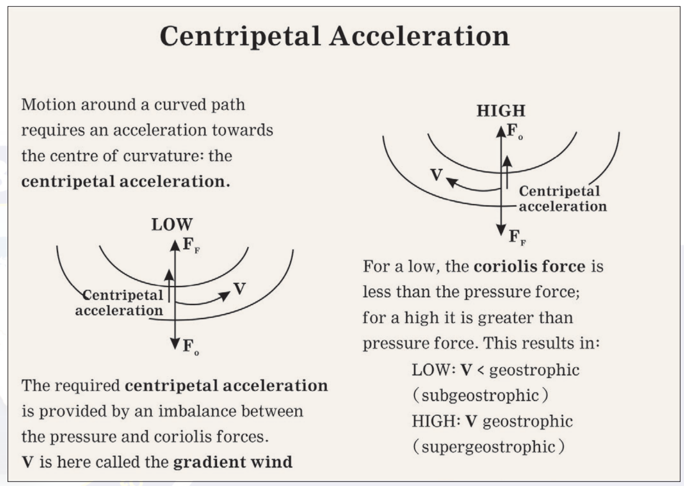

- **घर्षण का प्रभाव (Effects of Friction)-** पवन के वेग और उसकी दिशा को प्रभावित करने वाले कारकों में घर्षण बल (Frictional Force) का विशेष महत्त्व है। इस बल की उत्पत्ति धरातल और उसके ऊपर चलने वाली वायु के संघर्ष से होती है। यह बल पवन प्रवाह की दिशा के विपरीत कार्य करता है। यह वायु के वेग के वर्ग का समानुपाती होता है। पृथ्वी तल पर तथा अथवा उसके निकट उच्चावचन तथा अन्य बाधाओं के कारण पवन प्रवाह में प्रतिरोध उत्पन्न होता है, जिससे उसमें अनियमितता आ जाती है। जल की अपेक्षा स्थलीय धरातल के खुरदरा होने के कारण उस पर घर्षण बल अधिक होता है। घर्षण बल के कारण पवन का वेग कम हो जाता है जिससे कोरियॉलिस बल में कमी आ जाती है, और प्रवणता बल अधिक प्रभावकारी हो जाता है। अतः हवाएँ समदाब रेखाओं के समानांतर चलने के बजाय उन्हें न्यून कोण पर काटती हुई अधिक दबाव से कम दबाव की ओर तिरछी चलने लगती है।
- ✓ **ऐंटीट्रिप्टिक पवन (Antitriptic Winds)-** स्थानीय पवनों पर कोरियालिस बल का प्रभाव न पड़ने से प्रवणता बल तथा घर्षण बल में पूर्ण संतुलन स्थापित हो जाता है। जिससे पवन सीधे उच्च दाब से निम्न दाब की ओर चलने लगता है। ऐसे पवनों

को जिनमें वायुदाब प्रवणता बल घर्षण बल द्वारा संतुलित हो जाता है, ऐंटीट्रिप्टिक पवन कहते हैं। ऐसे पवनों का क्षैतिज विस्तार सीमित तथा गहराई कम होती है। ऐसे पवन अल्पकालिक भी होते हैं। स्थल तथा सागर समीर एवं पर्वत तथा घाटी समीर इनके विशिष्ट उदाहरण हैं।

- **पवन का अपकेंद्र बल (Centrifugal Force)**– पवन-गति को प्रभावित करने वाला अन्य महत्त्वपूर्ण कारक स्वयं पवन का अपकेंद्र बल (Centrifugal Froce) है। जब पवन का मार्ग वक्र अथवा वृत्ताकार होता है, तब इस प्रकार के बल की उत्पत्ति होती है। यह बल विभिन्न प्रकार के पवनों के वृत्ताकार पथ के केंद्र से बाहर की ओर लगता है, जब कोई कण समान गति से वृत्ताकार मार्ग में चक्कर लगाता है, तब उस मार्ग के केंद्र अथवा आवर्तन के अक्ष की दिशा में बल कार्य करता है, जिसे अभिकेंद्र बल कहते हैं। इसी बल के कारण वह कण वृत्ताकार मार्ग पर चलता है।
- चूँकि न्यूटन के गति के तीसरे नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया की उसके बराबर तथा विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है, अतः जब किसी कण पर केंद्र की दिशा में एक बल कार्य करता है, तब इसके बराबर तथा विपरीत दिशा में एक दूसरे बल का होना स्वाभाविक है जो इस कण को केंद्र से दूर फेंकने का प्रयत्न करता है। इस प्रतिक्रियात्मक बल को ही अपकेंद्र बल कहते हैं। यह बल $\frac{\text{संहित} \times \text{वेग}^2}{\text{त्रिज्या}}$ के बराबर होता है।
- ऐसी स्थिति में जब कि समदाब रेखाएँ वृत्ताकार होती हैं, पवन गति पर अपकेंद्रक बल का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ती है। चक्रवात अथवा प्रतिचक्रवात में ही इस बल की उत्पत्ति होती है। वायुदाब प्रणालियों के अंतर्गत जब वायुदाब प्रवणता के अनुसार पवन उच्च दाब से निम्न दाब की ओर चलता है, तो विक्षेपक बल के कारण वह सीधे पथ से विचलित हो जाता है तथा समदाब रेखाओं के समानांतर प्रवाहित होने लगता है। किंतु वृत्ताकार अथवा वक्र पथ में घूमने वाले इस पवन पर अपकेंद्र बल कार्य करने लगता है। पवन का वेग तथा उसके पथ की वक्रता जितनी अधिक होगी, यह बल उतना ही अधिक होगा तथा विक्षेपन भी उसी अनुपात में होगा। उत्तरी गोलार्द्ध में विक्षेप के कारण पवन अपने पथ के दायीं ओर मुड़ जाता है, जिसमें अपकेंद्र बल के कारण और वृद्धि हो जाती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इस प्रकार का विक्षेप पथ के दायीं ओर होता है।
  - ✓ **प्रवणता पवन (Gradient Wind)**– जब वृत्ताकार मार्ग से चलने वाले पवन में वायुदाब प्रवणता बल, विक्षेपक बल एवं घर्षण बल में संतुलन स्थापित हो जाता है, तो उसे प्रवणता पवन (Gradient Wind) कहते हैं। ये पवन वायुमंडल के ऊपरी भाग में समदाब रेखाओं के समांनातर चलते हैं, किंतु धरातल पर घर्षण के कारण ये निम्न दाब की ओर मुड़ कर उन्हें न्यूनकोण पर काटते हैं। धरातल पर अथवा उसके सन्निकट घर्षण के कारण पवन का वेग कम हो जाता है, जिसके फलस्वरूप विक्षेपक बल कम हो जाता है। चक्रवात अथवा प्रतिचक्रवात में चलने वाली ऐसी हवाओं को चक्रगतिक पवन कहते हैं। उपर्युक्त कारणों से ही उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवात में पवन वामावर्त तथा प्रतिचक्रवात में दक्षिणावर्त होता है। इसके विपरीत, दक्षिणी गोलार्द्ध में चक्रवात में पवन दक्षिणावर्त तथा प्रतिचक्रवात में वामावर्त होता है।

वायु की उर्ध्वाधर गति से संबंधित कोशिकाएँ

उष्ण कटिबंधीय कोशिका (Tropical or Hadley Cell)

यह भूमध्य रेखा और 30^0 अक्षांशों के बीच स्थित है। यह ताप को भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर ले जाता है। उष्ण कटिबंधीय जेट धारा की स्थिति 200 मिलीबार दाब ऊँचाई स्तर पर ध्रुवों के किनारों की रहती है। वायुमंडल में कोणीय संवेग का प्रमुख स्रोत यही कोशिका है। यह हेडले के संवहनी प्रतिरूप (Convective Model) जो उसने संपूर्ण पृथ्वी के लिए उपयोग में लिया था, उससे मेल खाता है, अतः इसे हेडले कोशिका का नाम दिया गया।

- भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में गर्म होकर ऊपर उठने वाली वायु गुप्त ताप (Latent Heat) छोड़ती है जब बहुत अधिक ऊँचाई पर कपासी वर्षा मेघ (Cumulus Nimbus) बनते हैं। इन मेघों के बनते समय जो गुप्त ताप निकलता है, वो उष्णकटिबंधीय कोशिका को पर्याप्त आगे बढ़ने की ऊर्जा प्रदान करता है। यह कोशिका, जो तापीय शक्ति से आगे बढ़ती है, ऊपर उठती वायु को ध्रुवों तथा ऊपरी क्षोभमंडल की ओर ले जाती है। इस कोशिका में ध्रुवों की ओर वायु की बाहरी प्रवाह को प्रतिव्यापारिक (Antitrade) पवन कहते हैं। ये वायु धारा जो भूमध्य रेखा के समीप 8000 से 12000 मीटर की ऊँचाई पर पायी जाती है, 20^0 से 25^0 अक्षांश के समीप नीचे उतरना प्रारंभ करती है एंव कोरियॉलिस शक्ति के कारण विक्षेपित हो जाती है एवं इन्हें विक्षेपित पछुआ (Geostrophci Westerlies) कहते हैं।

ध्रुवीय वाताग्र कोशिका (Polar Front Cell or Ferrel Cell)

- यह 30^0 से 60^0 उत्तर एवं दक्षिण में मध्य अक्षांशों में पायी जाती है। त्रिकोशिकामय देशांतरीय परिसंचरण प्रतिरूप में 30^0 से 60^0 अक्षांश के बीच परिसंचलन प्रतिरूप हैडली कोशिका के विपरीत पाया जाता है। इस कोशिका में धरातलीय वायु का प्रवाह ध्रुवों की ओर होता है एवं कोरियॉलिस शक्ति के कारण वायु पश्चिम से पूर्व की ओर चलती है।

- ऊपरी वायुमंडल में 30^0 से 60^0 के बीच ऊपरी क्षोभमंडल में साधारण पछुआ विद्यमान रहती है। ऊपरी वायु की पछुआ ताप के स्थानांतरण एवं वायु के संचालन में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। ट्रिवार्था के अनुसार मध्य एवं ऊपरी क्षोभमंडल की पछुआ की विशेषता दीर्घ तरंगें एवं जेट धारा है। शीतोष्ण कटिबंध की ऊपरी पछुआ में दीर्घ तरंगें अधिक होती है, ताप का स्थानांतरण ठंडी ध्रुवीय वायु का निम्न अक्षांशों की ओर धकेला जाना एवं गरम उष्ण कटिबंधीय वायु का ध्रुवों की ओर धकेले जाने के कारण होता है।
- इस कोशिका में ध्रुवीय वाताग्र अधिक निरंतर एवं प्रमुख होता है जो मध्य क्षोभमंडल में पाया जाता है। ध्रुवीय वाताग्र कोशिका एवं उष्ण कटिबंधीय वायु पश्चिमी खंड की उच्च दाब कोशिका के उच्च अक्षांशों की ओर आगे बढ़ती है, जबकि मध्य कोशिका से वायु अपने पूर्वी भाग की ओर उष्ण कटिबंधीय प्रदेश की ओर बढ़ती है। ताप बजट को संतुलित रखने में मध्य अक्षांशों के परिसंचरण में कोशिका का बड़ा योगदान रहता है।

ध्रुवीय या उप ध्रुवीय कोशिका (Polar or Subpolar Cell)

- तीसरी परिसंचरण कोशिका जो ध्रुवीय एवं उपध्रुवीय प्रदेशों में ध्रुवीय वाताग्र कोशिका का ध्रुव की ओर वाला भाग है, को पूर्णतया अभिलोपित कर दिया जाता है। ये 60^0 अक्षांश एवं ध्रुव के बीच स्थित है। ध्रुवीय उच्च दाब (प्रतिचक्रवात) स्थायी नहीं होते हैं, ध्रुवों के समीप अवतलन धरातलीय प्रवाह उत्पन्न करता है जो कि भूमध्य रेखा की ओर जाते हुए कोरियॉलिस शाक्ति के कारण दोनों ही गोलार्द्ध में ध्रुवीय पूर्वी पवन हो जाती है। ठंडी ध्रुवीय पूर्वी पवन अपने भूमध्य रेखीय संचलन में गर्म पछुआ पवन से टकराती है, यह टकराव शीतोष्ण कटिबंध में होता है। इन दोनों वायु के संपर्क वाले क्षेत्र को ध्रुवीय वाताग्र कहा जाता है। समशीतोष्ण कटिबंध के चक्रवात का यह उत्पत्ति क्षेत्र है। यहाँ ताप का स्थानांतरण पूर्वी पवन की तरंगों से संबंधित है।
- उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में ताप का आदान-प्रदान एवं संवेग प्रत्यक्ष अभिसंचरण से जुड़ा है। मध्य एवं ऊँचे अक्षांशों में ऊर्जा का स्थानांतरण समशीतोष्ण चक्रवात एवं प्रतिचक्रवात से प्रभावित है।

पवन के प्रकार (Types of Wind)

धरातल पर निम्नलिखित प्रकार के पवनों की उपस्थिति पायी जाती है-

- प्रचलित पवन (Prevailing Wind)।
- सामयिक या मौसमी पवन (Seasonal Wind)।
- स्थानीय पवन (Local Wind)।

प्रचलित पवन/स्थायी पवन

जो पवन वायुदाब के अक्षांशीय अन्तर के कारण वर्ष भर एक से दूसरे कटिबन्ध की ओर प्रवाहित होती रहती है, उसे **प्रचलित पवन** या **स्थायी पवन** (Permanent Wind), **निश्चित पवन** (Invariable Wind) अथवा ग्रहीय या सनातनी हवाएँ (Planetory Winds) भी कहा जाता है। यह पवन महाद्वीपों तथा महासागरों के विशाल क्षेत्र पर वर्ष भर एक ही दिशा में गतिशील रहती है। इसके अतिरिक्त ध्रुवीय हवाओं को भी प्रचलित पवनों के अंतर्गत सम्मिलित किया जाता है।

प्रमुख स्थायी पवनें निम्नवत हैं-

- **व्यापारिक पवन-** दक्षिणी अक्षांश के क्षेत्रों अर्थात् उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंधों से भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब कटिबंध की ओर दोनों गोलार्द्धों में वर्ष भर निरंतर प्रवाहित होने वाली पवन को **व्यापारिक पवन** कहा जाता है।
- इसका अंग्रेजी भाषान्तरण **'ट्रेंड विण्ड्स'** (Trade Winds) है, जिसमें 'ट्रेंड' शब्द जर्मन भाषा से लिया गया है, जिसका तात्पर्य निर्दिष्ट पथ या मार्ग से है। ये हवाएँ एक निर्दिष्ट पथ पर वर्ष भर एक ही दिशा में निरन्तर बहने वाली हवाएँ हैं। सामान्यतः इस पवन को उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर से दक्षिण दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण से उत्तर दिशा में प्रवाहित होना चाहिए, किन्तु फेरेल के नियम एवं कोरिऑलिस बल के कारण ये उत्तरी गोलार्द्ध में अपनी दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपनी बायीं ओर विक्षेपित हो जाती हैं।
- नियमित दिशा के कारण प्राचीन काल में व्यापारियों को पाल युक्त जलयानों के संचालन में पर्याप्त सुविधा मिलने के कारण इन्हें **व्यापारिक पवन** कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में इन्हें उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवन के नाम से जाना जाता है तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में इन हवाओं की दिशा दक्षिण-पूरब से उत्तर-पश्चिम की ओर चलती है, अतः इन्हें **दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवन** कहते हैं। ये 30^0 से 35^0 उत्तर व दक्षिण अक्षांशों के बीच से भूमध्य रेखा की ओर चलती हैं। भूमध्य रेखा के समीप दोनों व्यापारिक पवनें आपस में मिलकर अत्यधिक तापमान के कारण ऊपर उठ जाती हैं तथा घनघोर वर्षा के कारण बनती है क्योंकि वहाँ पहुँचते-पहुँचते ये जलवाष्प से पूर्णतः संतृप्त हो जाती हैं। इनका अधिकतम विस्तार महासागरों पर होता है। ये पवनें स्थायी व नियमित रूप से एक निश्चित पथ पर चलती हैं और इनका वेग 15 से 25 किमी. प्रति घंटा होता है। यह वेग शीत ऋतु में अधिक तथा ग्रीष्म ऋतु में कम हो जाता है।

- **पछुआ पवन-** दोनों गोलार्द्धों में उपोष्ण उच्च वायुदाब (30^0-35^0) कटिबन्धों से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब (60^0-65^0) कटिबंधों की ओर चलने वाली स्थायी हवाओं को इनकी पश्चिम दिशा के कारण इन्हें **पछुआ पवन** कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित होती हैं। जहाँ पर ये गर्म तथा आर्द्र पछुआ हवाएँ, ध्रुवों से आने वाली ठंडी हवाओं से मिलती हैं, वहाँ पर **वाताग्र** (Front) बन जाते हैं, जिन्हें **शीतोष्ण वाताग्र** कहते हैं। पछुआ हवाओं के साथ चक्रवात तथा प्रतिचक्रवात भी पश्चिम से पूर्व दिशा में चलते हैं। इन चक्रवातों तथा प्रतिचक्रवातों के कारण पछुआ हवाओं के स्वभाव में परिवर्तन आ जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल की अधिकता के कारण पछुआ पवन अधिक जटिल हो जाती हैं तथा इसकी सक्रियता जाड़े में अधिक तथा गर्मियों में कम हो जाती है।

- पछुआ पवनों का सर्वश्रेष्ठ विकास **40^0 से 50^0 दक्षिणी अंक्षाशों** के मध्य पाया जाता है क्योंकि यहाँ जलराशि के विशाल विस्तार के कारण पवनों की गति अपेक्षाकृत तेज तथा दिशा निश्चित होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इनकी प्रचंडता के कारण इन्हें 40^0 से 65^0 अक्षांशों के मध्य, 40^0 अक्षांश क्षेत्र को **'गरजता चालीसा'** (Roaring Forties), 50^0 के समीपवर्ती क्षेत्र में 'प्रचंड पचासा' (Furious Fifties) तथा 60^0 के समीपवर्ती क्षेत्र में **'चीखता साठा'** (Shrieking Sixties) के नाम से जाना जाता है। यह नामकरण वस्तुतः नाविकों द्वारा किया गया है। ध्रुवों की ओर इन पवनों की सीमा काफी अस्थिर होती है, जो मौसम एवं अन्य कारणों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। गर्म अक्षांशों से ठंडे अक्षांश की ओर चलने के कारण पछुआ पवनें शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित महाद्वीपों के पश्चिमी भागों जैसे पश्चिमी यूरोप, पश्चिमी कनाडा तथा दक्षिणी पश्चिमी चिली में वर्ष भर वर्षा करती हैं। **पछुआ एकमात्र स्थायी पवन है, जो निम्न से उच्च अक्षांशों की ओर चलती है।**

- **ध्रुवीय पवन-** ध्रुवीय उच्च वायुदाब की पेटियों से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब की पेटियों की ओर प्रवाहित होने वाली पवनों को ध्रुवीय पवन के नाम से जाना जाता है। ध्रुवीय पवनें अत्यधिक ठंडी एवं भारी होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में इनकी दिशा उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम की ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर होती है।

- कम तापमान के क्षेत्रों से अधिक तापमान वाले क्षेत्रों की ओर प्रवाहित होने के कारण ये पवनें प्रायः शुष्क होती हैं। उपध्रुवीय निम्न वायुदाब के क्षेत्रों में ध्रुवीय एवं पछुआ पवनों जैसी विपरीत स्वभाव वाली पवनों के मिलने के कारण शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों का जन्म होता है, जो कटिबन्धीय क्षेत्रों में व्यापक वृष्टि एवं परिवर्तनशील मौसम के लिए उत्तरदायी होते हैं।

सामयिक या मौसमी पवन (Seasonal Wind)

मौसम या समय के साथ जिन पवनों की दिशा में परिवर्तन पाया जाता है, उन्हें **सामयिक या कालिक पवन** कहा जाता है। पवनों के इस वर्ग में मानसून पवनें, स्थल एवं सागर समीर तथा पर्वत एवं घाटी समीर को शामिल किया जाता है।

- **मानसूनी पवनें (Monsoonal Winds)-** मानसून शब्द की उत्पत्ति **अरबी भाषा** के 'मौसमी' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- **मौसम**। इससे स्पष्ट है कि मानसून ऐसी पवन हैं, जिनकी प्रवाह-दिशा में मौसम के साथ परिवर्तन आ जाता है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अरब सागर पर प्रवाहित होने वाली हवा के लिए किया गया था। किन्तु वर्तमान में धरातल पर उन सभी प्रवाहित होने वाली ऐसी हवाओं को, जो मौसम के अनुसार अपनी दिशा में पूर्ण परिवर्तन स्थापित कर लेती हैं **'मानसून'** के नाम से संबोधित किया जाता है। मानसूनी पवन सामान्यतः उष्ण कटिबंध में चलती हैं। वास्तव में मानसून हवाएँ भूमंडल के पवन तंत्र के ही रूपांतरण हैं, जिनकी उत्पत्ति स्थल तथा जल के विरोधी स्वभाव के कारण एवं तापीय विभिन्नता के कारण होती है।

- **ग्रीष्मकालीन मानसून-** 21 मार्च के बाद सूर्य के उत्तरायण होने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में सौर्यिक ऊर्जा अधिक मिलने लगती है। 21 जून को सूर्य कर्क रेखा पर लंबवत् चमकता है, परिणामस्वरूप यहाँ पर न्यूनदाब बन जाता है।

- एशिया महाद्वीप पर बैकाल झील तथा मुल्तान के पास निम्न वायुदाब बन जाता है। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध में शीतकाल के कारण उच्च वायुदाब की स्थिति बनी रहती है, परिणामस्वरूप हवाएँ उच्च वायुदाब से निम्न वायुदाब की ओर चलने लगती हैं तथा सागर के ऊपर से आने के कारण पर्याप्त नमी के कारण घनघोर वर्षा करती हैं।

- **शीतकालीन मानसून- 23 सितम्बर** के बाद सूर्य की स्थिति दक्षिणायन होने लगती है एवं 22 दिसम्बर को मकर रेखा पर लम्बवत चमकने के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में शीतकाल तथा दक्षिण गोलार्द्ध में ग्रीष्मकाल होता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में निम्न वायुदाब की स्थिति होती है। मानसून लौटने लगता है तथा शीतकाल में कोरोमंडल तट पर भारी वर्षा होती है।

- **स्थलीय एवं सागरीय समीर (Land And Sea Breezes)-** दिन के समय निकटवर्ती समुद्र की अपेक्षा स्थल भाग के अधिक गर्म हो जाने के कारण वहाँ निम्न वायुदाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जबकि सागरीय भाग के अपेक्षाकृत ठंडा रहने के कारण वहाँ उच्च वायुदाब मिलता है। स्थल की गर्म हवा के हल्की होकर ऊपर उठ जाने पर रिक्त हुए स्थान को भरने के लिए सागरीय भागों से हवा का प्रवाह स्थल की ओर होने लगता है, जिसे **सागरीय समीर** कहते हैं।

- इसके विपरीत रात के समय तीव्र पार्थिव विकिरण के कारण स्थल भाग सागरीय भाग की अपेक्षा शीघ्रता से ठंडा हो जाता है, जिसके कारण उस पर उच्च वायुदाब उपस्थित हो जाती है। सागरीय भाग अपेक्षाकृत निम्न वायुदाब का क्षेत्र होता है, जिसके कारण स्थल से सागर की ओर पवन संचार होने लगता है। इन पवनों को स्थलीय समीर कहते हैं।
- वास्तव में स्थलीय एवं सागरीय समीर छोटे पैमाने पर प्रवाहित होने वाली मानसून हवाएँ ही हैं, जिनकी दिशा में 24 घंटे में दो बार परिवर्तन हो जाता है। ये समीर समुद्रतटीय क्षेत्रों की एक पतली पट्टी को ही प्रभावित करते हैं।

- **पर्वत एवं घाटी समीर (Mountain and Valley Breezes)-** अधिकांश पर्वतीय क्षेत्रों में दो प्रकार की दैनिक हवाएँ प्रवाहित होती हैं। दिन के समय पर्वतीय ढाल वाला क्षेत्र उसकी घाटियों की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है, जिसके कारण पवन का संचरण घाटी से ऊपर की ओर होने लगता है। इसी को **घाटी समीर** कहते हैं। इसके विपरीत सूर्यास्त के पश्चात रात्रि के समय यह व्यवस्था पूर्णतः पलट जाती है। पर्वतीय ढालों पर पार्थिव विकिरण द्वारा तेजी से ऊष्मा का विसर्जन हो जाने से वहाँ उच्च वायुदाब का क्षेत्र बन जाता है तथा ऊँचाई वाले भागों से ठंडी एवं घनी हवा नीचे बैठने लगती है। इसी पवन को **पर्वत समीर** कहते हैं। पर्वत पवन को अवरोही पवन या गुरुत्व पवन भी कहा जाता है। 24 घंटे के अन्दर इनकी दिशा में दो बार पूर्ण परिवर्तन होता है, इस कारण इन्हें **दैनिक समीर** भी कहा जाता है।

- **चक्रवाती पवन (Cyclonic Winds)-** जब किसी स्थान के निम्न वायुदाब का क्षेत्र चारों ओर से उच्च वायुदाब से घिर जाता है तो **हवाएँ बाहर से केंद्र की ओर चक्राकार गति से चलने लगती** हैं, इन्हें **चक्रवाती पवन** कहते हैं। इसके विपरीत जब उच्च वायुदाब का केन्द्र चारों ओर से निम्न वायुदाब के क्षेत्र से घिर जाता है तो हवाएँ अन्दर से बाहर की ओर चक्राकार गति में चलने लगती हैं जिन्हें **प्रति चक्रवाती पवन** कहते हैं।

- चक्रवातों को भिन्न-भिन्न देशों/क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। उत्तरी अटलांटिक और पूर्वी अमेरिका के तटों पर उठने वाले चक्रवात को **हरिकेन** (Hurricane), मैक्सिको की खाड़ी, मिसीसिपी-मिसौरी घाटी में तथा मालागासी के पास उठने वाले चक्रवात को **टॉरनेडो** (Tornado), चीन, जापान, उत्तरी प्रशांत के चक्रवातों को **'टाइफून',** तिमोर सागर और ऑस्ट्रेलिया के उत्तर-पश्चिम में चलने वाले चक्रवात को **विली-विली** कहते हैं।

जेट-स्ट्रीम (Jet Stream)

जेट-स्ट्रीम तीव्र गति से चलने वाली ऐसी क्षैतिज पवनें हैं जो **क्षोभसीमा** (Tropopause) के निकट चलती हैं। जेट वायुधाराएँ लगभग 150 किमी. चौड़ी एवं 2 से 3 किमी. मोटी एक संक्रमण पेटी में सक्रिय रहती हैं। सामान्यतः इनकी गति 150 से 200 किमी. प्रति घंटा रहती है। जेट वायुधाराएँ सामान्यतः उत्तरी गोलार्द्ध में ही मिलती हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में सिर्फ दक्षिणी ध्रुवों पर मिलती हैं यद्यपि हल्के रूप में रॉस्बी तरंग (Rossby Waves) के रूप में ये अन्य अंक्षाशों के ऊपर भी मिलती हैं। इन जेट धाराओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण पृथ्वी की सतह पर तापमान में अंतर व उससे उत्पन्न वायुदाब प्रवणता (Pressure Gradient) है।

- **जेट वायुधाराएँ पाँच प्रकार की होती हैं-**

  - ✓ **ध्रुवीय वाताग्र जेट स्ट्रीम-** इसका निर्माण धरातलीय ध्रुवीय एवं उष्णकटिबंधीय वायुराशियों के सम्मिलन क्षेत्र में 40^0 - 60^0 अक्षांश के ऊपर होता है। ये अनियमित वायु राशियाँ पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती है।
  - ✓ **ध्रुवीय जेट राशि-** इसका निर्माण समतापमंडल में शीत ध्रुव के ऊपर अत्याधिक ताप प्रवणता के कारण शीत काल में होता है।
  - ✓ **उष्णकटिबंधीय पूर्वी जेट स्ट्रीम-** इनका निर्माण ऊपर क्षोभमंडल में भारत एवं अफ्रीका के ऊपर ग्रीष्मकाल में होता है। तिब्बत के पठार के ऊष्मण का इसके निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय मानूसन में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके कारण भारत में संवहनीय वर्षा होती है।
  - ✓ **उपोष्ण कटिबंधीय पछुआ पवन-** यह उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायु दाब की पेटी के ऊपर क्षोभमंडल में होती है। इसका प्रवाह पश्चिम से पूर्व की ओर होता है।
  - ✓ **स्थानीय जेट स्ट्रीम-** इनका निर्माण स्थानीय तापीय एवं गतिकीय दशाओं के कारण होता है। इनका महत्त्व स्थानीय है।

जेट-स्ट्रीम का महत्त्व (Significance of Jet-Stream)

- जेट स्ट्रीम के कारण धरातलीय (निम्न तलीय) चक्रवातों एवं प्रति

चक्रवातों के स्वरूप में परिवर्तन होने से स्थानीय मौसम में उतार-चढ़ाव (बाढ़-सूखा) होता रहता है।

- जेट-स्ट्रीम के कारण क्षोभमंडल के ऊपरी भाग में क्षैतिज अभिसरण (Convergence) तथा अपसरण (Divergence) होने लगता है।
- जब धरातलीय शीतोष्ण चक्रवातों के ऊपर उच्चस्तरीय क्षोभमंडलीय जेट-स्ट्रीम की उपस्थिति होती है तो ये चक्रवात अधिक प्रबल एवं तूफानी हो जाते हैं तथा सामान्य से अधिक वृष्टि प्रदान करते हैं।
- जेट-स्ट्रीम में वायु का लम्बवत् संचार दो रूपों में होता है। चक्रवातों में हवा ऊपर उठती है तथा प्रतिचक्रवातीय वायु प्रणाली में हवा नीचे बैठती है।

एल-नीनो

एल-नीनो उष्ण कटिबंधीय प्रशांत महासागर के तापमान तथा वायुमंडलीय दशा में आने वाला एक परिवर्तन है जो वैश्विक मौसमी घटना को प्रभावित करता है। प्रत्येक पाँच से सात साल के अंतराल पर पूर्वी प्रशांत महासागर के जलस्तर के तापमान में वृद्धि होती है। इससे पेरू एवं इक्वेडोर के तट के समानांतर प्रशांत महासागर में उत्तर से दक्षिण की ओर एक गर्म जलधारा प्रवाहित होने लगती है।

- इससे ऑस्ट्रेलिया तथा इंडोनेशिया के आस-पास हिंद महासागर में सतही दबाव में वृद्धि होने लगती है तथा पश्चिमी प्रशांत महासागर में व्यापारिक पवनें कमजोर पड़ने लगती हैं और यह पूरब की ओर मुड़ने लगती है। इसके कारण हिन्द महासागर तथा पश्चिमी प्रशांत महासागर क्षेत्र से गर्म जलधारा पूर्वी प्रशांत महासागर की ओर गतिशील हो जाता है। इससे भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण-पूर्वी चीन तथा पश्चिमी प्रशांत के परम्परागत वर्षा वाले क्षेत्र में मानसून कमजोर हो जाता है तथा यहाँ भयंकर सूखे का प्रकोप छा जाता है। इसके विपरीत शुष्क क्षेत्र वाले पूर्वी प्रशांत क्षेत्र में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

ला-नीना

ला-नीना, एल-नीनो की विपरीत स्थिति है। ला-नीना के आगमन से पश्चिम प्रशांत महासागर के तापमान में वृद्धि होती है। इससे प्रशांत महासागर तथा हिन्द महासागर के क्षेत्र में बसे देशों में अच्छी वर्षा होती है। ला-नीना में समुद्री तापमान, वायु प्रणाली तथा मौसमी तंत्र में ऐसे बदलाव आते हैं जो एल-नीनो के विपरीत होते हैं। एल-नीनो से जहाँ सूखे का प्रभाव ज्यादा होता है, वहीं ला-नीना अत्यधिक वर्षण के लिए जानी जाती है।

स्थानीय हवाएँ

स्थानीय धरातलीय बनावट, तापमान एवं वायुदाब की विशिष्ट स्थिति के कारण सम्भवतः प्रचलित पवनों के विपरीत प्रवाहित होने वाली हवाएँ **'स्थानीय हवाओं'** के रूप में जानी जाती हैं। इनका प्रभाव अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रों पर पड़ता है तथा ये क्षोभमंडल की सबसे निम्नवर्ती परतों में ही सीमित रहती हैं। इन हवाओं की स्वभावगत विशेषताएँ एवं उनके प्रभाव विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं।

विश्व की प्रमुख स्थानीय हवाएँ

- **चिनूक-** रॉकी पर्वत के ढाल के सहारे चलने वाली **गर्म एवं शुष्क हवा** (संयुक्त राज्य अमेरिका)। इस हवा का औसत तापक्रम 40^0F होता है। इस हवा के आगमन से तापक्रम में अचानक वृद्धि हो जाती है तथा कभी-कभी तो चन्द मिनटों में तापक्रम 34^0F तक बढ़ जाता है जिसके फलस्वरूप धरातल पर बर्फ अचानक पिघलने लगती है। इस कारण इस पवन को **हिमभक्षी** (Snow Eater) भी कहते हैं।
- **फॉन- आल्पस पर्वत** के उत्तरी ढाल से नीचे उतरने वाली **गर्म एवं शुष्क हवा** (यूरोप) है जिसका सर्वाधिक प्रभाव स्विट्जरलैंड में पाया जाता है जो अंगूर को पकाने में उपयोगी होती है।
- **सिरॉको-** सहारा मरुस्थल में भूमध्य सागर की ओर चलने वाली गर्म हवा है।

- **इसके अन्य नाम हैं-**

  ✓ खमसिन-मिस्र
  ✓ गिबिली-लीबिया
  ✓ चिली-ट्यूनीशिया
  ✓ सिरॉको-इटली
  ✓ लेबेक-स्पेन।

- सहारा मरुस्थल से इटली में प्रवाहित होने वाली सिराको पवन बालू के कणों से युक्त होती है। भूमध्य सागर से नमी धारण करने के बाद यह जब इटली में वर्षा करती है तब लाल बालू के कण नीचे बैठने लगते हैं और ऐसा लगता है कि **'रक्त वर्षा'** हो रही है। इस प्रकार की वर्षा को **इटली में रक्त की वर्षा** (Blood Rain) कहते हैं।
- **सिमूम (Simoom)-** यह **अरब** के रेगिस्तान में चलने वाली **गर्म एवं शुष्क** हवा है।
- **हरमट्टन (Harmattan)-** यह **सहारा रेगिस्तान** से उत्तर-पूर्व दिशा में चलने वाली गर्म एवं शुष्क हवा है। गिनी तट पर इस हवा को **डॉक्टर हवा** के नाम से जाना जाता है क्योंकि यह वायु इस क्षेत्र के निवासियों को आर्द्र मौसम से राहत दिलाती है।
- **ब्रिकफील्डर/ब्रिकफील्डर्स- ऑस्ट्रेलिया** के विक्टोरिया प्रांत में चलने वाली **शुष्क हवा**।
- **साण्टा अना (Santa Ana)- दक्षिण केलिफोर्निया** राज्य (सं. रा. अमेरिका) में साण्टा अना घाटी से चलने वाली **गर्म तथा शुष्क हवा है।**

संकरी घाटियों से बहने वाली गर्म एवं शुष्क हवाओं के स्थानीय नाम-

- ✓ **यामो (Yamo)**- जापान।
- ✓ **जोण्डा (Zonda)**- अर्जेंटीना (ऐण्डियन घाटी से)।
- ✓ **ट्रैमोण्टेन (Tramontane)**- मध्य यूरोप की घाटियों में।

- **नॉर्वेस्टर/नारवेस्टर (Norvester)**- **न्यूजीलैंड** में उच्च पर्वतों से उतरने वाली गरम, **शुष्क तथा धूल** भरी हवा है। यह गंभीर धूलभरी आंधियाँ उत्पन्न करती है।
- **शामल (Shamal)**- **मेसोपोटामिया (ईराक) तथा फारस की खाड़ी** में चलने वाली **गर्म एवं शुष्क** उत्तर-पूर्वी हवा है।
- **ब्लैक रोलर (Black Roller)**- **उत्तरी-अमेरिका** की द. पश्चिम या उत्तर-पश्चिम में चलने वाली **गर्म एवं धूल भरी** हवा है।
- **मिस्ट्रल (Mistral)**- **रोनघाटी (फ्रांस)** में जाड़े में चलने वाली **ठंडी हवा** है।
- **कुरान**- सोवियत रूस तथा मध्य साइबेरिया में उत्तर-पूर्व से चलने वाली अत्यधिक सर्द हवाओं को कुरान कहते है।
- **पुर्गा**- रूसी टुंड्रा में चलने वाली बर्फीली आंधियाँ।
- **बाइस**- फ्रांस में चलने वाली अति ठंडी हवा।
- **लेबेण्डर**- दक्षिणी स्पेन में पूर्व से पश्चिम चलने वाली ठंडी हवा।
- **जोण्डा**- अर्जेंटाइना की गर्म हवा।
- **लू**- उत्तरी भारत में गर्मियों में उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिम से पूर्व की ओर चलने वाली प्रचंड तथा शुष्क हवाओं को 'लू' कहते हैं।
- **बोरा (Bora)**- **यूगोस्लाविया** के एड्रियाटिक तट पर चलने वाली **ठंडी हवा** है।
- **ट्रैमोण्टाना (Tramontana)**- उत्तरी इटली में चलने वाली ठंडी हवा है।
- **बर्गस (Bergs)**- दक्षिण अफ्रीका में जाड़े में चलने वाली गर्म हवा है जो आंतरिक पठार से तटीय भाग की ओर बहती है।
- **पोनेन्टी (Ponente)**- भूमध्य सागरीय क्षेत्रों विशेषकर कोर्सिको तट तथा फ्राँस में चलने वाली शुष्क तथा ठंडी हवा है।
- **पैम्पेरो (Pampero)**- अर्जेंटीना तथा उरुग्वे के पम्पास क्षेत्र में चलने वाली रैखिक प्रचंड वायु (Line Squall) है। यह एक ठण्डी ध्रुवीय वायु है, जो चक्रवात के गुजर जाने के पश्चात चलती है।
- **पैपेगयो (Papagayao)**- मैक्सिको के तट पर चलने वाली शीतल, शुष्क तथा तीव्र हवा है।
- **टेरल (Terral)**- पेरू एवं चिली के पश्चिमी तटों पर चलने वाला समीर है।
- **जोरन (Joran)**- जूरा पर्वत से जेनेवा झील तक रात्रि में चलने वाली शीतल एवं शुष्क हवा है।
- **नार्दर (Norther)**- टेक्सास राज्य (संयुक्त राज्य अमेरिका) में चलने वाली शुष्क एवं शीतल हवा है। इसमें तापमान 24 घंटों में 20^0C तक कम हो जाता है। इससे उपज को भी हानि पहुँचती है।
- **सॉमन (Somun)**- ईरान में कुर्दिस्तान पर्वत में उत्तर-पश्चिमी दिशा में चलने वाली गर्म हवा है।
- **काराबुरॉन (Caraburon)**- ग्रीष्म के प्रारंभ में तारिम बेसिन में चलने वाली गर्म एवं शुष्क हवा है।
- **कालिक पवन (Temporals)**- मानसून प्रकार की प्रबल दक्षिणी-पश्चिमी हवा, जो ग्रीष्मकाल में मध्य अमेरिका के प्रशान्त महासागरीय तट पर चलती है।
- **विरजोन (Virozon)**- पेरू तथा चिली के पश्चिमी तटों पर चलने वाली समुद्री समीर।
- **वेण्डावेल्स (Vendavales)**- जिब्राल्टर जल-सन्धि तथा स्पेन के पूर्वी तट से सुदूरवर्ती क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले अवदाबों से संबंधित तीव्र दक्षिणी-पश्चिमी हवा, जो प्रायः शीतकाल में तीव्र वर्षा के लिए उत्तरदायी होती है।
- **सुमात्र (Sumatra)**- मलक्का जलसंधि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली रेखीय प्रचंड हवा, जो सामान्यतया दक्षिण-पश्चिम मानसून की अवधि में रात्रि के समय अचानक प्रवाहित होती है तथा तड़ित-झंझावात का रूप धारण कर लेती है।
- **केटाबेटिक पवन (Katabatic Wind)**- यह स्थानीय पवन प्रायः विकिरण द्वारा ठंडी होकर रात्रि के समय पर्वतीय ढालों से नीचे की ओर बहती है। यह ठंडी वायु के प्रवाह से भी उत्पन्न होती है, जो **हिम टोपों** (Ice-Caps) के ढालों से नीचे चलती है।
- **सदर्न बर्स्टर (Southern Burster)**- ऑस्ट्रेलिया के न्यू साउथवेल्स प्रांत में चलने वाली प्रबल शुष्क पवन, जिसके कारण वहाँ का तापमान काफी कम हो जाता है।
- **सीस्तान (Seistan)**- पूर्वी ईरान के सीस्तान प्रांत में ग्रीष्म काल में चलने वाली तीव्र उत्तरी हवा, जिसकी गति कभी-कभी 110 किमी. प्रति घंटा तक हो जाती है, को **'120 दिन का पवन'** के नाम से जाना जाता है।
- **नेवाडो (Nevados)**- दक्षिण अमेरिका के एंडीज पर्वतीय हिम क्षेत्रों से इक्वेडोर की उच्च घाटियों में नियमित रूप से प्रवाहित होने वाली हवा, जो एक एनाबेटिक हवा है। यह पर्वतीय वायु के रात्रि-विकिरण बर्फ के संपर्क से ठंडी हो जाने के कारण ढालों से नीचे की ओर प्रवाहित होती है।
- **मैस्ट्रो (Maestro)**- भूमध्यसागरीय क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग में चलने वाली उत्तरी-पश्चिमी हवा, जो यहाँ उत्पन्न होने वाले किसी अवदाब के पश्चिमी भाग में अधिक तीव्रता से प्रवाहित होती है।
- **हबूब (Haboob)**- उत्तरी एवं उत्तर-पूर्वी सूडान, विशेषकर खारतूम के समीप चलने वाली एक प्रकार की धूल भरी आँधी, जिसके कारण दृश्यता कम हो जाती है तथा कभी-कभी तड़ित-झंझावतों के साथ भारी वर्षा भी हो जाती है। यह विशेषकर मई तथा सितम्बर के महीनों में दोपहर के बाद चलती है।

- **ग्रेगेल (Gregale)**- दक्षिणी यूरोप एवं भूमध्यसागरीय क्षेत्रों के मध्य भाग में उत्तर-पश्चिम अथवा उत्तर-पूर्व दिशा से शीत ऋतु में प्रवाहित होने वाली तीव्र पवन।
- **फ्राइजेम (Friagem)**- ब्राजील के उष्णकटिबंधीय केम्पोज क्षेत्र में प्रतिचक्रवात उत्पन्न हो जाने के कारण आने वाली तीव्र शीत-लहर जो मई या जून के महीनों में प्रवाहित होकर इस क्षेत्र के तापमान को 10^0 सेंटीग्रेड तक घटा देती है।
- **बुरान अथवा पूर्गा (Buran or Purga)**- रूस तथा मध्यवर्ती एशिया में चलने वाली उत्तरी-पूर्वी हवा जो अधिकांशतः शीतकाल में चलती है और हिम-प्रवाह को जन्म देती है।
- **बाग्यो (Baguio)**- फिलीपींस द्वीपसमूह में आने वाले उष्णकटिबंधीय चक्रवातों को बाग्यो के नाम से जाना जाता है।
- **काल बैसाखी**- भारत के गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान में प्रचण्ड तूफान, भारी वर्षा व ओले के साथ गर्मी की ऋतु में इसका अनुभव होता है। आम की फसल के पकने के दौरान चलने के कारण इसे आम्र बौछार भी कहा जाता है। यह चाय व जूट की उपज हेतु लाभप्रद होती है।

वायुदाब व पवन: एक नजर में

- पवन की उत्पत्ति का कारण वायुदाब में अंतर है।
- वायुदाब को **बैरोमीटर** से नापा जाता है।
- बैरोमीटर के पठन में तेजी से गिरावट तूफानी मौसम का संकेत देती है।
- **बैरोमीटर के पठन का पहले गिरना फिर धीरे-धीरे बढ़ना वर्षा की स्थिति का द्योतक है।**
- प्रचलित पवनें या सनातनी पवनें वर्ष भर एक ही दिशा में गतिमान रहती हैं।
- दक्षिणी अक्षांश के क्षेत्रों अर्थात् उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंधों से भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब कटिबंध की ओर दोनों गोलार्द्धों में वर्ष भर निरन्तर प्रवाहित होने वाली पवन को व्यापारिक पवन कहा जाता है।
- भूमध्य रेखा के समीप व्यापारिक पवनें मिलकर घनघोर वर्षा करती है।
- पछुआ पवनों को दक्षिणी गोलार्द्ध में इनकी प्रचंडता के कारण इन्हें 40^0 से 45^0 अक्षांशों के मध्य **गरजता चालीसा** (Roaring Forties) 50^0 के समीपवर्ती क्षेत्र में **प्रचंड पचासा** (Furious Fifties) तथा 60^0 के समीपवर्ती क्षेत्र में **चीखता साठा** (Shrieking sixties) कहा जाता है।
- मानसूनी हवाएं भूमंडल के पवन तंत्र का रूपांतरण है।
- स्थलीय व सागरीय समीर तथा पर्वत एवं घाटी समीर स्थानीय पवनों के उदाहरण हैं। **चिनूक रॉकी पर्वत श्रेणी ढाल के सहारे चलने वाली गर्म व शुष्क हवा है।** इसे **हिमभक्षी** भी कहते हैं।
- **फॉन आल्प्स पर्वत** के उत्तरी ढाल से नीचे उतरने वाली **शुष्क एवं गर्म** हवा है। अंगूरों को पकाने में सहायक है (ऑस्ट्रिया, जर्मनी, स्विट्जरलैंड)।
- सिरॉको सहारा मरुस्थल से भूमध्य सागर की ओर चलने वाली गर्म हवा है।
- **हरमट्टन पवन को डॉक्टर विंड** भी कहते हैं क्योंकि यह गिनी तट के निवासियों को आर्द्र मौसम व बीमारियों से छुटकारा दिलाती है।
- ब्रिकफिल्डर ऑस्ट्रेलिया के विक्टोरिया प्रांत में चलने वाली गर्म तथा शुष्क हवा है।
- मिस्ट्रल रोनघाटी (फ्रांस) में जाड़े में चलने वाली ठंडी हवा है।
- दोनों गोलार्धों में 30^0-35^0 **के बीच वायुदाब पेटी को अश्व अक्षांश** कहते हैं।
- सागरीय समीर दिन के 1 से 2 बजे तक सर्वाधिक सक्रिय रहता है।
- **फॉन पवन** का सर्वाधिक प्रभाव स्विट्जरलैंड में होता है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

वायुराशि, वाताग्र एवं चक्रवात
(Air Mass, Fronts and Cyclones)

वायुराशि (Air Mass)

वायुमंडलीय हवा की ऐसी विशाल राशि जिसके भौतिक गुणों विशेषकर तापमान एवं आर्द्रता, में विभिन्न ऊँचाइयों पर क्षैतिज दिशा में लगभग समानता पायी जाती है, **वायुराशि** कहते हैं।

- सामान्यतः वायुराशि काफी बड़े क्षेत्र (सैकड़ों वर्ग किमी) पर विस्तृत होती है एवं इसमें अनेक परतें पायी जाती हैं। इसकी प्रत्येक परत की दशा प्रत्येक स्थान पर एक समान होती है। वायुराशि के समान गुणों को धारण करने के लिए अपेक्षित समय तक एक ऐसे धरातल पर स्थिरतापूर्वक स्थायी रहना आवश्यक होता है, जिसकी भौतिक दशाएँ सर्वत्र एक समान हों।
- वे क्षेत्र, जहाँ समान गुण धारण करने वाली वायु राशियाँ उत्पन्न होती हैं, वायुराशियों के उद्गम क्षेत्र, स्रोत अथवा उत्पत्ति प्रदेश कहे जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के लिए एक विस्तृत स्थलीय धरातल अथवा महासागरीय भाग काफी उपयुक्त होता है, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्र एक समान होती है। वायुराशियों की व्यवस्थित उत्पत्ति के लिए हवा का ऊपर से नीचे उतरना भी आवश्यक होता है, क्योंकि समान गुण वाले धरातल पर उतरने वाली वायु धीरे-धीरे उसके गुणों को धारण कर लेती है और एक लम्बे समय तक उनको धारण किये रहती हैं।
- जब कोई वायुराशि किसी ऐसे क्षेत्र में पहुँच जाती है, जहाँ की धरातलीय दशाएँ उसके स्रोत से भिन्न होती हैं, तो उसकी ऊष्मा तथा आर्द्रता संबंधी गुणों में परिवर्तन होने लगता है।

वायुराशियों के प्रकार (Types of Air Mass)

वायुराशियाँ मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार की होती हैं-

- **शीतल या ठंडी वायुराशि (Kalt or Cold Air mass)**- जब किसी वायुराशि का तापमान उसके स्थिर रहने या संचरण करने वाले धरातलीय क्षेत्र से तुलनात्मक रूप में कम होता है, तब उसे शीतल या ठंडी वायुराशि की संज्ञा दी जाती है। ठंडी वायुराशि की उत्पत्ति उपध्रुवीय अथवा आर्कटिक क्षेत्र में होती है।
- **गर्म या उष्ण वायुराशि (Warm Air mass)**- जब किसी वायुराशि का तापमान उसके स्थिर रहने या संचरण करने वाले धरातलीय क्षेत्र से तुलनात्मक रूप से अधिक होता है, तब उसे गर्म या उष्ण वायुराशि कहा जाता है। इस तरह की वायुराशि नीचे से ठंडी हो जाती है, जिससे उसका निचला स्तर स्थिर होने लगता है, फलस्वरूप उसमें लंबवत् गति का संचरण होने लगता है। इस वायुराशि की उत्पत्ति उपोष्ण कटिबंध के प्रतिचक्रवात क्षेत्र में होती है।
- जब किसी वायुराशि का तापमान उस क्षेत्र की अपेक्षा अधिक होता है, जिस पर वह स्थित होती है या संचरण कर रही होती है, तब उसे **गर्म** या **उष्ण वायुराशि** कहा जाता है। गर्मियों में इन वायुराशियों का खिसकाव दक्षिणी महाद्वीपों से खिसक कर अफ्रीका के सहारा में हो जाता है। **उत्पत्ति क्षेत्र** के आधार पर भी वायुराशियों का वर्गीकरण किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं-
- **उष्ण कटिबंधीय वायुराशि (Tropical Air Mass)**- इनकी उत्पत्ति महासागरीय एवं महाद्वीपीय दोनों प्रकार के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में होती है।
- **ध्रुवीय वायुराशि (Polar Air Mass)**- इनकी उत्पत्ति महासागरीय एवं महाद्वीपीय ध्रुवीय क्षेत्रों में होती हैं। ज्ञातव्य है कि महासागरीय वायुराशियों में आर्द्रता की मात्र अधिक पायी जाती है जबकि महाद्वीपीय वायुराशियाँ शुष्क प्रकृति वाली होती हैं एवं इनसे कम मात्र में वृष्टि की प्राप्ति होती है।

वायुराशियों को स्थिरता एवं अस्थिरता के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है-

- **स्थिर वायुराशि (Stable Air Mass)**- जब किसी वायुराशि की सबसे निचली परत का तापमान उस धरातलीय सतह से अधिक होता है जिस पर वह संचरण कर रही होती है तब वह नीचे से ठंडी होने लगती है एवं उसमें स्थिरता आने लगती है।
- **अस्थिर वायुराशि (Unstable Air Mass)**- जब किसी वायुराशि की निचली परत का तापमान उस धरातलीय सतह से कम होता है, जिस पर वह संचरण करती है, तो उसमें नीचे से गर्म होने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इससे वायुराशि में लम्बवत् गति का आविर्भाव हो जाता है तथा वह अस्थिर हो जाती है।
- उपर्युक्त संपूर्ण वर्गीकरणों को सम्मिलित कर देने के पश्चात् धरातल पर 16 प्रकार की वायुराशियों की उपस्थिति स्वीकार की गयी है। विभिन्न प्रकार की वायु राशियों के वर्गीकरण हेतु अक्षर चिह्न पदनाम का प्रयोग किया जाता है जैसे-

वाताग्र (Fronts)

दो परस्पर विरोधी वायु राशियों के मध्य निर्मित ढलुआ सीमा सतह को वाताग्र कहते हैं जिसमें प्रायः दोनों प्रकार की वायुराशियों के गुणधर्म पाये जाते हैं।

- जब दो विपरीत तापक्रम वाली वायु राशि एक-दूसरे से मिलने पर एक रेखा के सहारे क्षैतिज दिशा में फैलती है तब जिस रेखा के सहारे हवाएँ बाहर की ओर फैलती हैं उसे बाह्य-प्रवाह अक्ष रेखा कहते हैं।

वाताग्र प्रदेश (Frontal Zone)

दो विपरीत दिशाओं से अभिसरण (Convergence) करने वाली हवाओं के बीच स्थित संक्रमण पेटी को **वाताग्र प्रदेश** की संज्ञा दी जाती है।

- इस संक्रमण क्षेत्र में दोनों हवाओं के गुण-धर्मों का समावेश पाया जाता है। वाताग्र की उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रक्रिया **वाताग्र उत्पत्ति** (Frontogenesis) कहलाती है जबकि इनके समाप्त या नष्ट होने की प्रक्रिया को **वाताग्र क्षय** (Frontolysis) कही जाती है।

धरातल के वाताग्र प्रदेश

यदि सम्पूर्ण पृथ्वी पर होने वाले पवन-प्रवाह पर ध्यान दिया जाये तो हवाओं के अभिसरण एवं वाताग्रों की उत्पत्ति से संबंधित निम्नलिखित तीन प्रदेशों की स्पष्ट स्थिति पायी जाती है-

- **ध्रुवीय वाताग्र प्रदेश-** भू-धरातल पर 30^0 से 45^0 अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में ध्रुवीय क्षेत्रों से आने वाली ठंडी एवं भारी तथा उष्ण कटिबंधीय गर्म एवं हल्की हवाओं का अभिसरण पाया जाता है, जिसके कारण ध्रुवीय वाताग्रों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार के वाताग्र जाड़े में काफी शक्तिशाली होते हैं जबकि गर्मियों में इनका प्रभाव कम हो जाता है। इस प्रकार के वाताग्रों का विस्तार मुख्य रूप से **उत्तरी अटलांटिक** एवं **उत्तरी प्रशान्त महासागरीय** क्षेत्रों में पाया जाता है।
- **आर्कटिक वाताग्र प्रदेश-** आर्कटिक क्षेत्र भी वाताग्र उत्पत्ति के आदर्श क्षेत्र माने जाते हैं, क्योंकि यहाँ महाद्वीपीय हवाओं के साथ ध्रुवीय सागरीय वायुराशियों का अभिसरण होता है। चूँकि इन दोनों प्रकार की वायुराशियों का तापमान अधिक भिन्न नहीं होता है, अतएव इनसे निर्मित होने वाले वाताग्रों की सक्रियता कम होती है। इस प्रकार के वाताग्र **यूरेशिया** एवं **उत्तरी अमेरिका** के उत्तरी भागों में अधिक बनते हैं।
- **अंतः उष्णकटिबंधीय वाताग्र प्रदेश-** वाताग्र उत्पत्ति का यह क्षेत्र भूमध्यरेखीय निम्न वायुदाब कटिबंध में पाया जाता है जहाँ उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पश्चिमी व्यापारिक हवाएँ अभिसरण करती हैं। इसके अभिसरण के कारण ही यहाँ हवाएँ संवहनीय धाराओं के रूप में उठकर घनघोर वर्षा कराती हैं। वाताग्र की उत्पत्ति का यह क्षेत्र गर्मियों में उत्तर तथा शीतकाल में दक्षिण की ओर स्थानांतरित होता रहता है जिसके कारण ऐसे वाताग्रों का प्रभाव क्षेत्र भी परिवर्तित होता रहता है।

वाताग्र के प्रकार

सामान्यतया वाताग्रों को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है-

- **उष्ण वाताग्र (Warm Front)-** जब उष्ण वायुराशि एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश की ओर संचालित होती है तो वह गर्म एवं हल्की होती है तथा उसका स्वभाव आक्रामक होता है एवं वह उस प्रदेश में पहले से विद्यमान ठंडी वायुराशि के ऊपर चढ़ जाती है। इस प्रकार से निर्मित वाताग्र को **उष्ण वाताग्र** कहा जाता है।
- उष्ण वाताग्र का ढाल हल्का होने से वर्षा लम्बे समय तक एवं अधिक क्षेत्र पर विस्तृत एवं हल्की होती है। उष्ण वाताग्र में बादलों में कई बार परिवर्तन होता है। किसी स्थान पर उष्ण वाताग्र आने का सबसे पहला चिह्न पक्षाभ मेघों का प्रकट होना है। कुछ ही देर में ये पक्षाभ स्तरीय तथा उच्च स्तरीय मेघ में परिवर्तित हो जाते हैं। अगले दिन बादल बहुत नीचे हो जाते हैं और वर्षा स्तरीय मेघ छा जाते हैं। आकाश पूर्णतः बादलों से ढक जाता है। तीसरे दिन वर्षा शुरू हो जाती है जो लगभग दो दिन तक लगातार होती है इसके बाद कुहरा छा जाता है। जब हवा दक्षिण-पश्चिम की ओर घूमती है तो आकाश साफ और मौसम गर्म व आर्द्र हो जाता है।
- **शीत वाताग्र (Cold Front)-** जब किसी क्षेत्र में ठंडी एवं भारी वायु आक्रामक स्वरूप वाली होती है, तब वह गर्म तथा हल्की वायुराशि को ऊपर उठाने में समर्थ हो जाती है। इस क्रिया से निर्मित वाताग्र को शीत वाताग्र कहते हैं। शीत वाताग्र का ढाल अधिक होता है। यदि यह वाताग्र तेजी से आगे बढ़ता है तो मौसम साफ होता है अन्यथा रुकने पर आकाश में कपासी मेघ के कारण वर्षा तीव्र गति से होती है, ताप कम एवं दाब अधिक होता है। इसमें वर्षा बिजली की चमक तथा बादलों की गर्जन के साथ होती है। कभी-कभी ओले भी पड़ते हैं। **शीत वाताग्र** गुजर जाने के पश्चात वर्षा समाप्त हो जाती है तथा बादल छटने लगते हैं। इसके पश्चात उत्तर-पश्चिमी ठंडी हवा चलने लगती है।
- **अधिविष्ट वाताग्र (Occluded Front)-** अधिविष्ट वाताग्र का निर्माण तब होता है जब शीत वाताग्र तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए उष्ण वाताग्र से मिल जाता है एवं गर्म तथा हल्की वायुराशि का धरातल से सम्पर्क पूर्णतः समाप्त हो जाता है।
- **स्थायी वाताग्र (Stationary Front)-** जब दो वायुराशियाँ,

जिनका स्वभाव एक-दूसरे के विपरीत होता है, क्षैतिज रूप में एक-दूसरे के समानांतर प्रवाहित होती हैं एवं इनमें ऊपर उठने की क्रिया नहीं पायी जाती, तब दोनों के बीच निर्मित वाताग्र को **स्थायी वाताग्र** की संज्ञा दी जाती है।

चक्रवात (Cyclones)

वायुमंडल में मिलने वाले महत्त्वपूर्ण पवन विक्षोभों को चक्रवात (Cyclones) की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, जो वास्तव में निम्न वायुदाब के क्षेत्र होते हैं और जिनके चारों ओर संकेंद्रीय सम वायुदाब रेखाएँ पायी जाती हैं। इनमें अन्दर से बाहर की ओर जाने पर वायुदाब क्रमशः बढ़ता जाता है। अतएव **परिधि से केंद्र की ओर तीव्रगति से पवन का संचार होता** है। चक्रवात प्रायः गोलाकार, अंडाकार अथवा अंग्रेजी भाषा के **'वी'** (V अक्षर) के आकार के होते हैं।

- चक्रवातों को मौसम एवं जलवायु की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि ये जिस स्थान पर पहुँचते हैं वहाँ वर्षा तथा तापमान की मात्र में अचानक परिवर्तन आ जाता है। चक्रवातों में वायु का संचार उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के प्रतिकूल तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में इनकी अनुकूल दिशा में होता है। चक्रवात का विकास सामान्यतः पछुआ पवनों में ही होता है।
- चक्रवातों में **सर्वाधिक गति टॉरनेडो** की होती है। टॉरनेडो नामक चक्रवात संयुक्त राज्य अमेरिका की मिसीसिपी घाटी की चारित्रिक विशेषता है। इस प्रकार का चक्रवात पश्चिमी अफ्रीका के गिनी तट पर भी आता है।

चक्रवातों के प्रकार

प्रायः स्थिति के आधार पर चक्रवातों को दो वर्गों में रखा जाता है-

शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवात (Temperate Cyclones)

- शीतोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में ध्रुवीय क्षेत्रों से आने वाली ठंडी एवं भारी तथा दूसरी ओर से प्रचलित पछुआ पवनों के रूप में दो भिन्न स्वभाव वाली पवनों का सम्मिलन होता है, किन्तु ये पवनें मिश्रित न होकर अपनी तापमान एवं आर्द्रता संबंधी विभिन्नता को बनाये रखती हैं, जिसके कारण इनके बीच सीमांत या वाताग्र का निर्माण हो जाता है। इसी वाताग्र क्षेत्र में शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति होती है।
- इन चक्रवातों की उत्पत्ति मध्य अक्षांशों में होती है, अतएव ये **35^0 से 65^0** अक्षांशों के बीच ही चला करते हैं। इन चक्रवातों का **आकार गोलाकार अथवा अंडाकार** होता है। इनकी आंतरिक तथा बाह्य वायुदाब रेखाओं के मान में 10 से 20 मिलीबार का अंतर मिलता है जबकि कभी-कभी 35 मिलीबार का अन्तर भी पाया जा सकता है। इनकी सबसे कम वायुदाब की रेखा प्रायः केंद्र के समीप पायी जाती है। इनका विस्तार 1,000 से 2,000 किमी. व्यास वाला भी पाया जाता है किंतु अधिकांश चक्रवात कम क्षेत्र पर ही विस्तृत होते हैं।
- शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवात प्रचलित पवनों की दिशा में (पश्चिम से पूरब) आगे बढ़ते हैं। ये ग्रीष्मकाल में 32 किमी. प्रति घंटा तथा जाड़े में 48 किमी. प्रति घंटा की औसत चाल से आगे बढ़ते हैं। चक्रवातों में तापमान सम्बन्धी परिवर्तन दिन विशेष एवं वर्ष के मौसम के अनुसार मिलता है। चक्रवातों के अग्रभाग अर्थात् वाताग्र का तापमान उसके पृष्ठ भाग की अपेक्षा अधिक रहता है।
- चक्रवात निम्न वायुदाब का केन्द्र होता है अतः इसमें बाहर से भीतर की ओर हवाओं की गति पायी जाती है। इसके केन्द्र तथा बाहर की ओर स्थित दाब में 10mb से 20mb तथा कभी-कभी 35mb का अंतर होता है। इसका व्यास अधिकतम 1920 किमी. तथा न्यूनतम 1040 किमी. होता है।
- केंद्रीय भाग में पहुँचने वाली हवाएँ ऊपर उठकर पुनः बाहर की ओर चली जाती हैं, जिससे उसके केन्द्र में सदैव निम्न वायुदाब का क्षेत्र बना रहता है। शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवातों के केंद्रीय निम्न वायुदाब क्षेत्र के उत्तर-पूर्व में उष्ण वाताग्र एवं उत्तर-पश्चिम में शीत वाताग्र उपस्थित रहता है। उष्ण वाताग्र वाले क्षेत्र में निरंतर सागरीय क्षेत्रों की उष्ण एवं आर्द्र हवाएँ चलती रहती हैं, जब ये हवाएँ ठंडी एवं भारी हवाओं से मिलती है, तब ऊपर उठ जाती है, जिससे घने काले वर्षा मेघों का निर्माण और भारी वर्षा तथा हिमपात होता है।
- शीतोष्ण चक्रवात आने के पूर्व ऊँचे भूसे के ढेर के समान पक्षाभ मेघ प्रायः चमरी मेघ (Mare's Tail) के रूप में पहले पश्चिमी क्षितिज पर दिखाई देते हैं। जैसे ही वताग्र निकट आता है, मेघ नीचे हो जाते हैं और उत्तरोत्तर पक्षाभ स्तरी, मध्य स्तरी और वर्षा स्तरी मेघ गहरे हो जाते हैं।
- धरातलीय असमानताओं के कारण इनका वाताग्र क्षेत्र अक्षांश रेखाओं के समानांतर न होकर थोड़ा विचलन लिए होता है। मध्यवर्ती अक्षांशों में ये वर्षा के प्रमुख कारण होते हैं और क्षेत्रीय तापमान के अनुसार इनसे वर्षा या हिमवृष्टि की प्राप्ति होती रहती हैं। शीतोष्णकटिबंध में प्रत्येक दो चक्रवातों के बीच प्रतिचक्रवात की उपस्थिति पायी जाती है। प्रतिचक्रवात के पहुँचते ही वायुदाब में वृद्धि हो जाती है तथा मौसम साफ एवं शुष्क हो जाता है।

शीतोष्ण चक्रवात के उत्पत्ति के केन्द्र

- उत्तरी अमेरिका के उत्तर-पूर्वी तटीय भाग से उत्पन्न शीतोष्ण चक्रवात पछुवा पवनों के साथ पूर्व दिशा की ओर जाते हुए यूरोप के मध्यवर्गी भाग तक पहुँचते-पहुँचते विलीन हो आते हैं।

- एशिया के उत्तर-पूर्व तथा पूर्वी तटीय भाग से उत्पन्न शीतोष्ण चक्रवात उत्तर-पूर्व दिशा की ओर गति करते हुए अल्यूशियन एवं उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तटीय भाग तक पहुँचते हुए विलीन हो जाते हैं।
- अटलांटिक महासागर से उत्पन्न शीतोष्ण चक्रवात भूमध्य सागर को पार करते हुए एशियाई तुर्की से प्रवेश कर ईरान, पाकिस्तान व पश्चिमी भारत तक अपना प्रभाव दिखाते हैं।

शीतोष्ण चक्रवात एवं मौसम की विभिन्न दशाएँ

- **चक्रवात का आगमन होना**
  - ✓ पक्षाभ व पक्षाभ स्तरी बादल दिखने लगते हैं।
  - ✓ चन्द्रमा व सूर्य के चारों ओर प्रभामंडल बन जाता है।
  - ✓ वायु का वेग मंद होने लगता है तथा वायुदाब गिरने लगता है।
  - ✓ चक्रवात के समीप आते-आते बादल घने व काले होने लगते हैं।
  - ✓ तापमान बढ़ता है तथा वायु की दिशा पूर्वी से बदल कर दक्षिणी-पश्चिमी होने लगती है।

- **उष्ण वाताग्र का आना**
  - ✓ मंद गति से परंतु अधिक देर तक विस्तृत वर्षा होती है।
  - ✓ समस्त आकाश में बादल छा जाते हैं।

- **उष्ण वृत्तांश का आना**
  - ✓ मौसम में अचानक तथा तीव्र परिवर्तन होता है।
  - ✓ वायु की दिशा दक्षिणी हो जाती है, आकाश साफ हो जाता है, तापमान बढ़ने लगता है व वायुदाब कम होने लगता है।
  - ✓ वर्षा पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है।

- **शीत वाताग्र का आना**
  - ✓ तापमान के गिरने के साथ सर्दी बढ़ने लगती है।
  - ✓ आकाश में बादल छा जाते हैं और वर्षा प्रारंभ हो जाती है।

- **शीत वाताग्र प्रदेशीय वर्षा**
  - ✓ आकाश में काले कपासी बादल छा जाते हैं तथा तीव्र वर्षा प्रारंभ हो जाती है।
  - ✓ वर्षा मूसलाधार, अल्पकालिक व कम विस्तृत होती है।
  - ✓ बिजली की चमक व बादलों की गरज के साथ तड़ित झंझा का आविर्भाव होता है।

- **शीत वृत्तांश का आना**
  - ✓ मौसम में अचानक परिवर्तन होता है।
  - ✓ आकाश मेघरहित, स्वच्छ हो जाता है।
  - ✓ तापमान में गिरावट व वायुदाब में वृद्धि हो जाती है।
  - ✓ चक्रवात विलीन हो जाता है।

शीतोष्ण चक्रवात का जीवन चक्र

यह जीवन चक्र 6 क्रमिक अवस्थाओं से संपन्न होता है-

- **पहली अवस्था-** गर्म व ठंडी हवाएँ एक-दूसरे के समानांतर चल स्थायी वाताग्र बनाती है।
- **दूसरी अवस्था-** दोनों हवाओं के एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर लहरनुमा वाताग्र का निर्माण होता है।
- **तीसरी अवस्था-** उष्ण व शीत वाताग्र के पूर्ण विकास से चक्रवात का निर्माण होता है।
- **चौथी अवस्था-** शीत वाताग्र के तेजी से आगे बढ़ने से उष्ण वृतांश संकुचित होने लगता है।
- **पाँचवीं अवस्था-** चक्रवात का अवसान प्रारंभ हो जाता है।
- **छठी अवस्था-** उष्ण वृतांश के विहीन होने से चक्रवात का अंत हो जाता है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात (Tropical Cyclones)

इस प्रकार के चक्रवातों की उत्पत्ति कर्क तथा मकर रेखाओं के बीच होती है, क्योंकि इस क्षेत्र में दोनों गोलार्द्ध से आने वाली व्यापारिक पवनों का अभिसरण होता है। दोनों व्यापारिक पवनों के बीच वाले तल को **अंतरा उष्णकटिबंधीय वाताग्र अथवा अंतरा उष्णकटिबंधीय मिलन तल** के नाम से जाना जाता है। शीतोष्णकटिबन्धीय चक्रवातों की भाँति इन चक्रवातों में उष्ण तथा शीत वाताग्रों का अभाव पाया जाता है, क्योंकि अंतरा उष्णकटिबंधीय वाताग्र के दोनों ओर की वायुराशियों के तापमान में कोई विशेष अंतर नहीं होता।

- उष्णकटिबंधीय चक्रवात का विस्तार मुख्य रूप से 5-15^0 अक्षांशों के मध्य दोनों गोलाद्धों में इनकी उत्पत्ति सागरों के पश्चिमी किनारे पर होती है, जहाँ पर उष्ण कटिबंधीय धाराएँ बहुत अधिक जलवाष्प की पूर्ति करती है। अधिकांश उष्णकटिबंधीय चक्रवात विषवुतरेखीय शांत पेटी में विकसित होते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में अगस्त-अक्टूबर एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में मार्च-अप्रैल में इनकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है।
- उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का व्यास सामान्यतः 150 से 750 किमी. तक पाया जाता है। कूछ चक्रवातों का व्यास 40 से 50 किमी. तक भी मिलता है, जिसमें समदाब रेखाएँ अत्यधिक पास-पास तथा सकेंद्रीय रूप में पायी जाती हैं। समदाब रेखाओं की समीपता से उच्च दाब-प्रवणता तथा तेज गति से बहने वाली हवाओं की उत्पत्ति होती है। इनके केन्द्र में स्थित बहुत ही कम वायुदाब के क्षेत्र को **चक्रवात की आँख**

(**Eye of the Cyclone**) कहा जाता है। इस भाग में हवाओं के नीचे उतरने के कारण यह भाग उष्ण एवं शांत रहता है। सभी प्रकार के उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में उसके केंद्र अर्थात् आँख के चारों ओर वायु की अधिकतम गति मिलती है। साधारण तौर पर ये व्यापारिक हवाओं के साथ पूर्व से पश्चिम दिशा में अग्रसर होते हैं। भूमध्य रेखा से 15^0 अक्षांशों तक इनकी भ्रमण दिशा पश्चिम, 15^0 से 30^0 तक ध्रुवों की ओर तथा इसके आगे पुनः पश्चिमी हो जाती है।

- सागरीय भाग के ऊपर इनकी गति सर्वाधिक होती है जबकि स्थलीय धरातल पर पहुँचने पर ये धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। इनके बने रहने के लिए जलवाष्प की लगातार आपूर्ति आवश्यक होती है जिसके स्थलभाग पर बाधित हो जाने के कारण ही ये समाप्त होते हैं। धरातलीय घर्षण बढ़ने से भी इस तंत्र में क्रियाशील बल असंतुलित हो जाता है। अतएव इनका निम्न वायुदाब क्षेत्र शीघ्रता से भर जाने के कारण ये समाप्त हो जाते हैं।
- प्रभाव की दृष्टि से ये चक्रवात **सर्वाधिक विनाशकारी** होते हैं और द्वीपीय तथा समुद्रतटीय बस्तियों को सर्वाधिक हानि पहुंचाते हैं। भारत के तटवर्ती क्षेत्रों में भी ग्रीष्मकाल के उत्तरार्द्ध या शरद ऋतु में ऐसे चक्रवातों के कारण भारी हानि उठानी पड़ती है। उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के सर्वाधिक भयंकर स्वरूपों को विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात में मौसमी दशाएँ

- आगमन के पूर्व वायु मंद हो जाती है, तथा तापमान बढ़ने लगता है।
- आकाश में पक्षाभ मेघ दिखाई देने लगते हैं।
- सागर में ऊँची तरंगें उठने लगती है।
- चक्रवात के आते ही आकाश में काले कपासी बादल छा जाते हैं तथा मूसलाधार वर्षा प्रारंभ हो जाती है।
- चक्रवात के केन्द्र के आने पर वायु शांत हो जाती है। आकाश मेघरहित व साफ हो जाता है तथा वर्षा रूक जाती है।
- केन्द्र के गुजरने के पश्चात पुनः घनघोर वर्षा प्रारंभ हो जाती है।
- चक्रवात के समाप्त होते ही आकाश से बादल हट जाते है तथा मौसम साफ हो जाता है।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के क्षेत्रीय नाम

चक्रवात	क्षेत्र
• हरिकेन	पश्चिमी द्वीप समूह के निकट (केरीबियन सागर)
• टॉरनेडो	दक्षिणी एवं पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका
• टाइफून	चीन, फिलीपींस एवं जापान
• विली-विली	ऑस्ट्रेलिया एवं मेडागास्कर
• चक्रवात	हिन्द महासागर

हरिकेन

हरिकेन पूर्वी प्रशांत महासागर में मैक्सिको, ग्वाटेमाला, होन्डुरस, निकारागुआ, कोस्टारिका के तटवर्ती भागों में बहुधा अगस्त से अक्टूबर के माह में आते हैं। एक शांत केंद्रीय क्षेत्र (चक्षु) जिसके चारों और उच्च गति (160 किमी/घंटा) से वायु परिक्रमण करती है, इसकी विशिष्टता होती है।

- हरिकेन का पूरा क्षेत्र 100 किमी. के व्यास में विभिन्नता लिये हुए होता है और अंध महासागर से पश्चिमी द्वीप समूह होते हुए दक्षिणी संयुक्त राज्य अमेरिका के तट से एक वक्रीय मोड़दार मार्ग के सहारे गतिशील होता है। ये अत्यधिक विनाशकारी होते हैं।

टॉरनेडो (Tornado)

- यह आकार की दृष्टि से लघुत्तम तथा प्रभाव के दृष्टिकोण से सर्वाधिक प्रलयकारी व प्रचण्ड चक्रवात होता है। इनकी उत्पत्ति सामान्यतया संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा कभी-कभी ऑस्ट्रेलिया में होती है। इनका आकार कीप की तरह होता है जिसमें पतला भाग धरातल से तथा चौड़ा भाग कपासी वर्षक मेघ से जुड़ा होता है। इसका व्यास 90 मीटर से 400 मीटर तक होता है तथा धूल, रेत व मलवे की अत्यधिक मात्र होने के कारण इसका रंग काला होता है। इसमें हवाओं की गति 400 किमी. प्रति घंटे से अधिक होती है। ये अक्सर बंसत एवं ग्रीष्म ऋतु में ही चला करते हैं। इसके कारण मकानों की छतें उड़ जाती है। वृक्ष, बिजली के खंभे, तार आदि उखड़ जाते हैं। ये अपार क्षति पहुंचातक हैं।

टाइफून

- चीन सागर और पश्चिमी प्रशांत महासागर में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों को टाइफून कहा जाता है। ये जून से दिसंबर के मध्य आते हैं। टाइफून की तीव्रता एवं परिणाम सामान्यतः हरिकेन से अधिक होता है। यह निम्न भार का गहरा तंत्र होता है, जिसमें तेज हवाएँ एवं भारी वर्षा होती है, जो उग्र पवनों को उत्पन्न करता है और भारी वर्षा करता है। ये प्रशांत महासागर के विशाल क्षेत्र में आते हैं जहाँ उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की आवृत्ति अधिक है।

चक्रवात

- हिंद महासागर में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों को 'चक्रवात' कहा जाता है। उत्तरी गोलार्द्ध में ये बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में शरद ऋतु (सितंबर से अक्टूबर) में आते हैं तथा मेडागास्कर एवं मोजाम्बिक में मार्च और अप्रैल में आते हैं।

तड़ित झंझा

- गर्जन, तड़ित और भारी वर्षा अथवा ओलों सहित तूफान को तड़ित झंझा कहा जाता है। यह प्रायः अस्थिरता की चरम अवस्था प्रायः शीत वताग्र से गुजरने से संबंधित अथवा धरातल के अत्यधिक तापन और वायु के संवाहनिक रूप से ऊपर उठने से निरूपित होता है। जलवाष्प के भारी मात्र में संघनन द्वारा अत्यधिक ऊर्जा छोड़ी जाती है। विषुवतरेखीय प्रदेशों और अंतर उष्णकटिबंधीय अभिसरण मंडल (ITCZ) में अनेक तड़ित झंझा का अनुभव होता है। पूर्वी अफ्रीका के युगांडा के कंपाला जो विषुवत रेखा पर स्थित है जहाँ वर्ष में 242 दिन तड़ित झंझा आती है।

तड़ित और मेघ गर्जन

- तड़ित का अर्थ प्रकाश की चमक से है जो विशाल विद्युत विसर्जन से होता है। इसके कारण वायु का तापमान बहुत अधिक हो जाता है। यह अतिताप वायुमंडल से होकर प्रघाती तरंग को वापस भेजती है, जिसे तड़ित झंझा कहा जाता है। ऐसा तड़ित जिसके साथ गर्जन नहीं होता उसे ताप तड़ित कहा जाता है। तड़ित विसर्जन मेघ में विभिन्न स्तरों के बीच, एक मेघ से दूसरे मेघ तक अथवा मेघ आधार से जमीन तक अनुप्रस्त हो सकता है। इस प्रकार गर्जन एक विस्फोटक ध्वनि होती है क्योंकि तड़ित विर्सजन के अधिक ताप के प्रति उत्तर में वायु कारक विस्तारित होती है और उसके बाद ठंडी होकर सिकुड़ जाती है।

प्रति-चक्रवात (Anti-Cyclones)

उच्च दाब के केंद्र को प्रति-चक्रवात कहा जाता है। यह एक ऐसा क्षेत्र होता है, जिसमें वायुमंडलीय दाब निकटवर्ती क्षेत्र की तुलना में अधिक रहता है और कम से कम एक बंद समदाब रेखा होती है। उत्तरी गोलार्द्ध में प्रति-चक्रवात में सामान्य पवन परिसंचरण दक्षिणावर्त और दक्षिणी गोलार्द्ध में वामावर्त रहता है प्रति-चक्रवातों का व्यास कुछ सौ किमी- से कुछ हजार किमी- का हो सकता है। ये चक्रवात धीमे चलते हैं तथा इनका मार्ग भी तय नहीं होता है। महासागरों पर ग्रीष्म ॠतु में प्रति-चक्रवात धीरे चलते हैं एवं धरातल की गर्मी से गर्म हो जाते हैं जिससे गर्म लू चलती है जो स्वास्थ्य एवं आथिर्ाक क्रियाओं के लिए अहितकर होती है। भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में प्रति-चक्रवातों का सर्वथा अभाव पाया जाता है, किन्तु उपोष्णकटिबंधीय उच्च वायुदाब वाले क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रति-चक्रवातों का निर्माण होता है। प्रति-चक्रवात में **वाताग्र नहीं** बनते तथा इनमें चक्रवातों के विपरीत **मौसम साफ एवं सुहावना** रहता है। आकार की दृष्टि से ये **गोलाकार या V के आकार** के हो सकते हैं।

- इनमें दाब प्रवणता कम (10 से 15 मिलीबार तक) होती है। इनका व्यास चक्रवातों से कई गुना अधिक होता है और ये काफी बड़े क्षेत्र पर विस्तृत होते हैं। प्रति-चक्रवातों के आगे बढ़ने की सामान्य गति 30 से 50 किमी. प्रति घंटा तक पायी जाती है किन्तु इनका किसी स्थान पर कई दिनों तक स्थिर रह जाना भी असम्भव नहीं होता।

प्रति चक्रवात के प्रकार (Types of Anticyclone)

प्रति चक्रवातों को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है-

1. **शीतल प्रतिचक्रवात-** इनकी उत्पत्ति आकृतिक क्षेत्रों में होती है तथा ये कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस चीन, जापान को प्रभावित करते हैं। गर्म प्रतिचक्रवातों से इनका आकार छोटा होता है तथा ये तीव्र गति से आगे बढ़ते हैं। इनकी गहराई कम होती है तथा ऊँचाई 3000 मीटर से अधिक नहीं होती है।
2. **गर्म प्रतिचक्रवात-** इनकी उत्पत्ति शीतोष्ण उच्च वायुदाब पेटी में होती है। इनका आकार विशाल होता है तथा इनकी गति कम होती है। ये कम सक्रिय होते हैं तथा इनमें हवा धीमी, आकाश मेघरहित एवं स्वच्छ होता है।
3. **अवरोधी प्रतिचक्रवात-** इनकी उत्पत्ति क्षोभमण्डल के ऊपरी भाग में वायु संचार के अवरोध के कारण होती है। ये सामान्यतया उत्तर पश्चिमी यूरोप, निकटवर्ती अटलांटिक महासागर तथा मध्य उत्तरी प्रशांत महासागर के पश्चिमी भाग में उत्पन्न होते हैं। इनका आकार छोटा तथा गति मंद होती है एवं इनकी वायु प्रणाली, मौसम संबंधी विशेषताएँ गरम प्रति चक्रवातों के समान होती है।

चक्रवातों का नामकरण

चक्रवातों के नामकरण की प्रक्रिया 1953 से शुरू हुई जिसके अनुसार चक्रवातों का नाम अंग्रेजी वर्णमाला के वर्णों के आधार पर किया जाता था। चक्रवातों के नामकरण के पूर्व चक्रवातों को उनकी भौगोलिक स्थिति अर्थात् अक्षांश व देशान्तर के आधार पर पहचाना जाना जाता था। 1979 से चक्रवातों का नामकरण महिलाओं के नाम पर किया जाने लगा, किन्तु बाद के वर्षों में चक्रवातों के नाम पुरुषों के नाम पर भी रखे जाने लगे।

- विश्व मौसम संगठन ने नामों की सूचियाँ तैयार की हैं, अर्थात् 6 वर्ष बाद किसी चक्रवात का नाम पुनः रखा जा सकता है, जिनमें विनाशकारी चक्रवातो के नाम हटा दिये जायेंगे। वर्ष 2004 से हिन्द महासागर में आने वाले चक्रवातों का नामकरण इस क्षेत्र के देशों भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, म्यांमार, मालदीव, थाईलैंड और ओमान द्वारा किये जाते हैं।

भारत में उष्ण-कटिबंधीय चक्रवात

भारत में अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले अवदाबों का प्रभाव सामान्य बात है। ये अप्रैल से नवंबर के बीच आते हैं। सामान्य रूप से इनकी गति 40-50 किमी. प्रति घंटा होती है परन्तु कभी-कभी तीव्रता के अधिक होने के कारण ये विनाश का कारण बनते हैं। इस संदर्भ में कांडला में आए चक्रवात एवं ओडिशा के चक्रवातों को देखा जा सकता है। ओडिशा में आए उष्णकटिबंधीय चक्रवात को सुपर साइक्लोन का दर्जा दिया गया था, क्योंकि चक्रवात के केन्द्र एवं परिधि के वायुदाब का अन्तर 40-55 mb तक का था एवं पवन गति 225 किमी./घंटा से भी अधिक थी।

वर्तमान समय में इन चक्रवातों के पूर्वानुमान के लिए भारत में तीन तरह के उपाए किए जा रहे हैं-

1. कूल 10 रडार लगाए गए हैं (पूर्व में 6 और पश्चिम में 4) इनसे तटीय भागों एवं जहाजों को समय-समय पर इन चक्रवातों के वायुदाब व गति संबंधी जानकारी मिलती रहती है।
2. हवाई जहाजों के द्वारा भी रेडियो तरंगों को भेजकर चक्रवातों के क्रियाविधि संबंधी जानकारी प्राप्त कर इनके बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता है।
3. उपग्रहों के द्वारा और भी सूक्ष्मतर तरीकों से इन चक्रवातों के संबंध में जानकारी प्राप्त की जाती है।

- इस प्रकार, वर्तमान समय में कम से कम 48 घंटे पहले इन चक्रवातों की सूचना दी जा रही है। परन्तु महाचक्रवात के आने पर चक्रवात के प्रभाव की जानकारी दे पाना आसान नहीं रहता। चक्रवात के आने की जानकारी मछुआरों को और तटीय क्षेत्र के निवासियों को मौसम विभाग से प्राप्त सूचना के आधार पर पूर्व में ही दे दी जाती है, परन्तु उस पर उनके द्वारा अधिक ध्यान नहीं दिए जाने के कारण अधिक नुकसान उठाना पड़ जाता है।

वायुराशि, वाताग्र एवं चक्रवात: एक नजर में

- वायुराशियाँ और वाताग्र अभिगामी वायुमंडलीय विक्षोभ हैं, जो पूरे विश्व पर द्वितीयक प्रकार के पवनों को जन्म देते हैं तथा इनका संबंध मौसमी दशाओं से है।
- वायुराशि हवा का एक विशाल समूह है जिसमें तापमान तथा आर्द्रता की दशाएँ (गुण) एक समान होती हैं।
- **महाद्वीपीय वायुराशि, समुद्री वायुराशि की तुलना में कम आर्द्र होती हैं।**
- वायुराशि में यांत्रिक परिवर्तन होने से भौतिक गुणों में पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, जिससे इसमें अस्थिरता आ जाती है।
- विभिन्न गुणों वाली वायुराशियों के मध्य की संपर्क रेखा वाताग्र कहलाती है।
- चक्रवात में हवाएँ परिधि से केन्द्र की तरफ चलती हैं क्योंकि केन्द्र में निम्न दाब पाया जाता है। चक्रवात उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ियों की सूइयों की विपरीत दिशा में एवं द. गोलार्द्ध में घड़ियों की सुइयों की अनुकूल दिशा में चलता है।
- शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवात (Temperate Cyclone) पश्चिम से पूरब की ओर चलते हैं जबकि उष्णकटिबंधीय चक्रवात (Tropical Cyclone) पूरब से पश्चिम की ओर चलते हैं।
- प्रति-चक्रवात (Anti-Cyclone) के केन्द्र में उच्चदाब पाया जाता है तथा हवाएँ केन्द्र से परिधि की ओर चलती हैं। हवाओं की दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ियों की सुइयों के अनुकूल एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रतिकूल होती है।
- चक्रवातों से वर्षा होती है जबकि प्रति-चक्रवातों से मौसम साफ होता है।
- शीतल-प्रति चक्रवात आर्कटिक क्षेत्र में उत्पन्न होकर पूरब एवं दक्षिण-पूरब दिशा की ओर चलते हैं।
- गर्म प्रति-चक्रवात शीतोष्ण उच्चवायुदाब की पेटी में उत्पन्न होते हैं। ये दक्षिणी-पूर्वी सं. रा. अमेरिका और पश्चिमी यूरोप के देशों को अधिक प्रभावित करते हैं।
- अवरोधी प्रति-चक्रवात (Blocking Anti-Cyclone) की अवधारणा नवीन है। क्षोभमंडल के ऊपरी भाग में वायु संचार के अवरोध के कारण इनकी उत्पत्ति होती है।
- चक्रवात के अग्रभाग को **वाताग्र** कहते हैं।
- **विश्व का सर्वाधिक प्रचंड, विनाश एवं वेग वाला चक्रवात टॉरनेडो है।**
- **जल-स्तम्भ (Water Spond)**- सागर तल पर उत्पन्न टॉरनेडो को **जल-स्तंभ** कहते हैं।
- कर्क एवं मकर रेखाओं के मध्य उत्पन्न चक्रवातों को **उष्णकटिबंधीय चक्रवात** कहते हैं।
- **भूमध्यरेखीय भागों में प्रति-चक्रवात का अभाव होता है।**
- प्रति-चक्रवात में **वाताग्र** नहीं बनते हैं।

स्व कार्य हेतु

आर्द्रता एवं वर्षण
(Humidity & Precipitation)

आर्द्रता (Humidity)

वायु में स्थित जल का गैसीय रूप (वाष्प) ही वायुमंडल की आर्द्रता होती है। यद्यपि वायुमंडल में जलवाष्प कम ही मात्र (0 से 5%) में विद्यमान है, फिर भी यह मौसम एवं जलवायु के निर्णायक तत्व के रूप में हवा का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है।

- यह आर्द्रता गैसीय अवस्था में जलवाष्प, तरल अवस्था में जल की बूंदों तथा ठोस अवस्था में हिमकणों के रूप में वायुमंडल में उपस्थित रहती है। जलवाष्प कौ यह मात्र स्थान एवं समय के अनुसार अस्थिर एवं अत्यधिक परिवर्तनशील भी रहती है।
- स्थल की अपेक्षा सागरों पर वाष्पीकरण अधिक होता है। 10^0 उ. से 10^0 द. अक्षांशों में महाद्वीपों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण होता है, क्योंकि यहाँ वाष्पीकरण के लिए जल एवं वनस्पतियाँ उपलब्ध होती हैं जबकि महासागरों पर सर्वाधिक वाष्पीकरण दोनों गोलार्द्धों में 10^0-20^0 अक्षांशों के मध्य होता है, क्योंकि निम्न अक्षांशों में हवा मन्द परन्तु तीव्र होती है।

वायुमंडल में विद्यमान जलवाष्प या आर्द्रता की मात्र निम्नलिखित दृष्टियों से काफी महत्त्वपूर्ण हैं-

- वायुमंडलीय हवा के एक निश्चित आयतन में विद्यमान जलवाष्प की मात्र वर्षण के लिए वायुमंडल की संभावित क्षमता का संकेतक होती है।
- जलवाष्प द्वारा विकिरण का अवशोषण किया जाता है, अतएव यह पार्थिव विकिरण के एक सक्रिय नियंत्रक के रूप में कार्य करती है।
- इसके द्वारा ही तूफानों एवं तड़ित झंझावातों के लिए वायुमंडल में संचित गुप्त ऊष्मा की मात्र निर्धारित होती है।
- आर्द्रता द्वारा मानव शरीर के ठंडा होने की दर प्रभावित होती है। जल को वाष्प या गैस में परिवर्तित करने के लिए उष्मा (Heat) के रूप में ऊर्जा (Energy) की आवश्यकता होती है। ऊष्मा की इकाई केलोरी (Calorie) होती है। एक ग्राम बर्फ (Ice) को जल में परिवर्तित करने के लिए 79 केलोरी तथा 1 ग्राम जल को वाष्पीकरण द्वारा वाष्प में परिवर्तित करने के लिए 607 केलारी की आवश्यकता होती है।

वायुमंडल में जलवाष्प या आर्द्रता की प्राप्ति

वायुमंडलीय आर्द्रता की प्राप्ति महासागरों, झीलों, नदियों, हिम क्षेत्रों तथा हिमानियों से होने वाले वाष्पीकरण द्वारा होती है। ऐसे क्षेत्रों का विस्तार संपूर्ण धरातल के लगभग 75% भाग पर पाया जाता है।

- इन प्रमुख स्रोतों के अतिरिक्त नम धरातल से होने वाले वाष्पीकरण, पौधों से होने वाले वाष्पोत्सर्जन तथा जीव-जंतुओं के श्वसन द्वारा भी वायुमंडल को जलवाष्प की मात्र प्राप्त होती है। वायुमंडल में स्थित आर्द्रता का पवन तथा अन्य वायुमंडलीय संचरणों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण किया जाता है।

जलीय चक्र (Water Cycle)

महासागरों, वायुमंडल एवं महाद्वीपों के बीच जल का आदान-प्रदान वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन तथा वर्षण एवं अवक्षेपण के माध्यम से निरन्तर चलता रहता है। धरातल पर होने वाली संचरण की इस क्रिया को **जलीय चक्र** कहते हैं।

- इस चक्र की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक उर्जा की प्राप्ति सूर्य से होती है। इस बृहत् स्तर पर संचालित होने वाले जलीय चक्र में महासागरों एवं महाद्वीपों के बीच वायुमंडल एक कड़ी के रूप में विद्यमान रहता है। यद्यपि इस चक्र द्वारा हमेशा जल की एक बड़ी मात्र वायुमंडल से होकर गुजरती है तथापि उसका एक न्यून अंश ही वायुमंडल में रह पाता है और शेष भाग पुनः धरातल पर वापस भेज दिया जाता है।

आर्द्रता से संबंधित प्रमुख शब्दावलियाँ

- **वायुमंडल की आर्द्रता सामर्थ्य**- किसी निश्चित तापमान पर वायु में निश्चित आयतन पर अधिकतम नमी धारण करने की क्षमता को वायु की **'आर्द्रता सामर्थ्य'** कहते हैं। वायु का तापमान जितना अधिक होगा। नमी धारण करने की क्षमता उतनी ही अधिक होगी। शीतकाल की अपेक्षा ग्रीष्मकाल में तथा रात्रि की अपेक्षा दिन में वायु की आद्र्रता सामर्थ्य अधिक होती है।
- **निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity)**- वायु के प्रति इकाई आयतन में विद्यमान जलवाष्प की मात्र को निरपेक्ष आर्द्रता कहा जाता है।
- इसे अधिकांशतः ग्राम प्रति घन मीटर के रूप में व्यक्त किया जाता है। वायुमंडल में जलवाष्प धारण करने की क्षमता पूर्णतः तापमान पर निर्भर करती है, जिसके कारण हवा की आर्द्रता स्थान तथा समय के अनुसार बदलती रहती है। ठंडी हवा की अपेक्षा गर्म हवा अधिक

जलवाष्प धारण करने मे समर्थ होती है। तापमान के अतिरिक्त वायुदाब में भी परिवर्तन के साथ ही हवा के आयतन में भी परिवर्तन आ जाता है और उसकी निरपेक्ष आर्द्रता भी बदल जाती है।

- **आर्द्रता सामर्थ्य (Humidity Capacity)**- किसी निश्चित तापमान पर वायु के एक निश्चित आयतन में अधिकतम नमी या आर्द्रता धारण करने की क्षमता को उसकी **आर्द्रता-सामर्थ्य** कहा जाता है।
- **विशिष्ट आर्द्रता (Specific Humidity)**- हवा के प्रति इकाई भार में जलवाष्प के भार का अनुपात **विशिष्ट आर्द्रता** कहलाता है। यह जलवाष्प के ग्राम को वायु के प्रति किलोग्राम में व्यक्त की जाती है।
- **सापेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity)**- एक निश्चित तापमान पर निश्चित आयतन वाली वायु की आर्द्रता-सामर्थ्य तथा उसमें विद्यमान वास्तविक आर्द्रता के अनुपात को सापेक्षिक आर्द्रता कहते हैं। वायु की **सापेक्षिक आर्द्रता** वाष्पीकरण की मात्र एवं उसकी दर का भी निर्धारण करती है, अतः यह जलवायु के एक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में जानी जाती है। चूँकि सापेक्षिक आर्द्रता हवा में विद्यमान जलवाष्प की मात्र और उसी तापमान पर हवा की जलवाष्प धारण करने की क्षमता दोनों बातों पर निर्भर करती है, अतः इसमें दो प्रकार से परिवर्तन हो सकते हैं-

  ✓ यदि वाष्पीकरण की दर बढ़ाकर हवा में और अधिक जलवाष्प मिला दिया जाये तो हवा की सापेक्ष आर्द्रता बढ़ जायेगी।

  ✓ हवा का तापमान बढ़ने या घटने के कारण उसकी सापेक्ष आर्द्रता भी कम या अधिक हो सकती है। यदि हवा का तापमान बढ़ता है तो उसकी आर्द्रता-सामर्थ्य बढ़ जाने के कारण सापेक्ष आर्द्रता में कमी आ सकती है, जबकि इसके विपरीत हवा का तापमान घटने से उसकी आर्द्रता-सामर्थ्य में भी कमी आ जाती है, फलतः उसकी सापेक्ष आर्द्रता बढ़ जाती है।

- **संतृप्त वायु (Saturated Air)**- जब हवा किसी भी तापमान पर अपनी आर्द्रता-सामर्थ्य के बराबर आर्द्रता ग्रहण कर लेती है, तब उसे **संतृप्त वायु** कहा जाता है। इसका तात्पर्य उस दशा से है, जब हवा और अधिक जलवाष्प धारण करने में असमर्थ हो जाती है। संतृप्त हवा की सापेक्ष आर्द्रता सदैव शत-प्रतिशत (100%) होती है। हवा की किसी भी निश्चित मात्र का तापमान आवश्यक मात्र में यदि घट जाय तो वह संतृप्त हो सकती है।
- **ओसांक बिन्दु (Dew Point)**- जिस न्यूनतम तापमान पर कोई हवा संतृप्त हो जाती है, उसे उस हवा का **ओसांक बिन्दु** कहा जाता है।
- **हिमांक बिंदु (Freezing Point)**- वह तापमान जिस पर कोई तरल पदार्थ ठोस रूप में परिवर्तित होता है। उदाहरण के लिए, शुद्ध जल का हिमांक 0^0C या 32^0F होता है।
- **सामान्य ताप ह्रास दर (Normal Lapse Rate)**- यह दर ऊँचाई के बढ़ने के साथ-साथ जिस दर से तापमान में गिरावट आती है उसे **सामान्य ताप ह्रास** दर कहते हैं। यह 165 मी. की ऊँचाई पर 1^0C^0 सेण्टीग्रेड (प्रति 1,000 फीट की ऊँचाई पर 3.6^0 फारेनहाइट) होती है।
- **शुष्क रुद्धोष्म दर (Dry Adiabatic Rate)**- असंतृप्त हवा के ऊपर उठने के कारण उसके तापमान में होने वाली गिरावट की दर को **शुष्क रुद्धोष्म दर** कहते हैं। यह 10^0 से.ग्रे. प्रति 1,000 मीटर होती है। (प्रति 1,000 फीट की ऊँचाई पर 5.5^0 फारेनहाइट)।
- **आर्द्र रुद्धोष्म दर (Moist Adiabatic Rate)**- संतृप्त हवा में होने वाली तापीय गिरावट की दर को आर्द्र रुद्धोष्म दर कहा जाता है। यह 6^0 से.ग्रे. प्रति 1,000 मी. होती है। (प्रति 1000 फीट की ऊँचाई पर 3^0 फारेनहाइट)।
- **संघनन (Condensation)**- जल के गैसीय अवस्था से तरल या ठोस अवस्था में परिवर्तित होने की प्रक्रिया संघनन (Condensation) कहलाती है। यह वास्तव में वाष्पीकरण के विपरीत क्रिया है। संघनन की क्रिया वायुमंडल में विद्यमान सापेक्ष आर्द्रता पर आधारित होती है। संघनन की क्रिया वायुमंडल में स्थित सापेक्षिक आर्द्रता की मात्र पर आधारित होती है। जब हवा की सापेक्षिक आर्द्रता शत-प्रतिशत हो जाती है तो उस हवा को संतृप्त हवा कहा जाता है तथा संघनन प्रारंभ हो जाता है।
- जब आर्द्र हवा ठंडी होने लगती है, तो तापमान के अनुसार वह एक ऐसी दशा में पहुँच सकती है, जहाँ उसमें विद्यमान जलवाष्प की मात्र उसकी आर्द्रता-सामर्थ्य से अधिक हो और यही अतिरिक्त जलवाष्प संघनित होकर तरल या ठोस अवस्था में बदल जाती है।

संघनन के विभिन्न रूप

- जिस तापमान पर हवा अपने ओसांक पर पहुंचती है, उसी के आधार पर संघनन के मुख्य रूपों का वर्गीकरण भी किया जाता है। संघनन के समय ओसांक की दो ही स्थितियां होती हैं- या तो वह हिमांक (Freezing Point) के ऊपर होता है या नीचे।
- जब ओसांक हिमांक बिन्दु के नीचे होता है, तब संघनन की क्रिया के परिणामस्वरूप तुषार, हिम, पक्षाभ मेघ आदि का निर्माण होता है तथा जब यह हिमांक से ऊपर होता है तब ओस, कुहरा, कुहासा तथा बादल बनते हैं। संघनन के स्वरूपों का वर्गीकरण संघनन की स्थिति के आधार पर भी किया जाता है।

इसकी दो दशाएँ होती हैं, जो निम्नलिखित हैं-

- पृथ्वी के धरातल पर या उसके समीप संघनन की क्रिया संपन्न होने से ओस, पाला, कुहरा तथा कुहासा आदि बनते हैं।

- खुली स्वच्छंद वायु में संघनन की क्रिया होने से विभिन्न प्रकार के बादलों का निर्माण होता है।

ओस (Dew)

- हवा में उपस्थित जलवाष्प जब संघनित होकर नन्हीं बूंदों के रूप में धरातल पर स्थित घास की नोकों तथा पौधों की पत्तियों पर जमा हो जाती है, तब इसे **ओस** कहा जाता है। ओस के निर्माण के लिए तापमान का हिमांक से ऊपर होना आवश्यक होता है इसके निर्माण के लिए स्वच्छ आकाश, शान्त वातावरण या हल्का समीर, उच्च सापेक्ष आर्द्रता तथा ठंडी एवं लम्बी रातें उपयुक्त होती हैं।

तुषार या पाला (Frost)

जब संघनन की क्रिया हिमांक बिन्दु से नीचे संपन्न होती है, तब अतिरिक्त जलवाष्प जलकणों के बजाय हिमकणों में परिवर्तित होकर जमा हो जाती है, जिसे **तुषार** या **पाला** कहते हैं। इसके निर्माण के लिए तापमान का हिमांक या उससे नीचे गिरना आवश्यक होता है।

कुहरा (Fog)

कुहरा **एक प्रकार का बादल** ही है जिसका आधार धरातल के बिल्कूल सन्निकट होता है। इसमें जलवाष्प का संघनन लघु जल बिन्दुओं के रूप में होता है तथा यह धरातल की दृश्यता को प्रभावित करता है।

- जब धरातल के समीप स्थित वायु का तापमान ओसांक तक पहुंच जाता है और हवा ठंडी हो जाती है, तब उसमें विद्यमान जलवाष्प का संघनन वायुमंडलीय धूलकणों, धूम्रों आदि के चारों ओर हो जाता है। ये संघनित जल की बूंदें हल्की होने के कारण हवा में ही लटकी रहती हैं तथा हवा के साथ स्थानांतरित भी होती हैं। जब कुहरे की दृश्यता 1 किमी. से 2 किमी. के मध्य होती है तो इसे कुहासा या धुंध कहते हैं।

दृश्यता (Visibility) के आधार पर कुहरा चार प्रकार के होते हैं-

1. **हल्का कुहरा-** इसमें दृश्यता 1,100 मीटर तक पायी जाती है।
2. **साधारण कुहरा-** दृश्यता 1,100 से 550 मीटर तक पायी जाती है।
3. **सघन कुहरा-** दृश्यता 550 मीटर से 330 मीटर तक पायी जाती है।
4. **अति सघन कुहरा-** दृश्यता 300 मीटर से भी कम पायी जाती है।

निर्माण विधि के आधार पर कोहरा को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है-

- **विकिरण कुहरा (Radiation Fog)-** जब पार्थिव विकिरण द्वारा धरातल तथा उसके समीप की हवा ठंडी होती है, तब उससे बने कूहरे को **विकिरण कूहरा** कहते हैं। इसकी मोटाई कम (10 से 30 मीटर तक) होती है। इसका निर्माण उस समय होता है जब ठंडे धरातल के ऊपर गर्म एवं आर्द्र हवा उपस्थित होती है।
- इस कारण ऊपर स्थित उष्णार्द्र वायु ठंडी होकर संघनित हो जाती है और जल कण आर्द्रताग्राही कणों के चतुर्दिक एकत्रित होकर जल सीकरों में बदल कर कुहरे का निर्माण करते हैं।
- **अभिवहन कुहरा (Advection Fog)-** जब आर्द्र एवं गर्म हवा किसी ठंडे धरातल पर पहुँचती है तो वह उसके सम्पर्क में आकर नीचे की ठंडी हवा से मिलकर ठंडी हो जाती है, जिसके कारण अभिवहन कुहरा बनता है। चूँकि इसका निर्माण हवा के क्षैतिज संचरण के समय तापमान में आने वाली गिरावट के कारण होता है, इसलिए इसे **अभिवहन कूहरा** कहा जाता है।
- इस तरह का कुहरा प्रायः स्थलीय भागों पर जाड़े में तथा सागरीय भागों पर गर्मियों में होता है। क्योंकि शीतकाल में स्थानीय भाग सागरों की अपेक्षा ठंडे होते हैं। सागरीय भागों पर इस प्रकार के कुहरे को सागरीय कुहरा कहते हैं। यह कुहरा प्रायः ठंडी जल धाराओं के तटीय भागों पर पड़ता है। इसकी मोटाई 300 से 600 मीटर तक होती है तथा यह काफी लम्बे समय तक बना रहता है।
- **वाताग्र कुहरा (Frontal Fog)-** ठंडी एवं गर्म वायुराशियों को अलग करने वाले अर्थात् उनके सम्मिलन स्थलों पर भी कुहरे का निर्माण हो जाता है। सम्मिलन स्थल के समीप गर्म, आर्द्र एवं हल्की हवा, ठंडी तथा भारी हवा के ऊपर चढ़ जाती है, जिसके कारण वह ठंडी होने लगती है। जब नीचे की ठंडी हवा के सम्पर्क में आने वाली उसकी परत का तापमान ओसांक बिन्दु तक पहुँच जाता है, तब दोनों वायुराशियों को पृथक करने वाले तल अथवा वाताग्र के समीप कुहरे का निर्माण हो जाता है, जिसे **वाताग्र कुहरा** कहते हैं।

बादल (Clouds)

वायुमंडल में काफी ऊँचाई पर खुली स्वछंद हवा में जलवाष्प के संघनन से बने जलकणों या हिमकणों की विशाल राशि को बादल कहते हैं।

- मुख्यतः बादल हवा के रुद्धोष्म (एडियाबेटिक) प्रक्रिया द्वारा ठंडे होने तथा उसके तापमान के ओसांक बिन्दु तक गिरने के परिणामस्वरूप निर्मित होते हैं। वायु के ठंडी होने की यह प्रक्रिया हल्की और गर्म एवं आर्द्र हवा के ऊपर उठने की दशा में सबसे ज्यादा प्रभावी होती है।
- जब हवा ऊपर जाकर फैलती है तो उसका तापमान ओसांक तक पहुँच जाता है। इसके और अधिक ठंडा होने पर हवा का तापमान ओसांक से भी नीचे गिर जाता है एवं संघनन होने से बादलों का निर्माण होने लगता है। ये वास्तव में जलवाष्प के संघनन से बने जलसीकर या हिमसीकर ही हैं जो वायुमंडल में लटके रहते हैं।

- इनकी ऊँचाई भूमध्य रेखा के समीप या निम्न आक्षांशों में अधिक होती है जो ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर घटती जाती है। ये किसी स्थान के मौसम तथा जलवाष्प को पर्याप्त रूप में प्रभावित करते हैं। समतापमंडल में बादलों का पूर्णतः अभाव पाया जाता है।

बादल का वर्गीकरण

बादलों में धरातल से उनकी ऊँचाई, स्वरूप तथा आकार एवं आकाश में उनके विस्तार के आधार पर काफी भिन्नता पायी जाती है और इनका वर्गीकरण भी इन्हीं आधारों पर किया जाता है।

- बादलों को 1932 में अंतर्राष्ट्रीय विभाजन में चार मुख्य तथा 10 उप प्रकार के बादलों में विभक्त किया गया है जिसमें ऊँचाई को वरीयता दी गयी है।

ऊँचाई के अनुसार बादल निम्नलिखित प्रकार के पाये जाते हैं-

- **ऊँचे मेघ-** धरातल से 6,000 से 20,000 मीटर।
- **मध्यम मेघ-** धरातल से 2500 से 6000 मीटर।
- **निचले मेघ-** धरातल से 2500 मीटर तक।
- **पक्षाभ मेघ (Cirrus Clouds)-** ये बादल आसमान में सबसे अधिक ऊँचाई पर (7,500 से 10,500 मीटर) सफेद रेशम की भांति छितराये हुए कोमल एवं घने रूप में स्थित होते हैं। इनमें छोटे-छोटे हिम कणों की उपस्थिति पायी जाती है, जिसके कारण चंद्रमा तथा सूर्य की किरणें चमकती हैं।
- जब ये बादल असंगठित तथा छितराये रूप में होते हैं तो साफ मौसम के सूचक होते हैं परंतु जब ये संगठित होकर विस्तृत क्षेत्र में फैले जाते हैं तो तूफानी मौसम का संकेत होता है। शाम के समय इनका रंग नयनाभिराम हो जाता है। चूँकि ये अत्यधिक ऊँचाई पर स्थित ठंडे बादल होते हैं, अतः इनसे वर्षा नहीं होती है।
- **पक्षाभ स्तरी मेघ (Cirro-Stratus Clouds)-** प्रायः 7,500 मीटर की ऊँचाई तक मिलने वाले ये बादल एक चादर की भांति सम्पूर्ण आकाश में फैले हुए होते हैं। इनका रंग सफेद दूधिया होता है और इनके कारण **सूर्य तथा चन्द्रमा के चारों ओर प्रभामंडल (Halo) का निर्माण** हो जाता है। ये प्रभामंडल निकट **भविष्य में चक्रवात के आगमन** के सूचक होते हैं तथा ये वर्षा तूफानी रूप में रूक-रूक कर होते हैं। इन्हें तेज गति से चलने वाली हवाएँ ही समाप्त करती है।
- **पक्षाभ-कपासी मेघ (Cirro-cumulus Clouds)-** इनकी ऊँचाई भी सामान्यतः 7,500 मीटर तक पायी जाती है, किन्तु ये बादल सफेद रंग के छोटे-छोटे गोलों की भांति या लहरदार रूप में पाये जाते हैं। ये बादल पंक्तियों अथवा समूहों में मिलते हैं। इन बादलों के आ जाने से पृथ्वी पर कोई छाया नहीं पड़ती क्योंकि इनमें पारदर्शिता सबसे अधिक होती है। इन्हें **मैकेरल स्काई** (Mackerel Sky) भी कहा जाता है।
- **मध्य-स्तरी मेघ (Alto-Stratus Clouds)-** ऊपरी वायुमंडल में 5,400 से 7,500 मी- की ऊँचाई पर स्थित भूरे अथवा नीले रंग के लगातार चादर की भांति फैले हुए छोटे स्तरों वाले बादल को उच्चस्तरी बादल कहते हैं। सामान्यतः इनके आसमान में छाये रहने पर सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रकाश धुंधला एवं अस्पष्ट दिखायी देता है। उच्चस्तरी बादलों के प्रकाशीय प्रभाव के रूप में कॉरोना (Corona) का निर्माण होता है, जो यदा-कदा दिखाई देता है। इनसे विस्तृत क्षेत्रों पर लगातार वर्षा होती है।
- **मध्य-कपासी मेघ (Alto-Cumulus Clouds)-** श्वेत एवं भूरे रंग के पतले गोलाकार धब्बों की तरह दिखाई पड़ने वाले तथा 3,000 से 7,500 मीटर की ऊँचाई तक स्थित बादलों को उच्च कपासी बादल की संज्ञा दी जाती है। ये सम्पूर्ण आसमान में महीन चादर के रूप में बिखरे दिखायी देते हैं। उच्च कपासी बादल की छटा इतनी मनोहर होती है कि इन्हें **ऊनी बादल** (Sheep Clouds) भी कहते हैं। पर्वत शिखरों पर उत्पन्न ऐसे बादलों को **'पताका बादल'** (Banner Clouds) का नाम भी दिया जाता है।
- **स्तरी कपासी मेघ (Strato-Cumulus Clouds)-** ये हल्के भूरे रंग के गोलाकार धब्बों के रूप में मिलने वाले बादल होते हैं, जो साधारण रूप में 2,500 से 3,000 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। इनका आकार एक परत की भांति होता है तथा जाड़े के मौसम में ये सम्पूर्ण आसमान को आवृत कर लेते हैं।
- **स्तरी बादल (Stratus Clouds)-** ये धरातल से 2,500 मी. से 3,000 मी. की ऊँचाई पर स्थित कुहरे के समान बादल हैं, जिनमें कई परतें पायी जाती हैं। इनकी संरचना सर्वत्र एक समान रहती है तथा ये आकाश में पूरी तरह से छाये रहते हैं। इनका निर्माण प्रायः दो विपरीत स्वभाव वाली हवाओं के मिलने से शीत ऋतु में शीतोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में हो जाता है। इनके छा जाने से आकाश धुँधला लगता है तथा इनसे बूंदा-बांदी की संभावना बनी रहती है।
- **वर्षा स्तरी बादल (Nimbo-Stratus Clouds)-** निम्बो (Nimbo) की उत्पत्ति निम्बस (Nimbus) शब्द से हुई है जिसका अर्थ होता है- **झंझावत वर्षा**। धरातल से 1,600 मी. की ऊँचाई तक घने एवं काले पिड के समान विस्तृत बादल इस श्रेणी में आते हैं। इनकी **अधिक सघनता के कारण सूर्य का प्रकाश धरती तक नहीं पहुँच** पाते। अतः इनके छा जाने पर अंधकार-सा छा जाता है। इनके कारण वायुमंडल नम हो जाता है तथा शीघ्र वर्षा होती है। इनसे वर्ष तथा ओले भी गिरते हैं। ये बादल कभी-कभी धरातल को छूते हुए चलते हैं।

- **कपासी मेघ (Cumulus Clouds)**- सामान्यतः इनकी ऊँचाई 1,000 से 3,000 मी. तक मिलती है। ये रूई के ढेर की भांति दिखायी देते हैं तथा इनका आकार गुंबदाकार **गोभी की भाँति** होता है लेकिन आधार क्षेत्र समतल पाया जाता है। ये प्रायः साफ मौसम की सूचना देते हैं।
- **कपासी-वर्षा मेघ (Cumulo-Nimbus Clouds)**- ये अत्यधिक गहरे काले रंग वाले सघन एवं भारी बादल होते हैं। ये नीचे से ऊपर की ओर विशाल मीनार की भांति उठे रहते हैं और इनका विस्तार काफी बड़े क्षेत्र पर होता है।
- ऊँचे शीर्ष को निहाई शीर्ष (Anvil Head) कहा जाता है। इनका विस्तार ऊँचाई में भी काफी अधिक (7,500 मीटर) पाया जाता है। इन बादलों से भारी वर्षा, ओला, तड़ित झंझा आदि आते हैं। अतः इसे **गर्जन मेघ (Thunder Clouds)** भी कहते हैं।

वृष्टि या वर्षण (Precipitation)

खुली स्वच्छंद हवा में वायुमंडल की जलवाष्प का लगातार होने वाला संघनन संघनित कणों के आकार को बढ़ा देता है और जब इनका आकार इतना बड़ा हो जाता है कि हवा का अवरोध उन्हें गुरुत्वाकर्षण के विपरीत लटकाये रखने में असमर्थ हो जाता है, तब ये कण धरातल पर गिरने लगते हैं।

- जल की बूंदों एवं हिमकणों के रूप में इन कणों के गरने की प्रक्रिया ही वृष्टि या वर्षण (Precipitation) कहलाती है। वर्षण की यह क्रिया निम्नलिखित रूपों में सम्पन्न हो सकती हैं-
- **हिमवृष्टि या हिमपात**- जब संघनित होने की प्रक्रिया हिमांक बिन्दु से नीचे सम्पन्न होती है, तब हिमसीकरों के रूप में होने वाले वर्षण को हिमवृष्टि या हिमपात कहा जाता है। हिम मापन के लिए हिममापी यंत्र का विकास किया गया है।
- **सहिम वृष्टि (Sleet)**- इस प्रकार की वृष्टि वर्षा की बूंदों के जमने या हिमकणों के पिघले हुए जल के पुनः जम जाने से होती है, जिसमें जलवृष्टि एवं हिमवृष्टि दोनों का मिश्रण पाया जाता है। उल्लेखनीय है कि जब धरातल की समीपवर्ती हवा का तापमान हिमांक से ऊपर होता है, तभी हिमवृष्टि की घटना अधिक होती है। जब वर्षा की बूंदे ऊपरी गर्म वायु से निचली ठंडी वायु में प्रवेश करती है तो वे जम जाती है और भूतल पर नन्हीं-नन्हीं गोलियों के रूप में गिरने लगती है।
- **उपलवृष्टि या ओला पड़ना (Hailstorm)**- जब आसमान से बर्फ की ठोस एवं बड़े आकार की गोलियों की बौछार होने लगती है, तब उसे उपलवृष्टि या ओला पड़ने का नाम दिया जाता है। कभी-कभी तेज ऊर्ध्वाधर वायुधाराएँ ऊपर उठते समय वर्षा की बूंदों को भी इतना अधिक ऊपर उठा ले जाती हैं कि उनका तापमान हिमांक से भी नीचे चला जाता है और वे जमकर बड़ा आकार धारण कर लेती हैं और हवा उन्हें लटकाये रखने में असमर्थ हो जाती है। ये नीचे गिरने लगते हैं, किन्तु तीव्रता से उठने वाली संवहनधाराओं के कारण ये पुनः ऊपर उठा दिये जाते हैं एवं इन पर बर्फ की और परतें चढ़ती जाती हैं, जिससे इनका आकार बढ़ता जाता है। यही कारण है कि जब ओले धरातल पर गिरते हैं तो उनमें कई संकेन्द्रीय परतें भी पायी जाती हैं।
- **जलवृष्टि (Rainfall)**- जब संघनित होने वाली जलवाष्प का ओसांक हिमांक बिन्दु से ऊपर रहता है, तब जल की बूंदों के रूप में होने वाली वृष्टि को **जलवृष्टि** या **वर्षा** कहते हैं। वर्षा के लिए वायु में पर्याप्त आर्द्रता तथा जलवाष्प का संघनन होकर द्रव में परिवर्तित होना आवश्यक है। वर्षा का मापन रेन गेज नामक यंत्र से किया जाता है।

जलवृष्टि के प्रकार (Types of Rainfall)

उत्पत्ति के अनुसार या वर्षण में सहयोग करने वाली दशाओं के आधार पर वर्षा को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जाता है-

- **संवहनीय वर्षा (Convectional Rainfall)**- संवहनीय वर्षा का सबसे प्रमुख कारण गर्म एवं आर्द्र हवाओं का संवहन धाराओं के रूप में ऊपर उठना है। इस प्रकार की वर्षा अधिकतर जलवृष्टि के रूप में ही होती है। ग्रीष्म ऋतु में धरातल के अत्यधिक गर्म हो जाने के कारण ऊर्ध्वाधर वायु धाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं और जैसे-जैसे ये धरातल से ऊपर उठती हैं, फैलकर ठंडी होती जाती हैं। अधिक ऊँचाई पर पहुंचने के पश्चात् ऐसी संवहन धाराएँ पूर्णतः संतृप्त हो जाती हैं, जिसके पश्चात् संघनन होने से वर्षा होती है। चूँकि इस क्रिया में वाष्पीकरण की गुप्त उष्मा का उत्सर्जन बड़ी मात्र में होता है, अतः इससे हवा पुनः गर्म होकर ऊपर उठने के लिए बाध्य हो जाती है एवं इस क्रिया से और अधिक संघनन तथा वर्षण की क्रिया सम्पन्न होती है।
- **विषुवतरेखीय प्रदेशों** अथवा शान्त पेटी (डोलड्रम) में वर्षा संवहनीय प्रकार की ही होती है और चूँकि इन क्षेत्रों में वर्ष भर उच्च तापमान प्राप्त होता है, अतएव वर्षा भी साल भर लगातार होती रहती है। संवहनीय वर्षा मूसलाधार रूप में होती है तथा इसमें कम समय में अधिक वर्षा की मात्र प्राप्त होती है। यह वर्षा बिजली की चमक तथा बादलों की गरज के साथ होती है। विषुवतरेखीय क्षेत्रों में शाम 2 से 3 बजे के बीच घनघोर बादल छा जाते हैं जिससे पूर्ण अंधेरा छा जाता है। कुछ क्षणों की घनघोर वृष्टि के बाद वर्षा बन्द हो जाती है। भूमध्य रेखा से दूर स्थित क्षेत्रों में इस प्रकार की वर्षा केवल ग्रीष्म ऋतु में होती है। संवहनीय वर्षा के अल्पकालिक तथा तीव्र होने के कारण अधिकांश जल नदियों द्वारा सागर में चला जाता है। भू-क्षरण तथा अपरदन अधिक होता है। यहाँ **लैटेराइट मिट्टी** पायी जाती है तथा यहाँ **निक्षालन** (Leaching) **की क्रिया** अधिक होती है।

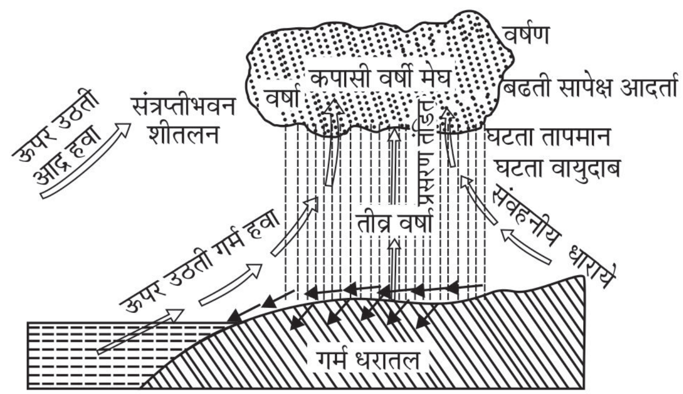

संवहनीय वर्षा

- **पर्वतीय वर्षा (Orographic Rainfall)**- गर्म एवं आर्द्र वायु के पर्वत श्रेणियों के समान अवरोधों से टकराने पर उसे ऊपर उठने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ऊपर जाकर हवा संतृप्त हो जाती है एवं उसका संघनन प्रारम्भ हो जाता है। संघनन के पश्चात् होने वाली वर्षा को **पर्वतीय वर्षा** कहते हैं। यह वर्षा उन क्षेत्रों में बहुत अधिक होती है जहाँ पर्वत श्रेणी समुद्र तट के निकट तथा उसके समानांतर है। ऊँचाई के साथ-साथ वर्षा की मात्र बढ़ती जाती है।

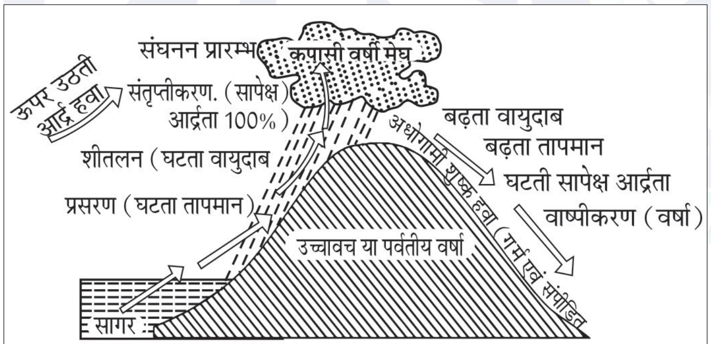

पर्वतीय वर्षा
वृष्टि छाया प्रदेश (Rain Shadow Region)- पर्वतीय वर्षा

- पर्वतीय अवरोध के अतिरिक्त इस प्रकार होने वाली वर्षा की अन्य सारी क्रियाएँ संवहनीय वर्षा की ही भांति सम्पन्न होती हैं। इस प्रकार की वर्षा अन्य वर्षा प्रकारों की अपेक्षा दीर्घकालिक तथा अधिक विस्तृत होती है। संसार की अधिकांश वर्षा **पर्वतीय वर्षा** के रूप में ही होती है।
- **वृष्टि छाया प्रदेश (Rain Shadow Region)**- पर्वतीय वर्षा में पवन-विमुख ढालों की अपेक्षा पवनाभिमुख ढालों पर अधिक मात्र में वर्षा की प्राप्ति होती है, जबकि पवन-विमुख ढाल कभी-कभी वर्षा से एकदम अछूते रह जाते हैं, क्योंकि इन पर हवा नीचे उतरकर गर्म होने लगती है। इसके अतिरिक्त पवनाभिमुख ढालों पर वर्षा होने के पश्चात् उसकी आर्द्रता की मात्र भी कम हो जाती है।

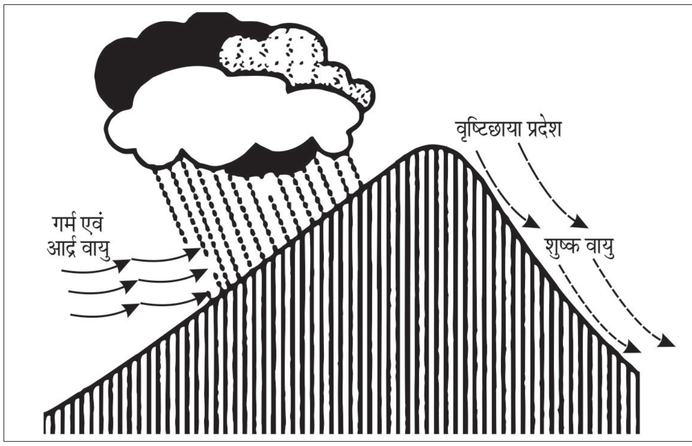

- इस कारण से पवन-विमुख ढाल एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में वर्षा नहीं हो पाती एवं उनको **'वृष्टि छाया प्रदेश'** की संज्ञा दी जाती है। भारत में इसका **सर्वोत्तम उदाहरण पश्चिमी घाट** पर्वतीय क्षेत्र में स्थित महाबलेश्वर (वर्षा 600 सेमी.) तथा पुणे (वर्षा 70 सेमी.) का है, जो एक-दूसरे से मात्र कूछ किलोमीटर की दूरी पर ही स्थित हैं, किन्तु पुणे की स्थिति वृष्टि छाया प्रदेश में पड़ती है जबकि महाबलेश्वर की पवनाभिमुख ढाल पर।
- **चक्रवातीय या वाताग्री वर्षा (Cyclonic Rainfall)**- धरातल पर चक्रवातों के कारण प्राप्त होने वाली वर्षा चक्रवातीय-वर्षा के नाम से जानी जाती है। इस प्रकार की वर्षा तथा हिमवृष्टि विशेषकर शीतोष्णकटिबंधीय चक्रवातीय क्षेत्रों में होती है। शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात में उष्ण एवं आर्द्र वायु राशि हल्की होने के कारण शीतल एवं शुष्क वायु राशि के ऊपर चढ़ जाती है। इससे गर्म पवन में उपस्थित जलवाष्प का संघन हो जाता है और वर्षा होती है। इस प्रकार की वर्षा शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के क्षेत्रों में होती है। शीत ऋतु में उत्तर-पश्चिमी भारत में भी वर्षा चक्रवातों द्वारा ही होती है।

चक्रवातीय वर्षा

तड़ित झंझा (Thunder Storm)

- स्थानीय रूप से गर्म एवं आर्द्र हवाओं के तीव्रता से ऊपर चढ़ने के कारण उत्पन्न ऐसे तूफानों या झंझावतों को, जिनसे तीव्र बिजली की चमक एवं बादलों की गरज के साथ भीषण वर्षा होती है, **तड़ित झंझा** कहलाता है। इसकी सबसे मुख्य विशेषता तेजी से बिजली का चमकना (Lightening) तथा बादलों का तीव्र गर्जन (Thundering) है।

बादल का विस्फोट (Cloud Burst)

तड़ित झंझा के समय जब भंयकर एवं घनघोर वर्षा होती है, तब उस दशा को **वर्षा विस्फोट** अथवा **बादल फटना** कहते हैं। ऐसी स्थिति प्रायः बहुत कम समय के लिए ही आती है। वर्षा विस्फोट वस्तुतः एक सीमित क्षेत्र में अचानक 100 मिमी. प्रति घंटा की दर से हुई तूफानी वर्षा होती है।

- पृथ्वी से उठने वाली हवाओं के कारण बादल कभी-कभी एक ही स्थान पर घने होने लगते हैं तथा इससे उनमें जल की मात्रा बढ़ती जाती है। आपस में या किसी पहाड़ी से टकराने या बिजली की कड़क से ये एकाएक बरस पड़ते हैं जिससे बादल फटने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे में गिरने वाले पानी की भारी मात्र और उसका तीव्र वेग रास्ते में आने वाली हर वस्तु को तहस-नहस कर देता है।

मेघ गर्जन (Thundering)

- बादलों के बीच जल की बूंदों के टूटने से उनके धनात्मक एवं ऋणात्मक आवेशों से तीव्र बिजली चमकने के कारण अत्यधिक गर्मी की उत्पत्ति होती है। इस गर्मी से तापमान मे एकाएक वृद्धि के परिणामस्वरूप हवा में अचानक प्रसार होता है और भंयकर आवाज उत्पन्न होती है। इसी आवाज को **मेघ गर्जन** कहा जाता है।

वर्षा का विश्व वितरण

- वर्षा के विश्व वितरण में अत्यधिक असमानता पायी जाती है। अधिकतम वर्षा भूमध्य रेखा के आस-पास तथा न्यूनतम वर्षा ध्रुवों के आसपास होती है। 40^0 से 60^0 उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों के मध्य अधिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं तथा 30^0 से 35^0 उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों में कम वर्षा प्राप्त होती है।

- **वर्षा का पेटी वितरण वायुदाब पेटियों से संबंधित है जो निम्नलिखित 6 प्रकार के हैं-**

1. **भूमध्यम रेखीय अधिकतम वर्षा की पेटी-** इस पेटी का विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 10^0 अक्षांशों तक पाया जाता है। यहाँ वार्षिक वर्षा का औसत 175 से 200 सेमी. तक होता है। 0^0 से 10^0 उत्तरी अक्षांश में 0^0 से 10^0 दक्षिणी अक्षांश की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है क्योंकि अंतरा उष्णकटिबंधीय अभिसरण वर्ष भर भूमध्य रेखा के उत्तर में रहता है। वर्षा पूरे वर्ष होती है परंतु वर्ष में दो बार मार्च एवं सितंबर में अधिकतम वर्षा होती है जो मुख्यतः संवहनीय होती है।
2. **व्यापारिक वायु द्वारा वर्षा वाली पेटी-** इस पेटी का विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 10^{0}-20^0 अक्षांशों के बीच पाया जाता है। यह प्रदेश व्यापारिक हवाओं की पेटी में आता है जो सागरों के ऊपर से आने के कारण महाद्वीपों के पूर्वी भागों में वर्षा करती है तथा पश्चिमी भाग शुष्क रह जाता है। जिस कारण सूखा मौसम होता है तथा रेगिस्तान पाये जाते हैं, उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में अधिकतम वर्षा दिसम्बर में तथा न्यूनतम वर्षा जुलाई-अगस्त में होती है।
3. **उपोष्णकटिबंधीय न्यूनतम वर्षा की पेटी**- इसका विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 20^{0}-30^0 अक्षांशों के मध्य पाया जाता है। यहाँ हवाएँ ऊपर से नीचे उतरती है तथा उच्च दाब बनाने के कारण धरातल पर दो विपरीत दिशाओं में चलने लगती है। जिससे प्रति-चक्रवातों का आविर्भाव होता है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा 90cm होती है। इन्हीं अक्षांशों में विश्व के सभी उष्ण रेगिस्तान आते हैं जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत 25 सेमी से कम होता है।
4. **भूमध्य रेखीय वर्षा वाली पेटी-** इसका विस्तार 30^0-40^0 अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में पाया जाता है। यहाँ वर्षा शीतकाल में पछुआ हवाओं के द्वारा चक्रवातों से होती है।
5. **मध्य अक्षांशीय अधिक वर्षा की पेटी-** 40^0-60^0 अक्षांशों के मध्य दोनों गोलार्द्धों में पछुआ हवाओं के द्वारा वर्षा होती है। यह द्वितीय अधिकतम वर्षा का क्षेत्र है। जहाँ 100-125 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है। उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में अधिक वर्षा होती है। पछुआ हवा ध्रुवीय हवाओं के मिलने से चक्रवातों का अधिक निर्माण होता है जिनसे जाड़ों में अधिक वर्षा होती है।
6. **ध्रुवीय निम्न वर्षा की पेटी-** 60^0 अक्षांश से ध्रुवों की ओर वर्षा घटती जाती है। अधिकांश वर्षा हिमपात के रूप में होती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

जलवायु
(Climate)

सामान्य परिचय

जलवायु का अध्ययन जलवायु विज्ञान (Climatology) के अन्तर्गत किया जाता है। जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत वायुमंडलीय दशाओं में मौसम (Weather) तथा जलवायु का क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक स्तर पर अध्ययन किया जाता है। किसी स्थान की अल्पकालीन वायुमंडलीय दशाओं (तापमान, वर्षा, वायुदाब, पवन, आर्द्रता, दृश्यता इत्यादि) के सम्मिलित रूप को **मौसम** कहते हैं, जबकि किसी स्थान पर दीर्घकालीन मौसम संबंधी दशाओं के औसत को **जलवायु** कहते हैं।

- इससे स्पष्ट है कि मौसम वायुमंडल की क्षणिक अवस्था का बोध कराता है, जो स्थान तथा समयानुसार परिवर्तित होता रहता है जबकि जलवायु दीर्घकालिक अवस्था का बोध कराता है एवं इसमें परिवर्तन सूक्ष्म एवं धीरे-धीरे होता है।

जलवायु का वर्गीकरण

जलवायु के वर्गीकरण का **सर्वप्रथम प्रयास प्राचीन यूनानियों** द्वारा किया गया था। उन्होंने वर्गीकरण के लिए तापमान को आधार बनाया था जिसके अनुसार जलवायु मूल रूप से उष्ण, समशीतोष्ण तथा शीत कटिबंधों में बंटा होता है।

- **उष्णकटिबंध क्षेत्र (Tropical or Torid Zone)**- यह कटिबंध भूमध्य रेखा के दोनों ओर $23\frac{1}{2}^0$ अथवा कर्क तथा मकर रेखा के बीच स्थित है। इस कटिबंध में साल भर सूर्य की किरणें लम्बवत् पड़ने के कारण तापमान सदा उच्च रहता है। इस कटिबंध में सामान्यतः सर्दी नहीं पड़ती, इसलिए इसे **शीतविहीन कटिबंध** भी कहते हैं।
- **शीतोष्णकटिबंध क्षेत्र (Temperate Zone)**- उत्तरी गोलार्द्ध में कर्क रेखा ($23\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश) तथा उत्तरी ध्रुव वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ उत्तरी अक्षांश) और दक्षिणी गोलार्द्ध में मकर रेखा ($23\frac{1}{2}^0$ द. अक्षांश) तथा दक्षिणी ध्रुव वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$ दक्षिणी अक्षांश) के बीच शीतोष्णकटिबंध क्षेत्र स्थित हैं।
- **शीतकटिबंध क्षेत्र (Frigid Zone)**- उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तरी ध्रुव वृत्त ($66\frac{1}{2}^0$) से उत्तरी ध्रुव तक तथा दक्षिणी गोलार्द्ध के दक्षिणी ध्रुव वृत्त से दक्षिणी ध्रुव तक **शीतकटिबंध क्षेत्र** विस्तृत है। सूर्य की किरणें तिरछी पड़ने के कारण यहाँ पर तापमान कम रहता है।

- वर्तमान में जलवायु वर्गीकरण के लिए दो पद्धतियाँ अधिक प्रचलित हैं। वर्गीकरण की ये दो पद्धतियाँ **कोपेन तथा थॉर्नवेट नामक** ख्यातिलब्ध वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई हैं। जलवायु वर्गीकरण के लिए इन वैज्ञानिकों ने संख्यात्मक मान का प्रयोग किया है, अतः इन पद्धतियों में जलवायु प्रकार का वर्णन मात्रत्मक है।
- **कोपेन** ने जलवायु वर्गीकरण के लिए **तापमान, वृष्टि** तथा **उनके मौसमी स्वभावों** को आधार बनाया है। कोपेन का यह वर्गीकरण जलवायु को वनस्पति के साथ घनिष्ठता से जोड़ने का सफल प्रयास है।
- इसके लिए तापमान और वृष्टि के सभी संख्यात्मक मान स्थिर किये गये हैं। उन्होंने मोटे तौर पर जलवायु को मुख्यतः पांच वर्गों में विभाजित किया है। प्रत्येक वर्ग को अंग्रेजी के बड़े अक्षर से नामांकित किया गया है। साथ ही प्रत्येक मुख्य वर्ग को तापमान और वृष्टि के अंतरों के आधार पर कई प्रकारों में उपविभाजित किया गया है।

कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

A.	उष्णकटिबंधीय वर्षा जलवायु	**1.**	उष्णकटिंबधीय वर्षा प्रचुर वन [ठंडे मौसम से रहित (F)]
		2.	सवाना जलवायु (W)
		3.	मानसूनी जलवायु (M)
B.	शुष्क जलवायु	**4.**	मरुस्थलीय जलवायु (वाष्पीकरण की मात्र वर्षण से अधिक होती है)
		5.	स्टेपी जलवायु (अर्द्ध मरुस्थलीय, जहाँ जल का अभाव हमेशा बना रहता है)
C.	समशीतोष्ण आर्द्र जलवायु (मृदु ठंड युक्त शीत ऋतु)	**6.**	भूमध्य सागरीय जलवायु
		7.	चीन तुल्य जलवायु
		8.	पश्चिमी यूरोपीय जलवायु
D.	शीतोष्ण जलवायु (कठोर ठंड युक्त)	**9.**	टैगा जलवायु
		10.	शीत पूर्वी समुद्रतटीय जलवायु शीत ऋतु
		11.	महाद्वीपीय जलवायु
E.	ध्रुवीय जलवायु (उष्ण ऋतु से पूर्णतः रहित)	**12.**	टुंड्रा जलवायु

सामान्यतः विश्व को निम्न जलवायु-प्रदेशों में वर्गीकृत किया गया है-

- **विषुवत रेखीय जलवायु या उष्णकटिबन्धीय जलवायु प्रदेश (AF जलवायु प्रदेश)-** यह जलवायु प्रदेश विषुवत रेखा के 5^0 से 10^0 उत्तर एवं दक्षिणी अक्षांशों में विस्तृत है। समयानुसार इसका विस्तार विषुवत रेखा से दोनों ओर 15^0 से 25^0 अक्षांशों तक भी पाया जाता है। इस पेटी में वर्ष भर समान रूप से उच्च तापक्रम और उच्च वर्षा पायी जाती है। इसमें औसत वार्षिक तापमान 20^0से.ग्रे. से 30^0 से.ग्रे. के बीच होता है, जबकि वर्षा की मात्र 200 सेमी. से अधिक होती है। यहाँ वर्षा मूसलाधार एवं संवहनीय प्रकार की होती है। यहाँ प्रतिदिन प्रातःकाल में आकाश मेघ रहित रहता है, पर जैसे-जैसे सूर्य क्षितिज से ऊपर उठने लगता है, तापक्रम बढ़ने लगता है तथा हवा में संवहनीय तरंगें उत्पन्न होने से आकाश में बादल दिखायी देते हैं और धीरे-धीरे वे काले और घने हो जाते हैं। दोपहर तक पूरा आकाश बादलों से भर जाता है और बाद में बिजली चमकती है और बादलों की गड़गड़ाहट के साथ मूसलाधार वर्षा होती है। जैसे-जैसे दिन ढलता है, वर्षा कम होती जाती है और सायंकाल तक रुक जाती है तथा आकाश साफ हो जाता है। इसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति से प्रतिदिन वर्षा होती है। इस क्षेत्र में शीत ऋतु नहीं होती है। रात में तापमान कम होने से इस ऋतु का एहसास होता है। यह जलवायु प्रदेश **द. अमेरिका की अमेजन बेसिन, अफ्रीका की कांगो बेसिन, गिनी तट, पूर्वी द्वीप समूह तथा फिलीपींस** में पाया जाता है। इस क्षेत्र में उच्च तापक्रम एवं अधिक वर्षा के कारण उष्ण कटिबन्धीय चौड़ी पत्ती के सदाबहार वन जैसे- **महोगनी, चन्दन, गटापाची, रबर, एबोनी, सिनकोना** इत्यादि पाये जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से ये वन महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि यहाँ एक ही प्रजाति के वृक्ष नहीं मिलते हैं बल्कि एक ही क्षेत्र के वृक्षों के प्रजाति में काफी विविधता होती है और अधिक सघनता के कारण वांछित लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता। इन वनों के वृक्षों की ऊँचाई, शीतोष्ण कटिबंध के वनों में पाये जाने वाले वृक्षों से अधिक होती है (60 मीटर तक)। इन वनों में वृक्षों के नीचे सूर्य प्रकाश बहुत कम पहुँच पाता है। इन वनों में अधिपादप (एपिफाइट-ऐसे पौधे जो वृक्षों के सूर्य प्रकाश वाले भाग पर उगते हैं, जिनकी जड़ें जमीन तक नहीं पहुंच पाती है) पाये जाते हैं। इन वनों के अधिकांश वृक्षों की जड़ें छिछली होती है तथा अनेक वृक्ष अपनी सहायक हेतु पुष्टाओं को विकसित कर लेते हैं।
- इन वनों की मृदायें पतली तथा आवश्यक खनिजों जैसे- फास्फोरस, पोटैशियम केल्शियम के मामलों में निर्धन होती है। भारी वर्षा तथा धरातल पर भारी बहाव के कारण निक्षालन (Leaching) प्रक्रिया के कारण मृदा की ऊपरी सतह में अघुलनशील लोहे तथा एल्युमीनियम ऑक्साइड के अवशिष्ट ही शेष रह जाते हैं। इस जलवायु में ऊँचे तापक्रम के कारण मृदा में उच्च जीवाण्विक क्रियाओं के वजह से जैविक पदार्थ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस कारण यह मृदा कुछ-कुछ बंजर तथा गहन कृषि क्रिया हेतु बिना अतिरिक्त उर्वरकों के अनुपयुक्त हो जाती है। मध्य अमेरिका में इन वनों को **वाष्पित होने वाले वन** कहा जाता है।
- **उष्णकटिबंधीय मानूसनी जलवायु प्रदेश (Am जलवायु प्रदेश)-** इस जलवायु प्रदेश का विस्तार 5^0 से 30^0 अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पूर्वी भागों में पाया जाता है तथा वार्षिक तापान्तर 5^0 से 6^0 से.ग्रे. रहता है। वस्तुतः ये प्रदेश व्यापारिक हवाओं की पेटी में आते हैं जिनमें ऋतुवत उत्तर एवं दक्षिण की ओर खिसकाव होता रहता है, फलस्वरूप मानसून प्रकार की विशिष्ट जलवायु की उत्पत्ति होती है, जिसमें 6 महीने हवाएँ सागर से स्थल की ओर तथा 6 महीने हवाएँ स्थल से जल (सागर) की ओर चलती हैं।
- इस जलवायु प्रदेश में ग्रीष्म, शीत एवं वर्षा ऋतुएँ स्पष्ट रूप से होती हैं। इस प्रदेश में तापमान 10^0 से 27^0 तक मिलता है एवं वर्षा 200 सेमी. तक होती है। इस प्रकार के जलवायु प्रदेश में वर्षा की मात्र में विभिन्नता के कारण वनस्पति भी भिन्न प्रकार की होती है जैसे 200 सेमी. से अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में **सदाबहार वन** (महोगनी, रबड़, ताड़, बाँस इत्यादि) एवं 100 से 200 सेमी. वाले प्रदेशों में **पतझड़ वन** (साल, सागौन, आम इत्यादि) मिलते हैं। शुष्क भागों में झाड़ियाँ मिलती हैं।
- इस जलवायु प्रदेश का विस्तार **भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, बर्मा, थाईलैंड, कंबोडिया, लाओस, उ. एवं द. वियतनाम,** अफ्रीका का पूर्वी तटीय भाग, सं. रा. अमेरिका का द.पू. तटीय भाग, पूर्वी द्वीप समूह तथा **ऑस्ट्रेलिया** के उत्तरी भाग में है।
- **सवाना तुल्य जलवायु प्रदेश (Aw जलवायु प्रदेश)-** इस जलवायु प्रदेश में विषुवत रेखीय जलवायु प्रदेश की अपेक्षा वार्षिक वर्षा कम होती है, इसलिए घास के बड़े-बड़े क्षेत्र मिलते हैं, इन्हें अफ्रीका में **सवाना** कहते हैं। इसी आधार पर इस जलवायु प्रदेश को **'सवाना तुल्य जलवायु प्रदेश'** या **'सूडान तुल्य जलवायु प्रदेश'** कहा जाता है। इस जलवायु प्रदेश का विस्तार भूमध्य रेखा के दोनों ओर 5^0 या 15^0 से प्रारम्भ होकर 15^0 या 20^0 अक्षांश तक पाया जाता है। इसमें तापमान 32^0 से.ग्रे. से लेकर 38^0 से.ग्रे. तक पाया जाता है तथा वार्षिक तापान्तर 3^0 से 8^0 से.ग्रे. होता है। वर्षा एवं ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं तथा शीत ऋतु में किरणों का तिरछापन बढ़ जाता है। इस जलवायु प्रदेश में वर्षा की मात्र 100 से 150 सेमी. तक पायी जाती है। वार्षिक वर्षा की पर्याप्त विषमता के कारण किसी वर्ष तो बाढ़ की स्थिति और किसी वर्ष सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। सवाना जलवायु में मोटी सवाना घासों के बीच-बीच में कहीं-कहीं छोटे वृक्ष भी पाये जाते हैं। यह जलवायु द. अमेरिका में **वेनेजुएला, कोलम्बिया, गुयाना, दक्षिणी-मध्य ब्राजील, पराग्वे,** अफ्रीका में विषुवतरेखीय जलवायु के उत्तर तथा दक्षिण (सूडान में सर्वाधिक विस्तार) एवं उत्तरी ऑस्ट्रेलिया इत्यादि प्रदेशों में मिलता है।

- **उष्णकटिबंधीय शुष्क रेगिस्तानी जलवायु प्रदेश (सहारा तुल्य जलवायु प्रदेश)**– यह जलवायु प्रदेश 15^0 से 30^0 अक्षांशों के बीच दोनों गोलार्द्धों में महाद्वीपों के **पश्चिमी भागों** में विस्तृत है। इन भागों में ग्रीष्म का औसत तापक्रम 30^0-35^0 से.ग्रे. के बीच रहता है एवं दोपहर के समय तापक्रम 40^0 से.ग्रे. से 48^0 से.ग्रे. तक पहुँच जाता है। उष्ण शुष्क रेगिस्तानी भागों में वार्षिक एवं दैनिक तापांतर दोनों अधिक होते हैं। रात के समय तापमान कुछ कम हो जाता है।
- यहाँ औसत वार्षिक वर्षा 10 इंच या 25 सेमी. तक होती है। कहीं-कहीं ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ वर्षों तक नाम मात्र की भी वर्षा नहीं होती है। इस प्रदेश में अधिक तापमान एवं कम वर्षा के कारण वर्ष भर शुष्कता बने रहना इसकी प्रमुख विशेषता है, जिसके निम्न कारण हैं-
  - ✓ मध्य अक्षांशों के चक्रवात यहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं, विषुवत रेखा से यह प्रदेश इतना दूर है कि इन्टर ट्रॉपिकल कंवर्जेन्स (ITC) का प्रभाव यहाँ तक नहीं पहुँच पाता है, यह प्रदेश पूर्वी तटों से भी इतनी दूर है कि आर्द्र सागरीय हवाएँ यहाँ तक नमी नहीं पहुँचा पाती हैं तथा प्रतिचक्रवाती दशाओं के कारण वायु नीचे बैठती है, जिसके कारण उसमें स्थिरता होने से वर्षा की सामर्थ्य समाप्तप्राय हो जाती है। इन प्रदेशों में कहीं-कहीं **कंटीली झाड़ियाँ, बबूल, केक्टस** इत्यादि वनस्पतियाँ पायी जाती हैं।
  - ✓ इस जलवायु के अन्तर्गत **एशिया के थार,** सिंध, दक्षिणी ब्लूचिस्तान, **अरब प्रायद्वीप,** अफ्रीका के **सहारा तथा कालाहारी,** उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी मरुस्थल को सम्मिलित किया जाता है। अफ्रीका एवं दक्षिण-पश्चिम एशिया में इस जलवायु का सर्वाधिक विस्तार है।

- **उपोष्णकटिबंधीय शुष्क ग्रीष्म वाली जलवायु (भूमध्य सागरीय जलवायु प्रदेश) (Cs जलवायु प्रदेश)**– भूमध्य सागर के आस-पास विस्तृत होने के कारण इसका नामकरण भूमध्य सागरीय जलवायु प्रदेश किया गया है। यह सर्वाधिक सुनिश्चित जलवायु प्रदेश है, जिसको अन्य जलवायु प्रदेशों से आसानी से अलग किया जा सकता है। इसकी निम्न विशेषताएं हैं-
  - ✓ **शीतकाल में वर्षा का अधिकांश** भाग प्राप्त होता है जबकि **ग्रीष्मकाल शुष्क** होता है। ग्रीष्म काल गर्म और उष्ण होता है जबकि शीतकाल साधारण होता है। वर्ष भर अधिक मात्र में (खासकर ग्रीष्मकाल में) धूप की प्राप्ति होती है। यह जलवायु प्रदेश भूमध्य रेखा के दोनों ओर 30^0-40^0 अक्षांशों के मध्य महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में पाया जाता है। इस जलवायु प्रदेश में शीतकालीन औसत तापमान 5^0-10^0 से.ग्रे. तक एवं ग्रीष्मकालीन औसत तापमान 20^0-27^0 से.ग्रे. तक पहुँच जाता है। यहाँ का वार्षिक तापांतर 10^0 से 17^0 से.ग्रे. होता है। यहाँ औसत वार्षिक वर्षा 37 से 75 सेमी. के बीच होती है। विश्व की दाब पेटियों के मौसमी खिसकाव के कारण यह क्षेत्र ग्रीष्म ऋतु में व्यापारिक पवनों तथा शीत ऋतु में पछुआ पवनों के प्रभाव में आ जाता है।
  - ✓ यह जलवायु प्रदेश स्वास्थ्यवर्धक एवं आनंददायक शीतकाल के लिए अधिक प्रसिद्ध है। यह प्रदेश **नींबू, संतरा, जैतून, अंजीर, खुबानी** इत्यादि रसीले फलों तथा **ओक, वालनट, चेस्टनट, साइप्रस, सिडार** आदि वृक्षों के लिए प्रसिद्ध है। इस जलवायु की झाड़ियाँ एवं वृक्ष छोटे, कठोर व मोटी पत्तियों के होते हैं ताकि वाष्पोत्सर्जन से होने वाले जल ह्रास से बचा जा सकें इन पौधों को फ्रांस में **झाड़ियों का समूह** (Magais), केलिफोर्निया में **चैपरल** तथा भूमध्य सागर के तटीय भागों में माकी कहते हैं। इस जलवायु के अंतर्गत भूमध्य सागर के किनारे फैले यूरोप के देश जैसे- **फ्रांस, दक्षिण इटली, यूनान, पश्चिमी टर्की, सीरिया, प. इजरायल,** उ.प. अफ्रीका का **अल्जीरिया, दक्षिण अफ्रीका का द.प. भाग, सं.रा. अमेरिका के केलिफोर्निया, द. अमेरिका के चिली. द. ऑस्ट्रेलिया के भाग** इत्यादि प्रदेश आते हैं।

- **चीन तुल्य जलवायु प्रदेश/आर्द्र उपोष्ण जलवायु प्रदेश (Ca जलवायु प्रदेश)**– यह जलवायु प्रदेश विषुवत रेखा के दोनों ओर 25^0 से 45^0 अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पूर्वी भागों में पाया जाता है। इसके पश्चिम में आंतरिक शुष्क रेगिस्तान, दक्षिण में मानसूनी जलवायु तथा उत्तर में आर्द्र महाद्वीपीय जलवायु के प्रदेश पाये जाते हैं। इसका सर्वाधिक विस्तार चीन में है, इसलिए इसे **चीन तुल्य जलवायु** कहते हैं। इस जलवायु प्रदेश में **वर्ष भर** वर्षा होती है लेकिन **वर्षा गर्मी में सर्वाधिक** होती है। यहाँ वर्षा भूमध्य सागरीय जलवायु प्रदेश से अधिक होती है। चीन तुल्य जलवायु प्रदेशों के तटीय भागों से होकर गर्म सागरीय धाराएँ चलती हैं जिस कारण समीपवर्ती भागों के तापक्रम पर उनका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। ग्रीष्मकाल का औसत तापक्रम 24^0 से 26.6^0 से.ग्रे. के बीच होता है, शीतकाल साधारण सर्दी वाला होता है एवं तापक्रम 6.6^0 से.ग्रे. से 10^0 से.ग्रे. तक होता है। इस जलवायु प्रदेश में वर्षा की मात्र 100 से 150 सेमी. तक पायी जाती है। वर्षा तटीय भागों में अधिक एवं महाद्वीपों के तट से अन्दर की ओर जाने पर कम हो जाती है। ग्रीष्मकाल में चीन एवं जापान में **'टाइफून'** एवं द.पू. संयुक्त राज्य अमेरिका में **'हरिकेन'** से भी वर्षा होती है। इनसे भयंकर बाढ़ें आती हैं तथा फसलें नष्ट हो जाती हैं। कभी-कभी वायु की अधिक गति से मकानों की छतें भी उड़ जाती हैं। इस जलवायु में **साइप्रस, एश, चेस्टनट,** रेंडगम, **ओक,** चेस्टर, **पाइन** इत्यादि मिश्रित वन पाये जाते हैं। यह जलवायु प्रदेश द.पू. तथा द. चीन, पो बेसिन, डेन्यूब बेसिन, द. पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, द.पू. ब्राजील, उरुग्वे, द. अफ्रीका का द.पू. भाग, द.पू. ऑस्ट्रेलिया इत्यादि क्षेत्रों में विस्तृत है।

- **मध्य अक्षांशीय स्टेपी जलवायु-** इसका विस्तार स्टेपी जलवायु मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में पायी जाती है। यद्यपि स्टेपी जलवायु प्रदेश पछुआ हवाओं की पेटी में अवस्थित है परंतु आंतरिक स्थिति के कारण पर्याप्त वर्षा नहीं होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में शीतोष्ण घास प्रदेश महाद्वीपों के दक्षिणी पूर्वी किनारे में पाये जाते हैं। अतः उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित शीतोष्ण घास के मैदानों की अपेक्षा अधिक वर्षा प्राप्त करने के कारण अधिक मॉडरेट जलवायु वाले है। यूरोशिया के शीतोष्ण घास प्रदेश जिन्हें स्टेपी कहा जाता है, का विस्तार ब्लैक सागर से अल्टाई पर्वतों तक 3200 किमी की लंबाई में पाया जाता है। इन घास के मैदानों को हंगरी में पुष्टाज तथा कनाडा और उत्तरी अमेरिका में प्रेयरीज कहा जाता है। स्टेपी जलवायु में उच्च वार्षिक तापांतर रहता है तथा वार्षिक वर्षा 250 से 750 मिलीमीटर तक होती है।
- **पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु प्रदेश (Cb जलवायु प्रदेश)-** इस जलवायु प्रदेश का विस्तार दोनों गोलार्द्धों में 40^0 से 65^0 अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में है। इस जलवायु वाले क्षेत्र का सर्वाधिक विस्तार पश्चिमी यूरोप में है, इसलिए इसे **पश्चिमी यूरोपीय तुल्य जलवायु** कहते हैं।
- इस जलवायु प्रदेश की प्रमुख विशेषता समुद्र से स्थल की ओर प्रचलित पछुआ पवन प्रवाह है। यहाँ तापमान 10^0 से.ग्रे. होता है, जो समयानुसार बदलता रहता है। यहां वर्षा की औसत मात्र लगभग 140 सेमी. तक होती है। **शीत ऋ तु में वर्षा ग्रीष्म ऋ तु की अपेक्षा अधिक** होती है। वर्ष भर वर्षा के कारण यहाँ घने वन मिलते हैं। प. यूरोप के मैदानी भागों में **ओक, लिण्डेन, बीच एवं एल्स** वन पाये जाते हैं, जबकि नॉर्वे में $60^0$30" अक्षांश के उत्तर में उच्च भागों में कोणधारी वन मिलते हैं। कनाडा के ब्रिटिश कोलम्बिया में कोणधारी वन मिलते हैं। इन वृक्षों का आर्थिक महत्त्व अधिक होता है। यह जलवायु प्रदेश **उत्तर-पश्चिम यूरोप से ब्रिटिश द्वीप समूह, प. नॉर्वे, डेनमार्क, उ.प. जर्मनी तथा प. फ्रांस, कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया, सं. रा. अमेरिका के वाशिंगटन एवं ओरोगन प्रांत, चिली, न्यूजीलैंड एवं तस्मानिया** इत्यादि क्षेत्रों में विस्तृत है। भारी वर्षा के प्रभाव के कारण इस जलवायु की निम्न भूमियों की मृदाओं में पोषाहार तत्वों का अभाव रहता है। **रेडवुड, फर, सीडार, हेमलॉक तथा स्प्रूस** वृक्ष इस जलवायु के पर्वतीय भागों की देशज वनस्पति है। विश्व में सबसे ऊँचे वृक्ष इस जलवायु में पाये जाते हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अपेक्षाकृत कम होती है वहाँ चौड़ी पत्ती वाले पर्णपाती वृक्ष टुकड़ों में पाये जाते हैं, जैसे- **ओक व एश** आदि।
- **सेन्ट लारेंस तुल्य जलवायु प्रदेश (Db जलवायु प्रदेश)-** उत्तरी अमेरिका में सेंट लारेंस नदी के बेसिन में स्थित होने के कारण इस जलवायु प्रदेश को सेन्ट लारेन्स जलवायु प्रदेश कहा जाता है। यह जलवायु आर्द्र महाद्वीपीय प्रकार की है, जो मुख्य रूप से **उत्तरी गोलार्द्ध में 45^0 से 65^0 अक्षांशों** के मध्य **महाद्वीपों के पूर्वी किनारे** पर पायी जाती है। इस जलवायु प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु में औसत तापक्रम 70^0F के लगभग रहता है, जबकि शीतकाल में तापक्रम काफी गिर जाता है, जिससे मौसम कठोर हो जाता है। **यहाँ वर्षा वर्ष भर होती है पर गर्मियों में वर्षा शीतकाल** की अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ जाड़े की वर्षा चक्रवातीय होती है, परन्तु इसका अधिकांश भाग हिमपात के रूप में होता है। यहाँ आर्द्र तटीय भागों में कोणधारी वन तथा आन्तरिक कम आर्द्र भागों में प्रेयरी घास के मैदान पाये जाते हैं। इस प्रदेश के सबसे उत्तरी भाग में शुद्ध कोणधारी वन पाये जाते हैं। कनाडा एवं सं. रा. अमेरिका में इन वनों को काटकर लकड़ी, लुगदी एवं कागज उद्योग का विकास बड़े पैमाने पर किया गया है। इस जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत **कनाडा, सं. रा. अमेरिका के न्यू इंग्लैण्ड प्रदेश, एशिया में मंचूरिया (चीन), कोरिया** तथा **उत्तरी जापान** एवं **दक्षिणी अमेरिका में अर्जेन्टीना के द. भाग** इत्यादि क्षेत्र आते हैं।
- **टैगा जलवायु प्रदेश-** टैगा नामक कोणधारी वनों के प्रचुर मात्र में पाए जाने के कारण इस जलवायु को **टैगा जलवायु** कहते हैं। यह जलवायु **उत्तरी अमेरिका में अलास्का से लेकर न्यूफाउंडलैंड तक तथा यूरेशिया में नॉर्वे से कामा चटका प्रायद्वीप तक फैल हुये** हैं। इस जलवायु का अक्षांशीय विस्तार 50^0 से 70^0उत्तरी, अक्षांश तक है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इन अक्षांशों के बीच स्थलीय भाग न होने के कारणवहाँ पर यह जलवायु नहीं पाई जाती है।
- 10^0 सेल्सियस की समताप रेखा टैगा तथा टुंड्रा प्रकार की जलवायु के बीच सीमा बनाती है। यहां पर शीतऋतु लम्बी होने के कारण कड़ाके की सर्दी पड़ती है। **साइबेरिया स्थित वर्खोयांस्क** का शीतऋतु में न्यूनतम तापमान -67^0C तक मापा गया है। वर्खोन्यांस्क का वार्षिक तापांतर 65.5^0 से.ग्रे. है जो विश्व में अधिकतम है। टैगा जलवायु की प्रमुख वनस्पति **बोरियल वन** है जिनके वृक्षों की पत्तियाँ सुई समान होती है। ये सदाबहार वन होते हैं, इनमें **पाइन, स्प्रूस, फर** के वृक्ष मुख्य रूप से पाये जाते हैं। पूर्वी साइबेरिया के बोरियल वृक्षों में **लार्च** प्रमुख रूप से पाया जाता है। यह वृक्ष अपनी पत्तियाँ शीतकाल में गिरा देता है, इस प्रकार यह एक पर्णपाती वृक्ष है। **पोपलर, बिला, बर्च, एस्पेन** एवं **काला स्प्रूस** अन्य प्रजाति के वृक्ष है जो इन वनों में पाये जाते हैं।
- **टुंड्रा जलवायु प्रदेश (ET)-** महाद्वीपों के उत्तरी ध्रुव तक विस्तार के कारण यह जलवायु प्रदेश उत्तरी गोलार्द्ध में पाया जाता है, जबकि द. गोलार्द्ध में ऐसा न होने के कारण यह जलवायु प्रदेश नहीं पाया जाता है। इस जलवायु प्रदेश के अंतर्गत पश्चिम में उत्तर अमेरिका के अलास्का से लेकर कनाडा एवं पूर्व में हडसन की खाड़ी वाले भाग तथा यूरेशिया में पश्चिम में स्कैंडिनेविया प्रायद्वीप से रूसी साइबेरिया से पूर्व में बेरिंग सागर तट तक विस्तृत है।

- यहाँ शीतऋतु अत्यधिक कठोर एवं ग्रीष्म ऋतु में मौसम ठंडा रहता है। टुंड्रा के दक्षिणी भागों में ग्रीष्म ऋतु 2½ माह तथा उत्तरी भागों में 1½ माह की होती है। 10^0 सेल्सियस की ग्रीष्मकालीन समताप रेखा टुंड्रा जलवायु की दक्षिणी सीमा निर्धारित करती है। गर्मी के महीने में तापमान हिमांक से ऊपर तथा 10^0 सेल्सियस से नीचे ही रहता है। अतः इसी समय छोटी-सी अवधि के लिए जमीन बर्फ से मुक्त हो जाती है। यहाँ वर्षा कम होती है तथा घास, काई, फफूंदी इत्यादि वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। जनवरी का औसत तापमान -40^0 सेल्सियस रहता है जबकि औसत वार्षिक वर्षा 25 सेमी. होती है। यह जलवायु प्रदेश **आर्कटिक महासागर की तटीय पट्टियों** में, तट के समीपवर्ती द्वीपों तथा **आइसलैंड एवं ग्रीनलैंड के हिमरहित किनारों** पर विस्तृत है।
- **हिमाच्छादित जलवायु प्रदेश (EF)**- इस जलवायु प्रदेश में किसी भी महीने का औसत तापमान 0^0 से.ग्रे. से ऊपर नहीं जाता है। अतः यहां कोई वनस्पति नहीं मिलती है। वास्तव में ये प्रदेश स्थायी बर्फ के क्षेत्र हैं, जो हमेशा बर्फ से ढके रहते हैं। **अंटार्कटिका महाद्वीप, ग्रीनलैंड, आइसलैंड** तथा **आर्कटिक महासागर** में ध्रुव के समीप स्थित कूछ द्वीपों पर इस प्रकार की जलवायु विस्तृत है। यहाँ अल्प वृष्टि शुष्क तथा भुरभुरी हिम के रूप में होती है।

जलवायु: एक नजर में

- जलवायु के वर्गीकरण की दो पद्धतियाँ कोपेन तथा थार्नवेट द्वारा प्रस्तुत की गईं जो सर्वाधिक प्रचलित हैं।
- विषुवत् रेखीय जलवायु प्रदेश में संवहनीय प्रकार की वर्षा होती है। यहाँ वर्षा प्रतिदिन होती है।
- विषुवत रेखीय जलवायु दक्षिण अमेरिका के अमेजन बेसिन, अफ्रीका के काँगो बेसिन, गिनी तट, पूर्वी द्वीप समूह तथा फिलीपीन्स में पायी जाती है।
- अधिक वर्षा के कारण विषुवत् रेखीय जलवायु प्रदेश में महोगनी, चंदन, रबर, एबोनी, सिनकोना इत्यादि वृक्षों के घने जंगल पाए जाते हैं।
- अधिक सघनता तथा विविधता के कारण उपरोक्त जंगलों का दोहन अत्यंत ही कठिन है।
- मानसूनी जलवायु प्रदेश व्यापारिक हवाओं के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। महोगनी, साल, सागौन तथा आम इस क्षेत्र के प्रमुख वृक्ष हैं।
- मानसूनी जलवायु प्रदेश का विस्तार भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, बर्मा, थाईलैंड, कंबोडिया, लाओस, वियतनाम तथा ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में है।
- **सवाना तुल्य जलवायु प्रदेश को सुडान तुल्य जलवायु प्रदेश** भी कहा जाता है। इस क्षेत्र में वर्षा की मात्र में अत्यधिक विषमता पाई जाती है।
- सवाना तुल्य जलवायु प्रदेश के क्षेत्र वेनेजुएला, कोलम्बिया, गुयाना, दक्षिणी मध्य ब्राजील, पराग्वे, उत्तरी ऑस्ट्रेलिया इत्यादि हैं।
- **भूमध्यसागरीय जलवायु प्रदेश** का सर्वाधिक विस्तार चीन में होने के कारण इसे **चीन तुल्य जलवायु प्रदेश** भी कहा जाता है।
- चीन तुल्य जलवायु प्रदेश में वर्षा वर्ष भर होती है। वर्षा तटीय भागों में अधिक एवं तट से अन्दर की ओर जाने पर कम होती है।
- ग्रीष्म काल में चीन एवं जापान में **टाइफून** एवं दक्षिण-पूर्व संयुक्त राज्य अमेरिका में **हरिकेन** से भी वर्षा होती है।
- पश्चिमी यूरोप तुल्य जलवायु प्रदेश का सर्वाधिक विस्तार पश्चिमी यूरोप में है, इसलिए इसे पश्चिमी यूरोपीय जलवायु कहते हैं। इसकी प्रमुख विशेषता पछुआ पवन प्रवाह है। ओक, लिंडेन, बर्च एवं एल्स वन पाए जाते हैं। इनका आर्थिक महत्त्व अधिक होता है।
- सेन्ट लारेन्स तुल्य जलवायु प्रदेश में वर्षा वर्ष भर होती है। इस प्रदेश में कोणधारी वन तथा कम आर्द्र भागों में प्रेयरी घास के मैदान पाये जाते हैं।
- मॉस और लाइकेन टुंड्रा प्रदेश की वनस्पतियाँ हैं।
- भूमध्य रेखा वन प्रदेशों का दूसरा नाम **सेल्वास** है।
- मलेरिया का प्रकोप उष्णार्द्र जलवायु प्रदेशों में अधिक होता है।
- गठिया या दमा का प्रकोप **शीतल-आर्द्र** जलवायु में होता है।
- विश्व में सर्वाधिक तापमान तथा दैनिक तापान्तर **सहारा तुल्य** जलवायु में पाया जाता है।
- उच्चतर अक्षांशों की तुलना में निम्नतर अक्षांशों में जैव-विविधता अधिक होती है।
- **उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में जैव विविधता सर्वाधिक होती है।**
- पर्वतीय क्षेत्रों के चोटियों की तुलना में घाटियों में जैव विविधता अधिक होती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

महासागर और उसके उच्चावच
(Ocean & its Relief)

सामान्य परिचय

सम्पूर्ण सौरमण्डल की व्यवस्था में मात्र पृथ्वी पर ही इतनी अधिक मात्र में जल उपलब्ध है और इसकी यही विशेषता पृथ्वी पर जीवन को सम्भव बनाने का सबसे प्रमुख कारण भी है। जल की उपस्थिति के कारण ही अन्तरिक्ष से पृथ्वी का रंग नीला दिखाई देता है। इसीलिए इसको **'नीला ग्रह'** (Blue Planet) की संज्ञा भी दी जाती है। समस्त **ग्लोब का क्षेत्रफल 50.995 करोड़** वर्ग किमी. है, जिसमें **71% क्षेत्र पर जलमण्डल** एवं **29% क्षेत्र पर स्थलमंडल** का विस्तार है। उत्तरी गोलार्द्ध में लगभग 40% तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में लगभग 81% भाग पर जलमंडल का विस्तार मिलता है।

- समस्त जलमंडल का लगभग 97.3% भाग महासागर एवं अंतर्देशीय समुद्रों से आच्छादित है, जबकि शेष 2.7% भागों पर हिमनद, सतही जल के रूप में नदी, तालाब, झीलों एवं भूमिगत जल का विस्तार है। जल की तुलना में समुद्री भागों के ऊपर स्थित सम्पूर्ण स्थलीय भाग का आयतन उसका 1/18वां भाग ही है। यदि सम्पूर्ण समुद्री नितल को शामिल करते हुए ठोस भू-पर्पटी को पूर्णतः समतल कर दिया जाय तो सम्पूर्ण संसार 3650 मीटर गहरे जल के नीचे डूब जायेगा।

- पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीव एवं वनस्पति जगत के जीवन का आधार जल ही है जबकि धरातल पर एवं उसके नीचे भूगर्भ में स्थित विभिन्न प्रकार के जलीय स्रोतों के आधार महासागरीय भाग हैं। महासागरीय भागों से ही जलीय परिसंचरण के माध्यम से सर्वत्र जल के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही, महासागरीय जल के कारण सम्पूर्ण धरातल पर तापमान सम्बन्धी सन्तुलन भी बना रहता है और यह जलवायविक सन्तुलन की दशा के लिए उत्तरदायी भी है।

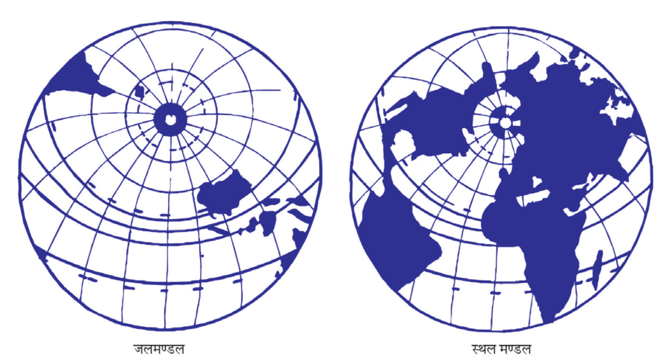

जलमण्डल
स्थल मण्डल

- **पृथ्वी पर पाये जाने वाले महासागर निम्नलिखित हैं-**

  ✓ प्रशांत महासागर
  ✓ अटलांटिक महासागर
  ✓ हिन्द महासागर
  ✓ आर्कटिक महासागर
  ✓ अंटार्कटिक महासागर

- इनमें से तीन महासागर अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रशांत महासागर

पृथ्वी पर सभी महासागरों में **प्रशांत महासागर सबसे बड़ा महासागर** है। इसका कुल क्षेत्रफल 16,52,46,200 वर्ग किमी. है।

- यह पृथ्वी के एक तिहाई क्षेत्रफल से अधिक है। यह पश्चिम में एशिया के तट से पूर्व में सं. रा. अमेरिका तक विस्तृत है प्रशांत महासागर का कुल क्षेत्रफल 16,37,237,40 किमी. है जो पृथ्वी के क्षेत्रफल का 1/3भाग है। इसका आकार **त्रिकोणीय** है। यह सभी महासागरों में **सर्वाधिक गहरा** है। इसकी औसत गहराई 4572 मीटर है। इसकी सर्वाधिक गहराई **मेरियाना खाई** में पाई जाती है, जो समुद्र तल से 11,035 मीटर गहरी है। प्रंशात महासागर की सतह लगभग एक समान है। इस पर चौड़े-चौड़े उत्थान तथा गर्त मिलते हैं।
- इस महासागर में 20,000 से अधिक द्वीप हैं इसका महाद्वीपीय क्षेत्रफल काफी कम है। महासागरों के मध्य स्थित द्वीप प्रवाल तथा ज्वालामुखी प्रक्रियाओं से निर्मित है। इसका शेल्फ काफी चौड़ा एवं विस्तृत है। इसकी चौड़ाई 160 से 1,600 किमी. है। इन महाद्वीपीय शेल्फों पर अनेक द्वीप समूह-क्यूराइल्स, जापान, फिलीपींस, इंडोनेशिया, न्यूजीलैंड आदि स्थित हैं। इसके विपरीत उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी किनारे पर स्थिति महाद्वीपीय शेल्फ कम विस्तार वाली है। इसकी चौड़ाई केवल 80 किमी. है। इसके प्रमुख वन क्षेत्र **कोकोस**, अल्बाट्रोज, सेन-फेलिक्स-जुआन आदि हैं।
- प्रशांत महासागर में **बेरिंग सागर, जापान सागर, पीला सागर, चीन सागर, बंडा सागर, अरफुरा सागर** आदि स्थित हैं। प्रशांत महासागर में मध्य महासागरीय कटकों का अभाव है। हालांकि इसमें स्थानीय महत्त्व के कूछ बिखरे हुए कटक मिलते हैं। इन कटकों में

पूर्वी प्रशांत उत्थान (इसे **एल्बाट्रोस पठार** भी कहते हैं), दक्षिणी पूर्वी प्रशांत पठार, प्रशांत अंटार्कटिक कटक, चिली उत्थान, लॉर्ड होवो उत्थान, हवाई कटक आदि प्रमुख हैं। प्रशांत महासागर में फिलीपीन्स द्रोणी, फिजी द्रोणी, मध्य प्रशांत द्रोणी आदि प्रमुख महासागरीय द्रोणियां मिलती हैं। इसकी प्रमुख खाइयों में **एल्यूशियन खाई, क्यूराइल खाई,** जापान खाई, बेनिन खाई, मिंडनाओ खाई, **मेरियाना खाई, टोंगा खाई**, कर्माडेक खाई, **आटाकामा** खाई विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अटलांटिक महासागर

अंग्रेजी के **S आकार का अटलांटिक महासागर विश्व का दूसरा सबसे बड़ा महासागर** है। इसका क्षेत्रफल प्रशांत महासागर का लगभग आधा है। इसका कूल क्षेत्रफल 82,441,500 वर्ग किमी. है। यह पृथ्वी के कूल क्षेत्रफल का 1/6 भाग घेरता है। अफ्रीका के तट के समीप इसकी चौड़ाई 80 से 160 किमी. तक है परंतु उत्तर-पूर्वी अमेरिका और उत्तर-पश्चिमी यूरोप के तटों के समीप इसकी चौड़ाई 250 से 400 किमी. तक है।

- अटलांटिक महासागर पश्चिम की ओर से उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका द्वारा तथा पूर्व की ओर यूरोप तथा अफ्रीका से घिरा हुआ है। दक्षिण की ओर इसका विस्तार अंटार्कटिक महाद्वीप तक है जबकि उत्तर में यह ग्रीनलैंड तथा आइसलैंड से सीमांकित है। इसके दोनों किनारों पर अनेक सीमांत अथवा तटीय सागर हैं जो मग्न तटों पर स्थित हैं। इन तटीय सागरों में **मैक्सिको की खाड़ी, केरीबियन सागर, भूमध्यसागर,** नार्वेजियन सागर, **हडसन की खाड़ी, बाल्टिक सागर** तथा **उत्तरी सागर** आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।
- अटलांटिक महासागर की सर्वप्रमुख विशेषता इसके मध्य में स्थित **मध्य अटलांटिक कटक** है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण की ओर है। 'S' आकृति वाले इस कटक की लम्बाई लगभग 16,000 किमी. तथा ऊंचाई लगभग 3 किलोमीटर है। इसके मध्य में एक चौड़ा विभंग मिलता है। इस कटक की दोनों ओर की ढालें मंद हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर में यह कटक **डॉल्फिन कटक** और दक्षिणी अटलांटिक में **चैलेंजर कटक** कहलाता है। मध्य अटलांटिक कटक के कारण अटलांटिक महासागर दो द्रोणियों में बंटा हुआ है। इन्हें **पूर्वी एवं पश्चिमी द्रोणी** कहा जाता है। इस महासागर की खाईयों में प्यूर्टोरिको, केमान, साउथ सैंडविच आदि प्रमुख हैं।

हिन्द महासागर

- हिन्द महासागर को **अर्द्ध महासागर** भी कहा जाता है। यह उत्तर में एशिया, दक्षिण में अंटार्कटिका, पश्चिम में अफ्रीका तथा पूर्व में एशिया व ऑस्ट्रेलिया से घिरा हुआ है। यह प्रशांत महासागर एवं अटलांटिक महासागर से छोटा है। इसका कूल क्षेत्रफल 73,442,700 वर्ग किमी. है जबकि इस महासागर का कुल आयतन 291,030,000 घन किमी. है। इसकी औसत गहराई 4000 मीटर है।
- हिन्द महासागर के नितल पर असामानताएं कम मिलती है। गर्त सामान्यतः नहीं पाये जाते हैं। इसका एकमात्र अपवाद जावा द्वीप के दक्षिण व उसके समानांतर **सुंडा गर्त** स्थित है। प्रशांत व अटलांटिक महासागरों की तुलना में हिन्द महासागर में सीमांत सागरों की संख्या कम है। इसमें **मोजाम्बिक चैनल, लाल सागर, बंगाल की खाड़ी** आदि कूछ महत्त्वपूर्ण सागर उपस्थित हैं।
- अटलांटिक के समान ही इसमें भी कन्याकुमारी से लेकर अंटार्कटिक तक निरंतर एक जलमग्न कटक मिलता है। यह कटक हिन्द महासागर को लगभग दो बराबर बेसिनों में विभक्त करता है। वर्तमान में **कार्ल्सबर्ग कटक** नामक एक नये कटक की खोज की गई है। कटक अरब सागर को लगभग दो बराबर भागों में बांट देता है। हिन्द महासागर में स्थित अधिकांश द्वीप महाद्वीपीय खंडों में टूटकर अलग हुए भाग हैं। इन द्वीपों में अंडमान निकोबार द्वीप समूह, श्रीलंका, मेडागास्कर, जंजीवार द्वीप समूह आदि प्रमुख हैं। हिन्द महासागर के पूर्वी भाग में अपेक्षाकृत कम द्वीप मिलते हैं।
- इस महासागर में 60 प्रतिशत मैदानों की ऊंचाई 3,600 मीटर से 5,400 मीटर है। ओमान द्रोणी, अरेबियन द्रोणी, सोमाली द्रोणी, अगुल्हास-नटाल द्रोणी, अटलांटिक-हिंद-अंटार्कटिक द्रोणी, पूर्वी हिन्द-अंटार्कटिक द्रोणी तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलियन द्रोणी हिन्द महासागर की प्रमुख द्रोणियां हैं।

आर्कटिक महासागर

- आर्कटिक महासागर उत्तरी ध्रुव की ओर स्थित है। अन्य तीन महासागरों की अपेक्षा **यह सबसे छोटा महासागर** है। इसका कूल क्षेत्रफल 14,090,100 वर्ग किमी. है जबकि इसका कूल घनत्व 16,980,000 घन किमी. है। इसकी औसत गहराई 3500 मीटर है। इसमें फेरी-आइसलैंड वन क्षेत्र (रिज) तथा ईस्ट जोन मायेन वन क्षेत्र (रिज) हैं। आर्कटिक महासागर के प्रमुख बेसिन ग्रीनलैंड तथा नॉर्वे है।

अंटार्कटिक महासागर

- अंटार्कटिक महासागर अथवा दक्षिण ध्रुवीय महासागर अंटार्कटिक महाद्वीप के चारों ओर फैला हुआ है। कुछ विद्वानों के अनुसार अंटार्कटिक महासागर एक स्वतंत्र महासागर न होकर प्रशांत महासागर अटलांटिक महासागर व हिंद महासागर का दक्षिणी विस्तार मात्र है। आर्कटिक महासागर की गहराई हॉर्न अंतरीप के पास 600 मील तो अफ्रीका के दक्षिण में स्थित अमुलहस अंतरीप के पास 2400 मील है। अंटार्कटिक महासागर के सतह का औसत तापमान 29.8 फारेनहाइट है तथा तल पर यह तापमान 32^0 से 37^0 F होता है।

महासागरीय बेसिन

स्थलमंडल की ही भांति जलमंडल में भी उच्चावच सम्बन्धी विविधता पायी जाती है। समुद्र वैज्ञानिकों द्वारा स्थलमंडल एवं जलमंडल के उच्चावचों के बीच विभिन्न गहराईयों के अनुपात ज्ञात किये गये हैं, जिनके अनुसार सम्पूर्ण महासागरीय भाग की औसत गहराई 3,800 मीटर है जबकि स्थलभाग की औसत ऊंचाई **840 मीटर** है।

महासागरीय उच्चावच (Oceans Relief)

विभिन्न महासागरों की संरचना, संरूपण और उच्चावच आकार एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। स्थलीय आकारों की तुलना में महासागरों का तल एकरूपता लिए होता है। फिर भी सागरीय जल के नीचे महत्त्वपूर्ण ऊँचाई और धंसाव पाये जाते हैं। प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर और आर्कटिक महासागरों के प्रमुख उच्चावचों को उच्चतामितीय वक्र द्वारा समझा जा सकता है।

उच्चतामितीय वक्र (Hypsometric or Hypsographic Curve)

- समानुपातिक दृष्टि से सम्पूर्ण भूमण्डल के स्थलमंडल की ऊंचाई तथा जलमंडल की गहराई को उच्चतामितीय वक्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है।
- इस वक्र में महाद्वीपीय उच्चभागों अर्थात् पर्वतश्रेणियों के साथ ही महासागरीय नितल में स्थित चार प्रमुख उच्चावच मंडलों को दर्शाया जाता है।

- **ये मंडल इस प्रकार हैं-**
  - ✓ महाद्वीपीय मग्न तट (Continental Shelf)।
  - ✓ महाद्वीपीय मग्न ढाल (Continental Slopes)।
  - ✓ गहरा महासागरीय मैदान (Deep Sea Plains)।
  - ✓ महासागरीय गर्त (Ocean Deeps)।

महाद्वीपीय मग्न तट (Continental Shelf)

महाद्वीपों के किनारे वाला वह भगा जो कि महासागरीय जल में डूबा रहता है। यहां जल की औसत गहराई 150 से 200 मी. तक पायी जाती है जबकि ढाल 1^0 से 3^0 तक होता है। इसकी चौड़ाई में भी भिन्नता पायी जाती है। सामान्यतः इसकी औसत चौड़ाई 48 किमी. मानी जाती है जबकि कुछ स्थानों पर 1,000 किमी. से भी अधिक चौड़े मग्न तट पाये जाते हैं। मग्न तट की चौड़ाई पर तटीय उच्चावच का नियंत्रण रहता है।

- जहाँ पर तट से लगे उच्च पर्वतीय भाग होते हैं, वहाँ मग्न तट संकरे होते हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण अमेरिका का प्रशान्त महासागरीय मग्न तट एंडीज पर्वतमाला के कारण संकरा हो गया है। इसके विपरीत जहाँ पर स्थलीय तटवर्ती भाग मैदानी होता है, वहाँ पर मग्न तट अधिक विस्तृत देखे गये हैं। परन्तु मिसीसिपी के मुहाने पर मग्न तट (अपवाद स्वरूप) संकरा है।
- इसी प्रकार का पश्चिमी मग्न तट पूर्वी मग्न तट (50 किमी.) की अपेक्षा तिगुना चौड़ा (150 से 200 किमी.) है जबकि भारत के पश्चिम तट पर पर्वत है और पूर्वी तट पर मैदान है। इसलिए इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं। महासागरीय नितल के सम्पूर्ण क्षेत्रफल का **8.6 प्रतिशत** भाग महाद्वीपीय मग्न तटों के रूप में है, जिसमें **अटलाण्टिक महासागर में सर्वाधिक 13.3%** भाग पर मग्नतट का विस्तार है। मग्नतट की उत्पत्ति के कई कारण है जिनमें सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन, नदियों द्वारा लाये गए निक्षेप, महाद्वीपीय व महासागरीय तली से उठने वाली संवहन तरंगों के संपीडन से महाद्वीपीय किनारों का अवतलित होना तथा सागर तल में गिरावट के कारण अपदरन।
- महत्त्व की दृष्टि से ये तट मानव-जीवन के लिए काफी उपयोगी हैं। क्योंकि इन पर ही सभी प्रकार के समुद्री खाद्य पदार्थों की अधिकांशः मात्र प्राप्त होती है। ये मत्स्ययन के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी हैं तथा विश्व के सम्पूर्ण खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस का लगभग 20% उत्पादन इन्हीं तटीय क्षेत्रों से किया जाता है।

महाद्वीपीय मग्नढाल (Continental Slopes)

महाद्वीपीय मग्नढाल जलमग्न तट (Continental Shleves) एवं गहरे सागरीय मैदान (Deep Sea Plain) के बीच तीव्र ढाल वाला मंडल है। इस ढाल पर जल की गहराई 200 मीटर से 2000 मीटर तक होती है। इसका ढाल विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है। समस्त महासागरीय क्षेत्रफल के 8.5% पाये जाते हैं। अटलांटिक महासागर में 12.4%, प्रशांत महासागर में 7% तथा हिंद महासागर में 6.5% भाग पर मग्न ढाल का विस्तार पाया जाता है। मग्न ढालों पर सागरीय निक्षेपों का अभाव रहता है क्योंकि ढलान अधिक होने से निक्षेप नहीं रूक पाते हैं। मग्न ढाल के निर्माण के विषय में मुख्यतः दो मत प्रचलित हैं- पहले के अनुसार सागरीय तरंगों द्वारा अपरदन के कारण जबकि दूसरे मत के अनुसार विवर्तनिकी भ्रंशन के कारण मग्न ढालों का निर्माण होता है।

- इसका औसत ढाल 5^0 होता है। इस पर तीव्र ढाल वाली अंतः सागरीय कंदराएं पाई जाती हैं। इस ढाल वाले भाग को ही महाद्वीपीय भाग का अन्तिम छोर माना जाता है एवं इसके आगे महासागरीय नितल प्रारम्भ होता है। विश्व के महासागरीय भागों में इन ढालों पर अन्तःसागरीय केनियन की उपस्थिति पायी जाती है।
- केनियन या गहरी खाईयों के सबसे अन्तिम भाग में पंखाकार निक्षेप पाये जाते हैं। महाद्वीपीय मग्न ढालों पर यद्यपि समुद्री निक्षेपों का अत्यधिक जमाव मिलता है, किन्तु कहीं-कहीं नदियों द्वारा लायी गयी स्थलीय जलोढ़ मिट्टी का भी निक्षेप मिलता है।

- **आकृति की दृष्टि से यह पांच प्रकार के होते हैं-**
  - ✓ अधिक तीव्र ढाल।
  - ✓ मन्द ढ़ाल।
  - ✓ भ्रंशित ढ़ाल।
  - ✓ सीढ़ीनुमा ढाल।
  - ✓ वे ढ़ाल जिस पर समुद्री पर्वत टिके हैं।
- महाद्वीपीय ढ़ाल समुद्रों के लगभग 6.5% भाग में विस्तृत हैं।

गहरे सागरीय मैदान (Deep Sea Plains)

- महासागरीय बेसिन में महाद्वीपीय मग्न ढाल के पश्चात् गहरा सागरीय मैदान प्रारम्भ होता है, जो सम्पूर्ण समुद्री तली के लगभग 76% क्षेत्र को आवृत्त किये हुए हैं। इसकी गहराई 3,000 मीटर से लेकर 6,000 मीटर तक पायी तक पायी जाती है। इनका समतल धरातल इन्हें धरातलीय मैदानों के तुल्य उच्चावच प्रदान करता है। इनका ढाल 1^0 से भी कम पाया जाता है और सामान्यतया समुद्र की ओर ये पहाड़ियों से घिरे रहते हैं। गहरे सागरीय मैदानों पर जलज निक्षेप अथवा समुद्री जीवों के अस्थिपंजरों का जमाव पाया जाता है। अवसादों के जमाव के कारण ही इनकी विषम स्थलाकृतियां समतल हो जाती हैं। 20^0 उत्तर से 60^0 दक्षिणी के मध्य सागरीय मैदान का विस्तार सर्वाधिक पाया जाता है जबकि 60^0-70^0 उत्तरी अक्षांशों के मध्य इनका अभाव पाया जाता है। प्रशांत महासागर में 80.3% हिंद महासागर में 80.1% तथा अटलांटिक महासागर में 54.9% भागर पर सागरीय मैदान का विस्तार है।

महासागरीय गर्त (Ocean Deeps)

- ये महासागरीय बेसिन के सबसे निचले भाग हैं और इनकी तली औसत महासागरीय नितल के काफी नीचे मिलते हैं। इनकी स्थिति सर्वत्र न मिलकर यत्र-तत्र बिखरे हुए रूप में मिलती है। वास्तव में ये महासागरीय नितल पर स्थित तीव्र ढाल वाले लम्बे, पतले तथा गहरे अवनमन के क्षेत्र हैं। इनकी उत्पत्ति महासागरीय तली में पृथ्वी के क्रस्ट के वलन एवं भ्रंशन के परिणामस्वरूप मानी जाती है अर्थात् इनकी उत्पत्ति विवर्तनिक क्रियाओं से हुई है। यद्यपि महासागरीय गर्तों की उपस्थिति सभी महासागरों में है, किन्तु प्रशान्त महासागर में ये सबसे अधिक मिलते हैं। 32 गर्त प्रशान्त महासागर में, 19 गर्त अटलांटिक महासागर में तथा 6 गर्त हिन्द महासागर में मिलते हैं। महासागर में पूर्वी तथा पश्चिमी किनारों पर इनकी लगभग एक निरन्तर श्रृंखला मिलती है, जिसमें **मेरियाना गर्त सर्वाधिक गहरा** (11,000 मीटर) है।
- उपर्युक्त मंडलों के अतिरिक्त महासागरीय नितल में अनेक जलमग्न लक्षण पाये जाते हैं। इनमें कटक, पहाड़ी, समुद्री पर्वत, गाईऑट (समतल शीर्ष वाले पर्वत), खाइयां, केनियन, गर्त, विभंग क्षेत्र आदि प्रमुख हैं। अनेक द्वीप, प्रवाल वलय द्वीप, प्रवाल भित्ति, जलमग्न ज्वालामुखी पर्वत आदि महासागरीय नितल की विविधता को रेखांकित करते हैं।

महासागरीय गर्त	महासागर
• चैलेंजर या मेरियाना	उत्तरी-पश्चिमी प्रशान्त महासागर
• आटाकामा व टोंगा	मध्य-पश्चिमी प्रशांत महासागर
• फिलीपीन्स	उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत महासागर
• टासकरोरा	उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत महासागर
• प्यूर्टोरिको	उत्तरी-पश्चिमी प्रशांत महासागर
• रोमशे	उत्तरी-पश्चिमी अटलांटिक महासागर
• सुण्डा	दक्षिण-पूर्व हिंद महासागर

- उपर्युक्त आकृतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य आकृतियों की महासागरीय नितल पर पायी जाती है-

जलमग्न कटक

- महासागरीय नितल पर मिलने वाले जलमग्न कटक विशाल पर्वत श्रेणी होते हैं। जो पृथ्वी पर सबसे लंबे पर्वत तंत्र का निर्माण करते हैं। मध्य अटलांटिक इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इन पर्वत तंत्रें की कूल लम्बाई 75,000 किमी. से भी अधिक है। इनके निर्माण के लिए विवर्तनिकी शक्तियाँ एक महत्त्वपूर्ण कारक है। ये मुख्यतः महासागरों के मध्य में पाये जाते हैं कहीं-कहीं इनके शिखर जलस्तर से ऊपर उठकर द्वीपों का रूप धारण कर लेते हैं। अजोर्स तथा केपवर्ड द्वीप इसके मुख्य उदाहरण हैं।

जल मग्न केनियन

- महासागरीय नितल पर मिलने वाले गहरे गार्ज जलमग्न केनियन कहलाते हैं। ये तीव्र ढाल वाली गहरी घाटियों के रूप में स्थित होती हैं। **हडसन केनियन**, जो हडसन नदी के मुहाने से प्रारंभ होकर अटलांटिक महासागर तक विस्तृत है, विश्व का सर्वाधिक प्रसिद्ध जलमग्न केनियन है। सबसे **अधिक केनियन प्रशान्त महासागर** में पाए जाते हैं। संसार में **सबसे लम्बे जलमग्न केनियन बेरिंग सागर** में पाए जाते हैं। इनके नाम **बेरिंग** (Bering), **प्रिबिलाफ** (Pribilof) तथा **जेमचुग** (Zhemchug) केनियन है।

नितल पहाड़ियाँ

- महासागरीय नितल पर हजारों की संख्या में ऐसी पहाड़ियाँ पायी जाती है जो समुद्र के जल में डूबी हुई हैं। जिन पहाड़ियों का नितल 1000 मीटर से ऊपर उठा हो उन्हें समुद्री पर्वत कहते हैं। सपाट सागरीय बैंक या चबूतरा महाद्वीपीय सीमाओं पर स्थित चौरस उथले भाग सागरीय बैंक कहलाते हैं। यूरोप के पश्चिमी तट पर डागर बैंक तथा न्यूफाउंडलैंड के पास ग्रांड बैंक है। शीर्ष वाले पर्वतों को गाईऑट कहा जाता है।

तट, शोल तथा प्रवाल भित्ति

- महासागरीय नितल के उच्च क्षेत्रों के ऊपरी भागों पर स्थित तट, शोल और भित्ति वे जलमग्न ठोस आकृतियां हैं, जो क्रमशः अपरदन, निक्षेपण तथा जैविक प्रक्रियाओं से निर्मित होती हैं। महाद्वीपों के किनारे स्थित समतल शीर्ष वाले उत्थान तट कहलाते हैं। ये नौसंचालन के लिए पर्याप्त होती हैं। शोल जलमग्न उत्थान के विलग भाग होते हैं, जहाँ जल की गहराई छिछली होती है। प्रवाल भित्ति का निर्माण सागरीय जीव मूंगे या कोरल पाल्पि (Coral Polyps) के अस्थि पंजरों के समकेन तथा संयोजन द्वारा होता है।

- **भित्ति कई प्रकार की होती है-** तटीय भित्ति, प्रवाल रोधिका भित्ति तथा प्रवाल वलय भित्ति। ऑस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड के समीप विश्व की सबसे बड़ी प्रवाल भित्ति पायी जाती है जिसका नाम ग्रेट बैरियर प्रवाल भित्ति (Great Barrier Reef है।

KGS KHAN GLOBAL STUDIES IAS Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

महासागरीय जल का तापमान, लवणता एवं निक्षेप (Ocean water temperature, salinity & deposition)

महासागरीय जल का तापमान

धरातल पर विद्यमान सम्पूर्ण जल का लगभग 97% भाग महासागरीय जल के रूप में है। इस जल के दो सबसे महत्त्वपूर्ण गुण हैं- तापमान एवं लवणता।

- सागरीय जल के तापमान का वास्तविक स्रोत सूर्य है जिससे प्राप्त होने वाली सूर्यातप की मात्र का महासागरीय जल द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है। यह तापमान महासागरीय जल के एक महत्त्वपूर्ण भौतिक गुण के रूप में कार्य करता है क्योंकि इससे ही महासागरीय जलराशियों का परिसंचरण तथा उसकी अन्य विशेषताएं नियन्त्रित की जाती हैं। महासागरीय जीवों तथा वनस्पतियों के प्रकार, उनका जीवन तथा वितरण तापमान से ही सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। सामान्यतः महासागरीय जल का तापमान लगभग -5^0 सेल्सियस से 33^0 सेल्सियस तक रहता है। सूर्यातप का सर्वाधिक अवशोषण जल की ऊपरी सतह द्वारा ही किया जाता है।
- वरसेली महोदय ने सूर्यातप का अवशोषण करने वाली जलीय सतह की गहराई एक मीटर बतायी है जबकि उसके नीचे तापमान में क्रमशः कमी आती जाती है। इसी प्रकार जलीय भाग के तापमान में स्थानिक एवं सामयिक रूप में भी अन्तर पाया जाता है।

महासागरों की तापमान संरचना

महासागरीय जल की तापमान संरचना मध्य तथा निम्न अक्षांशों में तीन स्तरी प्रणाली के रूप में विद्यमान है-

- **ऊपरी परत**- यह परत सागरीय जल की सतह से 500 मीटर की गहराई तक होती है। इसका औसत तापमान 20^{0}C से 25^{0}C तक होता है। यह परत उष्णकटिबंधीय महासागरों में वर्ष भर रहती है। परंतु मध्य अक्षांशों में ग्रीष्म काल में ही विकसित होती है।
- **थर्मोक्लाइन परत (मध्य परत)**- यह ताप प्रवणता कहलाता है इस परत में गहराई बढ़ने के साथ तापमान तीव्र गति से घटता है। निम्न अक्षांशों में यह धीरे-धीरे घटता है। इस परत की मोटाई 500 मीटर से 1000 मीटर तक होती है।
- **तृतीय स्तर**- इस परत का विस्तार महासागरों में 1000 मीटर की गहराई से तली तक होता है। इस परत में गहराई के साथ तापमान परिवर्तन की दर बहुत कम होती है। आर्कटिक और अंटार्कटिक अक्षांशों में तल का तापमान 0^{0}C होता है।

महासागरीय जल के तापमान को प्रभावित करने वाले कारक

- **अक्षांश**- भूमध्य रेखा पर महासागरीय जल का तापमान अधिकतम तथा ध्रुवों पर न्यूनतम होता है। जब हम भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं तो तापमान घटता जाता है। इसका कारण यह है कि सूर्य की किरणें ध्रुवों की ओर तिरछी होती जाती है। भूमध्य रेखा से 40^0 उत्तर तथा दक्षिण अक्षांशों के मध्य महासागरीय जल का तापमान वायु के तापमान से कम किंतु 40^0 से ध्रुवों के बीच अधिक रहता है।

- **प्रचलित पवनें**- प्रचलित पवनें अपने साथ समुद्र तल के जल को बहा ले जाती है इसकी पूर्ति के लिए समुद्र के निचले भाग से ठंडा जल ऊपर आ जाता है। इस प्रकार जिस ओर वायु चलती है वहाँ का तापमान कम होता है। इसी कारण से उष्ण कटिबंध में सन्मार्गी या व्यापारिक पवनों के प्रभावाधीन महासागरों के पूर्वी भागों में समुद्री जल का तापमान कम तथा पश्चिमी भागों में तापमान अधिक होता है।

- **जल एवं स्थल के वितरण में असमानता**- उत्तरी गोलार्द्ध में स्थल की अधिकता तथा दक्षिण गोलार्द्ध में जल की अधिकता के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में महासागरों का तापमान दक्षिणी गोलार्द्ध के महासागरों के जल के तापमान से अधिक रहता है। ठंडे स्थलीय भाग महासागरों के तापक्रम को घटा देते हैं। स्थल खंडों से घिरे हुए महासागर का तापमान ग्रीष्म ऋतु में अधिक तथा शीत ऋतु में कम होता है। इसीलिए स्थल से घिरे जलीय भाग शीघ्र गर्म और ठंडे हो जाते हैं।

- **महासागरीय धाराएँ**- गर्म धाराएँ तापक्रम को अधिक तथा ठंडी धाराएँ तापक्रम को कम कर देती है। जैसे गल्फस्ट्रीम धारा उत्तरी अमेरिका के पूर्वी तट तथा उत्तर पश्चिम यूरोप के पास सागरीय तापक्रम को बढ़ा देती है। इसी प्रकार क्यूरोशियो धारा एशिया के पूर्वी भाग से गर्म जल को अलास्का तक ले जाती है। इसके विपरीत ठंडी धाराएँ तापक्रम को नीचा कर देती है। उत्तरी अमेरिका के उत्तर पूर्व तट पर लैब्राडोर ठंडी धारा के कारण तापक्रम हिमांक के पास पहुंच जाता है।

- **लवणता**- अधिक लवणता वाले जल अधिक ऊष्मा का शोषण करता है जबकि कम लवणता वाले जल कम ऊष्मा का शोषण करता है। इसीलिए अधिक लवणता होने पर जल का तापमान अधिक तथा कम लवणता होने पर जल का तापमान कम होता है।

अन्य महत्त्वपूर्ण कारक

- तूफान, चक्रवात, हरिकेन, सागरीय तापक्रम को प्रभावित करते हैं, परंतु इनके द्वारा दैनिक तापक्रम पर अधिक प्रभाव पड़ता है। निम्न अक्षांशों में स्थित सागरों का तापक्रम उच्च अक्षांशों में स्थित सागरों के तापमान से अधिक होता है। भूमध्य रेखीय भागों में तापक्रम अत्यधिक वर्षा के कारण उच्च नहीं होता है। इसी प्रकार अक्षांशीय दृष्टि से विस्तृत सागरों का तापक्रम देशांतरीय दृष्टि से विस्तृत सागरों के तापक्रम से कम होता है।

महासागरीय भागों में तापमान का वितरण

- महासागरीय भागों में भूमध्यरेखा के समीपवर्ती क्षेत्रों में वर्ष भर उच्च तापमान की दशा मिलती है जबकि ध्रुवों की ओर जाने पर तापमान क्रमशः घटता जाता है।
- भूमध्यरेखा पर औसत वार्षिक तापमान 26^0 से.ग्रे. पाया जाता है। 20^0 अक्षांशों पर तापमान घटकर 23^0 से.ग्रे., 40^0 अक्षांशों पर 14^0 से.ग्रे. तथा 60^0 अक्षांशों पर 1^0 से.ग्रे. हो जाता है।
- महासागरीय जल की ताप रेखा 0^0 से.ग्रे. ध्रुवों के चारों ओर एक टेढ़ा-मेढ़ा वृत्त बनाती हुई दर्शायी जाती है। तापक्रम में यह गिरावट साधारण तथा प्रत्येक अक्षांश आगे बढ़ने पर 0.5^0 फारेनहाइट की दर से होती है।
- सभी महासागरों का औसत वार्षिक तापक्रम 63^0 फारेनहाइट निश्चित किया गया है।
- उत्तरी गोलार्द्ध का औसत वार्षिक तापक्रम 67^0 फारेनहइट एवं दक्षिणी गोलार्द्ध का 61^0 फारेनहाइट होता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में जल की अधिकता के कारण तापक्रम कम होता है।
- महासागरीय भागों में सर्वाधिक तापमान उष्णकटिबंधीय घिरे हुए सागरों में अंकित किया जाता है।
- लाल सागर में ग्रीष्मकाल में सतह के जल का औसत तापमान 30^0 से.ग्रे. तक मापा जाता है।
- प्रचलित पवनों एवं महासागीय जलधाराओं के कारण महासागरीय भागों की समताप रेखाएँ अक्षांश रेखाओं के समानान्तर न होकर विक्षेपित रूप में खींची जाती हैं।
- उष्ण कटिबन्धीय भागों में व्यापारिक पवनों के कारण महासागरों के पूर्वी भाग का तापमान उनके पश्चिमी भाग के तापमान की अपेक्षा कम पाया जाता है।
- इसी प्रकार समशीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पछुआ पवनों के प्रभाव से महासागरों के पूर्वी भाग का तापमान पश्चिमी भागों की अपेक्षा अधिक रहता है।
- सूर्यातप की प्राप्ति महासागरों की सतह वाले जल द्वारा ही की जाती है, इसलिए गहराई के साथ-साथ तापमान में कमी आती जाती है। इसका कारण अधिक गहराई तक सूर्य की किरणों का प्रवेश न कर पाना भी है।
- धरातलीय भागों के समान महासागरीय भागों में तापमान के नीचे की ओर घटते जाने की कोई निश्चित दर नहीं है, क्योंकि निम्न स्तरीय जल के ऊपर आ जाने, सघन धरातलीय जल के नीचे चले जाने, स्थानीय उच्च सूर्यातप की प्राप्ति एवं अधःतलीय जलमग्न अवरोधों के कारण इसकी दर प्रभावित होती है।

महासागरीय जल की लवणता

महासागरीय जल में अनेक प्रकार के लवणों के घोल के रूप में मिले होने के कारण ही उसके जल में खारापन पाया जाता है। यह समुद्र जल का एक विशिष्ट भौतिक गुण है सामान्य रूप में लवणता का अर्थ है समुद्र में घुले हुए लवणों की कूल मात्र जिसे लवण का भाग/1000 ग्राम के रूप में मानते है अथवा हउधाह के रूप में मापते हैं। यह सागर की गतिकीय या उष्मागतिकीय संचरणों, पारिस्थिकी तंत्रें एवं अन्य भौतिक दशाओं जैसे तापमान, घनत्व, विद्युत सुचालकता आदि को प्रभावित करता है। महासागरीय जल की औसत लवणता 35 ग्राम (1,000 किग्रा. में 35 ग्राम) होती है। महासागरीय जल की लवणता से सागरीय जीव एवं वनस्पतियां प्रभावित होते हैं। लवणता के कारण ही महासागरीय जल का हिमांक (Freezing Point) तथा उसका क्वथनांक बिन्दु (Boiling Point) सामान्य जल की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं। सागरीय जल में लवणता की मात्र अधिक होने पर उसका वाष्पीकरण भी धीमी गति से सम्पन्न होता है एवं उसका घनत्व बढ़ जाता है।

क्रमांक	सागरीय जल में घुले लवण	मात्रा	प्रतिशत (प्रति 1000 ग्राम इकाई में)
1.	सोडियम क्लोराइड	27-213	77-8
2.	मैग्नीशियम क्लोराइड	3-807	10-9
3.	मैग्नीशियम सल्फेट	1-658	4-7
4.	केल्शियम सल्फेट	1-260	3-6
5.	पोटैशियम सल्फेट	0-863	2-5
6.	केल्शियम कार्बोनेट	0-123	0-3
7.	मैग्नीशियम ब्रोमाइड	0-076	0-2
	योग	$35.0000\%_0$	$100.0\%_0$

- महासागरीय जल की लवणता में स्थानिक अथवा कालिक दृष्टि से अन्तर मिल सकता है। जैसे, अयनवर्ती भागों में (कर्क एवं मकर रेखाओं के पास) अधिक ताप होता है, इसलिए वाष्पीकरण भी अधिक होता है और पानी की आपूर्ति न होने से इस भाग में लवणता अधिक पायी जाती है, जबकि भूमध्यरेखीय भागों में उच्च तापक्रम होते हुए भी घनघोर वृष्टि के कारण लवणता कम मिलती है।

- महासागरीय जल में मिलने वाली **लवणता का सबसे प्रमुख स्रोत पृथ्वी** है। महासागरों की उत्पत्ति के समय ही अधिकांश लवण उसके जल में घुल गये। उसके पश्चात् स्थलीय भागों से प्रवाहित होकर सागरों में गिरने वाली नदियों तथा सागरीय लहरों से तटीय भागों के किये जाने वाले अपरदन के परिणामस्वरूप लवणों की कूछ न कूछ मात्र निरन्तर महासागरों में मिलती ही रहती है, जिससे उसके जल में लवणता की मात्र में वृद्धि होती जा रही है।

महासागरों में लवणता का वितरण

- महासागरीय जल में लवणता का वितरण क्षैतिज तथा ऊर्ध्वाधर दोनों रूपों में पाया जाता है। क्षैतिज रूप में विभिन्न स्थानों पर सागरीय जल की लवणता की मात्रा में विभिन्नता पायी जाती है। सामान्यतः सर्वाधिक लवणता वाले क्षेत्र अधिक वाष्पीकरण एवं कम वर्षण वाले वाले भागों में मिलते हैं। स्वच्छ आकाशीय दशा, उच्च तापमान की प्राप्ति तथा नियमित व्यापारिक पवनों के कारण तीव्र गति से वाष्पीकरण की क्रिया होती रहती है।
- अयनवृत्तों के दोनों तरफ भूमध्य रेखा तथा ध्रुवों की ओर लवणता की मात्र में कमी आती जाती है। अयनमंडलों के समीप अटलाण्टिक महासागर में जहाँ 37%$_0$ लवणता पायी जाती है, वहीं भूमध्य रेखीय क्षेत्र में इसकी मात्र 35%$_0$ ही है। इसका कारण है कि भूमध्यरेखा के समीपवर्ती क्षेत्र में भारी वर्षा, उच्च सापेक्षिक आर्द्रता, अधिक मेघाच्छन्नता तथा शान्त पेटी का प्रभाव निरन्तर बना रहता है।
- इस प्रकार ध्रुवीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण की न्यून मात्र तथा बर्फ के पिघलने से निरन्तर होने वाली मीठे जल की आपूर्ति के कारण लवणता की मात्र कम पायी जाती है। यहां इसकी मात्रा 20%$_0$ से 32%$_0$ तक मिलती है।
- खुले सागरों की अपेक्षा बन्द सागरों में लवणता की मात्र काफी विभिन्नता लिए हुए होती है। काला सागर में अनेक नदियों के गिरने के कारण लवणता की मात्र बहुत ही कम (18%$_0$) पायी जाती है जबकि लाल सागर में नदियों के अभाव एवं तीव्र वाष्पीकरण के कारण 41%$_0$ लवणता मिलती है।
- नदियों द्वारा लवणता की निरन्तर आपूर्ति से अन्तः सागरीय भागों तथा झीलों में लवणता की मात्र काफी अधिक मिलती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के ऊटा प्रान्त की **ग्रेट साल्ट लेक में 220%$_0$, मृतसागर या डेड सी में 238%$_0$ तथा तुर्की की वान झील में 330%$_0$** लवणता पायी जाती है, **जो विश्व में सर्वाधिक खारी झील है।**
- उत्तरी हिन्द महासागर में 0^0-10^0 अक्षांशों के मध्य 35.1414% लवणता पायी जाती है परन्तु बंगाल की खाड़ी में यह घटकर 30% हो जाती है, क्योंकि यहां **गंगानदी** के स्वच्छ जल की अपार राशि इस खारेपन को कम कर देती है जबकि अरब सागर में लवणता 36%$_0$ पायी जाती है, क्योंकि यहां अपेक्षाकृत शुष्क मौसम के कारण वाष्पीकरण अधिक होता है तथा नदियों द्वारा लाये गये जल की मात्र कम होती है।
- लवणता की मात्रा कहीं पर तो गहराई के अनुसार घटती है, जबकि कहीं बढ़ती है। अक्षांशों के अनुसार परिवर्तित होने वाली लवणता की इस मात्रा को ठंडी एवं गर्म सागरीय धराएं भी प्रभावित करती हैं। जहाँ उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में गहराई के साथ लवणता की मात्रा में वृद्धि परिलक्षित की जाती है, वहीं मध्य अक्षांशीय भागों में सामान्यतया 35 मीटर की गहराई तक इसमें वृद्धि होती है, जबकि उसके नीचे न्यूनता आती जाती है।
- भूमध्यरेखीय क्षेत्रों में जलीय सतह की लवणता कम होती है 34% जो नीचे जाने पर बढ़कर 35% हो जाती है।

महासागरीय निक्षेप (Ocean Deposits)

महासागरीय नितल पर मिलने वाले अवसादों के आवरण को महासागरीय निक्षेप (Ocean Deposits) कहते हैं। ये अवसाद सघन रूप में महासागरीय तली पर जमे रहते हैं। इन अवसादों की प्राप्ति चट्टानों पर निरन्तर क्रियाशील परिवर्तनकारी प्रक्रमों के कारण उनके अपक्षय एवं अपरदन से प्राप्त होने वाले अवसादों तथा महासागरीय जीवों एवं वनस्पतियों के अवशेषों से निर्मित होती है।

- महासागरीय निक्षेप असंगठित रूप में ही तली पर विद्यमान रहते हैं, न कि अवसादी चट्टानों के रूप में। इन अवसादी निक्षेपों की प्राप्ति धरातल पर प्रवाहित होने वाली नदियों, पवनों तथा ज्वालामुखी उद्भेदनों से होती है।

- **स्थिति के आधार पर महासागरीय निक्षेप दो प्रकार के होते हैं-**
  - ✓ स्थल जनित निक्षेप।
  - ✓ जलजनित निक्षेप।

- इनमें स्थलजनित निक्षेपों की प्राप्ति मुख्य रूप से स्थलीय भागों से लाये गये अवसादों से होती है जबकि जल जनित निक्षेप सागरीय जीवों के अस्थिपंजरों एवं वनस्पतियों के अवशेषों से निर्मित होते हैं। दोनों प्रकार के निक्षेपों में कूछ अंश तक एक-दूसरे की विशेषताएं समाहित रहती हैं। स्थलजनित निक्षेप जहाँ पूर्णतः चट्टानी अवसाद चूर्ण ही नहीं होते, वहीं अगाध सागरीय निक्षेपों में भी चट्टानी चूर्ण स्वाभाविक रूप में मिले रहते हैं। स्थलजनित निक्षेपों का जमाव महाद्वीपों के समीपवर्ती क्षेत्रों मे ही पाया जाता है। जल जनित कणों की बनावट, रासायनिक संगठन तथा संरचना के आधार पर स्थलजनित पदार्थों को तीन उपवर्गों में रखा जाता है-

- ✓ बजरी (Gravel)।
- ✓ रेत (Sand)।
- ✓ पंक (Mud)।

- इनमें बजरी का आकार 2 से लेकर 256 मिली. मीटर तक पाया जाता है। आकार बड़ा होने के कारण इन पदार्थों का जमाव महाद्वीपों के समीपवर्ती मग्नतटीय भागों में ही हो जाता है। रेत के अन्तर्गत बजरी से महीन आकार के कणों को शामिल किया जाता है जिनका व्यास 1 से लेकर 1/16 मिलीमीटर तक होता हैं। यह नदियों एवं पवनों द्वारा सुगमता से दूर बहाकर ले जाया जाता है।
- रेत से छोटे अर्थात् 1/32 मिलीमीटर से कम तथा 1/256 मिलीमीटर तक के व्यास वाले अत्यधिक महीन चट्टानी चूर्णों को पंक की संज्ञा दी जाती है। इनके भी दो प्रकार हैं- **सिल्ट तथा मृत्तिका।** इन पदार्थों का जमाव 100 से 1,000 फैदम की गहराई तक शान्त जल वाले भागों में होता है। महासागरीय नितल में मिलने वाले जीवों एवं वनस्पतियों के अवशेषों से निर्मित पदार्थों को जैविक निक्षेपों के अन्तर्गत रखा जाता है।

इनका दूसरा नाम कार्बनिक पदार्थ भी है।

- पेलैजिक निक्षेप या जल जल जनित निक्षेप के अंतर्गत उन निक्षेपों को समाहित किया जाता है जो महासागरीय जीवों और वनस्पतियों के अवशेषों तथा कार्बनिक पदार्थों के निक्षेप से बनते हैं। ये निक्षेप पंकों के रूप में निक्षेपित होते हैं, जिन्हें उॅफ़ज कहते हैं। सागरीय निक्षेपों में सबसे अधिक 30.1% भाग में लाल मृत्तिका पायी जाती है। इसके अतिरिक्त टेरोपाड ऊज 0.4% डायटम ऊज 6.4% तथा रेडियोलैरियन ऊज 3.4% भाग में पायी जाती है।

स्मरणीय तथ्य
समुद्र का जल सौर विकिरण से ऊष्मा प्राप्त करके गर्म होता है, जिससे उसका तापमान बढ़ता है। समुद्री जल के तापमान में समय और स्थानिक विभन्नता पाई जाती है।
सागरीय जल का तापमान अगस्त में सर्वाधिक तथा फरवरी में न्यूनतम रहता हैं
महासारगीय जल की सतह का औसत दैनिक तापांतर नगण्य (10C) होता है।
महासागरीय जल का अधिकतम तापमान दोपहर दो बजे एवं न्यूनतम तापमान सुबह 5 रहता है।
तापमान के अंतर के कारण ही महासारीय जल में संरचण होता है, समुद्री लहरें तथा धाराएँ चलती हैं।
समुद्री जल के तापमान पर ही समुद्री जीव-जंतु तथा वनस्पति निर्भर करते हैं। विश्व के अधिकतम मत्स्य क्षेत्र उन क्षेत्रों में हैं, जहाँ समुद्री जल का तापमान अनुकूलतम होता है।
समुद्री जल की लवणता जल की संपीडनता, घनत्व, सूर्याताप का अवशोषण, वाष्पीकरण तथा आर्द्रता को निर्धारित करती है।
लवणता की मात्र जल की बनावट तथा संचरण, जीव-जंतुओं और प्लवकों के वितरण को भी काफी हद तक प्रभावित करती है।
सागर का हिमांक लवणता पर आधारित होता है। अधिक लवणयुक्त सागर देर में जमता है। लवणता अधिक होने पर वाष्पीकरण भी कम होता है। सागरीय लवणता के कारण जल का घनत्व भी बढ़ता है।
वर्षा, नदियों के जल तथा सागरीय हिम के पिघलने पर लवणता में ह्रास होता है।
वाष्पीकरण, वायुमंडलीय उच्च वायुदाब या प्रतिचक्रवातीय दशाओं के कारण सागरीय लवणता में वृद्धि होती है।
ध्रुवीय प्रदेशों में सागरीय जल के जमने तथा हिम के निर्माण के कारण सागरीय लवणता में नगण्य वृद्धि होती है।
प्रचलित हवाओं एवं महासागरीय धाराओं के कारण सागरीय लवणता में क्षेत्रीय विभिन्नता होती है।
महासागरीय नितल पर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त अवसादों के जमाव को 'महासागरीय निक्षेप' कहते हैं।
चट्टानों के निरंतर अपक्षय एवं अपरदन से उपलब्ध अवसादों से तथा जीवों और वनस्पतियों के अवशेषों से समुद्री निक्षेपों का निर्माण होता है।
पेलैजिक निक्षेप में जैविक तथा अजैविक दोनों प्रकार के पदार्थ होते हैं। ये समुद्री जंतुओं तथा पौधों के अवशेष होते हैं और अंशतः पवन द्वारा लाये गए ज्वालामुखी धूल से बने होते हैं।
चूना तथा सिलिका की मात्र के आधार पर इसके दो उपवर्ग क्रमशः 'चूना प्रधान ऊज' तथा 'सिलिका प्रधान ऊज' हैं।
मोलस्का वर्ग के जीवों को केल्शियम युक्त कवचों के निक्षेप में शामिल किया जाता है, जिन्हें 'टेरोपोड ऊज' कहते हैं।
ग्लोबिजेरिना जीवों के निक्षेप को 'ग्लोबिजेरिना ऊज' कहते हैं। इन निक्षेपों में केल्शियम की मात्र लगभग 64 फीसदी तक होती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

महासागरीय जल की गतियाँ एवं धाराएँ (Ocean Water Movements and Currents)

महासागरीय जल की गतियाँ (Movements of Ocean Water)

सामान्यतया महासागरीय जल में तीन प्रकार की गतियां पायी जाती हैं- **तरंगें या लहरें** (Waves), **धाराएँ** (Currents) तथा **ज्वार-भाटा** (Tide & Ebb)।

- इनमें तरंगें या लहरें महासागरीय जल की सबसे प्रमुख गतियां हैं, जिनके कारण निरन्तर जल में उठाव तथा गिराव की क्रिया सम्पन्न होती है। इनका सबसे प्रमुख कारण सागरीय जल के ऊपर होने वाला पवन-प्रवाह है, जिसकी रगड़ के कारण लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। इस रगड़ से जल की मात्र ऊपरी सतह ही गतिशील होती है। धाराएँ महासागरीय जल में नदी की भांति एक निश्चित दिशा में प्रवाहित होने वाली जलीय गति के रूप में होती हैं, जिनके कारण महासागरों की विशाल जलराशि का स्थानांतरण होता रहता है। ये महासागरीय जल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गतियां हैं।

- इसके अतिरिक्त गति, आकार तथा दिशा की भिन्नता के आधार पर जलधाराओं को पुनः निम्नलिखित **तीन मुख्य प्रकारों** में वर्गीकृत किया जाता है-

प्रवाह (Drift)

महासागरीय जल के ऊपर प्रवाहित होने वाली पवनों के कारण जब सागरीय जल आगे की दिशा में बढ़ता है, तब उसे **प्रवाह** की संज्ञा दी जाती है। इनकी गति तथा सीमा पवनों की गति तथा उनके विस्तार पर निर्भर रहने के कारण प्रायः अनिश्चित होती है। प्रवाह में केवल **महासागरों** के ऊपरी भाग का जल ही गतिशील होता है। **उत्तरी अटलांटिक प्रवाह, दक्षिणी अटलांटिक प्रवाह** आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

धारा (Current)

- 'प्रवाह' की तुलना में धारा में अधिक गति होती है। एक निश्चित दिशा में गतिशील होने वाली महासागरीय जल की राशि को **'धारा'** के नाम से जाना जाता है। इनकी दिशा निश्चित होती है। इनमें सागरीय तली के नीचे काफी गहराई तक का सम्पूर्ण जल गतिशील हो जाता है।

विशालकाय धारा (Stream)

धाराओं की अपेक्षा अत्यधिक गहराई तथा विस्तार के साथ नदियों की भांति प्रवाहित होने वाली विशाल सागरीय जलराशि **विशालकाय धारा या स्ट्रीम** के रूप में जानी जाती है। इनकी गति अधिक तथा दिशा निश्चित होती है। इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है- **खाड़ी की धारा या गल्फस्ट्रीम।**

- तापमान के आधार पर धाराओं को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है- **उष्ण या गर्म जलधारा** (Warm Current) तथा **शीतल या ठंडी जलधारा** (Cold Current)। **निम्न अक्षांशों में, उष्ण कटिबंधों से उच्च अक्षांशीय समशीतोष्ण और उपध्रुवीय कटिबंधों की ओर** बहने वाली धाराओं को (विषुवतरेखा से ध्रुवों की ओर) गर्म जलधाराएँ कहते हैं। इसके विपरीत, उच्च अक्षांशों से निम्न अक्षांशों की ओर बहने वाली धाराओं को ठंडी जलधाराएँ कहते हैं।

धाराओं की उत्पत्ति के कारण

महासागरों में धाराओं की उत्पत्ति मुख्यतः महासागरीय एवं स्थलीय कारकों से प्रभावित होती है। इसमें से कूछ कारक तो धाराओं की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं, जबकि कूछ कारक उसकी गति, दिशा आदि को निर्धारित करते हैं। इस प्रकार इन दोनों प्रकार के कारकों के सम्मिलित प्रभाव से ही किसी धारा का वास्तविक स्वरूप निर्धारित होता है।

- **इनमें प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-**
  - ✓ पृथ्वी की अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व दिशा में घूर्णन की क्रिया।
  - ✓ तापमान सम्बन्धी भिन्नता।
  - ✓ सागरीय जल की लवणता में भिन्नता।
  - ✓ सागरीय जल के घनत्व में भिन्नता।
  - ✓ वायुदाब सम्बन्धी भिन्नताएं।
  - ✓ प्रचलित पवनों का प्रवाह एवं दिशा।
  - ✓ वाष्पीकरण की मात्र तथा प्रकृति में भिन्नता।
  - ✓ वर्षा की प्रकृति तथा मात्र।
  - ✓ तट की दिशा तथा आकार।
  - ✓ महासागरीय तली की स्थलाकृतियां।
  - ✓ मौसमी परिवर्तन।
  - ✓ गुरुत्वाकर्षण।
  - ✓ विक्षेपक बल से सम्बन्धित कारक।

महासागरीय धाराएँ

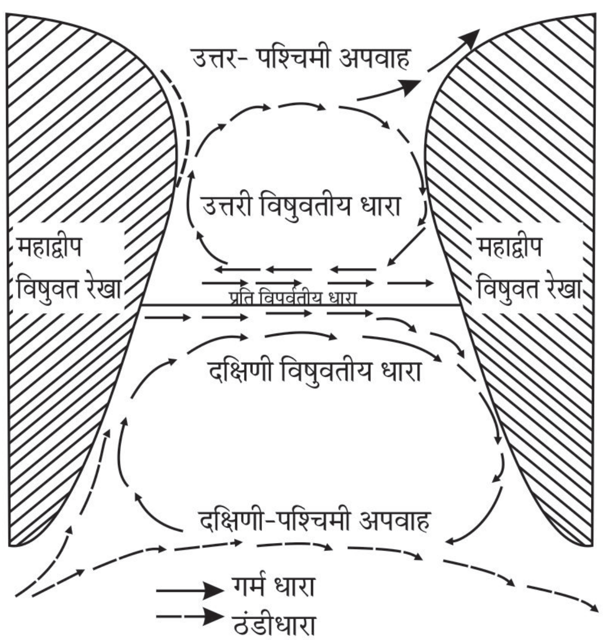

महासागरीय धाराओं की सामान्य दिशा

अटलांटिक महासागर की धाराएँ

अटलांटिक महासागर की धाराएँ निम्नलिखित हैं-

उत्तरी विषुवत रेखीय धारा

- व्यापारिक हवाओं के प्रभाव में अफ्रीका के पश्चिमी तट पर जल स्तर में वृद्धि होने के कारण पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित होने वाली उत्तरी विषुवत रेखीय धारा 0^0 से 10^0 उत्तर अक्षांशों के मध्य विकसित होती है। दक्षिण अमेरिका के पूर्वी तट के अवरोध के कारण यह दो शाखाओं में विभाजित हो जाती है। जिसमें पहली शाखा **एण्टीलीज धारा** के नाम से पश्चिमी द्वीप समूह के पूर्व में जबकि दूसरी शाखा **केरीबियन सागर** में प्रवेश कर **यूकाटन चैनल** तक प्रवाहित होती है।

दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा

- उत्तरी विषुवत रेखीय धारा के समान यह भी पश्चिमी अफ्रीका तथा दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तटों के मध्य 0^0 से 20^0 दक्षिण अक्षांशों के मध्य प्रवाहित होती है। जो ब्राजील तट के समीप दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। प्रथम शाखा उत्तर पश्चिमी शाखा के रूप में उत्तरी विषुवत रेखीय धारा से **त्रिनिदाद** के पास मिल जाती है, जबकि दूसरी शाखा दक्षिण की ओर मुड़कर **ब्राजील धारा** के रूप में प्रवाहित होती है।

प्रति विषुवत रेखीय धारा

- भूमध्य-रेखीय भाग में उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवत रेखीय धाराओं के मध्य पश्चिम से पूर्व दिशा में चलने वाली धारा को प्रति विषुवत रेखीय धारा कहते हैं। ब्राजील तट के पास उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवत रेखीय धाराओं के मिलने पर जलस्तर में होने वाली वृद्धि के कारण पश्चिम से पूर्व की ओर सामान्य ढाल बन जाता है जिससे **क्षतिपूर्ति धारा** के रूप में **प्रति विषुवत रेखीय धारा** की उत्पति होती है। इसे गिनी धारा के नाम से भी जाना जाता है।

गल्फस्ट्रीम या खाड़ी की धारा

- यह धारा 20^0 उत्तरी अक्षांश के समीप **मेक्सिको की खाड़ी** से उत्पन्न होकर उत्तर-पूर्व दिशा की ओर 70^0 उत्तरी अक्षांश तक पश्चिमी यूरोप के पश्चिमी तट तक प्रवाहित होती है।

गल्फस्ट्रीम एक विस्तृत धारा क्रम है जिसके अन्तर्गत तीन धाराओं को सम्मिलित किया जाता है-

1. **फ्लोरिडा धारा-** फ्लोरिडा धारा उत्तरी विषुवत रेखीय धारा का उत्तरी विस्तार है जो यूकाटन से होकर मैक्सिको की खाड़ी में पहुँचती है और वहाँ से **फ्लोरिडा जलडमरूमध्य** से होकर 30^0 उत्तरी अक्षांश तक पहुंचती है।
2. **गल्फ स्ट्रीम-** फ्लोरिडा धारा जब **एण्टलीस धारा** से मिलने के बाद हेटरस अन्तरीप के आगे बढ़ती है तो वह **गल्फ स्ट्रीम** के नाम से जानी जाती है। यह एक गर्म जल वाली धारा है जिसके दाहिनी ओर **सारगैसो सागर** तथा बायीं ओर ठण्डी जलधारा के रूप में **ठण्डी दीवाल** संयुक्त राज्य अमेरिका के तट से इसे अलग करती है। 40^0 उत्तरी अक्षांश के समीप **लैब्राडोर ठण्डी धारा** के मिलने के कारण **न्यूफाउण्डलैण्ड** के समीप **घना कुहरा** पड़ता है।
3. **उत्तरी अटलांटिक धारा-** 45^0 उत्तरी अक्षांश तथा 45^0 पश्चिमी देशान्तर के समीप गल्फ स्ट्रीम कई शाखाओं में बंट जाती है जिन्हें सम्मिलित रूप से **उत्तरी अटलांटिक धारा** कहते हैं। जिसमें एक शाखा नार्वे तट से होकर नार्वे सागर में चली जाती है जबकि दूसरी शाखा इरमिंजर धारा के नाम से आइसलैण्ड के दक्षिण तक प्रवाहित होती है तथा तीसरी शाखा ग्रीनलैण्ड के पूर्व तक जाकर **ग्रीनलैण्ड**

धारा से मिल जाती है। **दूसरी, पूर्वी शाखा** पूर्व दिशा में फ्रांस तथा स्पेन तट तक पहुँचकर कई उपशाखाओं में बंट जाती है जिसमें एक शाखा **भूमध्य सागर** में प्रवेश कर जाती है जबकि दूसरी शाखा **रेनेल धारा** के नाम से **बिस्के** की खाड़ी तक जाती है।

कनारी धारा

- उत्तरी अफ्रीका के पश्चिम तट के सहारे **मडेरिया** तथा **केपवर्डे** के मध्य प्रवाहित होने वाली ठण्डी धारा को ही कनारी धारा कहते हैं। कनारी धारा उत्तरी अटलांटिक धारा का ही बढ़ा हुआ दक्षिणी भाग है।

लैब्राडोर धारा

- **बैफिन की खाड़ी** तथा डेविस जलडमरूमध्य से प्रारम्भ होकर न्यूफाउण्डलैण्ड तट से होती हुई ग्राण्ड बैंक के पूर्व से गुजरने वाली ठण्डी धारा को लैब्राडोर धारा कहते हैं। यह 50^0 पश्चिम देशांतर के पूर्व में गल्फस्ट्रीम धारा से मिल जाती है, जिसके कारण न्यूफाउण्डलैंड के समीप घना कुहरा पड़ता है।

ब्राजील धारा

- ब्राजील धारा उच्च तापक्रम तथा उच्च लवणता वाली गर्म धारा है। यह दक्षिणी अमेरिकी तट के समानांतर 40^0 दक्षिणी अक्षांश तक प्रवाहित होती है। इसके पश्चात पहले हवा से प्रभावित होकर पूर्व की ओर मुड़ती है जहाँ दक्षिण से आने वाली फॉकलैंड धारा इससे मिलती है।

फॉकलैंड धारा

- अंटार्कटिक महासागर का ठंडा जल **फॉकलैंड धारा** के रूप में दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट पर अर्जेंटीना तक प्रवाहित होती है। इस धारा के द्वारा अंटार्कटिका क्षेत्र से हिमखंड दक्षिणी अमेरिकी तट तक लाये जाते हैं।

दक्षिणी अटलांटिक धारा

- जब **ब्राजील धारा** पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण **विक्षेप बल** तथा पछुवा पवन से प्रभावित होकर पूर्व दिशा की ओर मुड़कर तीव्र गति से प्रवाहित होती है तो उसे ही दक्षिणी अटलांटिक धारा कहते हैं जो एक ठण्डे जल की धारा है। इसे **दक्षिण अटलांटिक प्रवाह, पछुवा पवन प्रवाह, अंटार्कटिक प्रवाह** आदि नामों से भी जाना जाता है।

बेंगुला धारा

- दक्षिणी अफ्रीका के पश्चिमी तट के सहारे उत्तर दिशा में प्रवाहित होने वाली एक ठंडी जलधारा है। आगे चलकर यह दक्षिण विषुवत रेखीय धारा में विलीन हो जाती है।

सारगैसो सागर (Sargasso Sea)

उत्तरी अटलाण्टिक महासागर में **20^0 से 40^0 उत्तरी अक्षांशों** तथा **35^0 से 75^0 पश्चिमी देशान्तरों** के बीच चारों ओर प्रवाहित होने वाली जलधाराओं के मध्य स्थित शान्त एवं स्थिर जल के क्षेत्र को सारगैसो सागर के नाम से जाना जाता है। 'सारगैसो' पुर्तगीज भाषा के शब्द 'सारगैसम' से लिया गया है, जिसका अर्थ है- **समुद्री घास** (Sea Weeds)। अटलाण्टिक महासागर में स्थित इस क्षेत्र को सर्वप्रथम स्पेन के नाविकों ने देखा था। गोलाकार रूप में स्थित घासों की बहुलता वाले इस क्षेत्र को उन्होंने सारगैसो सागर कहा। सारगैसम जड़विहीन सागरीय घासें हैं, जो स्वतः उत्पन्न होती रहती हैं। इनके कारण सागरीय यातायात में बाधा भी उपस्थित हो जाती है।

अटलांटिक महासागर की धाराएँ	
नाम	**प्रकृति**
उत्तरी विषुवतरेखीय जलधारा	उष्ण अथवा गर्म
दक्षिणी विषुवतरेखीय जलधारा	उष्ण
फ्लोरिडा की धारा	उष्ण
गल्फस्ट्रीम या खाड़ी की धारा	उष्ण
नॉर्वे की धारा	उष्ण
लैब्राडोर की धारा	**ठंडी**
पूर्वी ग्रीनलैंड धारा	**ठंडी**
इरमिंजर धारा	उष्ण
कनारी	**ठंडी**
ब्राजील की जलधारा	उष्ण
बेंगुएला की धारा	**ठंडी**
अंटार्कटिका प्रवाह (द. अटलांटिक)	**ठंडी**
विपरीत (Counter) विषुवतरेखीय जलधारा	उष्ण
रेनेल धारा	उष्ण
फॉकलैंड धारा	**ठंडी**
अंटाईल्स या एंटीलीज धारा	गर्म

प्रशांत महासागर की धाराएँ

प्रशांत महासागर की धाराएँ निम्नलिखित हैं-

उत्तरी विषुवत रेखीय धारा

- यह धारा मेक्सिको तट से प्रारम्भ होकर पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हुई फिलीपाइन तट तक पहुँचती है। ताइवान के समीप इसकी एक शाखा उत्तर की ओर मुड़कर **क्यूरोशिवो धारा** से मिल जाती है जबकि दक्षिणी शाखा पूर्व की ओर मुड़कर **प्रति विषुवत रेखीय धारा** का निर्माण करती है। उत्तर विषुवत रेखीय धारा सदैव विषुवत रेखा के उत्तर में ही प्रवाहित होती है।

दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा

- सन्मार्गी पवन के प्रभाव से उत्पन्न होकर पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होने वाली यह धारा उत्तरी विषुवत-रेखीय धारा से प्रबल होती है।

प्रतिविषुवत-रेखीय धारा

- उत्तरी तथा दक्षिणी विषुवत-रेखीय धाराओं के मध्य पश्चिम से पूर्व दिशा में प्रवाहित होने वाली धारा को **प्रति विषुवत रेखीय धारा** कहा जाता है। यह धारा पश्चिम में फिलीपाइन के मिण्डनाओं से पूर्व में पनामा की खाड़ी तक प्रवाहित होती है, जहाँ पर इसकी उपशाखाएँ दक्षिण की ओर मुड़कर पनामा की खाड़ी में चली जाती है।

क्यूरोशिवो तंत्र

गल्फ स्ट्रीम तंत्र के समान ही प्रशान्त महासागर में भी **क्यूरोशिवो तंत्र** का पूर्ण विकास हुआ है। यह क्रम कई धाराओं से मिलकर बना है तथा इसका प्रवाह क्रम ताइवान से बेरिंग जलसंधि तक पाया जाता है। इसके अन्तर्गत निम्न धाराएँ सम्मिलित (Include) की जाती हैं-

- **क्यूरोशिवो धारा-** अटलांटिक महासागर की **फ्लोरिडा धारा** के समान प्रशांत महासागर में उत्तरी विषुवत रेखीय धारा फिलीपाइन के पास दाहिनी ओर मुड़कर उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होकर क्यूरोशिवो धारा को जन्म देती है जो ताइवान के रिक्यू द्वीप तक प्रवाहित होती है।

- **क्यूरोशिवो प्रसार-** 35^0 उत्तर अक्षांश के समीप क्यूरोशिवो धारा पछुवा हवा के कारण जापान तट छोड़कर पूर्व की ओर मुड़कर दो शाखाओं में बंट जाती हैं जिसमें एक शाखा पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाती है। यह **धारा अटलांटिक महासागर** की **गल्फ स्ट्रीम** के समान होती है। आगे चलकर क्यूरोशिवो के साथ उत्तर से आने वाली ठण्डी **क्यूरोशिवो धारा** से मिल जाती है।

- **उत्तरी प्रशांत महासागरीय प्रवाह-** पछुवा पवन के प्रभाव में क्यूरोशिवा पूर्व की ओर निरन्तर बढ़कर उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट तक पहुँचती है। 150^0 पश्चिमी देशान्तर के पहले ही इस धारा का प्रमुख भाग दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और थोड़ा भाग ही अमेरिकी तट तथा हवाई द्वीप के बीच प्रविष्ट हो पाता है। आगे चलने पर इसका पुनः द्विशाखन हो जाता है। उत्तरी शाखा **अल्यूशियन धारा** के रूप में प्रवाहित होती है, जबकि दक्षिणी शाखा **केलिफोर्निया धारा** को जन्म देती है। अल्यूशियन धारा पुनः दो शाखाओं में बंट जाती है जिसमें एक शाखा उत्तर की ओर बेरिंग सागर तक चली जाती है जबकि दूसरी शाखा अलास्का की खाड़ी में चली जाती है।

- **सुशीमा धारा-** 30^0 उत्तरी अक्षांश के पास क्यूरोशिवो से एक शाखा अलग होकर जापान सागर में चली जाती है, जो पश्चिमी जापान तट से होकर प्रवाहित होती है। अपने उच्च तापक्रम तथा लवणता के कारण यह धारा तटीय भागों की जलवायु को काफी प्रभावित करती है।

- **प्रति क्यूरोशिवो धारा-** हवाई द्वीप तथा अमेरिकी तट के मध्य क्यूरोशिवो में चक्राकार रूप बनने के कारण इसकी दिशा पश्चिमी हो जाती है, जिसके कारण इसे **'प्रति क्यूरोशिवो'** धारा कहते है।

- **ओयाशिवो धारा-** इसे **'क्यूराइल ठण्डी धारा'** भी कहते हैं जो अटलांटिक महासागर की **लैब्राडोर धारा** के समान बेरिंग जलसंधि से होकर दक्षिण की ओर प्रवाहित होते हुए आर्कटिक महासागर के ठण्डे जल को प्रशान्त महासागर में लाती है। 50^0 उत्तरी अक्षांश के पास इसकी एक शाखा पूर्व की ओर मुड़कर **अल्यूशियन** एवं **क्यूरोशियो** धाराओं से मिल जाती है, जबकि दूसरी शाखा दक्षिण की ओर जापान के पूर्वी तट तक प्रवाहित होती है। जहाँ पर ओयाशिवो धारा क्यूरोशियो धारा से मिलती है वहाँ पर कुहरा पड़ता है।

केलिफोर्निया धारा

अटलांटिक महासागर की **कनारी धारा** के समान यह ठण्डी धारा भी **उत्तरी प्रशांत महासागरीय धारा** का ही विस्तार है। जब व्यापारिक हवाओं के प्रवाह

से अमेरिकी तट से जल हट कर उत्तरी विषुवत रेखीय धारा के रूप में पश्चिम की ओर प्रवाहित होने लगता है, तो तट के पास जलाभाव की पूर्ति के लिए उत्तर से दक्षिण दिशा में केलिफोर्निया धारा चलने लगती है जो दक्षिण में पहुँचकर पश्चिम दिशा की ओर मुड़कर उत्तरी विषुवत रेखीय धारा से मिल जाती है।

पेरू धारा

- दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के सहारे दक्षिण से उत्तर दिशा में प्रवाहित होने वाली ठंडी धारा को **पेरू या हम्बोल्ट धारा** कहते हैं। तट के पास इसे पेरू धारा तथा तट से दूर पेरू महासागरीय धारा कहते हैं, क्योंकि इस धारा की चौड़ाई लगभग 100 मील है।

एल निनो एवं ला नीना

- 3^0 दक्षिणी से 18^0 दक्षिणी अक्षांशों के मध्य पेरू तट के समीप उत्तर से दक्षिण दिशा में एक गर्म **एल निनो धारा** की उत्पति प्रत्येक चार से सात वर्ष के अंतराल पर पर्यावरणीय प्रतिकूल दशा में होती है। ऐसा माना जाता है कि शीत ट्टतु के समय विषुवत रेखीय विपरीत धारा दक्षिण की ओर विस्थापित होकर एल निनो को जन्म देती है। जिसके कारण पेरू तट का तापक्रम सामान्य से 3.4^0 सेल्सियस अधिक हो जाता है एवं शुष्क क्षेत्र में वर्षा होने लगती है। ला नीना एक प्रतिसागरीय धारा है। पूर्वी प्रशांत महासागर में एल नीनो का प्रभाव समाप्त होने पर पश्चिमी प्रशांत महासागर में ला नीना की उत्पत्ति होती है। इसके कारण पश्चिमी प्रशांत महासागर में एल नीनो द्वारा जनित अति सूखे की स्थिति आर्द्र मौसम में बदल जाता है। जिसके कारण इंडोनेशिया और समीपवर्ती क्षेत्रों में सामान्य से अधिक जल वर्षा होती है। ला नीनो के अधिक सक्रिय होने के कारण 1998 में भारत-चीन और बांग्लादेश में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

पूर्वी ऑस्ट्रेलिया धारा

- यह एक स्थायी एवं गर्म जलधारा है जिससे ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट का तापमान ऊँचा बना रहता है।

पछुवा पवन प्रवाह

- अटलांटिक महासागर के समान ही प्रशान्त महासागर में भी पछुवा पवन के प्रभाव से 40^0-45^0 दक्षिण अक्षांश के समीप एक प्रबल धारा पश्चिम से पूर्व दिशा में तस्मानिया तथा दक्षिण अमेरिका तट के मध्य प्रवाहित होती है।

प्रशांत महासागर की धाराएँ

नाम	प्रकृति
उत्तरी विषुवतरेखीय जलधारा	उष्ण अथवा गर्म
क्यूरोशिवो की जलधारा (जापान की काली धारा)	गर्म
उत्तरी प्रशांत प्रवाह	गर्म
अलास्का की धारा	गर्म
सुशीमा (Tsushima) धारा	गर्म
क्यूराइल जलधारा	**ठंडी**
केलीफोर्निया की धारा	**ठंडी**
दक्षिणी विषुवतरेखीय जलधारा	गर्म
पूर्वी ऑस्ट्रेलिया धारा (न्यूसाउथवेल्स धारा)	गर्म
हम्बोल्ट अथवा पेरूवियन धारा	ठंडी
अंटार्कटिका प्रवाह	**ठंडी**
विपरीत विषुवतरेखीय जलधारा	गर्म
एलनीनो धारा	गर्म
ओखोटस्क धारा	**ठंडी**

हिंद महासागर की धाराएँ

- स्थलमंडल तथा मानसूनी पवनों के प्रभाव के कारण हिन्द महासागर की धाराओं का प्रतिरूप प्रशांत महासागर एवं अटलांटिक महासागर के समान नहीं पाया जाता है। हिंद महासागर के पश्चिम में अफ्रीका उत्तर में हिंद महासागर तथा दक्षिण में ऑस्ट्रेलिया से घिरे होने के कारण स्थायी धाराओं को जन्म नहीं दे पाता है। उत्तरी हिंद महासागर में उत्तर-पूर्वी तथा दक्षिण पश्चिमी मानसूनी पवनों के कारण धाराओं की दिशाओं में वर्ष में दो बार परिवर्तन हो जाया करता है।

उत्तरी पूर्वी मानसून धारा

- शीत ऋतु के समय (उत्तरी गोलार्द्ध) में स्थल से जल की ओर चलने वाली उत्तर-पूर्वी मानसून पवन के कारण उत्तरी हिन्द महासागर में अंडमान तथा सोमालिया के मध्य पश्चिम दिशा में प्रवाहित होने वाली **उत्तर-पूर्वी मानसून धारा** की उत्पत्ति होती है।

दक्षिण-पश्चिम मानसून धारा

- ग्रीष्म ऋतु के समय मानसूनी पवन की दिशा दक्षिण-पश्चिम हो जाती है जिसके कारण उत्तर हिंद महासागर का **धारा-क्रम** भी परिवर्तित हो जाता है। उत्तरी-पूर्वी मानसून पवन की जगह जल से स्थल की ओर

दक्षिण-पश्चिम मानसून पवन की उत्पति होती है जिसके कारण धारा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती है।

विषुवत रेखीय धारा एवं अगुलहास धारा

- मानसूनी पवन की दिशा में परिवर्तन का प्रभाव दक्षिणी हिन्द महासागर की धाराओं पर अत्यन्त कम होती है। अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया के तटों के मध्य 10^0 से 15^0 दक्षिण अक्षांशों के बीच पूर्व से पश्चिम दिशा में प्रवाहित होने वाली धारा को दक्षिणी विषुवत रेखीय धारा कहते हैं। जब यह 10^0 दक्षिण अक्षांश के समीप मेडागास्कर से टकराकर कई शाखाओं में बंट जाती हैं जिसमें एक शाखा दक्षिण की ओर **अगुलहास** धारा के रूप में प्रवाहित होती है, जबकि दूसरी शाखा उत्तर की ओर चली जाती है।

मोजाम्बिक धारा

- दक्षिण विषुवत रेखीय धारा की एक शाखा मोजाम्बिक चैनल से होकर दक्षिण की ओर प्रवाहित होती है। इसे मोजाम्बिक धारा कहते हैं।

पछुवा पवन प्रवाह

- अन्य महासागरों के समान हिन्द महासागर में भी 40^0 दक्षिण अक्षांश के समीप पछुवा पवन (गरजता चालीसा) के कारण पश्चिम से पूर्व दिशा में चलने वाली धारा को **पछुवा पवन प्रवाह** कहते हैं। 110^0 पूर्वी देशांतर के समीप यह दो शाखाओं में बंट जाती हैं, जिसमें से एक शाखा उत्तर की ओर मुड़कर ऑस्ट्रेलिया तट के सहारे **पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया ठंडी धारा** के नाम से प्रवाहित होती है।

मेडागास्कर गर्म धारा

- मेडागास्कर द्वीप के पूर्वी तट पर बहने वाली दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा की दूसरी शाखा को 'मेडागास्कर धारा' कहते हैं।

पश्चिमी ऑस्ट्रेलियाई ठंडी जलधारा

- पछुआ पवन प्रवाह की एक शाखा ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण में बहती हुई निकल जाती है और दूसरी शाखा ऑस्ट्रेलिया के पश्चिमी तट से टकराकर उत्तर की ओर मुड़ जाती है। इस दूसरी शाखा को 'पश्चिमी ऑस्ट्रेलियाई ठण्डी धारा' कहते हैं। अंततः यह धारा आगे चलकर दक्षिणी भूमध्य रेखीय धारा में मिल जाती है। यह धारा 'ग्रेट ऑस्ट्रेलियन मरुस्थल' के निर्माण के लिये उत्तरदायी कारकों में से एक मानी जाती है।

हिन्द महासागर की धाराएँ

नाम	प्रकृति
दक्षिणी विषुवतरेखीय जलधारा	गर्म एवं स्थायी
मोजाम्बिक धारा	गर्म एवं स्थायी
अंगुलहास धारा	गर्म एवं स्थायी
पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया की धारा	ठंडी एवं स्थायी
ग्रीष्मकालीन मानसून प्रवाह	गर्म एवं परिवर्तनशील
शीतकालीन मानसून प्रवाह	ठंडी एवं परिवर्तनशील
दक्षिणी हिन्द धारा	ठंडी

महासागरीय जलधाराओं का प्रभाव

- महासागरीय जलधाराओं के द्वारा ऊष्मा, जलवाष्प एवं संसाधनों का स्थानांतरण के साथ-साथ जलीय पारिस्थितिक तंत्र भी प्रभावित होता है।
- निम्न अक्षांश से उच्च अक्षांश की ओर प्रवाहित होने वाली गर्म धाराएँ निम्न अक्षांशों के अतिरिक्त उष्मा को उच्च अक्षांशों की ओर स्थानान्तरित कर **अक्षांशीय तापीय संतुलन** लाने का प्रयास करती है। जबकि इसके विपरीत ठंडी धाराएँ जहाँ से गुजरती हैं, वहाँ के तापमान को अत्यंत नीचा कर देती हैं।
- उत्तरी अटलांटिक धारा उत्तर-पश्चिमी यूरोप के तटीय देशों की आदर्श जलवायु दशा का कारण बनती हैं वहीं गर्म जलधारा गल्फस्ट्रीम ग्रीष्म ट्रतु के समय गर्म हवाओं के द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के तटीय क्षेत्र के तापमान को अचानक ऊँचा कर देती है, जिस कारण मौसम कष्टप्रद हो जाता है।
- गर्म धाराओं के ऊपर चलने वाली हवाएँ जलवाष्प ग्रहण कर प्रभावित क्षेत्रों में वर्षा करती है। जैसे उ.प. यूरोप के तटीय भागों में उत्तरी अटलांटिक धारा तथा जापान के पूर्वी भाग में क्यूरोशिवो धारा के कारण वर्षा होती है।
- इसके विपरीत ठण्डी धाराएँ वर्षा के लिए प्रतिकूल दशाएँ उत्पन्न कर देती है। जैसे दक्षिण अमेरिका के पश्चिम तट पर **अटाकामा** तथा दक्षिण अफ्रीका के पश्चिम तट पर **नामीब** मरुस्थल की दशाओं में क्रमशः **पेरू** तथा **बेंगूला की ठंडी धाराओं** का पर्याप्त योगदान है।
- गर्म तथा ठंडी धाराओं के अभिसरण के कारण कुहरा पड़ता है, जो जलयानों के लिए परिवहन में अवरोध उत्पन्न करता है।
- जलधाराएँ पोषक तत्वों, ऑक्सीजन इत्यादि का स्थानांतरण कर मछलियों के जीवित रहने के लिए आवश्यक दशाएँ उत्पन्न करती है।
- महासागरीय धाराएँ जलमार्गों को निश्चित कर व्यापारिक जलयानों के परिवहन में भी मदद करती है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

KGS IAS
KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

ज्वार भाटा एवं प्रवाल भित्ति
(Tide & Ebb and Coral Reef)

ज्वार-भाटा (Tide–Ebb)

महासागरीय जल में लहरों एवं धाराओं के अतिरिक्त एक विशिष्ट प्रकार की गति भी पायी जाती है, जिसमें निश्चित समयान्तराल पर दिन में दो बार महासागरीय जल ऊपर उठता है तथा नीचे गिरता है। माध्य समुद्र तल का निर्धारण जल की इसी गति के औसत के आधार पर किया जाता है। सूर्य तथा चंद्रमा की आकर्षण शक्तियों के कारण महासागरीय जल स्तर के ऊपर उठने तथा नीचे गिरने की क्रिया को ही क्रम शः ज्वार तथा भाटा (Tide and Ebb) के नाम से जाना जाता है तथा इससे उत्पन्न तरंगों को 'ज्वारीय तरंगें' कहते हैं।

- चन्द्रमा, सूर्य तथा पृथ्वी की पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण शक्ति की क्रियाशीलता ही ज्वार-भाटे की उत्पत्ति का सबसे प्रमुख कारण है। यद्यपि सूर्य का आकार काफी बड़ा होने के कारण उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति का सर्वाधिक प्रभाव पृथ्वी पर पड़ना स्वाभाविक है, किन्तु अत्यधिक दूरी के कारण उसका प्रभाव नगण्य रूप में ही पड़ता है। जब कभी सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी एक सीधी रेखा में होते हैं, तो तीनों की सम्मिलित गुरुत्व शक्ति काफी प्रभावशाली हो जाती है।
- चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी कम होने के कारण ज्वार-भाटा की क्रिया से इसको सबसे अधिक सम्बन्धित माना जाता है। चन्द्रमा की ज्वार उत्पादक गुरुत्वाकर्षण शक्ति सूर्य के आकर्षण शक्ति की तुलना में दो गुना अधिक प्रभावी होती है।

ज्वार-भाटा की सक्रियता में विभिन्न स्थानों पर अन्तर पाया जाता है, जिसके निम्नलिखित कारण हैंः-

✓ पृथ्वी के सन्दर्भ में चन्द्रमा की गति का तीव्र होना।
✓ पृथ्वी के सन्दर्भ में सूर्य एवं चन्द्रमा की असमान स्थितियां।
✓ भूधरातल पर जलराशियों के वितरण में असमानता।
✓ महासागरों की आकृति एवं विस्तार से सम्बन्धित असमानताएं।

- ज्वार का समय चन्द्रमा पश्चिम से पूरब की ओर परिक्रमा 29½ दिन में करता है। इसलिए किसी भी स्थान पर चन्द्रमा आकाश में उस स्थान की देशान्तर रेखा को प्रतिदिन एक ही समय पर पार नहीं करता, क्योंकि वह 24 घंटे में पूर्व की ओर कूछ खिसक जाता है। घूर्णन करती हुई पृथ्वी को किसी भी स्थान की देशान्तर रेखा को प्रतिदिन चन्द्रमा के ठीक नीचे लाने में 24 घंटे 52 मिनट लगते हैं। इसलिए एक ज्वार से दूसरे ज्वार के बीच 12 घंटे 26 मिनट का अन्तर होता है जबकि एक ही अक्षांश पर दुबारा ज्वार आने में 24 घंटे 54 मिनट लगते हैं।
- ज्वार प्रतिदिन दो बार आते हैं लेकिन इंग्लैण्ड के दक्षिणी तट पर स्थित साउथैम्पटन में ज्वार प्रतिदिन चार बार आता है। इस स्थान पर दो ज्वार इंग्लिश चैनल से आते हैं और दो ज्वार उत्तरी सागर से होकर विभिन्न अन्तरालों पर वहाँ पहुंचते हैं।
- ज्वार कुछ नदियों को बड़े जलयानों के लिए नौ संचालन योग्य बनाने में सहायता देते हैं। हुगली तथा टेम्स नदियों की ज्वारीय धाराओं के कारण क्रमशः कोलकाता और लंदन महत्त्वपूर्ण पत्तन बन सके हैं। जापान एवं फ्रांस में ज्वारीय ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदला जा रहा है।

ज्वार-भाटा के प्रकार

उच्च ज्वार, दीर्घ ज्वार अथवा पूर्ण ज्वार (Spring or High Tide)

ये ज्वार तभी आते हैं जब सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी एक सीधी रेखा में होते हैं तो इस स्थिति को युति वयुनति या सिजिगी कहते हैं। ऐसी स्थिति अमावस्या (New Moon) अथवा पूर्णिमा (Full Moon) के समय ही आती है।

- इन दोनों दिनों में सूर्य और चन्द्रमा सम्मिलित रूप से पृथ्वी को आकर्षित करते हैं। इसलिए इन दो दिनों में उच्चतम ज्वार का निर्माण होता है।

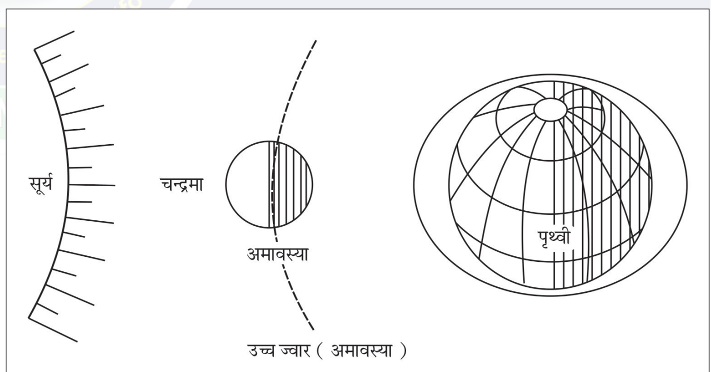

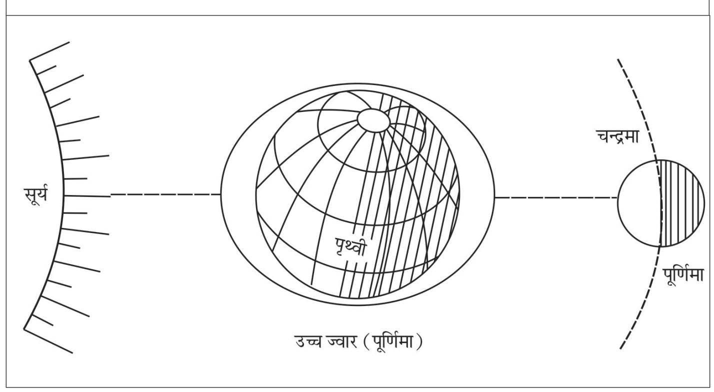

लघु ज्वार (Low or Neap Tide)

- जब सूर्य तथा चन्द्रमा पृथ्वी से **समकोणीय स्थिति** (Quadrature) में होते हैं, तब निम्न ज्वार आते हैं। यह स्थिति शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी को होती है। सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति एक-दूसरे को संतुलित करने के प्रयास में उसे निष्क्रिय बना देती हैं। इससे पृथ्वी पर उनके बल का प्रभाव कम हो जाता है, फलस्वरूप इन दिनों में अत्यंत कम ऊंचाई वाले ज्वार का निर्माण होता है। यह सामान्य ज्वार से 20% नीचा होता है।

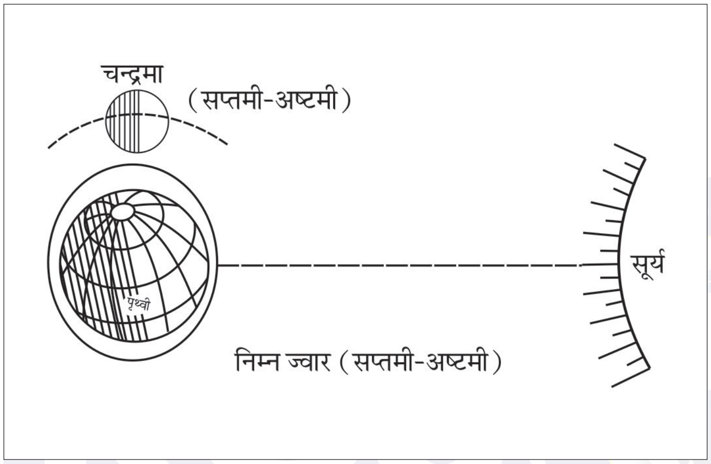

मिश्रित ज्वार (Mixed Tide)

- जब विभिन्न प्रकार के ज्वार एक साथ आते हैं, तब उन्हें मिश्रित ज्वार की संज्ञा दी जाती है। ये ज्वार अस्वाभाविक रूप से काफी ऊंचे होते हैं।

नदी ज्वार (River Tide)

- ये नदी की धारा में आने वाले ज्वार हैं, जो पवन-प्रवाह अथवा सागरीय जल के दबाव के कारण उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ज्वार प्रतिदिन 2 बार उठते हैं, फिर भी दो ज्वारों के बीच का अन्तराल ठीक 12 घंटे का नहीं होता बल्कि 12 घंटे 26 मिनट का होता है।

- **अन्य ज्वार के प्रकार-**
  - ✓ दैनिक ज्वार (Daily Tide)
  - ✓ अर्द्धदैनिक ज्वार (Semi-Daily Tide)
  - ✓ उपभू ज्वार (Perigean Tide)
  - ✓ अपभू ज्वार (Apogean Tide)
  - ✓ भूमध्यरेखीय ज्वार (Apogean Tide)
  - ✓ अयनवर्ती ज्वार (Equatorial Tide)

समज्वार-रेखा (Tropical Tide)

- एक ही समय पर आने वाले ज्वारों को मिलाने वाली रेखा को समज्वार रेखा कहा जाता है। इनकी सहायता से समज्वार-रेखा मानचित्र (Cotidal Line Maps) तैयार किये जाते हैं।

ज्वार-भित्ति (Tidal Bore)

- महासागरीय ज्वारीय लहरों के प्रभाव से नदियों के जल के एक दीवार के रूप में ऊपर उठ जाने पर ज्वारीय भित्ति का निर्माण होता है। भारत की हुगली नदी में ज्वारीय भित्ति का निर्माण सामान्यतया होता रहता है। अमेजन नदी में भी मुहाने की ओर काफी ऊँची ज्वारभित्तियां निर्मित हो जाती हैं।

जलमंडल से संबंधित प्रमुख शब्दावलियाँ

- **शिखर एवं द्रोणी (Crest and Trough)**- महासागरीय लहरों के ऊपर उठे हुए भाग को शिखर तथा नीचे दबे हुए भाग को द्रोणी कहा जाता है।

- **क्रीप (Creep)**- समुद्री जल के आन्तरिक भाग में ठंडे एवं अधिक घनत्व वाले जल के नीचे बैठने से उत्पन्न होने वाली गति को क्रीप या सरकन कहा जाता है। यह प्रायः ध्रुवीय क्षेत्रों से भूमध्यरेखा की ओर होती है।

- **भंवर (Eddy)**- सागरीय जल में पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाले विक्षेप (Deflection) के कारण आविर्भूत चक्राकार जलीय गति, भंवर कहलाती है।

- **फेच (Fetch)**- जिस जल स्तर पर होकर सागरीय तरंगें आगे की ओर गतिशील होती हैं, उसे फेच कहते हैं।

- **प्रतोड़न रेखा (Plunge Line)**- तट से जिस दूरी पर समान ऊंचाई वाली तरंगों के शिखर भाग टूटकर सर्फ (Surf) के रूप में परिवर्तित होते हैं, उसके समानान्तर खींची जाने वाली रेखा प्रतोड़न रेखा या प्लंज लाइन कही जाती है।

- **सर्फ (Surf)**- सागरीय तरंगों का अधिक ऊंचाई वाला शिखर भाग जब टूटकर तट की ओर गतिशील होता है, तब उसे सर्फ की संज्ञा दी जाती है। इसके अन्य नाम हैं- **ब्रेकर** (Braker) तथा स्वाश (Swash) कहते हैं।

- **युति (Conjunction)-** जब सूर्य तथा चन्द्रमा, पृथ्वी के एक ही ओर सीधी रेखा में रहते हैं, तब युति की दशा होती है। इस समय सूर्य ग्रहण लगता है। इस समय ज्वार की ऊंचाई बहुत अधिक होती है।

- **वियुति (Opposition)-** जब पृथ्वी के एक ओर सूर्य तथा दूसरी ओर चन्द्रमा सीधी रेखा में उपस्थित होते हैं, तब उस दशा को वियुति कहा जाता है। इस समय चन्द्रग्रहण लगता है। यह दशा पूर्णमासी को होती है। इस स्थिति में उच्च ज्वार आता है।

- **उपभू स्थिति (Perigee)-** चन्द्रमा अंडाकार पथ पर पृथ्वी की परिक्रमा करता है, अतएव पृथ्वी से उसकी दूरियों में अंतर आता रहता है। जब चन्द्रमा पृथ्वी के सर्वाधिक नजदीक स्थित होता है अर्थात् पृथ्वी तथा चन्द्रमा के केंद्र के बीच की दूरी 3,56,000 किमी. होती है, तब उपभू की स्थिति होती है। इस स्थिति में चन्द्रमा का ज्वारोत्पादक बल सर्वाधिक होता है, जिस कारण उच्च ज्वार उत्पन्न होता है ऐसी स्थिति में ज्वार की ऊंचाई सामान्य ज्वार से 15 से 20% तक अधिक होती है। इसे उपभू ज्वार (Perigean Tige) कहते हैं।

- **अपभू (Apogee)-** जब चन्द्रमा का केन्द्र पृथ्वी के केन्द्र से सर्वाधिक दूरी अर्थात् 4,07,000 किमी. पर स्थित होता है, तब अपभू की स्थिति होती है। इस समय सामान्य ज्वार से 20% नीचा ज्वार उत्पन्न होता है।

प्रवाल तथा प्रवाल भित्तियाँ (Coral & Coral Reefs)

प्रवाल (Coral)

इनका निर्माण सागरीय जीव मूँगें या कोरल पॉलिप के अस्थि पंजरों के समेकन तथा संयोजन द्वारा होता है। कोरल उष्ण कटिबंधिय महासागरों में पाये जाते हैं तथा चूने से अपने निर्वाह करते हैं। मूँगें, एक स्थान पर असंख्य मात्र में समूहों के रूप में रहते हैं तथा अपने चारों ओर चूने का खोल बनाते हैं। जब एक मूंगा मर जाता है तो उसके खोल के ऊपर दूसरा मूंगा अपनी खोल बनाता है। कालान्तर में इस क्रिया के परिणामस्वरूप एक भित्ति का निर्माण होता है, जिसे प्रवाल भित्ति कहते हैं।

उदाहरण- ऑस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर स्थित ग्रेट बैरियर रीफ।

प्रवाल जन्तु

- एक प्रकार का समुद्री जीव जो स्वयं द्वारा निर्मित चूने की खोल में रहता है। इसके शरीर के बाहरी तंतुओं में एक प्रकार की पादप शैवाल रहती है। जिसे जुक्सान्थलाई एल्गी (Zoonanthallae Algae) कहते हैं जो इन प्रवालों के विभिन्न रंगों का कारण होती है।

प्रवाल भित्तियों के प्रकार

महासागरों में मिलने वाली प्रवाल भित्तियों को दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है उष्ण कटिबंधीय तथा सीमांत प्रदेशीय किंतु **आकृति के आधार पर** तीन प्रकार की प्रवाल भित्तियाँ पायी जाती है।

- **तटीय प्रवाल भित्तियाँ (Fringing Reefs)-** महाद्वीप या द्वीप के किनारे निर्मित होने वाली प्रवाल भित्ति को तटीय भित्ति कहते हैं। इसका सागरवर्ती भाग खड़ा व तीव्र ढाल वाला होता है, जबकि स्थलोन्मुख भाग मंद ढाल वाला होता है। ये भित्तियाँ प्रायः कम चौड़ी तथा संकरी होती है। ये भित्तियाँ स्थल भाग से लगी होती है। परंतु कभी-कभी इनके तथा स्थल भाग के बीच अंतराल हो जाने के कारण उनमें छोटी लैगून का निर्माण हो जाता है, जिन्हें क्षोर चैनेल कहा जाता है। इस तरह की प्रवाल भित्तियाँ सकाऊ द्वीप, मलेशिया द्वीप के किनारे पायी जाती है।

- **अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef)-** इनका निर्माण सागर तट से कुछ दूर, किंतु उसके समांतर होता है। इस प्रकार की भित्तियाँ लंबी विस्तृत, चौड़ी तथा ऊँची होती है। सामान्यत इनका ढाल 45^0 तक होता है। तट तथा इनके मध्य विस्तृत किंतु छिछली लैगून का आविर्माण हो जाता है। वे स्थान-स्थान पर खुली होती है। जिससे इनका संबंध खुले सागर से बना रहता है। इन अंतराज्यों को ज्वारीय प्रवेश मार्ग कहते हैं। ग्रेट बैरियर रीफ इसका प्रमुख उदाहरण है।

- **एटॉल (Atoll)-** घोड़े की नाल या अंगूठी के आकार वाली प्रवाल भित्तियों को एटॉल कहा जाता है। इसकी स्थिति प्रायः किसी द्वीप के चारों ओर या जलमग्न पठार के ऊपर अण्डाकार रूप में पायी जाती है। इनके मध्य में लैगून पायी जाती है। फुनाफुति एटॉल इनका प्रमुख उदाहरण है।

प्रवाल विरंजन (Coral Bleaching)

सागरीय तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप प्रवाल, शैवालों को अपने शरीर से निष्कासित कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रवालों की आहार की आपूर्ति बाधित हो जाती है तथा वे मर जाते हैं, जिसके कारण प्रवाल सफेद रंग के हो जाते हैं। इसे ही प्रवाल विरंजक कहते हैं।

- **प्रकाश संश्लेषण न होने के कारण प्रवाल के विकास की दशायें-**
  - ✓ उष्ण कटिबंधीय महासागर।
  - ✓ 20-21°C तापमान।
  - ✓ 60-70 मीटर की गहराई।
  - ✓ अवसाद मुक्त स्वच्छा जल।
  - ✓ 27‰ से 30‰ सागरीय लवणता।
  - ✓ अन्तः सागरीय चबूतरों की उपस्थिति।

प्रवाल विरंजन के कारण

- **भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि-** सागरीय जल के औसत तापमान में 1°C से अधिक की वृद्धि होने पर प्रवालों के शरीर में रहने वाले जुम्सान्थलाई शैवाल, जिनसे प्रवाल अपना आहार प्राप्त करते हैं, उनका रंग सफेद हो जाता है। प्रवालों के विकास के लिये लगभग 20-22°C तापमान की आवश्यकता होती है किन्तु जलवायु परिवर्तन के कारण महासागरीय तापमान में 2°C की भी वृद्धि होने से 60 से अधिक देशों के उष्णकटिबंधीय सागरों में भारी मात्र में प्रवाल विरंजन के कारण प्रवाल विनाश की स्थिति उत्पन्न हो गयी है।
- **समुद्री परितंत्र में मानवीय हस्तक्षेप-** सागरीय परिवहन को बढ़ाने के लिये प्रवाल भित्तियों को नुकसान पहुँचाना, सागरीय जल में तेल रिसाव तथा औद्योगिक अपशिष्ट आदि कोरल रीफ की मृत्यु का कारण बनता है।
- **प्राकृतिक आपदायें जैसे- सुनामी-** सुनामी आदि प्राकृतिक आपदायें अपने प्रचंड वेग से प्रवाल भित्तियों का भी विनाश अथवा भारी मात्र में क्षतिग्रस्त करती है।
- **संक्रामक रोग-** कभी-कभी संक्रामक रोग जैसे ब्लैक बैण्ड रोग, कोरल प्लेग, व्हाइट बैण्ड रोग आदि के महामारी रूप ले लेने से प्रवालों की व्यापक स्तर पर मृत्यु हो जाती है।

स्मरणीय तथ्य

- ज्वार- भाटा की उत्पत्ति सूर्य एवं चन्द्रमा के आकर्षण बल तथा पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले दो बलों अभिकेन्द्रीय बल/केन्द्रोन्मुख बल व अपकेन्द्रीय बल/केन्द्रीपसारित के परिणामी बल के फलस्वरूप होती है।
- पृथ्वी पर प्रत्येक 24 घण्टों में दो बार ज्वार एवं दो बार भाटा का अनुभव किया जाता है।
- अप्रत्यक्ष उच्च ज्वार उत्पन्न होने का कारण पृथ्वी का अपकेन्द्रीय बल है।
- वृहत ज्वार की उत्पत्ति उस समय होती है जब 'सूर्य, पृथ्वी तथा चन्द्रमा' एक सरल रेखा में होते हैं। इस स्थिति को सिजिगी (Syzygy) या युति कहा जाता है।
- सिजिगी की स्थिति पूर्णमासी व अमावस्या को होती है।
- जब सूर्य, पृथ्वी व चन्द्रमा मिलकर समकोण बनाते हैं तो चन्द्रमा व सूर्य का आकर्षण बल एक-दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं जिससे निम्न ज्वार का अनुभव होता है।
- निम्न ज्वार की स्थिति कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष के सप्तमी या अष्टमी को देखा जाता है।
- लघु ज्वार सामान्य ज्वार से 20% नीचा व दीर्घ ज्वार सामान्य ज्वार से 20% ऊंचा होता है।
- प्रत्येक स्थान पर 12 घंटे के बाद ज्वार आना चाहिए पर यह प्रतिदिन लगभग 26 मिनट की देरी से आता है, इसका कारण चन्द्रमा का पृथ्वी के सापेक्ष गतिशील होना है।
- कनाडा के न्यू ब्रंसविक तथा नोवा स्कोशिया के मध्य स्थित फ्रंडी की खाड़ी के ज्वार की ऊंचाई सर्वाधिक (15 से 18 मी.) होती है।
- भारत के ओखा तट पर ज्वार की ऊंचाई मात्र 2.7 मीटर होती है।
- इंग्लैण्ड के दक्षिणी तट पर स्थित साउथैम्पटन में प्रतिदिन चार बार ज्वार आते हैं।
- नदियों को बड़े जलयानों के लिए नौ संचालन योग्य बनाने में ज्वार सहायक है।
- जल-विद्युत के उत्पादन हेतु भी ज्वारीय ऊर्जा महत्त्वपूर्ण है।
- भारत के पश्चिम मग्न तट का निर्माण भ्रंशन के कारण हुआ है।
- मत्स्यन के लिए महाद्वीपीय मग्नतट सबसे उपयुक्त क्षेत्र है।
- हिन्द महासागर का सर्वाधिक गहरा गर्त डाएमेंटिना गर्त है।
- अटलांटिक महासागर का सर्वाधिक गहरा गर्त पोर्टोरिको गर्त है।
- मेरियाना गर्त उत्तर प्रशांत महासागर में स्थित है जो सर्वाधिक गहरा गर्त है। यह विश्व का सर्वाधिक गहरा गर्त है। यह समुद्रतल से 11034 मीटर गहरी है।
- अटलांटिक महासागर की सर्वाधिक लवणता सारगैसो सागर में पायी जाती है।
- गल्फ स्ट्रीम धारा क्रम में फ्रलोरिडा धारा, गल्फ स्ट्रीम तथा उत्तरी अटलांटिक धारा को सम्मिलित किया जाता है।
- टाइटेनिक जहाज दुर्घटना का कारण लैब्रोडोर धारा द्वारा लाये गये लावी हिमशैल से टकराकर ध्वस्त होकर डूब जाना है।
- सर्वाधिक द्वीप प्रशांत महासागर में पाये जाते हैं।
- भारत का सर्वाधिक चौड़ा मग्न तट नर्मदा, ताप्ती एवं माही आदि नदियों की एस्चुअरी के सामने पाया जाता है।
- सर्वाधिक गहरे सागरीय मैदान का सर्वाधिक विस्तार प्रशांत महासागर में पाये जाते हैं।
- विश्व का सर्वाधिक चौड़ा मग्नतट साइबेरियन शेल्फ है। (आर्वफ़टिक महासागर)
- आस्टेलिया के क्वींसलैण्ड के समीप संसार का प्रसिद्ध प्रवालभित्ति फ्रेट वैरियर रीफय् पाया जाता है।
- हिन्द महासागर का सबसे बड़ा द्वीप मेडागास्कर है।
- भारत तथा अफ्रीका के मध्य कार्ल्स वर्ग कटक पाया जाता है।
- अर्द्ध दैनिक ज्वार 12 घंटे 26 मिनट के अन्तराल पर आता है।
- पृथ्वी के परिभ्रमण के कारण प्रत्येक स्थान पर 24 घंटे में दो बार ज्वार एवं भाटा आता है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS KHAN GLOBAL STUDIES Most Trusted Learning Platform KHAN SIR

महासागरीय संसाधन
(Ocean Resources)

सागरीय संसाधन

महासागरीय जल तथा नितल से संबंधित जैविक एवं अजैविक संसाधनों को सागरीय संसाधन कहते हैं। यह सागरीय संसाधन सागरीय जल, उसमें निहित ऊर्जा (जैसे-तरंग ऊर्जा, ज्वारीय ऊर्जा आदि) तथा उसमें रहने वाले जीव-जन्तु, पौधे, सागरीय निक्षेप तथा उसमें निहित अजैविक तत्व, सागरीय तली के जैविक एवं अजैविक पदार्थ, तलवासी जीव आदि रूपों में हो सकता है। सागर मानव के लिए आकर्षण केन्द्र एवं उपयोगी रहा है।

- मनुष्य सागर का विभिन्न रूपों में उपयोग करता रहा है। यथाः यातायात एवं परिवहन, मत्स्यन (मछलियों) का पकड़ना, सेना एवं रक्षा खनिज विदोहन, मनोरंजन, दवा, अपशिष्ट पदार्थों का निस्तारण आदि। वर्तमान समय में विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य पदार्थों एवं खनिजों की बढ़ती मांग के कारण सागरीय संसाधनों के परम्परागत विदोहन के अलावा मनुष्य अपने कौशल एवं प्रौद्योगिकीय विकास के द्वारा उसमें संशोधन एवं परिमार्जन भी कर रहा है।

सागरीय संसाधनों का वर्गीकरण

- सागरीय क्षेत्रों में विविध प्रकार के जैविक एवं अजैविक संसाधन होते हैं। इन संसाधनों के दो प्रमुख स्रोत होते हैं। प्रथम, नदियाँ स्थलीय भागों से बहाकर नाना प्रकार के पदार्थों को सागर में पहुँचाती रहती हैं। इनमें खनिज तत्वों के साथ जन्तु तथा पौधे भी होते हैं। द्वितीय, कुछ संसाधन पौधों द्वारा छिछले जल में तैयार किये जाते हैं। सागरीय संसाधनों का वर्गीकरण इस प्रकार हैं-

सागरीय जैविक संसाधन
(Marine Biological Resources)

सागरीय पर्यावरण में पनपने वाले पौधों तथा जन्तुओं के समुदायों तथा उनके आवासीय पर्यावरण को सम्मिलित रूप से सागरीय बायोम कहते हैं। सागरीय जीवों के आवास के आधार पर उन्हें तीन कोटियों में विभाजित किया जाता है। यथा-

1. प्लैंकटन समुदाय
2. नेक्टन समुदाय
3. बेन्थम समुदाय

- **प्लैंकटन समुदाय-** प्लैंकटन सागरीय बायोम के अन्तर्गत प्रकाशित मण्डल अथवा ऊपरी पेलैजिक मण्डल (Eupelagic Zone) जोकि सागर तल से 200 मीटर तक गहरा होता है, में तैरने वाले सूक्ष्म पौधों तथा जन्तुओं को सम्मिलित किया जाता है। पौधे सूर्य प्रकाश से प्रकाशसंश्लेषण विधि से आहार निर्मित करते हैं। इस तरह ये फाइटोप्लैंकटन प्राथमिक उत्पादक तथा स्वपोषी होते हैं जिनके ऊपर समस्त सागरीय जीव निर्भर करते हैं। शैवाल तथा डायटम इस समुदाय के सर्वप्रमुख पौधे हैं। इसे सागरीय चारागाह भी कहते हैं। कुछ लाल-भूरे सूक्ष्मस्तरीय पौधों में इतना जनन प्रस्फोट होता है कि लाल भूरे पौधों का आपार समूह निर्मित हो जाता है। इसे लाल ज्वार कहते हैं। जन्तु प्लैंकटन का आकार एक मिलीमीटर से कई मीटर तक होता है। ये तीन प्रकार के होते हैं- शाकाहारी जन्तु, मांशाहारी जन्तु तथा अवसाद पोषित जन्तु। वास्तव में जन्तुप्लैंकटन प्रकाशित मण्डल के पादप प्लैंकटन द्वारा निर्मित सागरीय चारागाह तथा बड़े आकार वाले सागरीय जन्तुओं के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।

- **नैक्टन समुदाय-** इसके अन्तर्गत सागरीय जल की विभिन्न गहराइयों में रहने वाले जन्तुओं को सम्मिलित किया जाता है। इस समुदाय का प्रमुख जन्तु विभिन्न प्रजातियों वाली मछलियाँ हैं।

इन्हें दो प्रमुख वर्गों में रखा जाता है-

1. पेलैजिक मत्स्य तथा
2. सागर नितल पर रहने वाली मछलियाँ।

- इन दोनों समुदायों की मछलियाँ सागरीय जीवीय संसाधन का सर्वप्रमुख स्रोत हैं।

सागरीय स्तनधारी तैराक नैक्टन जंतुओं को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। यथा-

1. वे जन्तु जो वर्ष के कूछ समय तक सागर में रहते हैं तथा अधिक समय तक स्थल पर रहते हैं। जैसे-सील
2. वे जन्तु जो वर्ष के कूछ समय तक स्थल पर रहते हैं तथा अधिक समय तक सागर में रहते हैं। जैसे- ह्वेल, डॉल्फिन, सागर गाय आदि। तैराक सागरीय पक्षियों में ग्वानों प्रमुख हैं।

- **बेन्थम जीव समुदाय-** इसके अन्तर्गत सागरीय जल के नीचे सागरीय तली पर रहने वाले पौधों तथा जन्तुओं को सम्मिलित किया जाता है। इन तलवासी जन्तुओं की प्रजातियों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है। इनकी कूल प्रजातियाँ सागरीय जन्तुओं की समस्त प्रजातियों का 16 प्रतिशत हैं।

वास्य क्षेत्र के आधार पर तलवासी जीवों को दो श्रेणियों में रखा जाता है। यथा-

1. सागरतली या उसके ऊपर रहने वाले पौधे।
2. तली पर स्थित निक्षेपों के अन्दर रहने वाले पौधे तथा जन्तु।

- तलवासी पौधों में सागरीय खर- पतवार प्रमुख हैं। तलवासी जन्तुओं में कड़ी खोल में रहने वाले जन्तु अधिक संख्या में होते हैं। जैसे- मोलस्क। अन्य प्रजातियों में ज्यादातर जन्तु शवभक्षी होते हैं। यथा- शार्क, सेबलफिश, हैगफिश, ऑक्टोपस आदि तलवासी जन्तुओं का जीवन ऊपरी सतह के जैविक पदार्थों तथा नेक्टन प्राणियों के अवशेषों के नीचे गिरने से सुलभ सामग्री पर निर्भर करता है।

सागरीय खाद्य संसाधनों को उपयोग के दृष्टिकोण से दो प्रकारों में विभक्त किया जाता है-

1. मानव आहार के रूप में प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ। जैसे- मछलियाँ तथा
2. पुष्टिहार एवं औषधि।

- विश्वस्तर पर मछलियों की सकल पकड़ का 90 प्रतिशत भाग पंखवाली मछलियाँ तथा शेष 10 प्रतिशत भाग ह्वेल, क्रस्टेसियन मोलस्क तथा कई प्रकार के अन्य रीढ़विहिन जन्तुओं का होता है।
- **मछलियाँ-** सागरीय जल में पायी जाने वाली मछलियों को विभिन्न आधारों पर विभिन्न श्रेणियों में रखा जाता है। जल की गहराई के आधार पर इन्हें दो वर्गों में रखते हैं। यथा-
- सागरीय जल के ऊपरी भाग में रहने वाली मछलीयों को क्लूपीयाड कहते हैं। जिसके अन्तर्गत हेरिंग, सारडाइन, मेनहेडेन, पिलचर्ड, एंकोबी, शाड आदि प्रमुख हैं।
- गहरे सागर में तली में रहने वाली मछलियों को गैड्वायड कहते हैं जिसके अन्तर्गत कॉड, हैडेक, हेक आदि प्रमुख हैं।
- मछलियों की सकल पकड़ का 45 प्रतिशत क्लूपीयाड परिवार की मछलियों का, 15 प्रतिशत भाग गैड्वायड परिवार की मछलियों का, 7 प्रतिशत ट्यूना, मैकरेल आदि, 15 प्रतिशत फ्लाउण्डर (छोटी चपटी मछली) तथा अन्य प्रकार की चपटी मछलियों का होता है।

अवस्थिति के आधार पर सागरीय मछलियों को तीन श्रेणियों में रखा जाता है। यथा-

1. **खुले सागर में रहने वाली मछलियाँ-** मैकेरेल, ट्यूना, हेरिंग एंकोवी आदि।
2. **तलबासी मछलियाँ-** कॉड, हैडक, हेलीबुट आदि।
3. **प्रवासी मछलियाँ-** इसमें सालसन सर्वप्रमुख हैं।

विटामिन तथा औषधि संसाधन

वर्तमान समय में औषधि वैज्ञानिकों का ध्यान सागरीय जीवों (पौधों तथा जन्तुओं) से विटामिन तथा विभिन्न रोगों के निवारण के लिए औषधि बनाने के लिए शोध की ओर लगा हुआ है ज्ञातव्य है अब 'सागर औषधि विज्ञान' का विकास हो चुका है। सागर औषधि विज्ञानी सागरीय जीवों की शारीरिक, रासायनिक तथा भौतिक गुणों के अध्ययन में लगे हैं। जल केकड़ा, सागर मोथा, सागर कूकूम्बर, बारनैकल, हार्सशू, केब, शार्क कॉड आदि के विभिन्न पदार्थों का विभिन्न रोगों के उपचार के लिए औषधि के रूप में उपयोग प्रारम्भ हो गया है।

- शार्क ऑयल तथा कॉड लिवर ऑयल का शक्तिवर्द्धक टॉनिक के रूप में पहले से उपयोग हो रहा है।

सागरीय खनिज संसाधन (Marine Mineral Resources)

सागरीय क्षेत्रों में विभिन्न धात्विक तथा अधात्विक खनिज दो रूपों में मिलते हैं। यथा-

1. सागरीय जल के घोल रूप में
2. सागरीय तली के निक्षेपों में।

- **सागरीय जल में घुले खनिजों में प्रमुख हैं-** नमक, ब्रोमीन, मैग्नेशियम, सोना, जस्ता, यूरेनियम, थोरियम आदि। एक अनुमान के अनुसार प्रति घन किलोमीटर सागरीय जल में 41.25 मिलियन टन

ठोस पदार्थ घुली अवस्था में रहता है। सागरीय जल में घुले नमक की कूल मात्र का 85 प्रतिशत भाग सोडियम तथा क्लोरीन का होता है। जल में खुले खनिजों को विभिन्न विधियों से अलग किया जाता है।

- खनिजों में नमक का विदोहन सर्वाधिक हुआ है। भारत के गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु के तटीय भागों में सागरीय जल से नमक प्राप्त किया जाता है। अकेले गुजरात देश के कूल नमक उत्पादन का 50 प्रतिशत उत्पादन करता है।

सागरीय निक्षेपों के खनिज- इन्हें दो वर्गों में विभक्त किया गया है।

1. सतही निक्षेप
2. गहरे सागरीय एवं मग्नतट तली निक्षेप।

सतह निक्षेप को पुनः तीन उपवर्गों में विभक्त किया गया है। यथा-

1. महाद्वीपीय मग्नतट के खनिज निक्षेप
2. महाद्वीपीय ढाल पर स्थित खनिज निक्षेप।
3. सागरीय तली के खनिज निक्षेप।

- महाद्वीपीय मग्नतटों एवं ढालों की सतह पर निक्षेपित पदार्थों में जिरकन, मोनाजाइट, मैग्नेटाइट गोल्ड प्लेसर, हीरा, प्लेटिनम, गंधक, फास्फोराइट तथा कई प्रकार के निमार्ण पदार्थ जैसे-रेत, बजरी, बोल्डर आदि पाये जाते हैं।
- जिरकन तथा मोनाजाइट का भण्डार भारत, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, श्रीलंका, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड के तटीय क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत में मोनाजाइट का विश्व का वृहत्तम (90 प्रतिशत) भण्डार है जो केरल तट के पास प्लेसर डिपाजिट में निहित है।
- मैग्नेटाइट खनिज का सम्बन्ध ज्वालामुखी शैलों से होता है, अतः ये उन्हीं सागर तटीय क्षेत्रों में मिलते हैं जहाँ पर ज्वालामुखी क्रिया होती रहती है। मैग्नेटाइट लोहा का भण्डार जापानी तट के पास 36 मिलियन टन बताया गया है।
- केसीटराइट एक प्रकार का टिन खनिज होता है जो ग्रेनाइट शैल के अपक्षय होने से अलग होता है। इसका सर्वाधिक भण्डार थाईलैण्ड, मलेशिया तथा इण्डोनेशिया के सागर तटीय क्षेत्रों में पाया जाता है।
- सोने का जमाव अलास्का, ओरेगान (संयुक्त राज्य अमेरिका), चिली, दक्षिण अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया के सागर तटीय क्षेत्रों में पाया जाता है।
- फास्फोराइट सागर तटीय क्षेत्रों में पंक तथा रेत में मिला रहता है। मग्नतटों एवं ढालों पर यह नोडूल के रूप में पाया जाता है। इसका उपयोग उर्वरक निर्माण में किया जाता है।
- ऑस्टेलिया के तटीय भाग पर संसार का 29% रूटाइल खनिज पाया जाता है। ज्ञातव्य है कि इसका उपयोग वेल्डिंग किये गये छड़ों पर कोंटिंग के लिए होता है।
- **गहरे सागरीय निक्षेपों के खनिजों** में मैंगनीज पिण्ड सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रशान्त महासागर में इसका सर्वाधिक भण्डार है। मैंगनीज नोड्यूल्स में कई खनिज मिले रहते हैं (निकिल, तांबा, कोबाल्ट, सीसा, जस्ता, लोहा, सिलिकॉन आदि) इनमें मैंगनीज तथा लोहा का प्रतिशत सबसे अधिक रहता है।

सागरीय तली में मैंगनीज पिण्ड दो बहुप्रचलित विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है-

1. एयर लिफ्रट तकनीक तथा
2. कण्टीन्यूवस बकेट लाइन सिस्टम।

- **मग्नतट तली निक्षेपों में** मुख्य रूप से महाद्वीपीय मग्न तटों की तली की निचली संरचनाओं में खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस के अपार भण्डार की सम्भावना है। कई देशों में तो इसका विधिवत् विदोहन हो रहा है। खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस सर्वाधिक विकसित संसाधन हैं। सागरों से प्राप्त किए जाने वाले सभी खनिज संसाधनों का 90 प्रतिशत भाग खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस से ही प्राप्त होता है।
- भारत में महाराष्ट्र तट (कोंकण तट), गुजरात तट, मालाबार एवं कारोमण्डल तट, कृष्णा-कावेरी डेल्टा तट, सुन्दरबन आदि के पास अपतट खनिज तेल की खोज की गयी है। उत्पादन की दृष्टि से तीन तेल क्षेत्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं- मुम्बई हाई, बसीन तथा एलियाबेट।

सागरीय ऊर्जा संसाधन

सागरीय ज्वार तथा लहर एवं ऊपरी गर्म जल तथा निचले ठंडे जल के बीच तापमान में अन्तर ही सागरीय ऊर्जा बिजली उत्पन्न करने के प्रमुख स्रोत हैं। कूछ देशों के तटीय भागों में ज्वारीय ऊर्जा एवं लहर ऊर्जा का विकास किया गया है। ज्वारीय ऊर्जा के विकास के लिए दो दशाओं का होना आवश्यक है दीर्घ ज्वारीय परिसर, संकरा जल मार्ग जिसमें तेज ज्वारीय धारायें चलती हों। बिजली उत्पादन के लिए 5 मीटर का न्यूनतम ज्वारीय परिसर का होना आवश्यक है। कनाडा के नोवास्कोसिया के फण्डी की खाड़ी में 15 मीटर तक ज्वारीय परिसर है। कूछ देशों में ज्वारीय ऊर्जा के दोहन के लिए तटीय भागों में बड़े शक्ति संयंत्र लगाये गये हैं। उदाहरण के लिए फ्रांस के ब्रिटैनी में रैन्स एस्चुअरी पर, रूस के श्वेत सागर में मरमान्स्क के पास, भारत में कान्दला पत्तन पर आदि।

- सागरीय लहरों में भारी ऊर्जा निहित है परन्तु इसके विकास के कम प्रयास किये जाते हैं।

- **तटीय क्षेत्रों में सागरीय तरंगों से बिजली उत्पन्न करने की तीन विधियाँ विकसित की गयी हैं-**

1. लम्बवत् विस्थापन विधि
2. साल्टर प्रणाली
3. डैम-एटॉल विधि।

- भारत में खम्भात की खाड़ी, कच्छ की खाड़ी तथा हुगली की एस्चुअरी ज्वारीय ऊर्जा के लिए उपयुक्त स्थल है, जिनका विभव 1000 मेगावॉट है।
- समुद्र का जल ओटेक ऊर्जा का अक्षय स्रोत है। OTEC में समुद्र की ऊपरी सतह से 1000 मीटर की गहराई तक ऊर्जा अवशोषित की जाती है। भारत जैसे उष्णकटिबंधीय देश में, जहाँ समुद्री तापमान 25.27^{0}C तक रहता है, OTEC से ऊर्जा उत्पादन की व्यापक संभावना है। लक्षद्वीप तथा अंडमान निकोबार द्वीप समूह OTEC ऊर्जा के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र है। भारत में इस तरह का एक प्रयास तमिलनाडु के कुलशेखरपट्टनम में हो रहा है जो यू.एस.ए. द्वारा प्रस्तावित है। दूसरा लक्षद्वीप में प्रस्तावित है। ध्यातव्य है कि ओटेक ऊर्जा का सर्वप्रथम विचार फ्रान्सीसी विद्वान 'आर्सेल डी आर्सोनवल' ने दिया था।
- समुद्री जल में पवन-प्रवाह के कारण लहरें उत्पन्न होती हैं। इससे ऊर्जा प्राप्त करने के लिए एक पक्का चैम्बर तैयार किया जाता है, जिसमें टरबाइन लगा रहता है। दोलायमान जल स्तम्भ से टरबाइन द्वारा विद्युत उत्पन्न की जाती है। भारत में तट रेखा के सहारे कूल 40,000 मेगावॉट लहर विद्युत उत्पादन की सम्भावना है। भारत का प्रथम समुद्री तरंग विद्युत संयंत्र विझिंगम में लगाया गया है। निकोबार द्वीप समूह में मूस प्वाइंट में भी समुद्री तरंग ऊर्जा की अच्छी संभावना है।
- जनसंख्या की वृद्धि इसी तरह होती रही तो भविष्य में विश्वस्तर पर खाद्य आपूर्ति की माँग बढ़ती जायेगी। यह माँग मात्र स्थलीय स्रोतों से पूरी नहीं हो पायेगी। अतः सागरीय संसाधनों के अधिकाधिक विदोहन की सम्भावना बढ़ती जायेगी। स्पष्ट है कि भविष्य में सागरीय संसाधनों पर दबाव बढ़ेगा। अतः सागरीय संसाधनों के विदोहन, संरक्षण एवं परिक्षण के लिए समुचित कदम उठाना आवश्यक है।

सागरीय जीवीय संसाधनों के दक्ष प्रबंधन के निम्न बातों को ध्यान में रखना होगा-

- सागरीय संसाधनों का विवेकपूर्ण विदोहन, अनुकूलत उपयोग संरक्षण तथा परिरक्षण एवं सागरीय पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त रखना।
- सागरीय जीवित जीवों खासकर मछलियों की जिन प्रजातियों का आवश्यकता से अधिक मत्स्यन हुआ है, वे संकटापन्न होने के कारण विलोपन के कगार पर पहुँच गयी हैं। अतः उनकों भरपूर संरक्षण दिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ह्वेल मछलियों की कूछ प्रजातियाँ (8) विलोपन की स्थिति में आ गयी हैं। वृहदाकाय बलीन ह्वेल सबसे अधिक संकटापन्न स्थिति में है। आधुनिक या दक्ष ह्वेलिंग विधियों (ह्वेल का शिकार करने को ह्वेलिंग कहा जाता है) के कारण नीली ह्वेल तथा हम्पबैक ह्वेल की संख्या भी बहुत कम हो गयी है। ह्वेलों के संरक्षण के लिए कूछ देशों (ग्रेट ब्रिटेन, नार्वे, नीदरलैंड आदि) ने स्वयं नियम बनाया है। इस दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भी आवश्यकता है।

स्व कार्य हेतु

KGS IAS

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform

Download the Khan Global Studies (Official) App

GET IN ON Google Play

Download on the App Store

Connect With Us

KGS IAS

KHAN GLOBAL STUDIES

Most Trusted Learning Platform

Karol Bagh Office

57/14, Near Grover Mithaiwala, Old Rajendra Nagar,
New Delhi - 110060
Phone No.: +91 1149 052 928, +91 9205 777 818

Mukherjee Nagar Office

704, Ground Floor, Main Road Front of Batra Cinema
Mukherjee Nagar, Delhi - 110009
Phone No.: +91 1143 017 512, +91 9205 777 817